घनआनंद

(ग्रंथावली)

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

प्रकाशक
प्रसाद-परिषद्
की ओर से
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, बनारस-१

प्रबोधनी : २००९
मूल्य : ६)
प्रतियाँ : १५००

मुद्रक
श्रीमद्भागवत प्रेस,
सुडिया, काशी।

प्रस्तुत ग्रंथावली

प्रस्तुत ग्रथावली के सपादन मे प्रत्येक पुस्तक के विभिन्न हस्तलेखो का आलोड़न करके पहले यह निर्णय किया गया है कि किसमे शुद्धता एवम् प्रामाणिकता अधिक है और फिर उसे प्रधान रखकर प्राय: अन्यो से पाठातर दिए गए है । पर सर्वत्र उसी का पाठ मूल मे न होकर यथास्थान अन्यों के उपयुक्त पाठ लिए गए है । 'घनआनद-कबित्त' और 'सुजान-हित' घनआनद के कबित्तो के दो विभिन्न सग्रह है । इनमे से 'घनआनद-कबित्त' मेरे विचार और अनुसंधान से प्राचीन है । फिर भी 'सुजान-हित' मे कबित्तो के पाठ उसी (सुजान-हित) के हस्तलेखो के आधार पर रखे गए है । इस ग्रथावली मे 'घनआनद-कबित्त' नही रखा गया है, 'सुजान-हित' ही समिलित है । वह पृथक् प्रकाशित किया जा चुका है ।

विभिन्न हस्तलेखो के सकेत '१, २, ३' या 'क, ख, ग' आदि न रखकर उनके प्राप्तिस्थानों के सक्षेप से व्यक्त किए गए है। जैसे 'वृंदावन' के लिए 'वृंदा०', 'रामनगर' के लिए 'राम' आदि । ऐसा करने मे लाघव तो नही है, पर भ्रम की सभावना कम है । पाठातरो के लिए मूल मे अको की योजना भी इसी से नही की गई । अक आदि के टूट-फूट जाने से भी गडबड हो सकता है । हॉ, लाघव के लिए मूल के लबे पाठो का पूरा उद्धरण न देकर कुछ शब्द ही दिए गए है, फिर शून्य लगाकर आगे पूरा पाठातर दिया गया है । ऐसा करने मे कुछ पृष्ठ बढ गए है, पर स्पष्टता अधिक है ।

मूल के नीचे पहले छोटे भिन्न अक्षरो मे पाठातर है, जिनके लिए पद्यो की सख्या बिना कोष्ठक के दी गई है। फिर छोटे पर भिन्न अक्षरो मे कठिन शब्दो के अर्थ दिए गए है । पद्य की सख्या बडे कोष्ठक से घिरी है । विस्तार-भय से बहुत कठिन शब्दो के ही अर्थों की योजना की गई है । घनआनद ब्रजभाषा-प्रवीण थे, इसका पता इस ग्रंथावली से विशेष रूप से लगता है। कुछ शब्दो के दिए गए अर्थ संदिग्ध हैं । ब्रजभाषा-ज्ञान के

लिए भिखारीदास ने ब्रजवास को प्रधान नही माना, कवियो के काव्य को साधन कहा है। पर घनआनद के बहुत से शब्द और प्रयोग अन्य कवियो मे है ही नही।

सुजान-हित, कृपाकद, प्रेमपत्रिका, वृदावनमुद्रा मे कुछ कबित्त-सवैये ओत-प्रोत है। उन्हे प्रत्येक ग्रथ मे ज्यो का त्यो रहने दिया गया है। 'प्रेमसरोवर' पूरा का पूरा 'ब्रज-व्यवहार' मे २२५ से २३२ तक आ गया है। 'मनोरथमजरी' पूरी 'पदावली' मे भी आई है। फिर भी पुनरुक्ति बनी रहने दी गई है। 'पदावली' मे कुछ दोहे भी आए है वे भी यथास्थान है। यह सब इसलिए किया गया जिससे ग्रथावली अनुसधान के उपयोग की भी बनी रहे।

शब्दरूपो मे वही तक एकरूपता लाई गई है जहाँ तक ग्रथ के 'वैज्ञानिक' सपादन का महत्त्व बना रहे और साहित्यिकता भी खडित न हो। अत. शब्दो के विभिन्न रूप भी यथास्थान मिलेगे। प्राचीन ग्रथो मे 'समान', 'सुजान' आदि शब्दो के रूप 'समान', 'सुजान' या 'समॉन', 'सुजॉन' भी मिलते है। ये रूप भाषा-विज्ञान की दृष्टि से काम के है—सानुनासिक 'न' से 'म्' या 'ज्' का 'आ' प्रभावित है। पर ऐसे रूप गृहीत नही किए गए, सार्वत्रिक प्रवृत्ति न होने से। 'मॉ' की सानुनासिकता इसलिए नही छोड़ दी गई है कि 'म्' स्वयम् सानुनासिक है अतः उसमे अनुस्वार या अर्धानुस्वार व्यर्थ है, जैसा आधुनिक हिंदी मे 'मे' के सबध मे कुछ पडितमन्य समझने-करने लगे है। परमार्थतः 'अनुस्वार' या 'अर्धानुस्वार' 'म्' को नही उसके आगे के 'स्वर' को रजित करता है। विस्तार-भीति से एकदेश का ही निरूपण करके विरत होता हूँ, अन्यत्र भी ऐसी ही गति है।

ग्रथ के अत मे केवल कबित्तो (मनहरण, सवैया, छप्पय) और पदो की सूची सधान-अनुसधान के प्रेमियो के लिए जोड दी गई है। अन्य छदो की सूची निष्प्रयोजन समझी गई। अतः पदावली या कबित्तो के बीच आए दोहे-सोरठे सूची मे न मिलेगे।

प्रस्तुत सस्करण मे घनआनदजी का चित्र भी दिया जा रहा है। यह चित्र कृष्णगढ से प्राप्त हुआ है और मुझे निंबार्क-सप्रदाय के वृदावननिवासी ब्रह्मचारी



घनआनन्द

श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदाताचार्य से मिला है। इस चित्र पर यह छप्पय भी अकित है—

"सकल-गुन-सुजान स्वामीजी श्रीआनदघनजी।
बृदाबन मे अटल ह्वै बास कियौ आनदघन।
रचै कटीली काव्य, स्तुति कछु परत न गाई।
अनुपम अच्छर जटित चोज चेटक सरसाई।
श्रवन परत हिय द्रवै छकनि झूलै सब झूलै।
मानौ मोहन मत्र महा सुधि की सुधि भूलै।
गान-कला मे अति कुसल सुनत बढै आह्लाद मन।
बृदाबन मे अटल ह्वै बास कियौ आनदघन॥"

जिन महानुभावो ने अपने हस्तलेख या उनकी प्रतिलिपियाँ दी, जिन सस्थाओ ने हस्तलेखो को देखने की सुविधा दी उन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता विनम्र भाव से व्यक्त करता हूँ। वृदावनवाले हस्तलेख के लिए 'निंबार्क-माधुरी' के सपादक श्रीबिहारीशरणजी का, सरस्वती-भडार (रामनगर) के हस्तलेखो के लिए हिज हाइनेस महाराज विभूतिनारायण सिहजी का, अजयगढ के काव्यसग्रहवाले हस्तलेख के लिए हिज हाइनेस सवाई महाराजा पुण्यप्रताप सिंहजू देव का, घनआनद के चित्र तथा निबार्क-सप्रदाय की बहुत सी सामग्री देने के लिए बड़ी कुज (वृदानन) के श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदाताचार्य का, लादन के हस्तलेख का माइक्रोफिल्म ला देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० केसरीनारायणजी शुक्ल का, उस माइक्रोफिल्म के पठनार्थ अत्यत शक्तिशाली मैग्नीफाइग ग्लास देने के लिए के० कृष्ण एड सस (चौक, बनारस) के सचालक श्रीविधानकुमार चक्रवर्ती का, समय-समय पर शब्दार्थ-सबधी परामर्श के लिए श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी (रामनगर) का, घनआनद-सबधी भडौओ की प्रतिलिपि भेजने के लिए धर्मसमाज कालिज (अलीगढ) के हिंदी-सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्रीमनोहरलालजी गौड़ का और अजयगढवाला हस्तलेख ले आने के लिए भारती महाविद्यालय (काशी विश्वविद्यालय) के प्राध्यापक श्रीविश्वभरशरण पाठक का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस कार्य मे मेरे कई शिष्यो ने छोटी-मोटी सहायता करके हाथ बँटाया। उनमे से पाठातरो के मिलान के लिए गया कालिज के प्राध्यापक श्रीबटेकृष्ण और माइक्रोफिल्म से प्रतिलिपि करने मे सहायता देने और प्रतीकानुक्रमणी प्रस्तुत करने के लिए काशी विश्वविद्यालय (हिंदी-विभाग—एम्० ए० कक्षा) के छात्र श्रीगोपालदास कार्य-गौरव के निमित्त उल्लेख्य और आशीर्वाद के विशिष्ट भाजन है।

इस ग्रंथावली के मुद्रित हो जाने से घनआनद की कृतियो के संपादन का अनुष्ठान पूर्ण हो गया। अब रह गई उनके सौदर्यविधान और भावनाभेद की सरणियो का परिचय करानेवाली समीक्षा, जिसके लिए मै प्रतिश्रुत हूँ। उसकी सभावना भी शीघ्र ही करनी चाहिए, क्योकि व्याधि-मदिर मे इस कार्य की परिपूर्ति मे सतत श्रम के अनिवार्य परिणाम-स्वरूप कई व्याधियो के स्थापित हो जाने पर भी मै स्फूर्ति का अनुभव करने लगा हूँ—

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवता विधत्ते'

प्रबोधनी, २००६
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित—(१) राजपुस्तकालय, रामनगर, बनारस राज्य ।
(२) म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग ।
(३) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली ।

कृपाकंद—सरस्वती-भडार, रामनगर, बनारस राज्य ।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचद्र वैद्य, भरतपुर ।
(२) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।

इश्कलता—श्रीरामचद्र सेनी, बेलनगज, आगरा ।

यमुना-यश—म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग ।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा ।

पदावली—मानस-सघ, रामवन, सतना ।

आनंदघन-ग्रंथावली—श्रीब्रह्मचारी बिहारीशरण, वृंदावन ।

ब्रजस्वरूप (आनंदघन-ग्रंथावली)—(माइक्रोफिल्म, ब्रिटिश म्यूजियम, हस्तलेख-विभाग, १६४)—श्रीकेसरीनारायण शुक्ल, लखनऊ ।

प्रकीर्णक—(१) आनदघन-कवित्त, रत्नाकर-सग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
(२) घनआनद-कबित्त, वही ।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
(४) सग्रह, राजपुस्तकालय, अजयगढ़ राज्य, विन्ध्यप्रदेश ।
(५) भडौआ, (याज्ञिक-संग्रह), श्रीमनोहरलाल गौड़, अलीगढ़ ।

मुद्रित

घनआनंद-कबित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।

शृंगार-संग्रह—सरदार कवि ।

सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चद्र ।

मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबधु महोदय ।

'खोज' के विवरण—(अप्रकाशित भी)

सुजान-सागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।
विरह-लीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रसखान और घनानद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रागकल्पद्रुम (तीनो भाग)—श्रीकृष्णानद व्यास।
रागरत्नाकर—श्रीभक्तराम।
ब्रजनिधि-ग्रथावली—('सभा' द्वारा प्रकाशित)
घन-आनंद—श्रीशभुप्रसाद बहुगुना (आधार—याज्ञिक-सग्रह)
ब्रज-भारती (पत्रिका)—सपादक, श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

संकेत

राम—रामनगर (बनारस राज्य) के हस्तलेख।
प्रयाग—प्रयाग (म्यूनिसिपल म्यूजियम) के हस्तलेख।
कवित्त—घनआनद-कवित्त ('सभा') के हस्तलेख।
काँक०—काँकरौली, विद्या-विभाग के हस्तलेख।
भदा०—भदावर राज्य (नवगाँव, आगरा) के हस्तलेख।
सग्रह—विभिन्न सग्रहो के हस्तलेख या मुद्रित ग्रथ।
सभा—'सभा' द्वारा मुद्रित ग्रथ।
खोज—खोज-विभाग के मुद्रित और अप्रकाशित विवरण।
वृंदा०—वृंदावन, श्रीबिहारीशरणजी वाला हस्तलेख।
लंदन—लदन (ब्रिटिश म्यूजियम) का हस्तलेख (माइक्रोफिल्म)
भरत—भरतपुर, श्रीराधाचद्र वैद्य का हस्तलेख।
बेल०—बेलनगज (आगरा), श्रीरामचद्र सेनी का हस्तलेख।
याज्ञिक—याज्ञिक-सग्रह के हस्तलेख (बहुगुना के घन-आनद के आधार पर)।
सतना—सतना (मानस-सघ) की पदावली का हस्तलेख।
वही—पूर्वगामी सकेत के लिए।

सूचना—जहाँ पाठातर मे कोई सकेत नहीं वहाँ उत्तरगामी सकेत समझिए।

सूची

अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है, जिसे हिंदी-काव्य-परंपरा का मान्य अर्थ समझना चाहिए । 'रीति' वस्तुत. 'काव्य-रीति' का संक्षिप्त रूप है[१] ।

साहित्य के विविध कालों का विभाजन और नामकरण किस आधार पर हो, यह विचारणीय है। मुख्यतया कृति, कर्ता, विषय और पद्धति को दृष्टिपथ में रखकर विभाजन तथा नामकरण होता है। साहित्य के किसी विशिष्ट काल या युग की एकरूप कृतियों के विचार से विभाजन और नामकरण का दृष्टात है हिंदी का आदिकाल, जिसमे उपलब्ध अधिकांश रचनाओं का नाम 'रासो' है। अतः कुछ लोग उसे 'रासो-काल' कहना ठीक समझते है। कर्ताओ की एकरूपता को लक्ष्य करके उसे 'चारण काल' भी कहा गया है[२]। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उसका नाम 'वीरगाथा-काल' भी रखा गया है[३]। पर कभी-कभी विशिष्ट पद्धति की बहुलता भी नामकरण का हेतु होती है। हिंदी का आधुनिक काल 'गद्यकाल' कहा जाता है[४]। जब विभाजन और नामकरण का कोई मार्ग नहीं मिलता तब किसी विवेच्य काल का कोई विशिष्ट कवि या लेखक सामने किया जाता है ; अथवा राजनीतिक या सामाजिक इतिहास की शरण ली जाती है। अंगरेजी-साहित्य के इतिहासों मे पूर्व-शेक्सपियर-युग उत्तर शेक्स-पियर-युग आदि नाम[५] और उन्हीं की अनुकृति पर संस्कृति-साहित्य के इतिहासो मे पूर्व कालिदास-युग, पर-कालिदास युग आदि नाम[६] पहले प्रकार के उदाहरण है। हिंदी में 'मिश्रबधु विनोद' के उपविभाग सौरकाल, तुलसी-काल, बिहारी काल इसी के बोधक हैं और आधुनिक काल के भारतेंदु-

१ भिखारीदास ने लिखा है—काव्य की रीति सिखी सुकबीन सो देखी सुनी, बहु लोक की बातैं—काव्य-निर्णय, प्रथम उल्लास ।

२ सेलेक्शन्स फ्राम हिंदी-पोयटी—लाला सीताराम सगृहीत, प्रथम भाग ।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास—प० रामचद्र शुक्ल-कृत ।

४ मिश्रबधु-विनोद तथा हिंदी-साहित्य का इतिहास ।

५ ए हिस्ट्री आव् इगलिश लिटरेचर—श्री आर्थर काम्प्टन रिकेट-कृत (सन् १९३१) पृ० १५४ ।

६ सस्कृत-लिटरेचर—श्री कीथ-कृत ।

युग, द्विवेदी-युग[1] खड भी यही सूचित करते हैं । अँगरेजी साहित्य के इतिहासों में एलिजाबेथन या विक्टोरियन पीरियड नाम दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं । हिंदी में अकबर-काल, दयानद-काल नाम भी वैसे ही है ।

विभाजन और नामकरण में एक ओर तो किसी विशेष काल या युग की व्यापक प्रवृत्तियों का बोध लक्ष्य होता है और दूसरी ओर अतर्विभाग का सुभीता । जहाँ तक प्रवृत्तियों के बोध का पक्ष है इतर क्षेत्रों से नाम का ग्रहण आलस्य का सूचक है । साहित्य का इतिहास जनता की मानस परंपरा का इतिहास होता है, उसे किसी शासक के नाम से प्रकट करना साहित्य की भाव धारा के अज्ञान की घोषणा करना है । किसी विशिष्ट कवि या लेखक का नाम तब तक युग के साथ न जुड़ना चाहिए जब तक उसकी प्रवृत्तियाँ सर्वमान्य न हो गई हों । 'भारतेंदु युग' और 'द्विवेदी-युग' नाम को इसी दृष्टि से उचित कहा जा सकता है । अंतर्विभाग के लिए ध्यान में रखना होगा—विभाग के नाम की व्याप्ति को । अतर्विभाग व्यापक प्रवृत्तियों के स्कधों का बोधक होता ही है, साथ ही किसी विभाग की दीर्घ सीमा के विवेचन की कठिनाई भी सुगम करता है । प्रत्येक काल के पृथक् पृथक् युग या सामान्य प्रवृत्तियों के पृथक्-पृथक् स्कध बतलाने और समझने की दृष्टि से अनिवार्य होते हैं । अतः विद्वान् ऐतिहासिक सदा विभाजन करके ही विवेचन में प्रवृत्त होते हैं । शुक्लजी ने हिंदी-साहित्य का पूर्व मध्यकाल विवेचन-सौकर्य के ही लिए चार अतर्विभागों में विभक्त किया है । निर्गुण तथा सगुण धारा की दो-दो शाखाएँ मानकर ये नाम रखे हैं—ज्ञानमार्गी-प्रेममार्गी तथा रामभक्ति—कृष्णभक्ति ।

इस प्रकार किसी साहित्य-काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं । एक तो नाम सर्वसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अतर्विभाग का मार्ग अनवरुद्ध रखे । सर्वसामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का सबध किसी विशेष काल मे प्रस्तुत ग्रंथराशि के बाहुल्य से है, समस्तता से नहीं । किसी काल में बहुत सी प्रवृत्तियाँ पूर्व काल की भी चलती रहती हैं और कुछ नए काल का आभास देती हुई भी सामने आती हैं । इसलिए बाहुल्य की दृष्टि ही सर्व-व्यापृत प्रवृत्तियों का प्रकृत रूप निर्दिष्ट कर सकती है ।

---

१ आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास—श्री कृष्णशकर शुक्ल-कृत ।

इस विचार से साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचको और राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शासकों का शासन सामने लानेवाले ऐतिहासिकों में बड़ा भेद है। परपरा के अनुसार किसी देश के इतिहास का कर्ता किसी काल के नामकरण या विभाजन मे बहुधा शासक-वर्ग के नाम या जाति का ही सहारा लेता है। यद्यपि जनता की मनोवृत्तियों की झलक भी उसे देनी पड़ती है तथापि वह शासकों की व्यवस्था और कार्य-कलाप पर ही अधिक दृष्टि रखता है अतः उसे नामकरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं पडती। हिंदू-काल, मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल या अफगान-काल, मुगल-काल आदि नाम किसी गहरी छान-बीन के परिणाम नही। पर साहित्य में ये व्यक्तिवाचक या जातिबोधक नाम यदि कहीं रख भी दिए जायँ तो भी सर्वत्र यही ऋजु पथ न मिलेगा। साहित्य जनता के मन की छाया है और जनता का संघटन सब प्रकार की जातियों, वर्गों आदि से होता है। इसी से साहित्य में एक ही प्रकार की रचना प्रस्तुत करनेवाले विविध जातियों, वर्गों, सप्रदायों आदि के लोग हो सकते हैं क्या, होते ही है। हिंदी-साहित्य के किसी काल या युग की रचना उठा लीजिए, प्रमाण मिल जायगा। हिंदी के आधुनीक काल में एक ही प्रकार की रचना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी जाति तथा मत के भारतवासी मिलते हैं। वस्तुतः साहित्य भेद मे अभेद की स्थापना करनेवाला होता है। इसी से किसी देश की सार्वजनिक एकता का प्राण होता है एक साहित्य और एक भाषा। इसलिए विभागोपविभाग के नामकरण में कवियों और लेखकों की सर्वनिष्ठ प्रवृत्तियाँ ही प्रयोजनीय होती हैं। अतः कर्ताओं की एकरूपता के अनुसार नामकरण, यदि कही ऐसी एकरूपता मिले भी तो, विशेष उपयुक्त नही प्रतीत होता। इसलिए अंत में कृति, विषय और पद्धति की एकरूपता ही बच रहती है।

अब देखना चाहिए कि साहित्य में प्रवृत्ति की एकरूपता का कौन सा लक्ष्य चुना जाय—कृति, पद्धति या विषय। 'रासो' की भाँति सदा कृति की नामावली एकरूप नही हुआ करती, अत. यह ढंग भी बहुत स्थूल लक्ष्य का परिचायक है। पद्धतियाँ एक ही समय में कई होती हैं। आधुनिक काल 'गद्य-काल' तो कहा जाता है पर पद्य की रचना भी प्रचुर परिमाण में हो रही है।

इसी गद्य काल में 'छायावाद' का डका पिट चुका है, पर उसकी समाई गद्यकाल में कहाँ है ? इस प्रकार व्याप्ति निर्दुष्ट नहीं रह जाती। वस्तुतः इस प्रकार के नामकरण तभी ठीक माने जा सकते हैं जब साहित्य के वर्ण्य विषय की एकरूपता किसी प्रकार घटित न होती हो।

इससे निश्चित है कि साहित्य के इतिहासों मे विभाजन और नामकरण का सर्वोत्कृष्ट ढग वर्ण्य विषय की व्याप्ति के अनुसंधान से संबद्ध है। पर वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी वस्तुतः दो पक्ष हो जाते है—एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर। हिंदी के आदिकाल को ही लीजिए। इस काल में वीर पुरुषो की गाथाओ का वर्णन करनेवाले ग्रथ अधिक मिलते हैं। अतः वीरगाथा उनका वर्ण्य हुआ अर्थात् इन ग्रंथो में बाह्यार्थ वीरकथा है। पर कवियों ने जिस भाव या रस की अभिव्यक्ति लक्ष्य करके ये गाथाएँ काव्यबद्ध की वह भी तो वर्ण्य ही है। वह बाह्यार्थ नही पर काव्यार्थ तो है ही, अर्थात् प्रवृत्ति का मानस या आभ्यतर पक्ष है। अतः इस दृष्टि से यदि 'आदिकाल' को 'वीरगाथा-काल' न कहकर 'वीररस-काल' या सक्षेप में 'वीरकाल' कहा जाय तो कोई हानि नही। भारतीय दृष्टि से साहित्य या काव्य का प्रतिपाद्य भाव या रस ही होता है। इसी से उसमें कर्ताओं के मानस-पक्ष का प्रसार दूर तक दिखाई पडता है अर्थात् उसकी व्याप्ति प्रकृत्या अधिक होती है। 'भक्तिकाल' नाम में 'भक्ति' शब्द की व्याप्ति उसके भाव होने से अधिक है। यदि 'रीतिकाल' नाम की ओर देखते हैं तो उसमे रीति अर्थात् रस, अलकार, शब्दशक्ति, नायक नायिका-भेद, पिगल आदि काव्यरीति अवश्य वर्ण्य विषय ही है, पर 'रीति' शब्द बाह्यार्थ का ही बोधक है, आभ्यतरार्थ का नहीं। उस काल का आभ्यंतर वर्ण्य 'शृंगार' था। 'रीति' की सीमा में जितनी कृतियाँ समाविष्ट हैं वे अधिकतर 'शृगार' की हैं। थोड़ी सी वीररस या शुद्ध भक्ति की रचनाएँ शृगार की सीमा में आबद्ध नहीं होतीं। जिन्होंने 'नवरस' का प्रतिपादन लक्ष्य बनाया उन्होंने भी शृगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विस्तार से 'शृगार' का ही वर्णन किया। हाँ, गिनने के लिए एक एक उदाहरण अन्य रसों का भी रख दिया, और प्रतिज्ञा पूरी की। केशव, देव, पद्माकर, दास आदि की भी, जो अच्छे प्रतिपादक आचार्य हैं, यही दशा है, औरो का कहना ही क्या ? वीररस की रचना करनेवाले शृंगार रस से

कोरे हों ऐसा भी नही है। 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवभूषण' में की सारी रचना वीररस में की, पर उनके बहुत से फुटकल छंद श्रृंगार के भी मिलते है, ये 'रीति' के पूरे कायदे-कानून के अनुसार निर्मित हैं। बहुत संभव है, उन्होंने रस या नायिका भेद का कोई ग्रंथ ही लिखा हो, पर अब न मिलता हो। 'भूषण उल्लास'. 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण हजारा' नाम से जो इनके ग्रंथ जनश्रुति में सुने जाते है वे वीररस के होंगे ऐसी संभावना नहीं प्रतीत होती। उनके फुटकल श्रृंगार के छंद इन्ही ग्रथों के होंगे, अतः भूषण की यदि सारी रचना मिल जाय तो कदाचित् वे बाहुल्य के विचार से श्रृंगार के ही कवि ठहरेंगे। शिवाजी के दरबार में पहुँचने से पूर्व वे कई दरबारो में गए थे। उन्होंने वहाँ श्रृंगार की ही रचना से श्रीगणेश किया होगा। उनके भाई चिंतामणि, मतिराम, जटाशंकर भी तो श्रृंगार रस का ही चषक भरते रहे!

यदि रीतिकाल के समस्त ग्रथों की छान-बीन की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के ग्रंथों मे श्रृंगार तो किसी-न किसी रूप या परिमाण में अवश्य मिल जाता है अर्थात् दूसरे रस का वर्णन करनेवाले भी श्रृंगार का वर्णन अवश्य करते थे, पर श्रृंगार की अभिव्यक्ति करनेवाले बहुत से ऐसे मिलेंगे जिन्होंने दूसरे रसों का नाम भी नही लिया। नायक-नायिका भेद के ग्रथों की तो कोई बात ही नही, वे श्रृंगार के ही ग्रंथ हैं, श्रृंगार का आलबन-पक्ष ही सामने रखते हैं। नख-शिख के ग्रथ भी ऐसे ही हैं। षड्ऋतु के ग्रथों में श्रृंगार का ही उद्दीपन विभाव लिया गया है। अलकार, शब्दशक्ति और पिंगल के ग्रथों मे सर्वत्र अधिकतर उदाहरण श्रृंगार के हैं। कुछ पिंगल या अलकार के ग्रथ ऐसे अवश्य हैं जिनमें आश्रयदाताओं के शौर्य की गाथा है। पर 'भूषण' के 'शिवभूषण' या उसी प्रकार के दो-एक ग्रंथों को छोड़कर ये ग्रथ श्रृंगार रस से शून्य हों, ऐसा नही है। भक्ति के ग्रथ है तो भक्ति के ही, पर वे श्रृंगार-रहित हैं, यह नही कह सकते। काव्य-दृष्टि से उनमें राधा कृष्ण के श्रृंगार की कथा ही तो है। 'सूरदास' के 'सूरसागर' में गोपीकृष्ण का श्रृंगार है, इसे तो मानना ही पड़ेगा। वह लौकिक श्रृंगार न सही, अलौकिक सही, पर है तो श्रृंगार ही। इस प्रकार रीति के अधिकाश ग्रंथ तो श्रृंगार-प्रधान है ही, और ग्रंथ भी श्रृंगार-संवलित हैं।

रीतिकाल में कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने रीतिशास्त्र पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। पर वे रीति के ही प्रतिनिधि कवि माने गए है, क्योंकि उनपर रीतिशास्त्र की भरपूर छाप है। इनमें मुख्य बिहारी हैं। बिहारी ने अपनी सतसई रीति-ग्रंथ के रूप में नहीं प्रस्तुत की, पर उनकी सारी रचना टीकाकारों ने शृंगार के आलबन, उद्दीपन, अनुभाव आदि के भेदोपभेदों मे खतिया कर रख दी है। अतः लक्षण-ग्रंथ लिखनवालों से ऐसी रचनाएँ पृथक् अवश्य हैं। हाँ, इन्हें हम रीतिबद्ध रचना ही मानेंगे। जैसे रीति-ग्रंथ के प्रणेताओं ने शृंगार के भेद का क्रमबद्ध वर्णन किया है वैसे इन्होंने क्रमबद्ध वर्णन नही किया और समग्र भेदो के उदाहरण जुटाने पर दृष्टि नहीं रखी। साधारणतः दोनो प्रकार की रचनाओं मे कोई भेद नही लक्षित होता। पर ध्यान देने से भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रीति-ग्रंथ लिखनेवाले शास्त्र मे गिनाई सामग्री की योजना करने में सावधान रहते थे। उन्हें लक्ष्य और लक्षण का समन्वय भी करना पड़ता था, पर 'सतसई', 'नौसई' या 'हजारा' लिखनेवाले रीति की सामग्री का उपयोग अपने ढग से करते थे। यही कारण है कि इन्हे कहने के लिए कुछ स्वच्छंदता मिल गई थी। इसी से सतसई आदि प्रस्तुत करनेवालो की रचना रीति-ग्रंथ लिखनेवालो से प्रायः उत्कृष्ट दिखाई देती है। बंधन ढीला करके ये कविता मे रमणीयता लाने में अवश्य सफल हुए। ऐसे कवियो को रीति का प्रतिनिधि कहने मे इसी से विशेष तर्क से काम लेना पड़ा है। यह कहना पड़ा है कि "बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नही लिखी है, पर 'नखशिख', 'नायिकाभेद', 'षट्ऋतु' के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारो ने दोहों को इस प्रकार के साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों की रचना करते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसी लिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर उक्त काल के प्रतिनिधि-कवियों मे ही रखा है।"[1] टीकाकारों या संग्रह-कर्ताओं के अनुसार चले तो बहुतों को रीतिकाल का प्रतिनिधि मानना पड़ेगा। क्योंकि उन्होने तो आलम, ठाकुर, घनआनंद आदि की भी रचनाएँ नायक-नायिका-भेद के अतर्गत ही खींचकर बैठाई हैं, फिर

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवधित सस्करण, १९९९, पृ० २७९।

भी बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि माननेवाले शुक्लजी ने इन्हें उस काल के फुटकल कवियों की श्रेणी में आसन दिया है। ठाकुर आदि की कुछ रचनाएँ लक्षणों से समन्वित होने का आभास मात्र देती हैं। पर ये 'रीति' के प्रतिनिधि कवि नहीं हैं। यहाँ यह प्रतिपाद्य नहीं है कि बिहारी रीति के प्रतिनिधि नहीं थे। कहना इतना ही है कि 'रीतिकाल' की सीमा बढाने के लिए 'रीति' के नाम पर उन रचनाओं को भी समेटना पड़ा है जो रीतिशास्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नहीं निर्मित हुई थीं। दूसरे शब्दों में इन कवियों का साध्य शृंगार था, रीति से ये कभी-कभी साधन का काम अवश्य लेते थे। यदि शृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तर्क देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फेंके हुए और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में आपसे आप आ जाते।

'रीतिकाल' वस्तुतः उन ग्रंथों के समुदाय का बोधक है जिनकी राशि 'रीति' के नाम पर एकत्र हुई। विचार करने पर रीति-ग्रंथ-प्रणेता अधिकतर आचार्य नहीं सिद्ध होते। इन्होंने रीति का पल्ला सहारे के लिए पकड़ा, कहना ये चाहते थे शृंगार ही। किसी ने अलंकारों की माला बनाई, किसी ने पिंगल का प्रस्तार किया, किसी ने रसभाव की धारा बहाई और किसी ने सीधे नायक नायिका-भेद, नख-शिख, षड्ऋतु बारहमासा आदि के बने बनाए सोंचे ले लिए। सच पूछिए तो इन्हें रीतिशास्त्र का विवेचन करने के लिए बुद्धि दौड़ाने की आवश्यकता ही कहाँ थी, संस्कृत में शास्त्र-पक्ष की सारी सामग्री जुटी-जुटाई रखी थी, उसे उठाकर हिंदी-पद्यों में ढाल भर देना था। यदि 'रीति' का विवेचन इनका साध्य होता तो ये संस्कृत के आचार्यों की भाँति प्रत्येक विषय के विमर्श में लगते, दोहों में लक्षण देकर काम चलता न करते। शास्त्र के पुराने विवेचक पहले से प्रस्तुत ग्रंथों या विवेचित पक्षों को हृदयंगम करते थे, तब उनपर अपना स्वच्छंद मत प्रकट करते थे। हिंदी के ये आचार्य तो काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यादर्श, रसतरंगिणी, रसमंजरी, चंद्रालोक, कुवलयानंद, वृत्तरत्नाकर में से एक या दो ग्रंथ सामने रख लेते और लक्षणों का टेढा-सीधा पद्यबद्ध उल्था करके हिंदी में संस्कृत-उदाहरण से मिलता जुलता दूसरा उदाहरण गढ देते थे। कहीं-कहीं लक्ष्य का भी उल्था ही दिया जाता था। फल यह हुआ कि जहाँ रीतिकाल के

विवेचन का अल्प प्रयास दिखाई भी पड़ा वहाँ भी सारा ग्रंथ भ्रांति शून्य न बन सका। विषय पूर्णतया हृदयंगम करके यदि ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते तो ऐसा प्रायः न होता। केशव, देव, दास, पद्माकर ऐसे आचार्यों से भी संस्कृत की विवेचित सामग्री का संग्रह करने में भ्रांति हो गई है, फिर औरों की बात ही क्या! जैसा इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है ये सबके सब वस्तुतः कवि थे। इनका प्रधान वर्ण्य विषय शृंगार ही था। इसी से नायक नायिका-भेद, नख-शिख, षड्ऋतु, बारहमासा, रस आदि के रीतिग्रंथ ही प्रचुर परिमाण में प्रणीत हुए, शब्दशक्ति ऐसे दुरूह विषय के ग्रंथ दो तीन ही मिलते हैं। अलंकार के ग्रंथों की संख्या अधिक अवश्य है पर शृंगार से ही वे भी भरे हैं।

यदि तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते हैं तो भी इनका प्रतिपाद्य शृंगार ही ठहरता है। इस काल के अधिकांश कर्ता दरबारी कवि थे। कोई देशी नरेशों की दरबारदारी करता था तो कोई विदेशी या मुसलमान बादशाहों, शाहों या दीवानों की। देशी दरबारों या सभाओं में हिंदी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से जोड़ तोड़ भिड़ाना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृतवाले शृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे, जिसमें नायक-नायिका, ऋतु-वर्णन, नख-शिख आदि की छटा दिखाते थे, हिंदीवालों को भी वही करना पड़ता था। नरेश ही नहीं, छोटे-छोटे ताल्लुकेदार और जमींदार तक ऐसी रचना के शौकीन हो गए थे। कवि-कर्म करनेवालों के ये ही तो आश्रय-दाता थे। मुसलमानी दरबारों में फारसी या उर्दू की रचना प्रेम का ही बँधा-बँधाया विषय (थीम) लेकर चलती थी। उसके जोड़ में भी हिंदी-कवियों ने शृंगार या नायक-नायिका-भेद की रचना सामने की। उधर से वे शेर पढ़ते या गजल गाते थे, इधर से ये कबित्त, सवैया या दोहा भनते थे। मुक्तक-रचना के आधिक्य का कारण यह दरबारदारी ही है, क्योंकि मुक्तक द्वारा ही थोड़े में रस के छींटे उछाले जा सकते थे। दरबारी कवियों ने प्रबंध छूआ तक नहीं, उनका काम मुक्तकों से ही चल जाता था।

'रीतिकाल' नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि उस काल के अच्छे-अच्छे शृंगारी कवियों को छाँटकर पृथक् करना पड़ा। आलम, ठाकुर,

घनआनद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमंग-भरे कवि किसी रीति-ग्रथकार से काव्योत्कर्ष मे कम नही हैं, पर 'रीति' की सीमा में ये न समा सके। रीतिकाल की शृगारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालो ने भी लक्षित की है, और 'अलकृत काल' नाम रखनेवालों ने भी। पर रीति या अलकारशास्त्र की ग्रंथ-राशि ने एकत्र होकर इन्ही नामो की ओर उन्हें आकृष्ट किया। फलतः शृगार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के संबध में पीछे छूट गई। बात यही तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बडी कठिनाई काल के विभाजन की आ गई, पर गृहीत नामों ने यह मार्ग छेक रखा। 'अलंकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमें भेद का स्पष्ट संकेत कोई नही है। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट ,स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने समस्त काव्यागो का वर्णन करनेवाले और किसी एक अग का वर्णन करने-वालो को पृथक् किया है। पर सभी काव्यागों के विवेचको ने भी एक-एक काव्याग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे दास, चितामणि आदि ने। अतः रीति मे उपविभाग का मार्ग सकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखें, अलकृत काल और रीतिकाल नाम व्याप्ति के बोधक नही प्रतीत होते। उन्हे हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की स्पष्ट अपेक्षा जान पड़ती है।

शृगारकाल नाम स्वीकृत करने से वर्ण्य बिषय की व्यप्ति के बोध के साथ ही फुटकल खाते से निकलकर कई उत्कृष्ट कवि असल खाते में आ जाते हैं। विभाजन का मार्ग सुस्पष्ट और सरल हो जाता है। रीति की सारी सामग्री रीति-ग्रथकारों का साधन थी, वह उनकी काव्य-सामग्री थी, शास्त्र-सामग्री नही। शृंगारिक रचना रीतिबद्ध थी। रीतिबद्ध कृति उन्ही की नही थी जो लक्षण लिखकर और लक्ष्य बनाकर उसमें उसका विनियोग करते थे, प्रत्युत उनकी कृति भी रीतिबद्ध ही थी जो लक्षण-ग्रथ न रचकर रीति का सभार लेकर केवल लक्ष्य प्रस्तुत करते थे, जैसे बिहारी, रसनिधि आदि। इन्होने लक्षण क्यों न लिखे, लक्ष्य ही क्यो प्रस्तुत किया? ये वस्तुतः लक्षण के बखेड़े में फँसना नही चाहते थे। कुछ चुने हुए प्रसगों पर ही कविता रचना चाहते थे। ये रीति का बधन

ढीला करके चलते थे, यद्यपि ये उससे मुक्त नहीं हुए थे। इसी से लक्षणबद्ध रचना से इनकी कविता अपेक्षाकृत उत्कृष्ट है। लक्षण और लक्ष्य का समन्वय करने मे काव्योत्कर्ष को क्षति पहुँचती थी। इसका पक्का प्रमाण 'भूषण' की रचना में मिलता है, जिनकी फुटकल रचना उनके लक्षण-ग्रंथ 'शिवभूषण' की कविता से उत्तम है। लक्षणकार लक्षण मे तिलभर हट नहीं सकता। वह रत्तीभर भी हटा नहीं कि लक्ष्य बेमेल हुआ नहीं। लक्षण ग्रथो मे ऐसी बेमेल रचनाएँ भी कभी कभी मिल जाती हैं। इसका कारण यही होता है कि कवि की वह लक्षणानुगामिनी निर्मिति न होकर पहले से स्वीकृति उक्ति होती है जिसे वह बरबस वहाँ खोसना चाहता है। रीति की केवल प्रेरणा ग्रहण करनेवाले की कविता में ऐसा न होगा। रीति उसके ध्यान मे रहे, रहा करे, पर उक्ति बाँधने मे उसे एकदम बँध ही न जाना पड़ेगा। बिहारी की रचना में रीति का आधार अवश्य है पर उक्ति का वैशिष्ट्य उन्हें लक्षणबद्ध कर्ताओ से पृथक् कर देता है। बिहारी आदि को रीतिबद्ध मानने का हेतु था बधन बाँधे रहना ही, भले ही वह ढीला हो। उन्हें रीति की अपेक्षा अवश्य थी, कम से कम उन्होने उसकी उपेक्षा नहीं की। बिहारी की सतसई मे खडिता के उदाहरण बीसों है। अधिक ऐसे मिलेंगे जिनमें केवल आँखो की ललाई का वर्णन है। लक्षणानुधावन करनवालों को संभोग-चिह्न का लबा-चौडा वर्णन करना पड़ता है। बिहारी उक्तिवैचित्र्य पर विशेष ध्यान देनेवाले थे, अत. उन्होने खडिता के लक्ष्य मे प्रमुख चिह्नो का तिरस्कार करके केवल ललाई पकड़ी और ऐसी उक्तियाँ बाँध दी—

रह्यौ चकित चहुँघा चितै, चित मेरो मति भूलि।
सूर उदै आए रही, दृगनि साँझ सी फूलि॥

इन कवियो से वे सरलतापूर्वक पृथक् किए जा सकते हैं जो रीतिबद्ध रचना को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। ये रीति में बँधना नहीं चाहते थे। इसी से इन्हें रीतिमुक्त या 'स्वच्छद' कवि कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। वे रीतिबद्ध कवि जो बँधी बँधाई उक्तियाँ सुनाते या शास्त्र-कथित सामग्री के भरोसे पाडित्य प्रदर्शित करते थे, इन्हें नहीं रुचते थे। सीखी-सिखाई काव्य-सामग्री के बल पर छद जोड़नेवालों को 'ठाकुर' ने कविता के साथ खेल करने या कविता को खेल समझनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पबृच्छ कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।

कुछ रटी रटाई उपमाएँ जोड़ने या प्रशस्ति करनेवाले काव्य-मर्मज्ञों की सभा में ढेला सा फेंका करते थे। स्वच्छंद कवियों को इन कृतियों से चोट लगती थी। और वे इन्हें मिट्टी ही समझते भी थे। घनआनद के कवित्तों के संग्रहकर्ता ब्रजनाथ ने ऐसी रीतिबद्ध रचना को 'जग की कविता' अर्थात् साधारण रचना कहा है—(जग की कबिताई के धोखे रहै ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी) और उससे घनआनद की कविता को गूढ और पृथक् घोषित किया है। स्वच्छंद कवियों की रचना का वैशिष्ट्य उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से बतलाया है। घन-आनंद के काव्यमीमांसक के गुण निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने घनआनंद ऐसे रीतिमुक्त कवि के काव्योत्कर्ष का रूप इस प्रकार उद्घाटित किया है। इसे स्वच्छंद कवियों का स्वरूप-लक्षण समझना चाहिए—

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद को जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद भावना-भेद-स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियौ, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कबित्त बखानै॥

पद्य में प्रयुक्त 'सुछंद' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'सुछंद' शब्द का तात्पर्य है—रीति से स्वछंद, रीतिमुक्त। रीतिबद्ध या शास्त्रबद्ध (क्लासिकल) के बंधन से छूट कर ही ये रीतिमुक्त या स्वच्छंद (रोमांटिक) होनेवाले कवि थे। उनके अनुसार ये प्रेम की अनेक अंतर्वृत्तियों के उद्घाटक काव्यगत रमणीयता के नाना भेदों के विधायक, संयोग और वियोग की अनेक प्रेमदशाओं के मार्मिक द्रष्टा, भावनाभेदों के सहृदय चितेरे, प्रेमरस से सिक्त भावुक, मिलन और विरह की

हृद्‌गत अशांति के अनुभावक और भाषा-प्रयोग की सीमा के सच्चे ज्ञाता थे। ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करनेवाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकनेवाले और काव्य-विभूति द्वारा काव्य-मर्मज्ञों को प्रभावित करनेवाले थे। ये प्रेम के पथ पर अग्रसर होनेवाले, रचना मे मोतियों की सी निर्मल वाग्धारा प्रवाहित करनेवाले और उससे काव्य-माला गूँथनेवाले थे—मनमोहिनी और प्रभावुक। काव्य कोविदों की बृहत्सभा मे ये काव्य-सौष्ठव के प्रदर्शन के अभिलाषी थे। 'ठाकुर' कहते हैं—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरि-नाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।
ठाकुर सो कबि भावत मोहिँ जो राजसभा मैं बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त कहावै॥

ये अनूठी उक्तियाँ बाँधनेवाले थे पर हृदय से संपृक्त। जूठी उक्ति का पुनर्विधान या पिष्टपेषण इन्हें अरुचिकर था। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध रचना में हृदय-पक्ष दब गया था, कला-पक्ष उभर आया था। मस्तिष्क के पूरे व्यायाम के साथ उनका रीतिबद्ध काव्य अखाड़े में उतरता था। 'जग के कवि' काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गए, उसके अंतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से 'स्वच्छंद कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की सँकरी गली मे धक्कमधक्का करना नहीं। ये कविता की नपी-तुली नाली खोदनेवाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करनेवाले या मानस-रस का उन्मुक्त दान देनेवाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (कान्सस स्टेट) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अंतःसंज्ञा (सबकान्सस स्टेट या अनकान्सस स्टेट) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्‌भूत होती थी, घनआनंद ने स्पष्ट कहा है—

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चटावत।
है घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तैं आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कबित्त बनावत॥

'लोग' अर्थात् रीतिबद्ध कवि रच-रचकर कविता बनाने, शब्द-रत्न की पच्चीकारी करने में, मरते पचते रहते थे, पर रीतिमुक्त कवि का काव्यस्रोत स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, पर रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवि अपनी भावधारा में स्वत बह जाता था। इस प्रकार दोनो का अंतर स्पष्ट है। रीतिमुक्त कवियो में भी अतर्भेद हो सकते है। इसके लिए शृंगारकाल के पूर्व तरंगित होनेवाली काव्यधाराओं की ओर दृष्टि करनी होगी। भक्तिकाल मे एक ओर तो सगुण-काव्यधारा बह रही थी और दूसरी ओर निर्गुण-काव्यधारा। पहली का प्रसार भारतीय काव्य-परपरा के प्रकृत राजपथ पर हुआ था और दूसरी का विदेशी सूफी रहस्य मार्ग पर। स्वय हिंदी के कवि सूफी 'प्रेम की पीर' का उद्घाटन प्रेममार्गी शाखा में कर ही रहे थे। कबीर आदि सतों की ज्ञानमार्गी शाखा भी सूफियों की 'प्रेम की पीर' से प्रभावित थी। सूफियो की इस 'प्रेम की पीर' का हिंदी-काव्य पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। आगे चलकर सगुण धारा की कृष्ण-भक्ति शाखा तक इससे विशेष प्रभावित हुई। नागरीदास (सावंतसिंह), कुंदनशाह आदि में तो यह 'प्रेम की पीर' इतनी व्याप्त हुई कि उसका विदेशी रूप तक छिप न सका। सूफी प्रेम की पीर ही नही, फारसी काव्य के प्रेम-वैषम्य ने भी कवियों को छोप रखा। व्यापक प्रभाव का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि शुद्ध भारती काव्य-परपरा मे जब इसकी समाई न हो सकी तो यह जनता की सगीत-परपरा मे भरपूर प्रसरित हुआ। लावनी और ख्याल मे लोकभाषा रेखता या खड़ी बोली के सहारे इसकी दौड दूर तक हो गई। इसका स्पष्ट रूप है लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में लय। इश्क-मजाजी की इश्क-हकीकी में परिणति। आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारती प्रेम-पद्धति के प्रतिनिधि है, पर रसखानि, घनआनंद और बोधा में वह अपनी झलक मारती है। रसखानि और घनआनद ने बड़े ढग से इसे ग्रहण किया है। पर बोधा इसे अपने रंग । रँग न सके। उन्होंने तो बार बार उसकी डुग्गी पीटी है—

इस्कमजाजी मैं जहाँ इस्कहकीकी खूब।—(विरह-वारीश)

रसखानि ने भी यही कहा है, इससे भी स्पष्ट, पर ढग से—

आनँद-अनुभव होत नहिँ बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥

घनआनंद ने भी लौकिक प्रेमलीला को अलौकिक प्रेमलीला का कण कहा है, किंतु रसखानि और घनआनद दोनों ने कृष्णप्रेम मे इसे छिपा रखा। बोधा ने उधर उतना ध्यान नही दिया। वे कृष्णभक्ति मे लीन नही हुए। यदि कृष्ण-भक्ति का अवलब वे लेते भी तो उनकी प्रवृत्ति और रग-ढंग से यह जान पड़ता है कि बहुत कुछ नही तो कुछ कुछ कुंदनशाह की सी वृत्ति होती। बोधा प्रेम की प्रकृत गंभीरता को प्राय: सँभाल नही पाते। कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति का विकास आचार्यों ने लौकिक क्रीड़ा से सबद्ध रखकर किया। इसलिए सूफियो की 'प्रेम की पीर' को उसी मे लय हो जाने का अवसर मिल गया। घनआनंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम (इश्कमजाजी) को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला (इश्कहकीकी) का क्षुद्र अश कहा है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
बिचार बापुरो हहरि बार ही तेँ फिरि आयौ है।
ताही एकरस है बिबस अवगाहैँ दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैँ देखे सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसेँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥

संसार में फैला प्रेम व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जलकेलि किया करते हैं। वही कण घनआनद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियो की भाँति घनआनंद ने लौकिक प्रेम मे कई स्थानों पर ब्रह्म-प्रेम का आभास भी दिया है—

उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक लौँ तकियै अब तौ।[1]

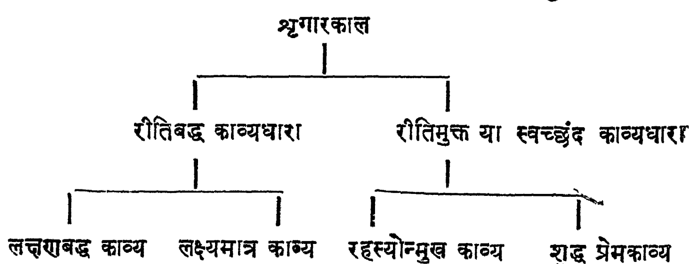
सूफियो का ब्रह्म-विरह इस सवैये में स्पष्ट है—

---

१ घनआनद-कवित्त—८०।

अंतर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं॥
जौ घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥[1]

इसलिए इन्हें रहस्योन्मुख प्रेमी कवि तथा दूसरों को उदात्त प्रेम-लीन शुद्ध प्रेमी कवि कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगारकाल का विभाजित रूप यों हुआ—



साहित्य के इतिहास में काल विभाजन ऐसा सटीक नहीं हो सकता कि किसी निश्चित संवत् से नए युग या काल का प्रवर्तन मान लिया जाय। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक सवत् से पूर्ववर्ती काल की प्रधान प्रवृत्ति समाप्त हो गई और परवर्ती काल की नई विशिष्ट प्रवृत्ति का उद्भव हो गया। वस्तुतः साहित्य मे कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं; उन्ही में से किसी काल मे कोई प्रवृत्ति प्रधान होकर और अनेक रूप-रग पकड़कर व्याप्त हो जाती है। जिस साहित्य की परंपरा प्राचीन होती है उसमे परवर्ती काल मे पहले से जगी हुई प्रवृत्तियो में से कोई एक किसी समय प्रबल होकर छा जाती है और अन्य क्षीण होकर धीरे-धीरे दब जाती हैं। ऐतिहासिकों ने साहित्य-धारा को पहाड़ी सरिता का रूपक इसी से दिया है। पर्वत से उद्गत सरिता आरंभ मे लघु लघु कुल्याओं के रूप में बहती हैं और फिर परस्पर मिलकर वे ही बन्याएँ सरिता बन प्रसरित होती हैं। पटपर (समतल) पर पहुँचकर सरिता का पाट बढ जाता है, कभी-कभी ढाल के कारण कई धाराएँ भी हो जाती हैं, समय समय पर सहायक नदियाँ भी मिलती रहती हैं। वस्तुतः साहित्य मे भी जो प्रवृत्ति एक बार जागरित और विकसित हो जाती

---

१ वही १६५।

है वह सदा के लिए सुप्त या म्लान नहीं हो पाती। हिंदी-साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। उसमें जो प्रवृत्ति एक बार जागरित हुई वह किसी न किसी रूप में निरंतर बनी रही। किसी काल मे जब कोई प्रवृत्ति प्रधान होने लगती है तब कुछ समय तक तो पूर्ववर्ती प्रमुख प्रवृत्ति के साथ साथ बढती है पर आगे बढकर नूतन प्रवृत्ति प्रधान और पूर्ववर्ती प्रवृत्ति गौण हो जाती है। शृंगारकाल के पूर्व भक्ति की प्रवृत्ति प्रधान थी। पर भक्ति का प्राधान्य होने के साथ ही शृंगार भी अपना सिर उठाने लगा और आगे चलकर वह सर्वांग से उत्थित दिखाई पडा। भक्ति की रचना उसके साथ ठिगनी दिखाई देने लगी, पर भक्ति का लोप नहीं हुआ।

शृंगार की प्रवृत्ति का लोप साहित्य में कभी नहीं होता। हिंदी की ही दृष्टि मे विचार करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राकृत और अपभ्रंश-काल में शृंगार और वीररस की धाराएँ प्रवाहित थीं। हिंदी के वीरगाथा-काल या वीरकाल में शृंगार या प्रेम शौर्य या उत्साह से संपृक्त था। वीरता का जो प्रदर्शन 'रासो'-ग्रंथों में हुआ वह प्रीति और वीरता की गंगा जमुनी धारा के रूप मे। जैसे यूरोप के पुराने काव्यों ('इलियड' और 'ओडेसी') में प्रेम और युद्ध ('लव' एंड 'वार' का मेल था वैसे ही इन काव्यों मे भी। प्रेम हेतु के रूप मे अंकित है और शौर्य कार्य रूप में। लोकदृष्टि से विचार करें तो अवगत होगा कि प्रेम और साथ ही उत्साह दोनों के आलंबन लौकिक ही थे। प्रेम और उत्साह के आलंबनों का लौकिकता से अलौकिकता की ओर धीरे धीरे बढाव होने लगा। जयदेव ने संस्कृत में राधा-कृष्ण के प्रेमगीत गाए तो उसकी प्रतिध्वनि विद्यापति के गीतों में हुई। सूरदास तथा कृष्ण भक्ति-शाखा के कवियों मे प्रेम का लौकिक आलंबन भक्ति का मधुर या अलौकिक आलंबन हो गया और प्रेमलक्षणा भक्ति का वाङ्मय पुंजीभूत हुआ। भागवत के लीलापुरुषोत्तम वृंदावन मे अपनी प्रेमलीला का अभिनय करते दिखाई पड़े। भारतीय वीरों के लौकिक वीरोल्लास की गाथा पराजित देश किस मन मे गाता और किस कान से सुनता, इसलिए वाल्मीकि के मर्यादापुरुषोत्तम तुलसी के लोकरक्षक भगवान् रामचंद्र का रूप धरकर सामने आए। प्रेम की पुकार न कबीर आदि संतों में मंद पड़ी और न 'प्रेम की पीर' जायसी आदि सूफी कवियों में ठंढी। लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम या भक्ति मे परिवर्तित हो गया। काव्य की शुद्ध प्रेमधारा अपना मार्ग खोज रही थी। भक्तिकाल मे ही भक्ति से पृथक् होकर शृंगार ने अपना

अलग पथ पकड़ना आरंभ कर दिया, भक्ति के बीच से आने के ही कारण 'शृंगार' के प्रधान आलंबन राधा और कृष्ण ही रहे। नही तो प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोकगीतो तक में प्रेम की अभिव्यक्ति ऐसा आवरण लेकर नही हुई है। आदिकाल या वीरकाल मे लौकिक जीवन के वीरोल्लास का ही चित्रण था। उस समय तक हिंदी-साहित्य ने अपनी 'प्राकृत'-परंपरा ही रक्षित रखी। पर भक्तिकाल में साहित्य संस्कृत की ओर गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण की कृष्णलीला दृष्टिगत रही। अलौकिकता में प्रविष्ट हो जाने से फिर जब कवि लोग जीवन की ओर मुड़े तब 'भाषा' की परंपरा पीछे छूट गई। भक्ति अपनी छाप शृंगार पर छोड़ती गई। कृष्णभक्ति से ही शृंगारिक रचना का संबंध रहा। यह भी एक हेतु है कि शृंगार में परकीया-प्रेम की उक्तियाँ अधिक कही गईं। भक्ति मे श्रीकृष्ण की वृंदावन व्यापिनी लीला ही ली गई थी। अपभ्रंश या लोकवाङ्मय की सी स्वकीया-प्रीति-परक मार्मिकता शृंगारकाल के कवि भूल ही बैठे।

'शृंगारकाल', जिसे इतिहासकारों ने 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' कहा है, साधारणतया संवत् १७०० के आसपास से आरम्भ माना जाता है। विचार करने पर अवगत होता है कि साहित्य की शृंखला में इस काल की कड़ी भक्तिकाल की कड़ी के गर्भ से घूमती हुई आगे बढ़ी है। शुद्ध या पृथक् रूप मे शृंगार की प्रस्तावना इससे कम-से-कम सौ वर्ष पूर्व, अर्थात् संवत् १६०० के आसपास, अवश्य हो गई थी। सं० १५९८ मे कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' लिखी थी, जिसमें शृंगार रस का दोहो में विवेचन किया गया है अर्थात् लक्षण-लक्ष्य जुटाए गए है। उन्होंने सूचित किया है कि और कर्ता बड़े छंदो मे रसग्रंथ प्रस्तुत करते हैं, मैंने छोटे छंद अर्थात् दोहा, सोरठा, बरवै में इसका प्रणयन किया। इससे एक ओर तो यह स्पष्ट पता चलता है कि रीतिग्रंथ प्रस्तुत करने का स्फुरण कुछ और पहले का है और दूसरी ओर यह सूचना मिलती है कि वीरता और भक्ति की लपेट से बहुत-कुछ बचकर भी शृंगार अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा था। 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' नाम मानने से यह निश्चय करना अनिवार्य हो जाता है कि अलंकृत या रीतिबद्ध ग्रंथों की अखंड परंपरा कब से और किस आदर्श पर प्रवर्तित हुई। रीति के सिलसिले मे 'कृपाराम' का नाम सबसे पहले लिया जाता है, पर भक्ति की प्रभूति ग्रंथराशि सामने पाकर काल की सीमा कुछ छोटी करनी पड़ती है। यदि

आदर्श की बात देखी जाय तो पता चलता है कि अकबर के दरबारी 'करनेस' कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' उसी आदर्श पर निर्मित किए जिस आदर्श पर आगे चलकर अन्य अनेक अलकार ग्रथो का निरूपण हुआ। जयदेव के 'चद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानद' ही इनके भी आधार थे। अलकार-निरूपण मे जैसे सस्कृत के इन ग्रंथों का सहारा लिया गया वैसे ही रस-निरूपण मे भानुदत्त की 'रसतरगिणी' का आधार रहा और नायिकाभेद मे उन्ही की 'रसमजरी' का। चद्रालोक, रसतरगिणी और रसमजरी सस्कृत के पिछले कैंड़े की रचनाएँ हैं जिनमें विवेच्य विषय का निरूपण बडी ही बोधगम्य शैली से किया गया है। केशवदासजी की 'कविप्रिया' को सामने रखकर यह कहना कि वह वामन, दंडी आदि अलकारवादी आचार्यो के अनुगमन पर निर्मित हुई है, और हिंदी के आदर्श ग्रंथ कुवलयानद या चद्रालोक भिन्न आदर्श पर खड़े हुए हैं, सोलह आने ठीक नही है। वामन और दडी रीतिवादी या अलंकारवादी थे, जयदेव (चद्रालोक के कर्ता) तो कट्टर अलकारवादी थे, उनसे भी बढकर। वे तो यहाँ तक कह डालते है कि काव्य को निरलंकार कहना वैसा ही है जैसे अग्नि को अनुष्ण कहना अर्थात् उनकी दृष्टि मे अलंकार काव्य का नित्य धर्म है। ऐसा उन्होने मम्मटाचार्य का खंडन करने के लिए लिखा है; क्योकि मम्मटाचार्य ने काव्यलक्षण का विचार करते हुए कहा है कि वह कही-कही अनलकृत भी हो सकता है (अनलकृती पुनः क्वापि)। उसी का यह अलंकारवादियो की ओर से उत्तर था। वामन ने भी ऐसी ही बात कही थी। उन्होने कहा कि काव्य, सौदर्य की विशेषता के ही कारण, ग्राह्य होता है (काव्य ग्राह्यमलकरात्) और सौदर्य ही अलकार है (सौन्दर्य-मलंकारः)। इनकी दृष्टि काव्य के 'सौदर्य' पर ही थी, उसकी 'रमणीयता' पर नहीं, अर्थात् ये काव्य का बाह्य ही देखते थे, उसका अभ्यंतर नही। इसी से रसों और भावो को भी इन्होंने अलकार मान लिया। ये वस्तुतः आधुनिक शब्दो में 'कलावादी' थे। यह (आलकारिकों का) संप्रदाय पुराना है। आगे चलकर रस-सप्रदाय खड़ा हुआ। अलंकार्य (वर्ण्य विषय) और अलकार (वर्णन-प्रणाली) का जो भेद रसवादी आचार्यों ने प्रतिपन्न किया उसका प्रभाव काव्यक्षेत्र के समस्त संप्रदायों पर पूरा पूरा नही पड़ा, अलकारवादियों पर तो बहुत कम।

केशवदासजी ने 'कविप्रिया' में शुद्ध अलंकारवादी दृष्टि से काम नहीं लिया है। उन्होंने काव्य की सारी सामग्री को 'अलकार' कहकर वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली का अभेद अवश्य दिखलाया है, पर रसदृष्टि उन्होंने त्याग दी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। दडी के 'काव्यादर्श' पर ही वह अवलबित भी नहीं है। बात यह है कि वह केवल 'अलकार' की दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं की गई है, वह वस्तुतः 'कवि-शिक्षा' की पुस्तक है। उसमे कवि होने का हौसला रखनेवालों को 'कवि-समय' से परिचित कराने का प्रयास ही अधिक है। इसके लिए उसमें अधिक सामग्री 'कविकल्पलतावृत्ति' से उठाकर रखी गई है। वह वस्तुतः काव्य की सीमा, उसका स्वरूप, उसकी धारणा आदि का पता देनेवाली है, इसीसे उसका नाम 'कविप्रिया' है। अलकारो का प्रतिपादन उसमें वर्णन-प्रणाली की रूपरेखा मात्र खीचने के लिए हुआ है, अर्थात् वह गौण है। यह मानने में कोई आनाकानी नहीं कि केशवदासजी चमत्कारवादी थे। पर वे अलकार्य और अलकार का भेद माननेवाले नहीं थे, ऐसा नहीं है। अलकारो के संबध में उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ कहा जाय वह सब अलकार ही है। यदि ऐसा होता तो 'नग्नत्व' दोष उन्होंने स्वीकार ही न किया होता जहाँ निरलंकार कविता रखी गई है। यही क्यों उन्होंने 'हीनरस' दोष भी माना है ; कविता मे रस होना उन्हें मान्य है। वही उनकी दृष्टि में काव्यार्थ है। पर वे यह अवश्य मानते थे कि 'भूषन बिन न बिराजई कबिता बनिता मित्त'। पर वह कविता कैसी हो—'जदपि सुजाति सुल-च्छनी सुबरन सरस सुवृत्त'। यहाँ 'सरस' शब्द क्या कह रहा है ? यही कि केशव को रस अमान्य नहीं था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' भी तो लिखी है—रसवादी 'साहित्यदर्पण' और 'शृंगार-प्रकाश' के आधार पर। वहाँ रस रसवत् अलंकार मात्र नहीं कहे गए हैं; इसलिए केशवदासजी को पुराना या अलंकारवादी कहकर छाँटने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अब, 'कृपाराम' को शृगारकाल की सूचना देनेवाला आचार्य या कवि मानने में क्या बाधा है। 'हिततरगिणी' 'रस तरगिणी' का ही आधार लेकर चली जिसके आधार पर हिंदी के परवर्ती सैकड़ों ग्रंथ बने, ऐसा उसका वर्ण्य विषय और नाम तक बतलाता है। इस प्रकार समय के सीमा निर्धारण में 'आदर्श' का पक्ष मानने पर भी कृपाराम सीमा के बाहर नहीं किए जा सकते।

रही अखंड परपरा की बात। विचार करने पर परंपरा कृपाराम से भी पहले जाती है। उन्होने स्वय लिखा है कि लोग बड़े छदों मे रसनिरूपण करते हैं ये लोग उनके पूर्ववर्ती ही होगे—पर वे कौन हैं, इतिहास इस संबंध मे मौन है, उसके पास पर्याप्त सामग्री का दारिद्रय है। पर कृपाराम से लेकर संवत् १७०० तक रीतिग्रथों की अखड परंपरा रही है, इस सबंध मे इतिहास मुखर है। देखिए—

सवत् (रचनाकाल)	कवि	रचना
१५९८	कृपाराम	हिततरंगिणी
१६१६	गग	फुटकल
१६१६	मोहनलाल	शृंगारसागर
१६२०	मनोहर	फुटकल
१६२०	गंगाप्रसाद	{ कोई रीतिग्रथ बनाया जिसका नाम अज्ञात है।
१६३७	करनेस	कर्णाभरण, श्रुतिभूषण, भूपभूषण
१६४०	बलभद्र मिश्र	नखशिख
१६४०	रहीम	बरवै-नायिकाभेद
१६५०	केशवदास	रसिकप्रिया, कविप्रिया
१६५०	मोहनदास	बारहमासा
१६५१	हरिराम	छदरत्नावली
१६५७	बालकृष्ण	रसचद्रिका (पिगल)
१६६०	मुबारक	अलकशतक, तिलशतक
१६७६	लीलाधर	नखशिख
१६८८	सुदर	सुदरशृगार
१७००	सेनापति	षट्ऋतुवर्णन

इस प्रकार अखडता का बोध सरलता से हो जाता है। ये सब कवि रीतिबद्ध लिखनेवाले थे, किसी ने लक्षणबद्ध लिखा, किसी ने शास्त्र का अंगोपाग लेकर लक्ष्य मात्र-जैसे नखशिख, ऋतुवर्णन, बारहमासा आदि। परपरा बराबर जुड़ती चली आ रही है। इनके अतिरिक्त इस शैली में ऐसे कोड़ियो कवि और हैं जिन्होंने बिहारी

जिनमे अधिकतर समस्यापूर्ति के रूप में प्रायः शृंगारिक कविता ही होती थी। संवत् १९५० के उपरात शृगार की पुरानी धारा मंद पड़ने लगी और लगभग १९७५ तक आते-आते वह विलीन हो गई। जैसे सवत् १६०० से १७०० तक शृगार का प्रस्तावना-काल या उपक्रमकाल है वैसे ही १९०० से १९७५ तक अव-सानकाल या उपसंहारकाल। नई धारा १९०० के आसपास प्रकट हो गई थी, जिसके साथ पुरानी धारा भी चलती रही। इसलिए शृगारकाल की कडी के गर्भ से आधुनिक काल की कड़ी १९०० के लगभग घूमी और १९५० तक आते-आते वह घूमकर आगे चली आई, १९७५ तक उसने अपने को एकदम पृथक् कर लिया।

शृगारकाल की प्रस्तावनायों भक्तिकाल के भीतर ही हो गई थी। राधा-कृष्ण की जैसी प्रेमक्रीड़ा का वर्णन कृष्णभक्त-कवि कर चले वह शृगार का बहुत बडा अव-लंब सिद्ध हुई। राधा-कृष्ण की भक्ति मे रसदृष्टि से भक्त कवियो ने तीन ही रस ग्रहण किए थे—वत्सल, भक्ति और शृगार। 'वत्सल' तो हिंदी में भक्तिकाव्य में ही व्यक्त हुआ और उसके साथ ही लुप्त भी हो गया। श्रीवल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय मे कृष्ण के बालभाव की उपासना चलाई। इसी से उनके वल्लभसप्रदाय के कवियो ने उसकी धारा वेग से बहाई। पर धीरे धीरे कृष्णभक्ति ने जो अनेक रूप धारण किए उनमें 'मधुर रस' या 'माधुर्य भाव' ने प्रधानता पाई। श्रीचैतन्य के गौडीय संप्रदाय का प्रभाव ऐसा पड़ा कि 'वत्सल रस' उसमें लीन हो गया। माध्व, निंबार्क (टट्टी, अनन्य, राधावल्लभी) जितने कृष्णभक्ति के अन्य संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं उन सबकी उपासना शृगार-प्रमुख हो गई, उनमे 'राधा' की योजना प्रधान हुई। राधातत्व के जुड़ जाने से प्रणय लीला के गीत गाए जाने लगे। फल यह हुआ कि वल्लभ-कुल के भक्त भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला के विस्तार में ही लग गए। इसलिए आगे चलकर वत्सल रस का प्रवाह रुक गया। भक्ति और शृंगार ने मिलकर 'मधुर रस' का रूप धारण किया, जिस रस के भीतर शृंगार रस ने सचमुच अलौकिक रस का रूप पाया। भक्ति की पिछले कॉटे की रचना काव्य-दृष्टि से शृंगार की ही रचना हो गई, भले ही उसे हम लौकिक शृगार की सीमा में न घेर सकें पर वह शृगार का ही परिष्कृत, संस्कृत या ईश्वर-सबद्ध—चाहे जो नाम रखें—रूप हो गई। विनय आदि के रूप मे जो थोड़ी सी रचना रह गई उसे ही शुद्ध भक्तिरस की रचना कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगार रस की धारा

को फैलने के हेतु बहुत चौडा मैदान मिल गया। पर भारतीय काव्य-परपरा में आचारनिष्ठता का ध्यान बराबर रखा गया है। शृगारकाल में कवियों ने नायक—नायिकाओ की प्रेमलीला का निरूपण आरभ किया तो उसमें स्वकीया के प्रणय के विस्तार का अवकाश न मिला। अपभ्रश की पुरानी रचनाओ और देश-गीतो मे स्वकीया-प्रेम के बड़े ही मधुर एव मर्मस्पर्शी खडवृत्त दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्तिधारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका संबंध नही रहा, अतः स्वकीया की प्रीति के रससिक्त स्थलों का संनिवेश उसमें न रह सका। अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दापत्य-प्रेम रखा गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आकर्षक और आकृष्ट के रूप की लबी-चौड़ी भूमि परकीया-प्रेम के परिष्कार मे दिखाई पड़ी, जिसमें अलौकिक संबध का आरोप होने लगा। इस प्रकार प्रेम की विवृति के साहचर्य में परकीया प्रेम के विस्तार को विशेष उत्तेजना प्राप्त हुई। हिंदी-साहित्य को उस समय जिस साहित्य से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ी उसमें परकीया-प्रेम का बाहुल्य था। प्रतिद्वंद्विया से पीछे हटने पर कवियों की हेठी होती थी। अत नायिका-भेद मे परकीया-प्रेम ले लिया गया, पर आचारनिष्ठता को ध्यान मे रखकर प्रेम के आलबन श्रीकृष्ण और राधिका माने गए। प्रेम की घोर वासनापूर्ण रचना करनेवालों ने भक्ति की शृ गारिकता की ओट लेने का पूरा प्रयत्न किया। अपनी रचना के लिए वे धार्मिक बुद्धि जगाते हुए कह गए कि 'आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई, नतु राधिका-कन्हाइ सुमिरन को बहानो है।' लक्षण-ग्रथों मे यह भी कहा गया कि नायक होने योग्य और कोई नहीं कृष्ण ही हैं, ठीक इसी प्रकार नायिका होने योग्य राधा या गोपी।

यह उद्भावना शृ गारकाल की न थी, बहुत पहले की थी। विद्यापति आदि-काल में ही राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन साहित्यिक दृष्टि से (भक्त की दृष्टि से नहीं) कर गए थे। भक्त जयदेव की पद्धति उन्होंने साहित्य मे प्रतिष्ठित कर दी थी ध्यान देने की बात है कि विद्यापति ने भक्त कवियो की भाँति श्रीकृष्ण या राधा को प्रभु या स्वामिनी के रूप में नही रखा, यद्यपि उनके शृगार के पदों या गीतो की सारी रचना कृष्ण और राधा के ही स्नेह की अभिव्यक्ति है, अतः उन्हें भक्त कवि कहना भ्रातिशून्य नही है। उनके राधा-कृष्ण भक्ति के नहीं, शृगार के देवता हैं।

उदाहरण देने का प्रयास है, उन्होंने दोष-प्रकरण मे अपनी रचना न देकर केशव-दासजी की रचनाएँ उद्धृत की हैं। ये लोग लक्षण-ग्रंथ के ही अनुगमन पर न लिखते होते तो कवि-कर्म कुछ उच्च आदर्श ग्रहण करता, कदाचित् मुक्तक से प्रबध की रुचि कुछ जगती। रीति से पीछा छुडानेवालो ने अवश्य प्रबध का ओर भी रुचि दिखलाई। पर श्रीकृष्णलीला का वृंदावनवाला वृत्त इसके लिए नहीं लिया गया। वह मुक्तक के आगे यदि बहुत बढ़ सकता था तो निबध तक, भक्ति की रचना मे दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि के वर्णनात्मक प्रसग पद्य निबंध भर कहे जा सकते हैं। प्रबध के लिए घटनाचक्र चाहिए, वह कृष्ण-जीवन के इस अंश मे है ही नहीं। जहाँ इतने ही वृत्त को लेकर प्रबध-काव्य लिखने की वृत्ति स्फुरित हुई है वहाँ प्रबधधारा अनवच्छिन्न नहीं रह सकी है, विस्तार करने के लिए अनेक वर्णनो की योजना करनी पड़ी है। इसी से प्रबध के लिए श्रीकृष्ण का उत्तर-जीवन ही उपयुक्त दिखाई पडा। उदाहरणार्थ आलम ने नरोत्तमदास की अनुकृति पर 'सुदामा चरित्र' लिखा और रुक्मिणी-परिणय का वृत्त लेकर 'श्याम-सनेही' खडकाव्य प्रस्तुत किया। पर प्रबध की विस्तृत अर्थभूमि यहाँ भी नहीं थी, इसी से प्राकृतकाल की प्रसिद्ध कथा 'माधवानल-कामकदला' पर छोटे बडे कई प्रबध-काव्य निर्मित हुए। इसी कथा का अत्यधिक विस्तार करके बोधा ने 'विरह-वारीश' की रचना की। फिर भी इन रीतिमुक्त कवियो की भी अधिकाश रचना मुक्तक ही है। इन मुक्तक रचनाओ से हिंदी का एक लाभ भी हुआ। शृगार के किसी भी अव-यव के अत्यंत मधुर और सरस उदाहरण उपलब्ध हो गए। यह नि संकोच कहा जा सकता है कि सस्कृत-साहित्य में भी शृगार के अगोपाग की इतनी अधिक और इतनी सरस रचनाएँ न मिलेंगी।

पर इन उक्तियों में अधिकतर भिन्नता न होकर एकरूपता पाई जाती है। कारण भी स्पष्ट है। अधिकतर कवीश्वर लक्षण-ग्रंथ-प्रणेता थे। प्रत्येक विषय पर बँधी बँधाई उक्तियाँ सब कहते थे, इसी से एकरूप उक्तियों का ढेर लग गया। व्यक्ति-वैशिष्ट्य का जैसा विकास अपेक्षित था वह न हो सका, वह विशेषता कविराज न ला सके जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पृथक् की जा सकती। रीतिबद्ध कवियों की रचना मे से यदि 'छाप' निकाल दी जाय तो स्मृति-शक्ति के आधार पर भले

ही कुछ पार्थक्य किया जा सके अन्यथा व्यक्ति-वैशिष्ट्य के आधार पर भेद करना कठिन ही नही, असभव है। प्राचीन संग्रहों में जो किसी एक कवि का छंद किसी दूसरे कवि के नाम पर चढ गया है उसका कारण यही है। पुरान सग्रहों का बहुलाश स्मृति के भरोसे सकलित होता था। स्मृति भला कहाँ तक साथ देती। 'शिवसिंहसरोज', 'सुधासर', शृगार-सग्रह' आदि मे इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। मैं प्रमाणित कर चुका हूँ कि हिंदी मे 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' नाम की पोथियाँ किस प्रकार अधिकतर दूसरे कवियों की कृति से सज-धज-कर 'भूषण' के नाम पर आधुनिक सग्रहकर्ताओं की कृपा से चल पड़ी है और शिवाजी के दरबार में 'भूषण' की उपस्थिति सदिग्ध बतानवालों के लिए सहायक का काम कर गई है। रीतिबद्ध कवियो मे बिहारी, पद्माकर, मतिराम आदि कुछ गिने चुने कवियों को ही भाषा-भेद से छाँटा जा सकता है। बिहारी के दोहों की बनावट उन्हें साधारण रचनाओं से पृथक् करती है, पर रसलीन, मतिराम आदि के कितने ही अच्छे-अच्छे दोहे बिहारी-सतसई मे घुस गए है, जिन्हे 'रत्नाकर' जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' मे चुन-चुनकर पृथक् किया। रीतिबद्ध रचयिताओं की अपेक्षा रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवियों की कृति मे व्यक्ति-वैशिष्ट्य का कुछ विकास अवश्य स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से इन्हें दूसरों से पृथक् करने मे कुछ सरलता होती है। 'घनआनद' की विरोध की प्रवृत्ति उन्हे औरों से पृथक् करती है। लोकोक्ति-विधान की विशेषता रीतिमुक्त स्वच्छंद 'ठाकुर' को इसी नाम के अन्य दो कवियों से पृथक् करती है, प्रेम के वैषम्य का चटक-मटक के साथ उल्लेख करनेवाले 'बोधा' फूलपत्ती, पक्षी आदि की सूची पेश करनेवाले 'बोधा' से भिन्न हैं। शृगार-काल की स्वच्छद काव्यधारा का कुछ महत्त्व इसी से सूचित होता है। पर इन कवियों का भी काव्यार्थ (वर्ण्य) एकरूप ही है, इसे स्मरण रखना चाहिए। इसी से जहाँ स्वकीय रग कुछ फीका पड़ गया है वहाँ इनकी रचनाएँ भी एकरूप हो गई हैं।

स्वच्छंद धारा

स्वच्छंद का अर्थ है बाह्य बधन अर्थात् रीति के बधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में

प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनो के त्याग का भी संकेत देनेवाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे उसमे कही कही कथनशैली की विशेषता के भी दर्शन अवश्य होते थे, पर उसमे न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छद रूप के दर्शन कही होते हैं और न काव्य-पद्धति की साहित्यिक स्वच्छदता के ही। प्रेम का बाह्य पक्ष ही रीतिबद्ध रचना मे दिखाई देता है। यह बाह्य पक्ष भी बँधा हुआ है अर्थात् साहित्य की परपरा मे प्रेम-व्यापार के जो लक्षण निश्चित कर दिए गए उनसे आगे इनकी दृष्टि मार्ग न पा सकी। बाह्य पक्ष की रमणीयता के दर्शन के हेतु भी अतर्दृष्टि की व्याप्ति और सूक्ष्मता अपेक्षित होती है। यह अतर्दृष्टि रीतिबद्ध रचनाओ में मद पड़ गई थी। कुछ चुने हुए दृश्यो को ही देखने दिखाने मे जैसे स्थूल दृष्टि पथरा जाती है वैसे इन व्यापारों मे अतर्दृष्टि भी सतत संलग्न रहकर मद पड़ जाती है। नायिका-भेद मे नायिकाओ के सहेटस्थलो, सपत्नियो के ईर्ष्या-कलह, लघु-मध्यम-गुरु मान आदि के कवि-समय-सिद्ध व्यापार ही आते रहे। प्रेम का मन इतने से ही संतुष्ट हो जाता था कि 'जौ लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हू की न'। ये प्रिय के सग का, शरीर-सबध का, ही सुख चाहते थे, मानस-संसर्ग की रमणीयता इनमें नही थी। ये प्रिय के मन की रमणीयता देखने के या अपने मन की रमणीयता दिखाने के मनोरथी नही थे, प्रिय के तन की शोभा देखने और अपनी शारीरिक उछलकूद की मुद्राएँ दिखाने के ही अभिलाषी अधिक थे। बिहारी आदि में मानस-लोक की रमणीयता के दर्शन यत्र तत्र ही होते है। बिहारी ऐसे कवियो मे जो इस प्रकार के स्थल दिखाई पड़ते हैं वह भी रीति के लक्षणो का अनुधावन सर्वत्र न करने के कारण। अनुधावको की रचना में यह विशेषता और भी क्षीण है। बिहारी ने प्रेम की जिस चरमावस्था का निरूपण इस दोहे मे किया है वह लक्षणकारो में नही मिलता—

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम की यह वह चरम अवस्था है जिसमे पहुँचकर प्रेमी या प्रेमिका स्वयम् प्रिय हो जाती है। ज्ञान के क्षेत्र मे जो स्थिति ज्ञाता और ज्ञेय की होती है और भक्ति के क्षेत्र मे जो स्थिति उपासक और उपास्य की होती है, ठीक वही स्थिति प्रेम के क्षेत्र में प्रेमी और प्रिय की चरमावस्था में होती है। रामकृष्ण परमहस के

सबंध मे प्रसिद्ध है कि वे उस माला-फूल को, जिसे पूजक काली की पूजा के लिए ले आते, अपने ऊपर चढा लिया करते थे। तात्पर्य यह कि ज्ञान, भक्ति और प्रेम की चरमावस्था एक ही निर्दिष्ट होती है। बिहारी की सतसई मे प्रेम की उच्चभूमि के दर्शन वहाँ होते है जहाँ नायिका कभी प्रिय के द्वारा उडाई पतग की छाया के पीछे पीछे दौडती दिखाई पड़ती है, मरगजी माला भी गले मे डाले फूली घूमती है, प्रिय के नखक्षत को सूखने पर आया जान खोटकर फिर हरा कर लेती हे। पर ऐसे उदाहरण रीतिबद्ध कवियो में ढूँढने से ही मिलते हैं। अधिकतर तो सौतों की असूया, मान के त्रिविध रूप, हावो की भावभगी, खडिता की व्यग्यभरी उक्तियाँ ही हैं। विपरीत रति, सुरतात आदि के बँधे बँधाए और असस्कृत वर्णनो से इनकी रचनाएँ यदि भरी नहीं है तो शून्य भी नही हैं। वस्तुतः रीतिबद्ध कवि प्रेम-मार्ग की वक्रता, उसकी चातुरी, उसके बुद्धि-विशिष्ट रूप का ही सभार करते रहे। पर रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग सरल है, इसमें वक्रता का नाम नही। चतुराई का लेश भी इसमें घातक होगा—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ सूधे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

रीतिबद्ध कवियो ने दूती, सखी आदि को बीच मे डालकर प्रेम का लंबा-चौड़ा सग्राम खड़ा किया है। गुरुजनों के बीच प्रेम के सकेतो का विस्तार से उल्लेख किया है। लोकभय या लोकलाज को मध्य में रखकर प्रेम मे बहुत से बँधे-बँधाए खेल दिखलाए हैं। सहेट की लुकाछिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियाँ, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल कपट से भरे खिलवाड़ मे ही मनोरजन की सामग्री विशेष खोजी है। ऐसी बधन मय प्रेमलीला रीतिमुक्त कवियो को नही रुच सकती थी। वे लोकभय या लोकलाज का तिरस्कार करके साहस-पूर्वक प्रेम की एकनिष्ठता में लीन होनेवाले थे। इसी से इन खेल-तमाशो से उन्होने अपने को अलग रखा है। श्रीकृष्ण और राधा या गोपियो का जैसा उन्मुक्त जीवन था वैसा ही बाधा-बधन-रहित सरल-सीधा प्रेममार्ग इन स्वच्छद कवियो का भी था। सौ बात की एक बात यह कि ये प्रेम मे बुद्धि की कतरब्योंत एकदम नही चाहते थे। प्रेम शुद्ध हृदय की भावधारा है, ये हृदय को ही सामने करनेवाले

और हृदय को ही प्रभावित करनेवाले भी थे। हृदय की रीझ ही इनके यहाँ रानी है, बुद्धि तो दासी मात्र—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के स्वच्छंद रूप के ग्रहण से ही अंतरंग और बहिरंग सखियों का विधान यहाँ नहीं। प्रेमी अपनी पुकार स्वतः करता है। विरहनिवेदन के लिए दूती और उपालभ के लिए सखी की योजना अनपेक्षित समझी गई। इसमे बंधन तो था ही, मध्यस्थ के कारण प्रिय के प्रेम की प्राप्ति निर्बाध नहीं हो सकती थी। दूती या सखी यदि इनके यहाँ कभी आ भी गई तो उसे अपनी बुद्धि का व्यवसाय दिखाने की आवश्यकता नहीं, वह केवल प्रेमी की शब्दावली दुहरा सकती है, अपनी पदावली का उपयोग करने की अपेक्षा नहीं। वह प्रेमी के ही मुख से बोले तो बोले, अपना मुँह न खोले। अतः यहाँ ऐसे तर्कों की आवश्यकता नहीं—

ताके तन ताप की कहूँ मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए ते तुम्हैं ताप चढि आवैगी।—पद्माकर

सच पूछिए तो यहाँ दूती की आवश्यकता ही नहीं—

जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसा तौऽब,
आबों सम कीजियै जु कान तिहिं काल हैं।
नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागें,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

कोई इन विरहाग्नि के तप्त संदेशों को सुन नहीं सकता, जीभ पर भी ये विरह की तप्त बाते नहीं लाई जा सकती। हृदय की आँच से ये बाते (वार्ता बत्ती) स्नेहयुक्त होने के कारण प्रज्वलित हो जाती हैं। इन उक्तियों का रीतिबद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पार्थक्य समझ लेना चाहिए। रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियाँ स्वानुभूति-निरूपिणी हैं। वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिबद्ध वर्णनों की भाँति अनुमान के सहारे नाप-जोख करने नहीं जाते। ये विरही अपनी आग से स्वयम् ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते। हाँ, कभी कभी दूती और सखी के संबंध में इतना अवश्य कह देते हैं कि विरह की अग्नि से भरी बातें दूसरे सुन न सकेंगे, पर यह कभी कहने या कहलाने नहीं जाते कि—

'शंकर' नदी-नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर ते ऊँची चढ़ जायगी।
झारैंगे अँगारे वे तरनि तारे तारापति
या बिधि खमंडल में आग मढ़ जायगी।
दोनों ओर छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूमघूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी।
काहू बिधि बिधि की बनावट बचैगी नाहिँ,
जो पै या बियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

इनके यहाँ माघ मास में सारी सृष्टि को क्या, गाँव को भी झुलसानेवाली लुएँ नहीं चलती, जाड़े में सखियाँ गीले वस्त्र पहनकर इन विरहियों को देखने नही आती, छाती पर गुलाब जल गिरकर उत्तप्त तवे पर गिरे पानी की भाँति छन्न-छन्न करके भाप नही बनता, मान के उच्छ्वास से सर और सरिताएँ नही सूखतीं। अपनी आह या वेदना की ज्वाला से ये स्वयम् जलते-भुनते रहते हैं, सारी सृष्टि को भस्म करने के लिए रुद्र का तीसरा नेत्र कभी नही खोलते या खुलवाते। इनके विरह-ताप की सीमा इन्ही तक है। ये उड़ान भरनेवाले पक्षी नही, बैठकर वेदना की पुकार मचानेवाले पपीहे हैं। इनके ताप से सृष्टि भस्म नही होती, कभी-कभी द्रवीभूत अवश्य हो जाती है। पपीहा इनकी पुकार की समानुभूति में पी-पी रटता है, बादल इनके ताप से पिघलकर आँसू गिराते हैं, पवन इनके रोदन के स्वर में स्वर मिलाता है—

बिकल बिषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जर्‍यौ करै।
जीवन-अधार-पन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‍यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्‍यौ सो बनबीथिन रर्‍यौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जानप्यारी! तेरे,
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्‍यौ करै।

इसका वास्तविक हेतु यह है कि इन मनस्वियों ने प्रेम की,स्वच्छंदता के साथ उसका अनुदात्त नहीं, उदात्त स्वरूप ग्रहण किया । ये चातुर्य के चक्कर में पिसने-वाले प्राणी नहीं थे, प्रेम-प्यास की ऊँची तान लेनेवाले, घनआनंद की ऊँचाई तक उड़नेवाले चातक थे । इसी से इनका प्रेम एकनिष्ठ था । इस एकनिष्ठता ने इन्हें प्रेम की उस भूमिका में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर प्रेम केवल प्रिय को चाहनेवाला ही रह जाता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है या नहीं इसकी छान-बीन नहीं होती। यहाँ तो प्रिय की ओर से तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी उसे चाहता ही रहता है। तुलसीदासजी ने चातक के जिस एकांगी प्रेम की उच्चता और तीव्रता का विधान अपनी दोहावली के अंतर्गत 'चातक-चौतीसी' में किया है, प्रेम का वही उदात्त रूप इनमें भी दिखाई देता है। चातक वज्र गिराने पर भी बादल को प्यार करना नहीं छोड़ता—

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप तक पहुँचने के लिए कुछ सोपानों की योजना होती है। पहले किसी का रूप नेत्रों में बसा, किसी के क्रिया-कलाप अपनी ओर खीचने लगे, बस हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो गई। जब तक प्रेमी आकर्षण के इस प्रथम सोपान पर रहता है तब तक वह आकर्षक के दर्शन, सानिध्य, सलाप तक ही रहता है। तब तक प्रिय के दर्शनादि की उपलब्धि की ही आकांक्षा रहती है। पर इसके अनंतर वह उसके हृदय की खोज में व्यस्त होता है। वस्तु-विशिष्ट प्रेम पहली सीढ़ी तक होता है, पर प्राणी-विशिष्ट प्रेम दूसरी सीढी पर भी चाव के साथ, जिज्ञासा के सहारे अपने पैर रखता है। वह दूसरी सीढी पर चढ जाता है, जहाँ वह अपने को प्रिय के लिए अर्पित कर देता है। यदि प्रिय का हृदय उसे नहीं मिलता, प्रिय उससे विमुख भी हो जाता है तो भी वह प्रेम की इस सीढी से उतर नहीं आता, आगे ही बढता है। सानंद न बढ़े, पर वेदना सहने का पूरा साहस बटोरकर वह बढ़ता है, हार मानकर वहीं बैठ नहीं जाता। प्रेम की एकनिष्ठता न उसे बैठने देती है, न लौटने। वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो जायगा उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़नेवाला प्रेमी प्रिय के

निर्दय हो जाने पर जिस कष्ट का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। रीतिबद्ध रचना में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतग की' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो, यही इनका मूलमत्र है। विरह सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नही बटोर सकती। मन का बल उनके पास उतना नही होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने को चेतनता का नही, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है—

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।

प्राणों को जिलानेवाला प्रिय मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है; मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करनेवाला नही है। मछली तुरंत प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिए इन दोना में समता कैसी। यह बात और साफ करके यों कही गई है—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरेँ मिलेँ मीन-पतग-दसा कहा मो जिय की गति कोँ परसै।

प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीतिमुक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उद्‌गार सुनाते हैं प्रेम की यह विषमता उनमें कहाँ से आई। भारतीय काव्य परंपरा में दृश्य और श्रव्य काव्य के प्राचीन संस्कृत-ग्रथो मे प्रेम के सम रूप का ही विधान है। प्रेम का उद्‌भव दोनों पक्षों मे एक सा दिखाया गया है। वाल्मीकि ने राम और सीता में, कालिदास ने दुष्यत और शकुंतला में, बाण ने कपिंजल और कादबरी में सम प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है। हिंदी मे विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा, पर सूरदासजी तक आते-आते प्रेम में वैश्म्य का आरभ हो गया। सूरदास आदि कृष्णभक्ति-शाखा के आदिम कवियों में इस विषमता की विवृति अधिक नही हुई। श्रीकृष्ण को भी

गोपियों के प्रेम में विकल दिखलाकर समता की सुरक्षा बहुत कुछ कर ली गई। पर आगे के कवियों ने श्रीकृष्ण का मानस-पक्ष उतना दिखलाया ही नहीं। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबने लगा। रीतिबद्ध रचना में साफ दिखाई देता है कि संयोग-पक्ष में नायिका के रूप वर्णन की योजना नायक की उक्ति के रूप होती है, पर विरह-वर्णन में नायिका की विरह-दशा का ही साधारण वर्णन किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग-पक्ष में बहिर्वृत्ति की प्रधानता होती है और वियोग-पक्ष में अंतर्वृत्ति की। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में जहाँ तक हृदय का संबंध है शृंगारकाल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीतिबद्ध रचना में विषमता का बढ़ा-चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छंद धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है। फारसी-साहित्य में प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है और उर्दू में उस परंपरा का निर्वाह आज तक हो रहा है। पिछले काँटे के कृष्णभक्त कवि और स्वच्छद धारा के रीतिमुक्त कवि सूफी संतों और फारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है। कृष्ण-भक्त कवियो में जो प्रेम का वैषम्य दिखाई देता है उस पर भी विचार कर लेना चाहिए। महाभारत में कृष्ण-प्रेम में वैषम्य की विवृति नहीं है, पर श्रीमद्भागवत में इसकी विषमता स्पष्ट लक्षित होती है। उपासक की भक्ति में लीनता और उपास्य के विरह में आरूढ़ होने के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त ही प्रेम-लक्षणा भक्ति के अनुकूल यह विस्तार हुआ है। ब्रह्म की ओर आत्मा के आकृष्ट होने के आदर्श के कारण यह विषमता सामने लाई गई है अर्थात् उद्धव-ऐसे ज्ञान के अहंकार में चूर व्यक्ति को प्रेमयोग या भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त यह योजना की गई है। क्योंकि भक्ति का प्रथम सोपान है अहम् का लोप, आत्म-विस्मृति। अतः कृष्णभक्ति में प्रेम वैषम्य का प्रसार श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि के प्रसार के साथ ही हुआ। प्रेम का वैषम्य और भक्ति की विषमता में अंतर है। प्रेम में प्रिय पक्ष में निष्ठुरता, कठोरता, क्रूरता आदि का आरोप होता है, पर भक्ति में नहीं। भक्ति के आलंबन भगवान् के जिस रूप की कल्पना इस क्षेत्र में हुई वह भगवान् में हृदयपक्ष या करुणा के अत्यधिक आरोप को ही लेकर हुई। अतः भक्ति के क्षेत्र में क्रूरता का अधिक आरोप प्रेम-लक्षणा भक्ति में शृंगार का अवयव

अधिकाधिक आने पर ही हुआ। गोपियों की भक्ति के साथ-साथ शृंगार का दृष्टांत प्रबल पड़ने पर ही उसमें श्रीकृष्ण की निष्ठुरता आदि का उल्लेख हो चला। भागवत में यह प्रसंग भ्रमर-वृत्तात के रूप में जुड़ा हुआ है। कृष्णभक्तों में भ्रमरगीत के भीतर इसी का अधिक विस्तार हुआ। भ्रमर के व्याज से श्रीकृष्ण कितव, छली, कपटी आदि कहे गए, यह भक्ति मे माधुर्य भाव के ही कारण। भागवत में वर्णित यह प्रेमयोग कृष्ण-शाखा में सखी सप्रदाय की उद्भावना का आदर्श ही बन गया। उद्धव तो गोप-वेश ही धारण करके लौटे थे, पर इधर पुरुषों ने भी सखी या गोपी-वेश धारण करना आरभ किया। मीरा की उपासना तो गोपीरूप मे स्वाभाविक जान पड़ती है, पर पुरुषों का गोपी-वेश बहुतों को प्राकृतिक नहीं प्रतीत होता। गोपियों में इस भाव का उदय अत्यंत सानिध्य के ही कारण प्रदर्शित किया गया है। ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञेय ही था, प्रेम के द्वारा वह प्रेय बनाया गया। चित्त की विश्राति प्रेमतत्व की योजना के द्वारा भक्ति मे ही हुई। ज्ञान के क्षेत्र में तो बुद्धि की ही विश्राति हो सकती थी। ज्ञान ने ब्रह्म को जाना, पर उसकी कोई कल्पना वह न कर सका। इसी से वह उसे निर्विकल्प, निराकार, निर्गुण आदि कहता आया पर भक्ति की संतुष्टि इससे न हो सकी, उसने उसे साकार और सगुण कर दिया। ज्ञान 'नेति नेति' कहता रहा, पर भक्ति ने 'सर्वं खल्विदम्' का सहारा लिया। वेदात (अद्वैतवाद) भी तो विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवा, प्रतिबिबवाद आदि से थककर अजातवाद और प्रौढ़िवाद की शरण गया। उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि जो जैसा है वह वैसा ही है।

तुलसीदासजी ने रामभक्ति का जो आदर्श चातक की साधना द्वारा प्रतिष्ठित किया उसमें भी चातक के पन का निरूपण विस्तार से है। वहाँ बादल को उदार, करुणालु आदि रूप में ही अधिकतर प्रदर्शित किया गया है। केवल कहीं कहीं उसकी कठोरता का निदर्शन प्रेमी-हृदय की उच्चता और दृढ़ता का प्रतिपादन करने के अर्थ जोड़ दिया गया है। कृष्णभक्ति और रामभक्ति के स्वरूप में बड़ा भेद था। रामभक्ति का रूप उपास्य और उपासक से सेव्य और सेवक-भावना को दृढ़ करनेवाला था। स्वयम् तुलसीदासजी ने स्पष्ट शब्दो में काकभुशुंडि के मुँह से कहलाया है—

सेवक-सेव्य-भाव बिन, भव न तरिय उरगारि।

पर कृष्णभक्तों में प्रेमलक्षणा भक्ति की उपासना बढ़ी, 'परानुरक्तिरीश्वरे' का प्राधान्य हुआ। शांत और दास्य भाव से बढ़कर सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव का आनंदातिरेक उपासना का प्रधान अंग हुआ। दास्य भाव उसीमें अंतर्भुक्त हो गया, साधना की चरम सीमा पर पहुँचकर उपास्य-पक्ष मे कठोरता का आरोप भी हुआ। यह प्रेम के लौकिक पक्ष के द्वारा अलौकिक पक्ष तक पहुँचने के कारण ही हुआ है। भक्तो द्वारा कथित कृष्णलीला के उपालंभ-परक पद उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति की सूचना देते हो चाहे न देते हों, पर गोपियों की उपालंभ-भावना का विस्तार से वर्णन करने की रुचि प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रेरणा से अवश्य हुई है। भक्ति के इस स्वरूप ने प्रेमभाव के क्षेत्र का कोना कोना छान डालने की रुचि अवश्य उत्पन्न की। प्रेम का अधिक आरोप होने के कारण, मधुरतम शृंगाररस के अतिरिक्त और कुछ न रह गया। बहुतों ने उसपर लौकिक स्वरूप इतना अधिक आरोपित कर दिया कि उनकी रचना घोर शृंगारी कवियों से मिल गई।

यह सब होते हुए भी स्वच्छंद कवियों की कृति में यह वैषम्य कृष्णभक्तों की रचना से ही सीधे उतर आया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भक्ति की साधना मे प्रेमगत वैषम्य भक्ति की ऊँची और गहरी अनुभूति उद्भावित करने के लिए नियोजित है, प्रिय की वास्तविक कठोरता उसका प्रतिपाद्य नहीं। पर स्वच्छंद कविता में प्रिय की वास्तविक कठोरता का वर्णन विस्तार के साथ और प्रतिपाद्य रूप मे स्वीकृत है। यह निश्चय ही फारसी की कविता का प्रभाव है, जहाँ प्रिय की योजना इसी रूप मे की जाती है। एक पक्ष तटस्थ रहता है और दूसरा अनुराग-रस से संपृक्त। संस्कृत-कवियो के विरह में इस प्रकार का क्रूर प्रिय-पक्ष नहीं है। इसलिए इस कठोरता या उदासीनता का मूल स्रोत फारसी की काव्यधारा ही है जहाँ प्रधान काव्य-वस्तु (थीम) यही है और जो उर्दू की रचना पर अपना दीर्घकालीन प्रभाव डाल चुकी है। हिंदी के बहुत से मध्यकालीन कवि इस विषमता के वर्णन में लगे। बिहारी पर भी इसका प्रभाव पड़ा था, रसनिधि की रचनाओं में तो शब्दावली तक ज्यों की त्यों उठाकर रख दी गई है। शृंगार के साथ फारसी या उर्दू की रचना में कुछ बीभत्स व्यापार भी लगे रहते हैं। भारतीय परंपरा में जुगुप्साव्यंजक व्यापारों का ग्रहण केवल वियोग-पक्ष में ही विरह की दस दशाओं के अंतर्गत व्याधि, मरण आदि में हो सकता है (आलस्यौग्र्यजुगुप्साः संयोगे वर्ज्याः—रसतरंगिणी)। पर

वहाँ भी छालों का फूटना, पीब मवाद का बहना कही नही दिखाई देता। यहाँ शिष्ट रुचि के अनुकूल ही जुगुप्साव्यजक व्यापार भी रखे गए हैं। रसनिधि ने ऐसे बीभत्स व्यापार भी ग्रहण कर लिए है। उर्दू-रचना की इस विवृति का आकर्षण पुराने ही नही, अच्छे अच्छे नए कवियों में भी कही कही दिखाई देता है। प्रसाद जी के 'छिल छिलकर छाले फूटे, मल मलकर मृदुल चरण से' (आँसू) मे इसी का प्रभाव है। कुछ पंडितंमन्य देशी काव्य की मीमासा में विदेशी प्रभाव की चर्चा से ही रुष्ट हो जाते है, उन्हे भारतीय और विदेशी काव्यपरपरा के यथार्थ स्वरूप का अनुशीलन करना चाहिए।

प्रेम के उदात्त स्वरूप का निरूपण करने के लिए प्रीति-बिषमता की स्वीकृति हुई, इसमें वियोग की प्रधानता आवश्यक थी। रीतिबद्ध काव्य-रचना में वियोग के वर्णन शास्त्रस्थिति-संपादन के लिए तो आते ही थे, वस्तुव्यंजना और दूर की उड़ान के लिए भी गृहीत होते थे। संभोग और विप्रलभ शृंगार में प्रेमी के पक्ष मे यह सदा ध्यान मे रखने योग्य है कि संयोग में प्रेमी की वृत्ति बहिर्मुख रहती है और वियोग में अतर्मुख। इसका हेतु भी स्पष्ट है। संयोग में प्रिय सामने रहता है—उसके रूप का निरीक्षण, उसकी मुद्राओं का अवलोकन, उसके संलाप का सुख प्राप्त करने के लिए प्रेमी प्रिय की ओर तो देखता ही है, उसके चतुर्दिक् छाई सृष्टि की ओर भी रागभरी दृष्टि डालता है। सारा संसार उसे प्रेममय, आनदमय दिखाई देता है। शृगार मे शास्त्राभ्यासियों द्वारा सृष्टि की प्राकृतिक सामग्री जो उद्दीपन के खाते में डाल दी गई है उसका रहस्य यही है। पर वियोग में प्रिय के समुख न रहने पर वियोगी अपनी सारी वृत्तियो को समेटकर अतर्मुख हो जाता है। संयोग में सृष्टि से वह सुख का सचय करता था, पर वियोग मे उसी से विषाद सचित होने लगता है। सुख, हर्ष, उल्लास आदि आनदमयी वृत्तियाँ विकासमयी होती हैं, इसी से हृदय में न समाकर बाहर उमड़ पड़ती हैं, पर विषाद, करुणा आदि दुःखमयी वृत्तियाँ संकोचकारिणी होती है, इसी से उनमें सिमटाव होता है, बाहर से अपने को खीचकर विरही सिमटकर भीतर बैठ जाता है। यही कारण है कि अंतर्वृत्ति के निरूपण पर ही इन कवियों की दृष्टि जमी दिखाई देती है। पर इन कवियों की वियोग-विषयक धारणा रीतिबद्ध कवियों से विलक्षण भी है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नही छोड़ता—'यह कैसो सँजोग न जानि परै जु बियोग न क्यौं हूँ

बिछोहत है' (घनआनंद)। संयोग में वियोग की खटक लगी रहती है। प्रेमी यह समझकर उद्विग्न रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय—'अनोखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै, मिलेहू मैं मारै जारै खरक बिछोह की' (घनआनद)। इसी हेतु इन विरहियों को न सयोग में शाति मिलती है न वियोग में। ये वस्तुतः प्रेम की तृषा बढ़ानेवाले हैं—'प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटे घटैगी कानि' (दोहा-वली)। रीतिबद्ध कवियों में न तो वियोग की यह चरमावस्था कही मिलेगी और न उसके स्वरूप का आभास ही। इसलिए ये स्वच्छंद कवि अपनी इस विशिष्ट वियोग-भावना के कारण उनसे पृथक् हो जाते हैं। इनकी प्रेम की पीर विलक्षण है। उसे 'ताकने' के लिए 'हिय-आँखिन' की आवश्यकता पड़ती है।[1]

प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। अतः स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी-काव्यधारा की वेदना की विवृति के साथ सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। सूफियो का विरह-वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी ने 'पदमावत' मे भी प्रेम की पीर का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सूफी अपनी साप्रदायिक भावना के अनुसार सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, 'रन-बन' को विरह के बाणो से बिद्ध मानता है, पशु पक्षी के रोएँ और पंख उसे विरह की बाणावली दिखाई देते हैं, सारी सृष्टि उसे परमपुरुष के वियोग में कलपती जान पड़ती है। सूफियों के विरह और भारतीय भक्ति-मार्ग के विरह में भेद है। सूफियों का विरह यदि शाश्वत नही है तो जीवन में अपरिहार्य अवश्य है, कभी कभी बेहोशी में ही सयोग-सुख क्षण भर के लिए मिल सकता है। पर भारतीय भक्त का विरह ऐसा नही है। इसका कारण सूफियों के ब्रह्म की निर्गुण निराकार-भावना है। भक्तिमार्ग ने तो निर्गुण को ज्ञान-क्षेत्र के लिए छोड़कर उपासना में उसका सगुण रूप ही ग्रहण किया है। इसी से भारतीय भक्त को विरह ज्वाला में निरंतर तपते रहने की आवश्यकता नही पड़ती। इन स्वच्छंद कवियो ने फारसी काव्य-गत वेदना की विवृति के साथ इस 'प्रेम-पीर' का स्वागत किया। इनकी रचना मे वियोग के आधिक्य का कारण यही है। लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी-काव्य की वेदना की विवृति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों

---

१ समुझै कबिता घनआनँद की हिय-आँखिन प्रेम की पीर तकी।

— घनआनद कवित्त।

की प्रेम-पीर से। कृष्णभक्ति के अंतर्गत विरह की पुकार का अवकाश पाकर ये कवि कृष्ण और गोपियो की विरह-दशा की ओर स्वभावतः उन्मुख हुए। इसी से सूफियों की भाँति रहस्यदर्शिता के व्याख्यान की व्यापक वृत्ति इनमें नही रह गई। निर्गुण को त्याग कर सगुण की ओर प्रवृत्ति हो जाने से इनमें रहस्य की वृत्ति विस्तार न पा सकी। भारतीय भक्तिमार्ग अपने प्रकृत रूप में रहस्यदर्शी नहीं रहा——उसे रहस्य, गुह्य, गोप्य आदि की आवश्यकता नही थी। ब्रह्म का सगुण रूप सामने रहने के कारण ही ऐसा हो सका है, भले ही सगुण की कामना के मूल में रहस्य हो, पर भक्तिसाधना में वह नही रहा। पर बाद में सखीभाव की उपासना का प्रसार होने पर रहस्य भी थोड़ा बहुत इन भक्तों मे अवश्य आ गया है। 'यह रहस्यभावना सूफी भावना से प्रभावित है या स्वगत विकास है'——इस विवाद में पड़ना अप्रासगिक होगा। स्वच्छंद कवियों में सूफियों के संपर्क और प्रभाव के कारण कही-कही रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना से मेल खाती हुई इन कवियो की वृत्ति कृष्णभक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियो में से कई अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम की एकनिष्ठता के उपासक हुए। प्रिय की ओर से प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण में न पाकर, या उसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा खड़ी हो जाने के कारण, ये ससार से विरक्त हो गए। ऐसी दशा में इनके लिए दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण संप्रदाय का अनुगमन करते या सगुण-सप्रदाय में दीक्षित होते। निर्गुण में रूप की योजना न होने के कारण उसकी उपासना इनके चित्त के लिए अभिमत नहीं हो सकती थी, अतः इन्होने सगुण में अपनी स्वच्छंद वृत्ति लीन की। रसखानि और घनआनद दोनों ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है—

आनँद-अनुभव होत नहिँ बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानद कै ब्रह्मानद बखान॥—(रसखानि)

ज्ञानमार्ग से उत्कृष्ट बताते हुए घनआनंद ने भक्तिमार्ग या प्रेमाभक्ति की यही विशेषता बताई है कि भोगियों का भोग या विषयानद उसमें पर्यवसित या तिरोहित हो जाता है—

ज्ञान हूँ तेँ आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैँ भोगी भोग जात ग्वै।

जान 'घनआनँद' अनोखो यह प्रेमपंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

कृष्ण-भक्ति की ओर इनके आकृष्ट होने और उसमें लीन हो जाने का वास्तविक कारण यही था। इन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमग के कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिबद्ध 'बिहारी' निबार्क (राधातत्त्व-प्रधान) सप्रदाय में दीक्षित थे। अपनी 'सतसई' के आरभ में राधा से बाधा-हरण करने की प्रार्थना करके उन्होंने अपना संप्रदाय व्यक्त भी कर दिया है। पर वे भक्तों की श्रेणी में नही बैठाए गए। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नहीं है। घनआनंद ने अंत में भक्ति-संप्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का 'सुजान' नाम वे भूल न सके। श्रीकृष्ण का 'सुजान, जान, जानराय' आदि विशेषण रखकर वे उनकी प्रेममयी गाथा निरंतर गाते रहे। इन स्वच्छद कवियों की आत्माभिव्यक्ति के लिए कृष्णलीला सामग्री का काम कर गई। रीतिबद्ध कवियों ने कृष्णलीला के प्रसंग बराबर लिए हैं, पर वे भक्त नहीं माने जाते, न माने जा सकते हैं। 'आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई नतु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को बहानो है' लिख देने से कोई भक्त नहीं माना जा सकता। इन स्वच्छंद कवियों ने हृदय के योग के साथ भक्ति की रचनाएँ की है। ये साधन के रूप में ही कृष्णलीला का उपयोग करते थे। कृष्ण-भक्तो की भक्ति-भावना परिमित, साप्रदायिक या आनन्य दिखाई देती है। श्रीकृष्ण से आगे वे प्रायः नहीं बढ़ते। इन प्रेमोन्मत्त गायकों ने उदारतापूर्वक अन्य देवी देवताओं को भी ग्रहण किया। यदि कहा जाय कि यह उदारता भक्ति का लक्षण है तो पूछना पड़ेगा कि 'रहीम' ने अपनी भक्ति-भावना उदार रखी है, पर वे भक्त कवि नहीं माने जाते। 'सेनापति' रामोपासक थे, राम की कथा के साथ उन्होंने कृष्ण-कथा भी 'कबित्त-रत्नाकर' में संनिविष्ट की है; पर वे भक्त नहीं, शृंगारी कवि ही स्वीकृत हैं। इसलिए रसखानि, आलम, शेख, घनआनंद आदि को शुद्ध भक्त कहने मे हिचक होती है। सूरदास या अन्य भक्त कवि जैसे पद के अन्त में 'सूर के प्रभु', 'सूर के स्वामी', 'परमानंद के प्रभु', 'छीत के स्वामी' आदि पदावली का उपयोग करते हैं, वह प्रवृत्ति भी इन कवियों मे नहीं दिखाई देती। पद्माकर, मतिराम, देव आदि की जैसी उक्तियाँ हैं वैसी ही इनकी भी हैं। यदि बिना भक्त कहे संतोष न

होता हो तो विधि मिलाने के लिए यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इनकी रचना के प्रायः तीन खड है। प्रथम खड में इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है, जिसमें इनकी ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें इन्होंने काव्यक्षेत्र मे अपनी वाणी की परख या जाँच की है। दूसरे खड में इन्होंने रीतिबद्ध रचना का त्याग कर दिया है और स्वच्छद रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र मे पदार्पण किया है। तीसरे खंड मे इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई हैं। इन कवियों का लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हों, सो भी नही है। सबसे अधिक विरोध 'रसखानि' के सबध में सभावित है। पर 'रसखानि' ने स्वयम् प्रेम को साध्य कहा है—

जेहि पाएँ बैकुंठ अरु हरिहूँ की नहिँ चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

श्रीवल्लभाचार्यजी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य अवश्य कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह कभी न भूलना चाहिए। पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं—

इक अगी बिनु कारनहिँ, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्बस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

श्रीवल्लभाचायजी के अनुसार भगवद्भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है—उसे ही एकागी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए। पर 'रसखानि' लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की साप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्ति-मार्गी कृष्णभक्तो प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कविदों—सबसे पृथक् स्वच्छदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहता हो तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नही है। स्वच्छदता इनका नित्य लक्षण है। यही कारण है कि इन्होने काव्यशैली की दृष्टि से भी भक्तों से प्रस्थान-भेद सूचित किया। कृष्ण-भक्तों की अधिकतर रचनाएँ गीत में ही मिलती हैं। काव्य की प्राचीन कबित्त-सवैया-वाली शैली मे उन्होने पूरी आस्था नही दिखाई। भगवदुपासना के रागरग के लिए राग रागिनियो के अनुकूल पदन्यास करनेवाले गीत ही उन्हें अधिक रुचे हैं। इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ पद की भी अवश्य हैं; पर इनकी एक प्रकार से

प्रवृत्ति-बोधिनी कृति कबित्त-सवैयों में ही है—बीच-बीच में दोहे, सोरठे और छप्पय भी आ गए हैं, यह दूसरी बात है। इनके स्वच्छद प्रेममय कवि-पक्ष के अनुकूल इस तर्क की उपेक्षा नही की जा सकती। 'रसखानि' ने भी भक्तों की 'गीति-रीति' का त्याग कर दिया है।

कृष्णभक्त कवियो में प्रबध रचना का स्फुरण नही हुआ। रीतिबद्ध शृंगार की रचना करनेवाले भी प्रबंध की ओर उन्मुख नही हुए। भक्तिकाल के भीतर सूफी प्रेममार्गी कवि अलबत प्रेमकथा के द्वारा अपनी साप्रदायिक प्रेम-पीर व्यक्त करते थे। इन स्वच्छद कवियो ने भक्ति और रीति दोनों की साप्रदायिकता से पृथक् रहने का प्रयास किया, अतः इनका प्रेम-प्रबधों की ओर मुड़ना स्वाभाविक था। 'आलम' ने माधवानल-कामकंदला, सुदामाचरित्र और श्यामसनेही नामक तीन प्रबध-काव्य प्रस्तुत किए। पहले में कामकंदला नाम्नी वेश्या के प्रति माधवानल नामक प्रेमोन्मत्त व्यक्ति की प्रीति काव्यबद्ध की गई है। दूसरे में सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण के निःस्वार्थ प्रेम का बखान है। तीसरे में रुक्मिणी के प्रेम और परिणय की कथा है। इस प्रकार प्रेम के विविध रूपों को काव्यबद्ध करके 'आलम' ने अपने स्वच्छद प्रेमपथ का प्रमाण दे दिया है। न तो 'सुदामाचरित्र' की चर्चा चलानेवाले नरोत्तमदास भक्त कवियो की श्रेणी में गिने जाते हैं और न 'रामचंद्रचद्रिका' का 'प्रकाश' करनेवाले केशवदासजी भक्तशिरोमणि ही मान जाते हैं—यद्यपि 'दास' दोनों ही है। अतः श्रीकृष्णविषयक रचना से ही किसी को भक्तों की मडली में बिठा देना बहुत स्थूल लक्षण लेकर काव्येतिहास का विवेचन करने बैठना है। 'माधवानलकामकदला' प्राकृत-काल की कदाचित् कल्पित कथा है, जिसमें थोडी-सी विक्रमादित्य की ऐतिहासिक कथा भी जुड़ी है। यह कथा मूल में प्राकृत ही रही होगी, सस्कृत में इसका प्राकृत से अनुवाद हुआ होगा—वैसे ही जैसे गुणाढ्य की 'बड्डकहा' का सस्कृत में संक्षेप हुआ। इसके प्राकृत-रूप का प्रमाण यह है कि सस्कृत में इसके जो अनुवाद हुए उनमें भी प्राकृत की गाथाएँ ज्यों की त्यों रखी हुई हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में सस्कृत में जो प्रेमकथाएँ कल्पित वृत्त लेकर गद्य में लिखी जाती थी उन्हीं की परपरा में प्राकृत काल की ये रचनाएँ भी हैं। जैसे प्राकृत और अपभ्रंश की और बहुत-सी सामग्री लुप्त हो गई वैसे ही यह कथा भी अपने मूल रूप में। यही 'माधवानलकामकदला' शुद्ध भारतीय प्रेम-काव्यों की

परंपरा में दिखाई पड़ती है। सूफी प्रेमकाव्यों में कल्पित कथाओं पर, या कही-कही कुछ ऐतिहासिक आधार से भी युक्त होकर, जैसी रहस्यमयी कृतियाँ लिखी गईं उनसे यह सर्वथा भिन्न हैं। 'बोधा' ने भी माधवानलकामकंदला-चरित्र या 'विरह-वारीश' प्रस्तुत किया, पर उसमें भी सूफी प्रेमाख्यानो की भाँति रहस्यदर्शी पक्ष का समावेश नही है। अर्थात् कोई समासोक्ति, अन्योक्ति वा अन्योपदेश (अलेगरी) नही है—भले ही उसमें सूफी 'इश्क-मजाजी' और 'इश्क-हकीकी' की चर्चा हो पर काव्य-वस्तु में अध्यवसान का विधान नही हुआ है। इस प्रकार स्वच्छंद प्रेम के वृत्तों के ग्रहण द्वारा इस काव्य-धारा में प्रबंध की प्रवृत्ति के स्फुरण का भी संकेत मिलता है, जो रीतिबद्ध कवियो के बाँटे किसी प्रकार भी नही आ सकता था। 'आलम' के अन्य ग्रंथ पौराणिक या ख्यात वृत्त लेकर चले हैं। उनमें भी प्रेम के स्वच्छद और व्यापक रूप के ग्रहण का आभास स्पष्ट है।

रीति की शृंखला में बँध जाने से कवियों ने प्रकृति की ओर से भी अपनी दृष्टि खीच ली थी। भक्तों ने भी प्रकृति का कोई अच्छा उपयोग नहीं किया। प्रकृति को अपनी दृष्टि से देखने और उद्दीपन के बंधन को तोड़कर चलने का प्रयास नही दिखाई देता। सेनापति की रचना में प्रकृति कही कही उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिश्र का 'कृष्णचंद्रिका' नामक प्रबध-काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है, पर उधर किसी समीक्षक की दृष्टि अभी नहीं गई है। कालिदास, भवभूति आदि पुराने सस्कृत-कवियो की भाँति उस प्रबंध-काव्य में गुमान मिश्र ने प्रकृति के खुले दर्शन कराए हैं। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित 'कृष्णायन' भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। प्रकृति के खुले मैदान (महोबा, बुंदेलखड) मे रहनेवाले इन कवियो की सहृदयता प्रशसनीय है। पूर्वोक्त स्वच्छंद कवियों में प्रकृति-दर्शन की स्वच्छद रुचि भी जगी है। इनके यहाँ प्रकृति उद्दीपन के पाश से मुक्त दिखाई पड़ती है। रीति का व्यवहार अधिक होने का दुष्परिणाम जो होना चाहिए था वही हुआ—कवियों ने अपनी काव्यदृष्टि खो दी; प्रकृति को अपनी दृष्टि से निरीक्षण करना वे छोड़ बैठे। कुछ कवियों ने परपरा का तिरस्कार करके वसत में मयूर का नृत्य अवश्य दिखाया और वर्षा में कोकिल-कठ अवश्य खोला, पर इससे आगे वे भी कुछ न कर सके। वसंत का वर्णन करते हुए स्वच्छद-वृत्ति-विशिष्ट 'द्विजदेव' ही ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति दर्शन के लिए अपनी

दृष्टि स्वच्छद करके बाहर निकले हैं। शास्त्र-दृष्टि से काम न लेकर उन्होंने आत्म-दृष्टि का पूरा उपयोग किया। 'विरह-वारीश' में बोधा ने भी प्रकृति का वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छंद-वृत्तिबद्ध रखा है। अतः इन कवियों की स्वच्छदता ने यथार्थ काव्यदृष्टि सामने करने का पूर्ण उद्योग किया है, इसमें सदेह नही रह जाता। प्रकृति इन्हे कैसी दिखाई पड़ी, इसका विचार यहाँ अपेक्षित नहीं।

स्वच्छद दृष्टि ने देश के आनदोल्लास में भी इन कवियों को सलग्न किया। वसंत-वर्णन के अतर्गत होली के त्योहार का उल्लेख करने के आगे रीतिबद्ध कर्ता नहीं बढ़े। गुलाल की गरद और केसर की कीच तक ही वे रह गए। इन त्योहारों का चित्र उपस्थित करने की ओर इनकी दृष्टि स्वाधीनता के साथ प्रसरित न हुई। 'ठाकुर' ने अपनी रचना में बुंदेलखंड के आनदोल्लासमय जीवन के कुछ चित्र रखकर देश के इस सास्कृतिक वैभव की ओर भी लोगों की दृष्टि खीची। हम तो अपने नागरिक जीवन के अभिमान मे अपना प्राचीन सस्कार भी खोते जा रहे हैं! नगरों में त्योहारों का वह उल्लासमय रूप सामने नही आता जो भारत के जीवन का प्राण रहा है। गाँवों मे इस दृष्टि से अपने जीवन का रूप अच्छा और रमणीक दिखाई देता है। जो प्रात या प्रदेश नागरिक जीवन की पंकिलता से दूर या विच्छिन्न हैं उनमें अब भी देश की इस विभूति के बड़े भव्य दर्शन होते हैं। बुंदेलखंड में हमारा जीवन-खंड अपने प्राचीन रूप में अब भी बहुत-कुछ सुरक्षित है। 'ठाकुर' कवि ने उस उल्लासमय जीवन में से अखती, गनगौर, वटसावित्री बरगदाई), होली आदि के बड़े ही प्रभावुक चित्र सामने किए हैं। रीतिबद्ध कवियों में से किसी-किसी ने बुंदेलखंड से सबद्ध होने के कारण 'गनगौर' का उल्लेख भर कर दिया है, जैसे पद्माकर ने, पर उसका चित्र उपस्थित करने की अभिरुचि नही दिखाई है। काव्यशास्त्र मे इन त्योहारों का उल्लेख तो है नही, फिर रीतिबद्ध कवि इनका अभिनदन करने क्यों दौड़ते।

स्वच्छद कवियों ने इसी से रीति की रचना आरभ में स्वीकृत करके भी त्याग दी। उसका जितना अंश उन्होंने लिया वह भी परिमित है; कुछ चुने हुए प्रसंग ही अधिक हैं। नेत्रव्यापार की कुछ उक्तियाँ सभी कवियो में पाई जाती हैं। भक्त, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त—सभी कवियों ने नेत्रों पर उक्तियाँ बाँधी हैं। 'सूरसागर' में तो इस प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि कोई चाहे तो नेत्रो

की उक्तियों का हिंदी के पुराने कवियों के काव्य से बहुत बड़ा संग्रह कर सकता है। एक छोटा-सा संग्रह निकला भी है, पर उसमें भी चमत्कारातिशय-युक्त रचनाएँ ही संकलित की गई हैं। नेत्री की इन उक्तियों को हम रीतिबद्ध रचना के अंतर्गत नहीं ले जा सकते। खंडिता की उक्तियाँ भी इन कवियों में पाई जाती हैं। 'बिहारी' की भी कोई एक-तिहाई रचना खंडिता की उक्तियों से निर्मित हुई है। रसखानि, आलम, ठाकुर, घनआनंद—सबमें खंडिता की उक्तियाँ मिलती हैं। इसके हेतु का विचार करना भी आवश्यक है। बात यह है कि जो कवि दरबारी थे, उन्होंने तो उर्दू या फारसी की काव्यरचना के रकीबों और माशूकों के जोड़तोड़ में खंडिता को दरबार में पेश किया। भारतीय परंपरा में उन्हें खंडिता की उक्ति ही उससे मेल खानेवाली दिखाई पड़ी। सौतों की क्रीड़ा में विशेष संलग्न होने का कारण दरबारी कवियों में तो दरबारी दंगल ही प्रतीत होता है। स्वच्छंद कवियों ने इनका ग्रहण इसी से किया कि प्रेमवैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्यपद्धति में यही बात अनुकूल दिखाई पड़ी। फारसी-ढंग का प्रेम वे देशी प्रणाली के अभिमानी होकर दिखा नहीं सकते थे, प्रेम की गंभीरता पर भी तो उनकी दृष्टि आरंभ से ही थी, अतः रीतिबद्ध कवियों का यही काव्यार्थ उन्हें सुभीते का जान पड़ा। पर खंडिता की इनकी उक्तियों में भेद है। स्वयम् नायिका-भेद के भीतर धीराधीरादि और खंडिता के रूप में अंतर दिखाई देता है। खंडिता में अधिकतर सपत्नी के संसर्ग से उपलब्ध नायक के शरीर पर के चिह्नों पर ही विशेष दृष्टि रहती है और वह भी बेढंगे चिह्नों पर। जैसे—भाल पर महावर का चिह्न, आँखों में पान की पीक, अधरों में अंजन, छाती पर 'बेगुन की माला' आदि। रीतिबद्ध कवियों ने इन विशेष चिह्नों की उद्धरणी पर ही विशेष ध्यान दिया है; खंडिता के हृद्गत भावों पर उनकी वृत्ति प्रायः नहीं जमी है।

धीराधीरादि में भी वचनावली की कठोरता या कोमलता को ही उन्होंने लक्ष्य किया, उक्ति के साथ लिपटकर हृदय सामने न आ सका; पर स्वच्छंद कवियों ने खंडिता के चिह्नों की उद्धरणी पर ध्यान न देकर उसका हृदय दिखलाने का प्रयत्न किया है। उक्ति खंडिता की ही है, इसके लिए किसी एक चिह्न का संकेत करके वे भाव के विधान में लग गए। पर इस प्रकार की उक्तियों में भी उनका मन नहीं रम सकता था, अतः उन्होंने इनका भी त्याग कर दिया। सुरतांत या

विपरीत रति आदि की कुरुचिपूर्ण रचनाएँ स्वच्छद कवियों की रचना में प्रायः नही मिलतीं। जहाँ मिलती हैं वहाँ उनकी आरभिक रचना के रूप में, जब उन्होंने हाथ आजमाने के लिए रीतिबद्ध रचना की सरणि स्वीकृत की थी। बाद में ऐसी रचना की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की। 'बोधा' में ही कुछ बाजारू रगढंग कही कही मिलता है। यह उनपर फारसी की रचना का आरभिक प्रभाव है। रीतिबद्ध लक्ष्य-कारो मे जो स्थिति 'रसनिधि' की है, भक्तों मे जो रूप 'कुंदनशाह' का है, वैसा ही स्वच्छद कवियो में 'बोधा' को समझना चाहिए। जो आत्मविस्मृत होकर बाहरी रग में रंग गए हैं। कुशल हुई कि 'बोधा' ने अपनी सारी रचना इसी प्रकार की नही रखी। घनआनद, ठाकुर आदि ने तो विदेशी रग ढंग ग्रहण करने की पद्धति बताई। विदेशीपन इनकी काव्यधारा मे घुल गया। 'बिहारी' ने भी रसनिधि की अपेक्षा विदेशीपन को बड़े कटकीने से ओढ़ा है, बीभत्स व्यापार कही ग्रहण नही किया।

स्वच्छंद कवियों ने अपना वैभव केवल हृदय की उदारता और प्रेम के निर्मल रूप में ही नही दिखलाया, भाषा और अभिव्यजन शैली में भी दिखलाया। रीतिबद्ध रचना प्रचुर परिमाण में हुई, हिंदी का भाडार सुंदर उक्तियों और रमणीक प्रसगों से भर गया। किसी काव्याग के उदाहरण की कमी नहीं रह गई, एक से एक रचना छॉटकर निकाली जा सकती है—भले ही वे रचनाएँ प्रायः एक ही प्रकार की हो; पर उनमें कवि की क्षमता के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष भी अवश्य दिखाई देता है। यह सब होने पर भी भाषा का परिष्कार उनके द्वारा वैसा न हुआ जैसा होना चाहिए था। बिहारी, मतिराम, पद्माकर ऐसे दो-चार कवियों को छोड़ दें तो रीतिबद्ध रचना करनेवालों में भाषा की सफाई के दर्शन न हो सकेंगे। भूषण, देव आदि बड़े उत्कृष्ट कवि थे; पर शब्दों का अगभंग इन्होने पर्याप्त किया है। कवियों ने न तो प्राकृत, अपभ्रश आदि के पुराने शब्दो को ही जो ब्रजभाषा की बोलचाल से उठ गए थे—छाँटकर पृथक् किया और न रूप की एकता का ही विचार किया। पश्चिमी ब्रजभाषा और पूर्वी अवधी की पदावली का ऐसा घालमेल हुआ कि ब्रजभाषा का व्याकरण प्रस्तुत करनेवाले अब उनके पृथक् पृथक् रूपों का भेद ही नही कर पाते—एक ही लाठी से सबको हाँकने लगते हैं। पूर्वी और पश्चिमी प्रयोगों में भेद है। 'सुघर' शब्द ब्रज में 'चतुर' अर्थ मे आता

है, अवधी में 'सुंदर' अर्थ में। पछाहँ में 'सुठि' चलता है 'सुंदर' के अर्थ में, पर पूरब में 'अति' के अर्थ में। हेरना' पछाहँ मे 'देखने' को कहते हैं, पूरब में 'खोजने' को। पर इन सब प्रयोगों का ऐसा एकीकरण हो गया कि भेद करना सचमुच बहुतों के लिए कठिन है। देशी ही नही, विदेशी शब्दों की भी आकृति बदल गई। पर स्वच्छंद कवियों में यह बात नही दिखाई देती, यह बडे आश्चर्य की बात है। इन्होंने न शब्दों का अंगभग ही किया है और न प्रयोगो को बिगाडा ही। रसखानि और घनआनद ने तो व्रजभाषा का ऐसा स्पष्ट और ठीक रूप प्रस्तुत किया कि उसके आधार पर व्रज का पुष्ट व्याकरण बन सकता है। 'दास' जी ने व्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिन कवियो की तालिका उपस्थित की है उन सबकी भाषा का अध्ययन करने पर उसी भाषा का ज्ञान होगा जिसमें व्रज और अवधी दोनों का मेल है। सब प्रकार के मेल से बनी भाषा ही व्रजभाषा रह गई। 'व्रज' काव्य की भाषा थी, इसलिए उसमें सब प्रकार के प्रयोग मिला दिए गए। काव्य-भाषा के लिए कुछ विस्तार अपेक्षित भी है, पर भाषागत भेद बना रहना भी आवश्यक है; व्रज की मूल प्रवृत्ति का तिरस्कार ठीक नहीं जान पड़ता। रसखानि और घनआनंद ने व्रजभाषा का गठा हुआ ही रूप रखा, बिहारी ने भी उसका मूल साहित्यिक रूप सुरक्षित रहने दिया। दो चार प्रयोग अलकार-छद आदि की विवशता के कारण उसमे भले ही पूरब के भी आ गए हो, पर वे सरलता से पहचाने जा सकते हैं।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लडी बाँधनेवालो की अपेक्षा इनकी व्यजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनआनद ने तो ऐसे ऐसे पथो से भावना को ले जाने का साहस किया है जिनपर पुराने कवि तो गए ही नही, नए कवि भी जाने का साहस कम करते है—

(१) मो से अनपहचान को पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी 'पुकार मौन मे' है तो उधर नेत्रो मे 'कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रबाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।

रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं बिचित्रताई मो चित-चितेरे की। २॥

'रग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रग ही धुले बिना बच सकना है, पर यहाँ नेत्रो के प्रवाह मे ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नही जा सकता। बाह्यार्थ-वैशिष्टय (आब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा स्वात्मवैशिष्टय (सब्जेक्टिविटी), कौन जाने !

इन्होंने भी अलकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पाडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुदरता के भेदों— रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कबिताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनआनंद ने 'विरोधाभास' का बहुत सहारा लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नही पडने पाया है—

देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लघन करति हैं।

आँखें स्वभाव से ही निपेटिनी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भस्मी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमे जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है, जब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा मे खा लेने पर भी पेट नही भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। श्लिष्ट 'भसमी बिथा' मे घनआनंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने से असमर्थ नही है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनआनद की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनद की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अन्वय व्यतिरेक' से इनकी कृतियो के छाँटने मे पूरी सहायता मिल सकती है। 'विरोध' वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कहीं-कहीं

दिखाई देता है, पर केशवदास जी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी हारी हम आप हौ निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के साहचर्य में 'निर+दई' भी है। पर 'निर + दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ मे कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों मे से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनआनद और ठाकुर ने व्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दो का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवालों में कहाँ। लोकोक्तियो का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनआनंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि पदध्वनि तो दूर रहे, इन्होंने पदांशध्वनि से भी जगह जगह काम लिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू बहियै अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण, जिस प्रकार आपने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढ़े हैं— जैसे, 'दिनदानी' के ढर्रे पर 'दिनदीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनआनदजी व्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'व्रजभाषा प्रवीण' और 'भाषा-प्रवीण' दोनों ही थे।

आनंदघन

आनंद, आनदघन और घनआनद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी मे संगीत के सबसे बड़े संग्रह ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनद' और 'आनदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने दि मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ६२, संख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनद और आनदघन संभवतः एक ही है। पर नागरीप्रचारिणी

सभा (काशी) की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कबि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संबत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमजरो यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥
—(खोज, १९२३–१० बी)।

अथवा

रितु बसंत संबत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥
—(खोज, १९२६–१० एफ्)।

इस प्रकार 'आनद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण मे वर्तमान थे। उधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहादेवप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनदघन (या घनआनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत म ये वृंदावन चल गए थे और नादिरशाह न जब मथुरा पर अधिकार किया तो ये मारे गए (दि मार्डन वर्नाक्यलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ९२, सख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल स० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण स० १७९६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनों के समयों में सौ-सवा सौ वर्षो का अतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' मे 'आनदघन कवि दिल्लीवाले' का समय स० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का काव्य-काल ही है, जन्म काल नहीं,

जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अक २; अप्रैल, १६४३ में मेरा 'शिवसिंहसरोज के सन्-सवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनों के समय में ४० वर्षों का अतर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अतर है। इसलिए 'आनद' और 'आनदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं।

'आनदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबधुविनोद' मे उक्त 'दिल्लीवाले आनदघन' के अतिरिक्त १४४।१ सख्या पर एक दूसरे 'आनदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है—"आनदघन, ग्रंथ-आनदघन बहत्तरी-स्तवावली, रचनाकाल—१७०५, विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितिमोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवबर, १६३८) मे 'जैनमर्मी आनदघन' शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनदघन' और 'जैनमर्मी आनदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है। 'सरोज' मे भी एक कवि 'आनदघन' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय स० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११)। इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनदघन' के अभेद की भी सभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनद' नामक समीक्षा पुस्तक मे की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में दिल्लीवाले 'आनदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही ते' प्रतीकवाला सवैया (देखिए आगे) और दूसरा यह है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहै।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहै।
साँची हौं भाषति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरि हू ह्वैहै।
मो सों कहा अठिलात अजासुत कैहौं ककाजी सों तोहूँ सिखैहैं।

यह सवैया न तो 'आनदघन' या 'घनआनद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ गुरुजनो से 'केशव-पुत्र-वधू' के संबध मे जो कथा सुनी थी वही इस सवैयै में वर्णित है। कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढकर उनके आत्मज विषय वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' ('प्रबोध चद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) की रचना करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो

गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख मे दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर मे बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली-बानी' मे कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढी जिसमे कहा गया था कि ऐ बकरे मै काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्मविद्या की शिक्षा दिलाऊँगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय, तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३३५ संख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सारसंग्रह' का विवरण भूमिका मे यो दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा संग्रहीत सारसंग्रह, पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय मे है। इसमे प्राय १५० कवियो की रचनाएँ पाई जाती है।" 'विनोद' मे 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नही है। पर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्य-भाषा-पुस्तकालय क हस्तलेख-संग्रह (संख्या ८४६) के १२५ वे पन्ने पर यही एक सवैया केशव पुत्रवधू के नाम पर दिया गया है। केवल एक ही उदाहरण है। अतः यह 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना नही है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) मे 'घनआनंद' के नाम पर उदाहृत रचना देखिए—

> गाइहैं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहों।
> पाइहों पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहाँ हरि कों चित लाइहों।
> लाइहों आछे द्विजातिन का अरु गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
> चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं।

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमे 'घनआनद' नाम है अवश्य, पर 'आनंदघन' और 'घनआनंद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। व्रज के भक्त कवियो ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये मे 'घनआनंद' का

अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पचदेवोपासना करने का फल प्रिय का सयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कबिद की कृति जान पड़ती है, सिहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते बेढगा हो गया है। 'चाइ' के बदले 'चाइहौ' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनद' विशेषण न हो। जो कुछ भी हो इस सबध में सवैया है सदिग्ध ही।

अब जैन 'आनदघन' और वृदावनवासी 'आनदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनदघन' (महात्मा लाभानदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पक्तियाँ सर्वश्री समयसुदर (स० १६७२), जिनराज सूरि (स० १६७८), सकलचद्र (स० १६४०) और प्रीतिविमल (स० १६७१) के जिन-स्तवनादि ग्रथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव सग्रह' मे प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख)। इससे 'चौबीसी' का समय स० १६७८ के अनतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनवाले श्रीयशोविजय ने स० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृदावनवासी आनदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्सग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों सत-सभा मधि।
३—आनँदघन को सग करत तन मन कौं वारयौ।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र मे बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यत प्राचीन चित्र है जिसमे नागरीदासजी और घनआनँदजी

एक साथ विराजते हैं।" (राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२)। इससे भी पता चलता है कि घनआनदजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसी से उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्रीआनदघनजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेव-शरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदासजी' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के सत्सग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता काल स० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' सशोधित और प्रवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावनवासी आनदघनजी का समय अट्ठारहवी शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनदघन' और वृंदावनवासी 'आनदघन' के समय मे भी सौ वर्षों का अतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नही है।

घनआनंद मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुशी थे। इस बखेड़े को छोड़िए कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे या दरबार के 'मीर मुशी'। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियो ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि मुशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था बादशाह ने इनका गाना सुनने का हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अत में उन षड्यत्रकारियो ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय जिस पर ये आसक्त हैं तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया।

फलस्वरूप उसने इन्हे देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अत मे ये वृंदावन चले गए और वहाँ निंबार्क-संप्रदाय मे दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होने कभी नही त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना मे बराबर करते रहे। अंत मे कहा जाता है कि मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह क हमले में ये मारे गए।

इतिहास मे मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नही है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र मे बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह सकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। मेरे शिष्य स्वर्गीय विद्याधर पाठक ने बडे परिश्रम से इस भ्राति का निराकरण करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उसके अनतर श्रीज्ञानवती त्रिवेदी ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक मे यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है। सं० १८४९ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पद-संग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामबन के मदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार मे आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनद की कथा से यह 'वार्ता' कुछ मिलती है। श्रीवृंदावनदासजी ने इसका सकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कठा-बेली' मे इस प्रकार किया है—

> जमन कछू सका दई ब्रजजन भए उदास।
> ता समयें चलि तहाँ तें कियौ कुस्नगढ बास॥

(खोज, १९१७-३४ एफ्)।

अब इधर जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई है उससे इसी की पुष्टि होती जाती है कि घनआनदजी का निधन मथुरा में ही हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमदशाह के आक्रमण में ही मारे गए। अब्दाली ने एक बार सन् १७५७ (स० १८१३) और दूसरी बार सन् १७६१ (सं० १८१७) में मथुरा पर आक्रमण किया था। घनआनदजी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण के अनंतर तो ये जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनदघनजी के ग्रथो के जो बृहत् सग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका मोद' भी है। इसके अत मे ये स्वयम् लिखते हैं—

गोपमास श्रीकृस्न-पच्छ सुचि।
सबत्सर अठानबे अति रुचि।

यह 'सबत्सर अठानबे' १७९८ है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण स० १७९६ मे हुआ और दिल्ली तक ही परिमित रहा। सवत् १७९८ में आनदघनजी ग्रथ की रचना कर रहे है अर्थात् उसके दो वर्षो के अनतर भी जीवित हैं। इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये स० १७९६ मे नहीं मारे गए। इनकी मृत्यु या हत्या नादिरशाही मे कदापि नहीं हुई। पर ये अब्दाली के दोनो आक्रमणो मे से पहले मे मारे गए या दूसरे मे इसका निश्चय कर लेना चाहिए। स० १८१२ मे आनदघनजी कृष्णगढ़ के महाराज सावतसिंह नागरीदास के साथ दिखाई देते हैं "जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और घनानद कृष्णगढ़ आए थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंद के दर्शनो को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव के सान्निध्य मे आनदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर के महाराज जी दर्शनो को आए थे सो जयपुर महाराज ने उनके कवित्तो की बड़ी प्रशसा की। तब आनदघन जी ने कहा कि तुम प्रशसा करनेवाले कौन ? हमारे कीर्तनो की प्रशंसा करै तो श्री गोवर्धनजी करें। यह कहकर वहाँ से बिदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नही चलेंगे पीछे ही जायँगे सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना जाता है कि मथुरा मे कत्लेआम करनेवालो से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े-थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यो-ज्यो तलवार के घाव लगते गए त्यों-त्यों यह ब्रजरज मे लोटते रहे, ऐसे देह त्याग किया।"—(राधाकृष्णदास-ग्रथावली, पृष्ठ १७३)।

ब्रज से नागरीदास और घनआनद के प्रस्थान का सवत् 'नागरसमुच्चय' में कवीश्वर जयलाल ने यह दिया है—

अठारह सै ऊपरै संबत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तें किया पयान॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या को संवत् १८१३ समाप्त हो जाता है और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् १८१४ का आरंभ होता है। अब्दाली का सन् १७५७ मे कत्ले-आम १ मार्च से ६ मार्च तक हुआ था। 'इंडियन एफिमरीज' के अनुसार यह समय फाल्गुन शुक्ल दशमी से चैत्र कृष्ण प्रतिपदा तक पड़ता है। इसलिए घन-आनंदजी इस आक्रमण मे नही मारे गए। अब्दाली का हमला सं० १८१३ मे हुआ था, सं० १८१४ मे नही इसका प्रमाण 'खोज' के एक विवरण मे मिलता है।

चाचा हितवृंदावनदासजी की 'हरिकलाबेलि' के विवरण मे लिखा है—"काबुल वा कंधार का रहनेवाला एक कलंदरशाह मुसलमानो की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ मे और दूसरी बार सं० १८१७ मे ब्रज पर चढ आया था।"—(त्रैवार्षिक खोज-विवरण, १९१२-१४—१९१६ के)

इस 'हरिकलाबेलि' के आरंभ मे ही लिखा है—

ठारह से तेरहौं बरष हरि यह करी।
जमन बिगोयो देस बिपति गाढी परी।
तब मन चिंता बाढ़ी साधु पतन करे।
हरिहिं मनहुँ सिष्टि संघार काल आयुध धरे॥ १॥

दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
अहो नाथ तुम जन हते, भए कौन बिधि पोच॥ २॥
बार बार सोचत यही गए प्रान बौराइ।
सत करे बध जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ॥ ३॥
सहर फरूखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास।
चैत्रसुदी एकादसी तहाँ भयौ इक रास॥ ४॥
तीन पहर रजनी गई वे कबि कीयो गान।
तहाँ एक कौतुक भयो जाकौ करौं बखान॥ ५॥
आनँदघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा बिह्वल भयौ मन नहिं पायौ चैन॥ ६॥
ऐसेहू हरि संत-जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दबाइ॥ ७॥

आनंदघनजी का ख्याल किसी 'इक' ने गाया। सुनकर वृंदावनदासजी विह्वल हो गए, उनके चित्त मे स्थिरता नही रही। ऐसे ख्याल के निर्माता आनदघनजी के समान हरि-सत-जनों को यवनो ने मार डाला। पर कब ? क्या संवत् १८१३ में ? न सवत् १८१७ में। यह तो लेखक आरभ में ही कहता है कि इस या इन आक्रमणों में ऐसे-ऐसे सत मार डाले गए। लेखक ने आगे चलकर सं० १८१७ में दूसरे आक्रमण का उल्लेख किया है। स० १८१३ मे तो वह फरूखाबाद में गगा के किनारे था। स० १८१७ में तो उसने आनदघनजी के शव को प्रत्यक्ष अपनी आँखो देखा था। महात्मा आनदघनजी की 'व्रजरज' में मिलने की इच्छा थी। उनकी यह साध पूरी हुई। उनके शव पर आँसू बहाता हुआ कवि सवत् १८१७ में आषाढ बदी रविवार को कहता है—

बिरह सौं तायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौं,
कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तरी है।
गाढ़ौ बृज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
बृंदावन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है॥ १७७॥

हरि तो 'धूल ही उडाते रहे', पर भक्त की निष्ठा ही सत्य निकली कि शरीर ब्रजरज मे ही मिला, खड-खड कण-कण होकर।

मुहम्मदशाह रँगीले और उसके अमीर-उमरावो ने पतन की किस सीमा तक मुगलवंश को पहुँचा दिया था इसका भी स्पष्ट उल्लेख है—

नीत पातसाहै ऊक्यौ सूबनि मनसूब चूक्यौ
बहुत दिन निजाम कूक्यौ काबिल दरेरो कियै।
वेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते
रज-तम की धार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियै।
दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी
भूल्यो मुहमदसाह पहिले अब काह ढोकियै।

बाबर हिमायुँ को चलाऊ अब बंस भयौ
ताको यह फैल्यौ सोक परजा करम ठोकियै।

आनंदघनजी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है उसे अब सत्य मानकर हिंदीवालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माणकाल यह है—

ठारह सै सत्रहों वर्ष गत जानियै।
साढ़ बदी हरिबासर बेल बखानियै॥

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। आनंदघन-ग्रथावली मे 'आनदघन' के नाम पर जो रचनाएँ दी गई हैं उनमें 'व्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पजाबी का ही है। 'आनदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे व्रजभाषा मे भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पजाबी में हैं और रागकल्पद्रुम मे सगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के सग्रह मे 'घनआनद' का यह सवैया—

आपुहों तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाव मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसो न चाहिय प्रीति के भाव मैं।
मोहन मूरति देखबे कों तरसावत हौ बसि एक ही गाउँ मैं।

किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। शृंगार-सग्रह मे इस घनआनद के नाम पर ही दिया गया है। सुजान की अन्य दो रचनाएँ भी वहीं से नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कबित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित्त चाय चाय।
अब क्यौं कहत गुर लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासों कहौं जाय जाय।

ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सों
तेरे बिन देखे आखैं रहैं झर लाय लाय।
दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय।

सवैया

वेद हू चारि की बात कों बाँचि पुरान अठारह अग मैं धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति मैं वार तें पारै।
राग कों आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रबीनता लै कहा कूप मैं डारै।

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार में गाना गाते सकुचा रहे थे? सुजान ही जानें।

इधर मुझे अजयगढ राज्य से प्राचीन कवियों का एक सग्रह मिला है जिसमें घनआनंद के कबित्तो के संग्रह के अनतर 'अथ सुजान के कबित्त' शीर्षक से 'सुजान' के ग्यारह कबित्त दिए हुए है, जिनमे एक तो 'पहिले तौ नैनन' प्रतीक वाला है और शेष ये हैं—

मन मेरो तुमै यह लागि चुक्यौ अब कोऊ कछू किन कैबौ करौ।
वह मूरत मोहनी रंगभरी सु दया धरि चित्त दिखैबौ करौ।
यह बीनती मेरी सुजान कहै चित दै इतनी सुनि लैबौ करौ।
कबहूँ जिय आवैं तबै सुनि प्यारे मया करिकै इत ऐबौ करौ॥
हेतपगी रसभीँनी चितौनि चितै हम त्यौं अँखियान मैं आवत।
रूप सलूँनो दिखाय महा हिय मैं अति आनँद को घन छावत।
सुजान ए प्रान लगे तुम ही सों सु क्यौं निरमोही कहा तन तावत।
मोहनी डारि कै मोहन जू वह मोहनी मूरत क्यौं न दिखावत॥

तेरी छबि मोहनी ने मेरो मन मोहि लीनौ,
चित दै इतीक यह बात न बिसरि जा।
तोहि बिन देखे मोहि कल न परति हाय,
दै करि दिखाई पीर बिरह की हरि जा।

कहत सुजान कान्ह रूप के निधान वह
मूरत किसोर मेरी आँखिन मैं धरि जा।
का जी यह लाल तेरो जो पै यह बात साजी,
मन नाहि राजी तौ नजरबाजी करि जा॥

तुम्हरे बिरह तें बिकल दिनरात गोपी,
रही मुरझाय कबहूँ न देखी हसती।
कोलाहल केलि जहाँ जहाँ कीन्ही तहाँ रची,
चीन्ही वा कालिंदी-कूल कुंज-डार डसती।
सावरे रहत ते लहत सब ठौर दिल,
अब उन्हैं द्वारिका है सोनमई लसती।
मेरे लेखें यह ब्रज ऊजर सुजानराइ,
जिहीं ओर बसै कान्ह तिहीं ओर बसती॥

ऐसी जो रुखाई पहिले ही बनि आई ही तौ,
वैसे हिलमिल काहे रीझ भीजियतु है।
आपनो जौ मन फेरि लीनौ मेरे लालन तौ,
आगले को मन क्यौं न फेरि दीजियतु है।
तुम तौ सुजान कान आन की न चिंता तुम्हैं,
नाहक परायो तन ऐसे छीजियतु है।
बिना प्रीत प्यारे कोऊ काहे कों परेखो करै,
प्रीत ही कों प्रीतम परेखो कीजियतु है॥

सीख सुनै नहि मो मन नैक सु तौ तन देखिकै ऐसो लुभानौ।
लाज तजी कुलकान तजी सब लोक चवाई मैं नावँ धरानौ।
सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानौ।
नेह लगाय कै पीठ न दीजियै हाय इती बिनती उर आनौ॥

तुम्हरो लखि रूप किसोर सुनौ उरभयौ मन क्यौं सुरझाइयै जू।
बिन देखें तुम्हैं यौं सुजान कहै बिरहानल मैं तन ताइयै जू।
कबहूँ इन आँखिन कों वह मोहनी मूरत लाल दिखाइयै जू।
मन आवै तबै रुचि सों सुनि प्यारे मया करिकै इत आइयै जू॥

कौन कही करियौ हित आपतें जौ करयौ तौ अब का बिसरावत।
नंदकिसोर तिहारो सरूप लखे बिन नैन खरे अकुलावत।
प्रान परे उरझैं मुरझैं निसबासर मैन महा तन तावत।
मोहनी मूरत कों दरसाय सुजान कहौ इत क्यौं नहीं आवत॥
सुकाय सरीर अधीन करै दृगनीर की बूँद की माला फिरावै।
नेह की सेली बियोग जटा लिये आह की सींगी सु पूरि बजावै।
प्रेम की आग मैं ठाढ़े जरै सुधि आरा लै आपनी देह चिरावै।
सुजान कहै कला कोटि करौ पै बियोगा के भेद कों जोगी न पावै॥

एकन सों लागी घात एकन सों करौ बात
एक आवै रात एक प्रात उठि जाती हैं।
एकन सों बदौ हो अवधि एक झाँकि जात
एक देखै बैठी बाट बीरी हू न खाती हैं।
जोई मन भावै सोई करौ जू सुजान कहै
तिहारे निहारे हम नाहि अनखाती हैं।
हमकों दिखावौ पिय कौन सी है नीकी तिय
अँखियाँ तिहारी लाल जाके रंग राती हैं॥

इन छंदों से कई तथ्यों की उपलब्धि हो सकती है। एक तो यह कि 'सुजान' नाम से रचना करनेवाले का नाम सुजानराइ' है। 'राइ' शब्द से यह कल्पना की जा सकती है कि यह कही 'प्रबीनराइ' की भाँति ही न हो। यह सत्य हो तो 'प्रबीनराइ' की भाँति 'सुजानराइ' किसी 'पातुर' का नाम है। इसमे जितनी अभि-व्यक्ति है नायिका, प्रेमिका या गोपी की ओर से है यह भी ध्यान देने योग्य है। दूसरे सवैये में 'आनँद को घन' अश 'आनदघन' से इस 'सुजान' को जोड़ता है। 'सुजान' का प्रेम जिसके प्रति है वह किसोर' है इसपर भी ध्यान जाता है क्योंकि प्रिय के 'वय' के लिए सर्वत्र 'किसोर' पद ही व्यवहृत है। ये सब घनआनद के रूपवान होने का भी संकेत करते हैं यदि इन सबका संबंध उन्ही से जुड़े।

उक्त सग्रह में 'घनआनद' के कबित्तों में 'सुजानराइ' का 'ऐसी जो रुखाई' प्रतीकवाला कबित्त भी धरा हुआ है। घनआनंद की ही रचना सुजान के नाम नहीं चढ गई, सुजान की रचना भी उनके नाम चढ़ती रही है।

'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २५०, २६४; द्वितीय, २२४) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

सिपतमणि अल्ला नबीयमणि महम्मद, दोउ जगमणि,
चत्र दिश मासूम पीरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल, यह सब जगत में लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी अवनिमणि नाभ,
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि एरावत, राजनमणि
इद्र, गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
किताबमणि कुरानं, दीनमणि कलमा, अवदनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
ब्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।

—राग-कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पढ़ या गा रही है। तो क्या 'सुजान' 'यवनी नवनीतकोमलांगी' थी? होली में कन्हैया बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारँगीले ने 'यवनी वेश्याओं' के नाम भी तो देशी रखे थे।

'सुजान' कोई 'तिया' थी इसका पता सुजान-हित का छंद २०३ देगा। अब देखिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कहीं है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नोछावर करहूँ परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १७६।

'राग-कल्पद्रुम' में यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द 'मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कहि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना!

इधर मुझे जो दूसरी नवीन उपलब्धि हुई वह 'घनआनद' पर किसी अज्ञात रचयिता के भड़ौए हैं। कहा जाता है कि ये सवत् १८१२ विक्रमीय मे सगृहीत 'जस कबित्त' नामक संग्रह मे के हैं। इनसे और कई बातो के अतिरिक्त 'सुजान' का 'हुरकिनी' और 'तुरकिनी' होना सिद्ध हो जाता है—

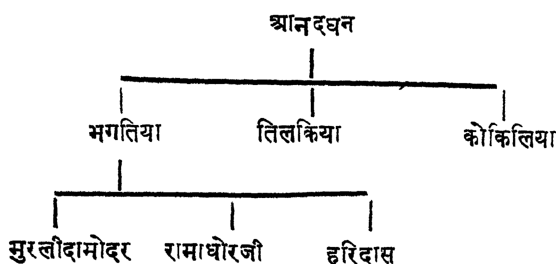
"कायथ आनदघन महा ००००० हो। सु ब्रज की कटा मैं आयौ। परतु अपजस वाकौ थिर है। ताकौ बर्नन—

कबहूँक खुजावत मैं छुवती तिहि आनँद कों तब हौं सरतौ।
तब रेंगतौ केहुक अंगन पै निज देह तिहीं रस सों भरतौ।
कहुँ चौंकि कै भागनि मो गहती तब हौं उन हाथन सों मरतौ।
वह ईस कहूँ घनाअनँद कों जौ सुजान-इजार की जूँ करतौ॥

करै गुरनिंदा वह हुरकिनी कौ बंदा महा
निरघिनी गंदा खात पानीर औ नान है।
बैन कौं चुरावै ताकौ मजमून लावै कूर
कबिता बनावै गावै रिजौली सी तान है।
सुरा-घट-सोखी देह माँस ही सों पोखी, बिप्र
गैयन को दोषी रूप धरे अभिमान है।
पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसौ
मुड़िया अनदघन जानत जहान है॥

डफरी बजावै डोम ढाढी सम गावै काहू
तुरकैं रिझावै तब पावै झूठौ नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
तजि राम नाम वाकौं पूजै काम धाम है।
... .
लोहा ज्यौं लगाम जैसे चलनी को चाम है।

नदगाँव के आनंदघन 'खरोट' गाँव के थे। यह गाँव 'जोसीकलाँ' (मथुरा) के निकट है और आनदघनजी के कुलवाले अब भी वहाँ रहते हैं। नदगाँव के मंदिर के अधिकारी इन्ही के वंशज हैं। आनदघनजी के वशजों का वृत्त यो है—



नंदबाबा की सेवा का भार भगतिया के उक्त तीनो वशजों पर है। तिलकिया के वंशज मनसादेवी के मदिर के अधिकारी हैं। कोकिलिया के वंशज श्रीयशोदा-नंदन की सेवा में रहते हैं। उल्लिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो कबित्त सवैये और पद आदि रचनाएँ प्राप्त हैं वे बृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनदघन और घनआनंद दोनों रखते थे। कदाचित् इनका नाम घनानंद था। इससे यह सिद्ध है कि जैन आनदघन की रचनाओं को छोड़कर हिंदी में इस नाम से प्रचलित रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। अतः उनका विचार इसी दृष्टि से होना चाहिए।

कृतियाँ

अब घनआनद की कृतियों का विचार कीजिए। 'घनआनद आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनंद कबित्त—(००—७६)।
२ आनदघन के कबित्त—(६—१२५, २६—१२ ए)
३ कबित्त—(२६—११६ डी)
४ स्फुट कबित्त—(३२—७ सी)
५ आनंदघनजू के कबित्त—(४१—१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ बी)

७ सुजानहित-प्रबंध—(२१–११६ बी)

८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)

९ वियोग बेलि—(१७–८ वी २६–११६ बी)

१० इश्कलता – (१२–४६, ३२–७ ए)

११ जमुनाजस—(४१-१० क)

१२ आनदघनजू की पदावली— (२६–११ बी, दि० ३१–६)

१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए; २६–११६ ए)

१४ सुजानविनोद—(२३–१४)

१५ कबित्त-संग्रह –(३२–७ बी)

१६ रसकेलिबल्ली—(००–७६)

१७ बृंदाबन-सत—(३२–७ डी) ।

इनमें से 'बृंदाबन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य परंपरा में माधवमुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसस हृस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौं निज अस रहसि-रस तिन तें पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवत', पर 'आनदघन' पद ने जैसे औरों को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे मे उसने 'आनदघन' को पकड़ा, 'भगवत' को भूल ही गया, उनकी बिनती पर भी ध्यान न दिया—

यह बिनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक दै चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
बृंदाबन आनदघन, अति रस सों रसवत।
...जिय डरत हौं, यह बिनती 'भगवत'॥

रचना सवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग पचास वर्ष पहले की है—

'संबत दस सै सात अरु सात बरष है जानि।'

'रसकेलिबल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है। 'कबित्त सग्रह' और 'सुजान-विनोद' भी परकालीन नूतन सग्रह हैं। इनमें कुछ छद नए भी मिलते हैं जो

'घनआनद-कबित्त' अथवा 'सुजानहित' में नही हैं। सख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनआनंद-कबित्त' ही है, जिनका संग्रह 'व्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने सग्रह के आदि और अत मे 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनद' के ही संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता व्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग रागिनियों के स्वरूप का बोध दोहो मे कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं, इनका कविताकाल स० १७८० (जन्मकाल नही जैसा 'मिश्र बंधु-विनोद' में माना गया है) है। यदि ये वे ही व्रजनाथ हो तो 'घनआनद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनद-कबित्त', जो कवि के ५०० छदो का सकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है। इस सग्रह मे कुल ५०५ छद हैं। बीच मे दो सोरठे और तीन दोहे भी हैं जिनकी सख्या हस्तलेख मे पृथक् नही गिनी गई है। प्राचीन काल में मनहरण, घनाक्षरी, सवैया भूलना सबकी सज्ञा कबित्त थी। तुलसीदासजी की कबित्तावली में भी कबित्त शब्द का ऐसा ही अर्थ किया गया है। इस सग्रह मे कबित्त शब्द इसी अर्थ का बोधक है। आरभ मे २ तथा अत में ६ कुल ८ छद व्रजनाथ के हैं और घनआनद की प्रशसा मे लिखे गए हैं।

सख्या ५ का ग्रथ 'सुजानहित' ही है, जो म्युनिसिपिल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रथ नही है, कवि के ५०० छंदों का नूतन क्रम से सग्रह है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते है। एक प्रकार के हस्तलेखो मे ४४८ छद हैं, दोहा-सोरठो की गणना नही की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छदसंख्या मिलती है और दोहो की गिनती कर लेने से ५०५ छद हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखो की परपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पडी है। 'घनआनद कबित्त' और 'सुजानहित' मे बहुत थोड़े छंदो का अतर है। एक तो 'घनआनद-कबित्त' में 'कृपाकद-निबध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे दानलीला' का बड़ा प्रसग भी उसमे जुड़ा हुआ है। दोनो का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कबित्त की कोई अस्त व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' सकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया

हुआ संग्रह जान पड़ता है। इसके सग्रहकर्ता कौन थे ? पता नही। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के सप्रदाय के हो सकते है। राधावल्लभी या हितहरिवंश के सप्रदाय के भक्तो और उनकी रचनाओं के नामो के आदि अंत में 'हित' शब्द जोडने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हितशृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि।

'कृपाकंद-निबंध' की पहले केवल एक ही प्रति मिली थी। छतरपुरवाले बृहत् ग्रंथ में भी इसका सकलन है। 'व्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकांड' यही है। रोमी अक्षरो की कृपा से 'कृपाकाड' का काड उपस्थित हुआ। यह व्यवस्थित ग्रथ है और 'कृपा के कद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के', छद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका संग्रह भी छतपुरवाले ग्रंथ में था। पर कुछ लोगों का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी व्रज ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैं। दोनो एक ही है। यह भी सकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नही रखे गए है, अत मे कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदों को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कही छोटे कही बड़े हैं। कही कही पद अधूरे ही है। 'व्रजमाधुरीसार' मे जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ है और 'खोज' के विवरणपत्रों का मिलान करने से एक सख्या का अतर पड़ता है। दूसरी प्रति नही मिली, अतः उसका पता नही चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय (कामवन) में भी पहले थी, पर सप्रति उसका पता नही चला। दोनों प्रतियों में कोई अंतर नही है।

इनके अतिरिक्त अनेक कबित्त सग्रहो और पद संग्रहों मे भी 'घनआनंद' छाप के छंद और 'आनंदघन' छाप के पद मिलते हैं। 'खोज' के अतिरिक्त मिश्रबंधु-विनोद में छतरपुर राजपुस्तकालय के बृहत् ग्रथ का विवरण यो दिया गया है—"५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर

के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं---प्रियाप्रसाद, ब्रजव्योहार, वियोगबेलि, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, ब्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, ब्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, परमहसवंशावली और पद।" (—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ५७४)

'घनआनंद और आनंदघन' नामक ग्रथ का प्रकाशन होने के अनंतर 'निंबार्क-माधुरी' के सपादक श्रीबिहारीशरणजी ने मुझे घनआनंद या आनदघन के एक हस्त-लेख का पता दिया और मैं वृंदावन पहुँचा। हस्तलेख की प्रतिलिपि करने पर निम्नलिखित ग्रथों का पता चला—

१	प्रेमसरोवर	१८	कृष्णकौमुदी †
२	ब्रजविलास	१९	धामचमत्कार †
३	सरसवसत †	२०	प्रियाप्रसाद †
४	अनुभवचद्रिका †	२१	वृंदावनमुद्रा †
५	रंगबधाई †	२२	ब्रजस्वरूप
६	प्रेमपद्धति	२३	गोकुलचरित्र
७	कृपाकदनिबंध * †	२४	प्रेमपहेली
८	वृषभानुपुर-सुषमा	२५	रसना-यश
९	गोकुलगीत	२६	छंदाष्टक
१०	नाममाधुरी †	२७	त्रिभगी छंद
११	गिरिपूजन	२८	गोकुलविनोद †
१२	यमुना-यश *	२९	ब्रजप्रसाद †
१३	विचारसार	३०	मुरलिकामोद
१४	प्रीतिपावस *	३१	वियोगबेलि * †
१५	दानघटा*	३२	प्रेमपत्रिका * †
१६	इश्कलता*	३३	मनोरथमंजरी
१७	भावनाप्रकाश †	३४	पद * †

उक्त सूची में जिन पर 'तारा' (*) चिह्न लगा है वे ग्रंथ 'घनआनंद और आनंदघन' नामक संग्रह में मैंने प्रकाशित कराए थे। जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे ग्रंथ छतरपुरवाले संग्रह में भी संकलित हैं। शेष पंद्रह ग्रथ इसमें अधिक हैं। इस सग्रह के प्राप्त हो जाने के अनंतर मेरे मित्र श्री० केसरीनारायणजी शुक्ल को लंदनसंग्रहालय के हस्तलेख-विभाग में दूसरी ही प्रति मिली जिसमे निम्नलिखित ग्रंथों का संग्रह है—

१	प्रियाप्रसाद प्रबंध * †	१२	वृंदावनमुद्रा * †
२	व्रजव्यौहार *	१३	पदावली * †
३	वियोगबेलि * †	१४	कवित्त-संग्रह
४	कृपाकंदनिबध * †	१५	प्रेम-पत्रिका * †
५	गिरिगाथा *	१६	रसवसंत * †
६	भावनाप्रकाश * †	१७	अनुभवचंद्रिका * †
७	गोकुलविनोद	१८	रगबधाई * †
८	व्रजप्रसाद * †	१९	परमहस-वंशावली * †
९	धामचमत्कार * †	२०	मुरलिकामोद †
१०	कृष्णकौमुदी * †	२१	गोकुलगीत †
११	नाममाधुरी * †	२२	व्रजविलास-प्रबध †

२३ व्रजस्वरूप †

जिनपर तारा (*) लगा है वे छतरपुरवाले सग्रह में सकलित हैं और जिन पर कटार (†) का चिह्न है वे वृंदावनवाले संग्रह में हैं। सब मिलाकर घनआनदजी की निम्नलिखित कृतियाँ अद्यावधि हिंदी में ज्ञात हो सकी है—

१	सुजानहित	८	प्रेमसरोवर
२	कृपाकदनिबंध	९	व्रजविलास
३	वियोगीबेलि	१०	सरसवसंत
४	इश्कलता	११	अनुभवचद्रिका
५	यमुना-यश	१२	रंगबधाई
६	प्रीतिपावस	१३	प्रेमपद्धति
७	प्रेमपत्रिका	१४	वृषभानुपुर-सुषमा

१५ गोकुलगीत
१६ नाममाधुरी
१७ गिरिपूजन
१८ विचारसार
१९ दानघटा
२० भावनाप्रकाश
२१ कृष्णकौमुदी
२२ धामचमत्कार
२३ प्रियाप्रसाद
२४ वृंदावनमुद्रा
२५ व्रजस्वरूप
२६ गोकुलचरित्र
२७ प्रेमपहेली
२८ रसनायश
२९ गोकुलविनोद
३० व्रजप्रसाद
३१ मुरलिकामोद
३२ मनोरथमंजरी
३३ व्रजव्यवहार
३४ गिरिगाथा
३५ व्रजवर्णन
३६ छंदाष्टक
३७ त्रिभंगी छंद
३८ कबित्त-संग्रह
३९ स्फुट
४० पदावली
४१ परमहंस-वंशावली

'व्रजवर्णन' का पता केवल छतरपुरवाले हस्तलेख से चलता है। अभी तक वह प्राप्त नहीं है। यदि वह 'व्रजस्वरूप' ही हो तो घनआनंद के सभी ग्रंथ प्राप्त हो गए। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कबित्त-संग्रह, स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं। 'दानघटा' वही है जो 'घनआनंद-कबित्त' में संख्या ४०२ से ४१४ तक संगृहीत है। परमहंस-वंशावली में 'घनआनंद' ने अपनी गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अतिरिक्त 'बिहार उड़ीसा रिसर्च जरनल' के आधार पर घन-आनंद की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

संप्रदाय

परमहंस वंशावली प्राप्त हो जाने से 'घनआनंद' के संप्रदाय के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता। कहा जाता है कि 'नामूला तु जनश्रुतिः'—जनता में प्रच-लित अनुश्रुति निराधार नहीं होती। पहले से ही प्रसिद्ध है कि घनआनंद ने निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। इस परमहंस-वंशावली से यही प्रमाणित हो जाता है।

इसमे गुरु-परपरा का उल्लेख इस क्रम से है—नारायण→सनकादि→निंबादित्य→श्रीनिवासाचार्य → विश्वाचार्य→पुरुषोत्तमाचार्य → विलासाचार्य→स्वरूपाचार्य→माधवाचार्य → बलभद्राचार्य → पद्माचार्य → श्यामाचार्य→गोपालाचार्य→कृप चार्य→श्रीदेवाचार्य→सुदरभट्ट → पद्मनाभभट्ट → उपेद्रभट्ट→रामचद्रभट्ट→वामन भट्ट→कृष्णभट्ट→पद्माकरभट्ट→श्रवणभट्ट → भूरिभट्ट → माधवभट्ट → श्यामभट्ट→गोपालभट्ट→बलभद्रभट्ट → गोपीनाथभट्ट→केशवभट्ट → गंगलभट्ट → श्री केश (काश्मीरी) →श्रीभट्ट→हरिव्यास→परमानिधि (परशुराम) →हरिवश→नारायणदेव→वृंदावन (देव)।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि घनआनद का निधन-सवत् १८१७ है इनका जन्म कब हुआ या ये वृंदावन कब पहुँचे इसका सकेत कुछ भी नह मिलता। इतिहास-ग्रंथो में इनका जन्म-संवत् अनुमान के सहारे १७४६ माना गय है। परमहस-वश के निंबार्क-संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव का समय स० १७५६ १८०० तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक १७५६ ही तक सभव ह सकता है। यदि उक्त अनुमित जन्मकाल ठीक माना जाय तो यह भी मानना पड़े कि इनकी वय दीक्षा के समय १३ वर्ष की थी, जो इनके जीवन-वृत्त को देख असभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी वय २५-३० की अवश्य मान पड़ेगी। अत इनका जन्म-सवत् १७३० के आसपास सभाव्य है।

परमहस वशावली से पता चलता है कि किन्ही शेष से इन्हें परपरा की रीं का ज्ञान हुआ। जिज्ञासा होती है कि ये शेष कौन थे। मडन कवि कृत 'जयशाह सुजस-प्रकाश' की भूमिका मे उसके सपादक विद्यभूषण श्रीव्रजवल्लभशरणजी लिख हैं—"उस समय जयपुर के श्रीनिबार्कीय मठ-मदिरों का प्रबध श्रीवृंदावनदेव चार्यजी महाराज के शिष्य प्रकाड विद्वान् जयरामजी शेष के निरीक्षण में रहा। 'उस समय' का तात्पर्य है श्री वृंदावनदेवाचार्य के अनतर अर्थात् सं० १८०० पश्चात् से १८६० तक। वही वे लिखते है—"उनके पश्चात् १८६० सावन सुदी १ तक महाराजा प्रतापसिंहजी ने राज्य किया। उस ६० वर्ष के समय में श्रीवृंदाव देवाचार्यजी के पश्चात् १८१४ तक श्रीगोविंददेवाचार्यजी और १८४१ तक श्रीगोवि दशरणदेवाचार्यजी महाराज आचार्य-पीठासीन हुए।" श्रीगोविंददेवाचार्य

के समय सं० १८०० से १८१४ तक श्रीजयरामजी शेष और श्रीव्रजानंदजी भी मठ-मंदिरों का प्रबंध देखते थे। घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इसलिए श्रीगोविंददेवजी के समय में वे वर्तमान थे। 'भोजनादि धुन' का इनके नाम से एक पद मिलता है जिसमें श्रीगोविंददेवजी का नाम भी इन्होंने लिया है—

भजि भजि भजि भजि श्रीहरिब्यास।
जौ चाहौ हरिपद की आस॥

हंसरूप नारायन स्वामी। सनकादिक नारद निहकामी।
निंबादित्य निवासाचारज। अखिल बिस्व के कारज सारज।
पुरुषोत्तम बिलास निजरूप। आचारजबर परम अनूप।
श्रीमाधव बलभद्र भजौ मन। पद्म स्याम गोपाल प्रेमघन।
कृपाचार्य श्रीदेवाचारज। चरन-सरन सुंदरभट आरज।
पद्मनाभ उपइंद्र रामचँद। बामन कृस्नभट्ट आनँदकँद।
पद्माकर श्रवनेस भूरिभट। तिनको सुयस सकल जग परगट।
माधव स्याम भट्ट गोपाल। श्रीबलभद्र जु दीनदयाल।
गोपिनाथ केसव भट गंगल। सुमिरत भागै सकल अमंगल।
कासमीरि केसव दिगजित गुर। तिनकी कथा सकल जग परचुर।
जय जय जय श्रीभट सुखसागर। श्रीहरिब्यास त्रिलोक उजागर।
परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिबंस हंस ईस्वर बिभु।
श्रीनारायनदेव आप हरि। उचरत नाम पाप भाजै जरि।
श्रीबृंदाबनदेव सनातन। चातक-रसिकन को आनँदघन।
जो यह भोजनादि धुनि गावै। श्रीगोविंददेव-पद पावै॥

श्रीवृंदावनदेवजी को 'चातक-रसिकों का आनंदघन' गुरु-पद के कारण कहते हैं। साथ ही अपने समय के पीठाधीश श्रीगोविंददेव का नाम भी लेते हैं। श्रीगोविंदशरणदेवजी के समय मे यह पद नहीं लिखा गया। अन्यथा उनका नाम भी इसमें संनिविष्ट होता। ऊपर श्रीजयराम शेष के साथ व्रजानदजी का नाम भी आया है। घनआनदजी के कबित्तों के संग्रह-कर्ता 'व्रजनाथ' यही व्रजानदजी तो नहीं हैं? एक व्रजनाथ भट्ट और हैं जो उस समय उदयपुर के प्रसिद्ध राजकार्यकर्ता

थे। ये भी घनआनद के समसामयिक थे और निबार्क-संप्रदाय की गद्दी के सबंध में हुए मतभेद में दौत्य कर रहे थे।

इन्होंने निबार्क-संप्रदाय के अनुकूल 'बधाई' का पद भी लिखा है—

चिरजीवौ हंस गोपाल रसिकबर।
जुग जुग भक्ति प्रचार करैं प्रभु धरि अनेक अवतार बिमल बर।
अटल राज भुवमंडल पोषैं सनकादिक गुरु नंद-कुँवरबर।
भवसागर-तारन दृढ नौका आनँदघन पावै चरन-कमल बर।

निबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक श्रीहंस भगवान् माने जाते हैं। इसी से इस संप्रदाय के आचार्य 'परमहस-वंश' के कहे जाते हैं।

निबार्क-सप्रदाय में उपासना का भाव 'सख्य' माना जाता है। यह 'सनकादि-संप्रदाय' कहलाता है और इसका दार्शनिक मत 'द्वैताद्वैत' है। इस संप्रदाय में 'सखी-भाव' की उपासना चलती है। 'सख्यभाव' की उपासना करनेवाले महात्माओं के, जो साधना के अनेक सोपान पार कर इस भाव में लीन हो जाते हैं, साप्रदायिक नाम भी उनके सिद्ध गुरुओं द्वारा रख दिए जाते हैं। निबार्क-सप्रदाय की गद्दी पर आसीन होनेवाले सभी आचार्यों के साप्रदायिक नाम थे और वे अपने अंतरंग परिसर में उसी नाम से अभिहित होते रहे हैं। ऐसे नाम साधना की ऊँची भूमिका में पहुँचने पर ही प्राप्त होते हैं। 'नगर-समुच्चय' में जो वृत्त 'आनदघन' के संबध में राजकवि जयलाल ने दिया है उससे 'आनंदघन' जी महात्मा कोटि में माने जाते थे। प्रेमसाधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े बड़े साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़ 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गए थे। अतः संप्रदाय में उनका सखीभाव का नामकरण हो गया था। यों तो निबार्क-सप्रदाय के जितने आचार्य हुए हैं साधनागत उन सभी के सखीनाम थे, पर यहाँ निबार्क-संप्रदाय के अत्यंत प्रसिद्ध आचार्य हरिव्यासदेवजी से घनआनद के गुरु श्री वृंदावन जी तक प्रत्येक आचार्य के सखीनाम दिए जाते हैं। अपनी परमहंस-वंशावली में घनआनदजी ने अन्य आचार्यों का तो प्रसिद्ध नाम ही दिया है किंतु परशुरामाचार्य का उन्होंने सखी नाम दिया है। वे लिखते हैं—

तिनके पाट बिराजि कै परमानिधि श्रीमान।
पदवी कों पदवी दई मुनिबर कृपानिधान॥

यहाँ 'परमा' परशुरामाचार्य जी का सखीनाम है। इनका लोक-व्यवहार का नाम उन्होंने अपनी 'भोजनादि धुन' में स्पष्ट दिया है—

परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिवस-हंस ईस्वर बिभु॥

जिन्हें इस बात का पता न होगा वे 'परमानिधि' को अपाठ या अपपाठ मानेंगे और यह अनुमान करेंगे कि हो न हो 'परमानिधि' के स्थान पर मूल में 'परसुराम' ही रहा होगा। 'परमानिधि' के बदले 'परसुराम' दोहे में ठीक ठीक बैठ जाता है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। इसका उत्तर सरल नहीं है। पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'परमहंस-वंशावली' का प्रयोग संप्रदाय के ही लोगों के लिए है। उन्होंने कहा भी है कि यह 'गुरुमुखी' लोगों के लिए है,—

परमहंस-बसावली रची सची इहिँ भाय।
कंठ धारिहैँ गुरुमुखी सुखदाई समुदाय॥

इसीसे एक स्थान पर यह 'रहस्यमय' नाम भी दे दिया जिससे अंतरंग-मंडल के लोगों को यह संकेत मिल जाय कि लेखक का उसमें भी प्रवेश है।

अब आचार्यों के सखीनाम देखिए—

श्रीहरिव्यासदेव	...	हरिप्रिया सखी।
श्रीपरसुरामदेव	...	परम सहेली।
श्रीहरिवंशदेव	...	हित अलबेली।
श्रीनारायणदेव	...	नित्य नवेली।
श्रीवृंदावनदेव	...	मनमंजरी।

संप्रति घनआनंदजी के सखीनाम का पता न संप्रदायवालों को है, न साहित्यवालों को, पर इनकी नवीन प्राप्त दो पुस्तकों से इनके सखीनाम का संकेत मिलता है 'वृषभानपुरसुषमावर्णन' में स्पष्ट कहा गया है :—

नीको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुंदर खेरो।

यह नाम स्वयम् श्रीराधा ने रखा है—

राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ। सोई अरथ हियेँ अभिलाख्यौ।

'बहुगुनी' की कला कब प्रदीप्त होती है इसे भी जान लीजिए—

रीझनि बिबस होत जब जानौ। तब बहुगुनी कला उर आनौ।
ताही सुरहि साध कछु बोलौं। प्रेमझपेटी गासनि खोलौं।
दुरी बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ न परत कछू तब।

'प्रियाप्रसाद' मे भी यह नाम श्रीराधा का रखा हुआ कहा गया है—

राधा धर्यौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ।

'बहुगुनी' सदा श्रीराधा के साथ रहती है अथवा श्रीराधा बहुगुनी का साथ नही छोड़ती। 'बहुगुनी' तान-गान में प्रवीण है, श्रीराधा के मित्र को वह अपने इस गुण से रिझाया भी तो करती है—

राधा सब ठाँ सब समै रहति बहुगुनी-संग।
तान रमन-गुन-गान को लै बरसावति रग।
राधा अचल सुहाग के ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी रिझवति राधा-मीत।

घनआनंद जी सगीत के बहुत अच्छे जानकार थे, जनश्रुति में यह प्रसिद्ध है। किशनगढ से प्राप्त चित्र में उनकी प्रशस्ति में 'गानकला मे अति कुसल' लिखा है। चित्र में वे सितार लिए वीरासन से बैठे हैं। राग-रागिनियों में उनके सहस्राधिक पद मिलते है और कविता में कही कही मृदंग ठनकता जान पड़ता है ऐसे ढंग से पदावली रखी गई है।

———

संपादक की कुछ प्रमुख कृतियाँ

वाङ्मय-विमर्श
बिहारी '
हिंदी मे नाट्य-साहित्य का विकास
काव्यांग-कौमुदी
हिंदी का सामयिक साहित्य
हिंदी-साहित्य का अतीत
तुलसी-मंजरी
प्रसाद
भूषण-ग्रंथावली
पद्माकर-पंचामृत
घनआनद-कबित्त
कवितावली
रसखानि
केशव-ग्रंथावली
दास-ग्रथावली (अप्रकाशित)
ग्वाल-ग्रंथावली ,,
बोधा ,,
आलम ,,
ठाकुर ,,
सूरसागर (सटिप्पण) ,,

घनआनंद

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै ।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै ।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै ॥ १ ॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी ।
जग की कबिताई के धोखैं रहैं, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी ।
समझै कबिता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥ २ ॥

कबित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरबिंद-बृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं ।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं ।
कैधौं अद्भुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं ।
चोर चित्त-बित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कबित्त घन जी के हैं ॥ ३ ॥

प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बद-रीति सुकति-अधार हैं ।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज-नेह-भरे झलकै अपार हैं ।

कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।
ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कबित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढावै ।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत षड बढ़ै, हिय सोच उपावै ।
चित्र-बिचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै ।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥

कोटि बिषै करि ओट महा नहिं नेह की चोटहि जो पहचानै ।
बात के गूढ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै ।
चाह-प्रबाह अथाह परे नहिँ आप ही आप बिचच्छन मानै ।
पूँछ-बिषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥ ६ ॥

बिनती कर जोरि कै बात कहौं जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौं जू ।
कबिता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीँ इहि खेत सौँ जू ।
जु पढ़ै बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौँ जू ।
[रस-स्वादहि पाय बिषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौं जू] ॥ ७ ॥

—ब्रजनाथ ।

सुजानहित

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥ १ ॥

आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥ २ ॥

रूपनिधान सुजान लखैं बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदें महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौं घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥ ३ ॥

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कौं लाय कलक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड, मीत के पानि परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ४ ॥

पाठातर—१–नेक–नीके। २–दीठिहि–दीठि की (राम)। ४–नीर०–नीर सनेह। रीति–नीति (प्रयाग)। पानि–पानैं (कबित्त)।

शब्दार्थ—[१] तारे=पुतलियाँ। तारे=ताले। [२] अनेरी=विलक्षण। नेरी=थोड़ा भी। [३] ऊखिल=पराया, अपरिचित। सलाक=शलाका, सलाई (अजन लगानेवाली)। ज्यौं=जी। [४] समानै=सम, तुल्य। पानि=

मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सौं कहनो है ।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसोई भागनि को लहनो है ।
आस तिहारियै हो घनआनंद कैसें उदास भएँ रहनो है ।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक हीं दहनो है ॥ ५ ॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास-कहानी ।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी ।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी ।
यौँ उघरे घनआनँद छाय कै हाय परी पहचानी पुरानी ॥ ६ ॥

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही ।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही ।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही ॥ ७ ॥

पहिलें घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी ।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढाय बिसास-दगानि दगी ।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी ।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी ॥ ८ ॥

हित भूलि न आवति है सुधि क्यौँ हूँ सु यौँ हूँ हमैं सुधि कीजत है ।
चित भूल तौ भूलत नाहिं सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है ।
दृढ आस की पासनि कंठ तें फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है ।
अब देखियै कौ लौं घिरै घनआनँद आव को दाव सो दीजित है ॥ ९ ॥

५–जौ तौ–तौ जौ । ८–बियोग०–बियोग बलाय की लाय (कॉक०) । ९–भूलि–भूलि (राम) ।

हाथ । प्रमानै = प्रमाणित करता है । जान = सुजान । [५] जान = सुजान, चतुर । [६] उघरे=हट गए । [७] दोही = दुहाई । [८] बियोग० = वियोगाग्नि । बिसास = विश्वासघात । घरी० = घड़ी लग गई, कैसा समय आया । [९] ज्यौ = जी । धीजत है = स्थिर होता है । पास = पाश, फंदा ।

रसमूरति स्याम सुजान लखैँ जिय जो गति होति सु कासौँ कहौँ ।
चित चुंबक-लोह लौँ चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिँ जेतो गहौँ ।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौँ घनआनँद देह दहौँ ।
उर आवत यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥१०॥
मन-पारद कूप लौँ रूप चहैँ उमहै सु रहै नहिँ जेतो गहौँ ।
गुन-गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौँ ।
घनआनँद चेटक-धूम मैँ प्रान घुटैँ न छुटैँ गति कासौँ कहौँ ।
उर आवत यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥११॥
मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौँ ।
जिहिँ बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासौँ कहौँ ।
अब तौ सपने-निधि लौँ न लहौँ अपने चित चेटक-आँच दहौँ ।
उर आवत यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥१२॥
रससागर नागर स्याम लखैँ अभिलाषनि-धार-मँझार बहौँ ।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौँ ।
घनआनँद एक अचंभो बडो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासौँ कहौँ ।
उर आवत यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥१३॥
सजनी रजनी-दिन देखैँ बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौँ ।
अँसुवा हिय पै चिय-धार परै उठि स्वास भरै सुठि आस गहौँ ।
घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौँ ।
उर आवत यौँ छबि-छाँह ज्यौँ हौँ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौँ ॥१४॥
दुख-धूम की धूँधरि मैँ घनआनँद जौ यह जीव घिरयौ घुटिहै ।
मनभावन मीत सुजान सौँ नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै ।

१२—हेरि न—हेरनि (भदा०)। लहौँ—लहैँ (प्रयाग) १४—उठि—सुठि। सुठि—सुचि (काँक०)। नीर—तीर। १५—न ताऊ—तनऊ (प्रयाग)। जीवन—

आव=जीवन। दाव=दावाग्नि। [१०] चुहटै=चिपटा है। उहटै०=हटता नहीँ। [११] पारद=पारा। कूप=कुप्पी। गाड़=गड्ढा। चेटक=जादू। [१२] छीवति न=छूती नहीँ। [१३] गुण, डोर, रस्सी। [१४] सुठि=सुंदर। [१५] तनकौ=थोड़ा भी। घन=धन्या, प्रेमिका। घुरि=कसकर।

धन जीवन प्रान को ध्यान रह्यौ, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै ।
घुरि आस की पास उसास-गरैं जु परी सु मरैं हू कहा छुटिहै ॥१५॥

अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा ।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छबि छाय छवा ।
घनआनँद यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा ।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन मेरो झवा ॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैं पीक-पगी पलकैं ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि फबीं सुथरी अलकैं ।
अँगराति जम्हाति लजाति लखैं अंग अग अनग दिपैं झलकैं ।
अधरानि मैं आधियै बात धरैं लड़कानि की आनि परैं छलकैं ॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित ।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस-मडित ।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित ।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥१८॥

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई ।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भैंटन आई ।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई ।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥१९॥

जीवति (राम),जीवनि (प्रयाग)। १६-तरवा-'तरवौं' आदि तुकात (प्रयाग)। १७-फबीं-भवीं। लखैं-लसैं (राम) १८-रँगीले-रसीले (काँक०)। हियौ-हियैं (राम)। १९-भेंटन-भेषन (कबित्त)। लखैं-बिषैं (काँक०)।

पास = फंदा। [१६] धपि = शीघ्रता से। छवा = पैरों का टखना। पायनि० = पैरों के हाथ में पड़ा हुआ (वश में होकर)। झवा = पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईंट का टुकड़ा, झाँवा। [१७] रस-आरस = आनंद में लीन होने से उत्पन्न आलस्य। सुथरी = सुंदर, मनोहर। लड़कानि = मस्ती, ललक। [१८] आनँद० = आनंद की मदिरा पीकर मत्त। चोज = मस्ती। [१९] लाल =

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ ।
लोयन लेत लगाय कै संग अनग अचंभे की मूरति मानौ ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कबि क्यौं हूँ प्रमानौ ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ ॥२०॥

क्यौं हँसि हेरि हर्‍यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढाई ।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढाई ।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढाई ।
मीत सुजान अनीत की पाटी इतै पै न जानियै कौनें पढ़ाई ॥२१॥

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै ।
गसि गौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै ।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै ।
अब याही परेखैं उदेग-भर्‍यौ दुख-ज्वाल पर्‍यौ जुरझै मुरझै ॥२२॥

रूप के भारनि होति है सौंहीं लजौं हियैं दीठि सुजान यौं झूली ।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहाँ पलकौ गति भूली ।
बैठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली ।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली ॥२३॥

कबित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
　　　　कैसें रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्‍यौ द्वार,
　　　　सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ ।

प्रिय । [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है । बूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रों से । तानौ = उसकी तान ; फैलाओ । भेद = रहस्य । हौं जानौ = मेरी समझ में ऐसा ही आता है । [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियों पर । [२२] छंदनि = छल-कपट से । दुरी० = छिपी गाँठ को । परेखैं = पछतावे में । जुरझै = जलता है । [२३] झूली = झुकी हुई है । समतूली = योग्य तुल्य । साँझ० = अर्थात आँखें

चातक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
सुजान-रूप-बावरो बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये मैं बसाय आय,
हाय कब आनँद को घन बरसायहौ ॥ २४ ॥

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखौ सुनै।
मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
रीझ की उझिल घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैं गुनै।
नेह लाय रूखे अब कैसैं हूजियत हाय,
चंद ही के चाय च्वै चकोर चिनगी चुनै ॥ २५ ॥

तरसि तरसि प्रान जानमनि-दरस कौं,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।
बिषम बिरह के बिसिष हियँ घायल ह्वै
गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
कटनि सों आसा-पट कटि लै कसत है ॥ २६ ॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैं,
फूले रस-भूले घनआनँद अनत ही।

२५–सिखौ–सिखैं (राम)। २६–लोभी–लोनी।

लाल हैं। [२४] अनोखे० = आप के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] सिखौ = सीख भी। उझिल = उड़ेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ। गुनै = गुण; रस्सी। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = ग्रस्त

कैसैं सुधि आवै बिसरैं हू हो हमारी उन्हैं,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तही ।
कहा करैं जी तैं निकसति न निगोडी आस,
कौनें समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही ।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥ २७ ॥

एड़ी तैं सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैं रही री सनि ।
सहज सुछबि देखें दबि जाहिं सबै बाम,
बिन ही सिंगार औरै बानिक बिराजै बनि ।
गति लै चलनि लखैं मतिगति पंगु होति,
बरसति अगरंग-माधुरी बसन छनि ।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाय,
लागै चौंध चेटक अमेट-ओपी भौंहैं तनि ॥ २८ ॥

रतिरग-रागे प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
लागेई आवत घूमि घूमि छबि के छके ।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि मैं,
कबहूँ उमगि रहैं कबहूँ जके थके ।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके ।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरें हू लाज सौं ढके ॥ २९ ॥

गसत–फसत (प्रयाग)। २८–री–है (राम) ।

होता है। कटनि = ढब से। [२७] तमी = तमिस्रा, रात । तारनि० = आँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अँगेट = अंगदीप्ति। चेटक = जादू। अमेट० = घुमाव से चमकती । [२९] बलकनि = उफान, प्रवाह ।

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढि उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तैँ।
कौंवरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौं,
लाडनि सु लसि हुलसति मति चोरतैँ।
बड़े मैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप-जोर तैँ।
सहज बनो है घनआनँद नवेली नाक,
अनबनी नथ सौं सुहाग की मरोर तैं॥ ३०॥

केलि की कलानिधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।
पिय - अंग - संग घनआनँद उमग हिय,
सुरति - तरग रस - बिबस उर - मिलौनि।
झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि॥ ३१॥

अंग अंग स्याम-रंग रस की तरंग उठै,
अति गहराई हिय प्रेम-उफनानि की।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै अँखियानि की।
महाछबि-नीर तीर गए तैं न टरयौ जाय,
मोहनता-निधि बिधि पुहमी पै आनि की।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-ज्यारी,
बृंदाबन-सोभा सींवँ सुख-सरसानि की॥ ३२॥

३०—जोर—डोर (राम)। ३२—गहराई—घहराय।

[३०] बेह=छिद्र। ठौन=ठवनि, मुद्रा। मति०=बुद्धि को चुराती हुई। अनबनी=बेढंगी। [३१] सौनि=सोने (कुंदन) का लाल वर्ण। लाज०=लज्जा से युक्त। [३२] पूर=प्रवाह। पानिप=जल; शोभा। आनि=लाकर। भान=वृष

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसेँ सुहाति बसी तहाँ नाँसी ।
ज्याय हितै हनियै न हितू हँसि बोलन की कित कीजत हाँसी ।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी ।
हाहा सुजान अचभो अयान जु भेदि कै गाँसहि बेधति गाँसी ।। ३३ ।।

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति ।
जोबन घूमरे नैन लखेँ मति-बौरी भई गति वारि कै मोमति ।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हति ।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तेँ होति कहा अति ।। ३४ ।।

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी ।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी ।
मेरी ह्वै मोहिँ कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी ।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ।। ३५ ।।

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे ।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौँ दुख-दोष-भरे ।
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ।। ३६ ।।

३३–अयान–अजान । जु–ज्यौं (राम)। ३६–हिय–हित ।

भानु (राधा के पिता)। ज्यारी = जिलानेवाली । [३३] नाँसी = मारने की बान । भेद० = हृदय से पीड़ा की गाँठ काटकर भाले की नोक चुभ रही है । [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई । थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी गति रुक गई । घूमरे = मतवाले । मोमति० = अपनत्व को निछावर करके । अन० = न चाहनेवाली की चाह मार-कर भी जिला रही है । जान० = जान (सुजान ; जी) के जी की बात नहीं समझ पड़ती । [३५] आड़ = परदा । चाड़ = उत्कट इच्छा । लाग = लगन । सहेटी = घुमक्कड़ । निपेटी = भुक्खड़ । [३६] हिय० = हृदय का पोषण ।

चाह-बढ्यौ चित चाक-चढ्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै ।
नैक थकैं छबि-पान छकैं घनआनँद लाज तौ रीझनि भीजै ।
मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै ।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै ॥ ३७ ॥

पहलें अपनाय सुजान सनेह सौं क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू
घनआनँद आपने चातिक कौं गुन-बाँधिलैं मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय बढाय कै आस बिसास मैं यौं बिष घोरियै जू ॥ ३८ ॥

रति-साँचें ढरी अछवाई भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै ।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस झूमि खगै ।
घनआनँद ऍड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तैं भरै न डगै ।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥ ३९ ॥

कबित्त

तोरै लाज-दामै सु छुटावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सोखति सयान की ।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै, प्रान
पैठि उमगावै ऍठ मेटति गुमान की ।
धुनि मैं बतावै मौन, थकनि जतावै गौन,
हौं न जानौं कौन बिधि सीखी तीखी तान की ।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै बन बंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥ ४० ॥

जु–सु । सु यौं–महा । प्यारे–मीत (राम) । ४०–ऍठ–ऐंठि ।

[३७] न धीजै = ठहरता ही नहीं । आवरी = व्याकुल । दसा० = मेरी दशा दिनदिन दुःख से क्षीण ही होती जाती है । [३८] तेह = रोष । गुन = गुण, डोर बाँधिलैं = बँधे हुए को । बिसास = विश्वास । [३९] अछवाई = अच्छाई, सुदरता । मुरवा = एड़ी के ऊपर चारो ओर का घेरा । खगै = लीन हो जाता है । मिड़ै = चिपक जाता है । भरै = समय काटता है । [४०] दाम = रस्सी । चेटक = जादू । मैन = काम । धुनि० = ध्वनि में मौन हो

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै ।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ।।४१।।
रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागतिँ नाहिँ सुभाय निमेखैं ।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहिं पेखियै लाखनि लेखैं ।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहैँ दुखहाई परेखैं ।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखैं ।।४२।।
पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं ।
रोकि रही उर-मैड बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं ।
भीजि बरैं घिय-धार परें हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं ।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कोनी अनीति कहा गौं ।।४३।।
फैलि परी धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति ।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।
क्यौं बचियै भजियै घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति ।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ।।४४।।

४२–निमेखैं–'निमेखौ' आदि । दुखहाई–दुखदाई (राम) । ४४–परी–रही ।

जाने का संकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है । थकनि०=उसकी गति (गौन) रुकने का इगित करती है । [४१] आन= शपथ । सहारियै=सहारा दीजिए । [४२] दुखहाई=दुखिया । आँखिन०= आँखों ने अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी सभव कर लिया) पर वे अपना किया स्वप्न में भी (भूलकर भी) नहीं देखतीं । [४३] उर०=उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेड़ थी वह भी बह गई, छाती फट गई । दौं=अग्नि । गौं=घात । [४४] धर०= पृथ्वी से आकाश तक । मरीचि०=किरणों की लहरें । तरेरना=थपेड़ा देना ।

कवित्त

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरै दाव आवहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े नैन चैन-चुहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद,
उमग-ओपे अगनि अनग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जो सुख साँथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४६॥
रंग लियौ अबलानि के अंग तें च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सोंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।
प्रान-अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयो फाग बिगोवा ॥४७॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।
नैन मिलैं उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

४५–आवहीं–पावहीं। नैन–बैन। (राम)। ४८–चमूप भूप (प्रयाग)।

ढँढोरति = ध्यान देकर ढूँढ़ती है। [४५] चीते = मनचाहे। जिवारी = जिलानेवाली। पैज = प्रतिज्ञा। हार = माला, पराजय। दियरा = और तो दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर योग (सयोग) जगाते हैं उसे सिद्ध कर रहे हैं। [४६] चुगो = चारा। आथन लग्यौ = अस्त होने लगा। [४७] ढोवा = ढुलाई। बिगोवा = विनष्ट। [४८] मवासी = गढ़पति। गढ़ासी = विप्लव करनेवाले। सची = बनाई।

कबित्त

आसहि अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै ।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़थौ रहै ॥ ४९ ॥

बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसें नीचियै परै ।
अंतर-पुढ़ाई फटै चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सौं जरै ।
दुख-धूम-धूँधरि मैं घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जौ सुजान तनकौ ढरै ।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही हरै ॥ ५० ॥

जल-बूड़ी जरैं दीठि पाय हू न सूझ करैं,
अमी पियें मरैं मोहिं अचिरज अति है ।
चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकैं बड़ी भूतागति है ।
खुलैं तारे लगैं आँखैं तारी त्यौं न पगैं पिय,
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है ।
गुन बँधैं कुल छूटैं आपौ दै उदेग लूटैं,
उत जुरैं इत टूटैं आनँद बिपति है ॥ ५१ ॥

५०–हरै–दरै (राम) ।

[४९] गुनै = डोर को । दुहेली = दुःखमयी । [५०] पुढ़ाई = दृढ़ता ; पुष्टता । झर = ज्वाला । अरस = आलस्य ; नीरसता । [५१] भूतागति = भूत का सा

रूप - गुन - मद - उनमद नेह - तेह - भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े ।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेको,
प्रानन सों खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े ।
मीन-कज-खजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सींचे घनआनँद खुले सकोच सों मढ़े ।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ॥ ५२ ॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै.
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को ।
भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूपन मुकुर, अंग सोखै संग चीर को ।
जोबो बिष-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को ।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैं सरस बहै परस समीर को ॥ ५३ ॥
बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को ।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौ ।

५२–नेकौ–क्यौं हूँ (राम)। सों–मैं (प्रयाग)। ५४-(राम) में नहीं है।
व्यापार, विलक्षण बात। गुन = गुण, डोर। [५२] तेह = रोष। अरबीले = अड़नेवाले। अनेरे = आततायी, दुष्ट। [५३] मंजन = मार्जन, स्नान। रजन = प्रसन्न करनेवाले व्यापार। [५४] आस० = आशा के फंदे में। खरे० = अति हड़बड़ी में। पत्यानि = विश्वास। न घिरत = छिंकते नहीं, पकड़े नहीं जा सकते। निदान = अंत में। अधर० = ओठों पर आ लगे हैं। पयान = प्रयाण।

झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौ।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ॥ ५४॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लियें अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।
ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत॥५५॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाडिली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझै सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं॥५६॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेहनिधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे।
सौतिन तें पिय पाय इकौसें भरे भुज सोच-सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिनि लै पल-पाट उघारे॥५७॥

कबित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परब री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी।

५७–नेहनिधान–रूपनिधान (काँक०)। जिनि–जिय (राम)।

[५५] भीजे = सरस। [५६] पन = प्रतिज्ञा। [५७] इकौसें = अकेले, एकांत मैं। [५८] अरबरी = व्याकुलता। आरति = दुःख। परब = पुण्यकाल; पूर्णिमा।

बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥ ५८ ॥

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलह मदन मयमंत है।
अंग अग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सुरस मधुराई को न अंत है।
मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसत है ॥ ५९ ॥

ललित तमालनि सौं बलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसैं लह्यौ सुखसार है।
मधुर बिनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है।
बन की बनक देखैं कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥ ६० ॥

देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठ न परत जानि दीठ किधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ जोहियत,
आरसी-दरस लौं परम ध्यान जल है।
निपट अटपटी दसा सौं चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।

हरबरी = हड़बड़ी, उतावली। भीजत = बढ़ती है। सरबरी = शर्वरी, रात।
[५९] बैस = (वयस्) उम्र। [६०] झेलि = प्राप्त करके, भोग करके।

कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥ ६१ ॥

तू ही गति मेरे मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरें चोप-कूप गिरी लेज लाज की ।
सुनि हो सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
प्रीति-सिंधु परे आस तो हित जहाज की ।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की ।
हाहा दीन जानि थाकी बिनती लीजियै मानि,
दीजै आनि औषदि बियोग-रोगराज की ॥ ६२ ॥

सवैया

ह्वै निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहि पागैं ।
आन दै जान कहौं तुव आनन लागि न आन सौं लोयन लागैं ।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तैं भावते भाग जौ तो मिलि जागैं ।
रंग रचैं सुठि संग सचैं घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥६३॥

कबित्त

सब सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै ।
देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकैं चकि चाहनि मैं चिंता पागियै रहै ।
तोरि लाज-साकरैं घिरै हैं सोभा-साकरैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै ।

६४–परी–आली । सुजान–मुकुंद ।

पतझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि । [६१] नीठ = कठिनाई से । दीठ = (दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य । छल = भ्रांति । अनमिले० = न मिलने का ही पोषण होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं । [६२] लेज = रस्सी । [६३] निस-वादिल = स्वादहीन । सुठि = सुंदर । [६४] साँकरैं = श्रृखलाएँ । साँकरैं =

ऐसी कछु बानि चाह-बावरे दृगनि परी,
दरस-सुजान लालसाई लागियै रहै ॥ ६४ ॥
पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस-बिभावरी ह्वै होत भौंरहाई है ।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसैं,
लसत सु ऐसें अचिरज अधिकाई है ।
बाहिर तें रूप-मकरंद-पान करै पुनि,
बड़ी भूतागति हेरैं मो मति हिराई है ।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६५ ॥

सवैया

रिस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति जागति जोति महा ।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सु बोलनि की कहियै धौं कहा ।
ननिहारनि हेरि न हारनि दीठि औ पीठि दियें समुहात लहा ।
घनआनँद प्यारो सुजान दै कान अहा सुनियै यह बात हहा ॥६६॥

कबित्त

उर-गति ब्यौरिबे कौं सुंदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सों मिलन अभिलाखियै ।
बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै ।
भाग जागैं जो कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन का छाकनि के लोचन ही साखियै ।

६५-पुनि-पुन्य (राम)। ६६-यह-हित (राम)।

संकट मैं। आस० = आशा का फंदा पड़ा रहता है। [६५] भौंरहाई = भौंरों का मँडराना। भूतागति = भूत की सी दशा विलक्षण बात। [६६] ऊठ = उमंग। ननिहारनि = (आप का मुझे) न देखना। [६७] गाँस० = छोटी

भूलै सुधि सातौ दसा-बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥ ६७ ॥

सपने की संपति लौं भई है मलोलेमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ ।
जकी ह्वै थकी हौं जडताई पागि जागि पीर,
धीर कैसैं धरौं मन सो धन झरौं गयौ ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ ॥ ६८ ॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियौ जान प्यारे,
इते पै अचभो छोरि दीनी जु सुरति है ।
उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है ।
तुम हूँ तैं न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तैं गरैं गाँठि सी घुरति है ।
कैसैं घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है ॥ ६९ ॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है ।
भूषन उतारि अंग अगहि सम्हारि, नाना,
रुचि के बिचार सौं समोय सोभी मति है ।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है ।

६९-बचाय-नचाय (प्रयाग) । तैं गरैं-पै हियें । लिलार-लिखार (राम) ।

फाँस । सुधि० = पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि । [६८] झरौं = खो गया, चोरी चला गया । पह = पौ । [६९] जानी = समझी । लिलार = माथा,

मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है ॥७०॥
हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि बिडारौ तौ बिचारो न कछू कहै ।
पाल्यौ प्यार को तिहारौ तुम ही नीकैं निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है ।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियैं कहौं,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै ।
देखैं रूप रावरो भयौ है जीव बावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि परथौ दहै ॥७१॥

सवैया

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै ।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग बने बिन कैसैं बियोग टरै ।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीर भरै ।
मिलि हू न मिलाप मिलै तनको उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै ॥७२॥
ऐ मन मेरे कहा करी तैं तजि दीन चल्यौ जु प्रबीन ह्वै तो सौ ।
ल्याई न काहुवै आँखि तरे हौं कहूँ कबहूँ करि तेरो भरोसौ ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली भई बावरे मोसौं भरयौ कित रोसौ ।
सोचत हौं जिय मैं अपने सपने न लहौं घनआनँद दोसौ ॥७३॥
आपु अनंग न संग को रंग भरयौ रिस आनि कै अंग पजारत ।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत ।
और अनीति कहाँ लौं कहौं घनआनँद जो कछू आपदा पारत ।
कैसैं सुहाति सुजान तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसैं बिसारत ॥७४॥

७२–भीर–भीज । ७३–भई–करी ।

भाग्य । [७०] धन = धन्या, प्रिया । सीझी = भिनी हुई । [७१] आन = शपथ । मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत । [७२] झरै = झड़ी ही । भीर = भीड़, मेला । [७४] आपु० = अंगों की सी बनावट काम में नहीं,

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हू न कहूँ दरसैं ।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे इत चातक प्रान तपै तरसैं ।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि यौं अब सो परसैं ।
बदरा बरसैं रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥

तहाँ जान पिया लखि लाखन प्रान पै वारिबे की अभिलाष मरौं ।
सु कहाँ किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं ।
घनआनँद कीजै बिचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं ।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥७९॥

कबित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरैं को सुनै ।
नेह-रस-हीन दीन अतर मलीन-लीन,
दोष ही मैं रहै गहै कौन भाँति वे गुनै ।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसें धौं करौं उनै ।
टरै नहीं टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥ ८० ॥

नीके नैन ऐन आग चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैं हिय सियरात है ।
एरी मेरी सहज लडीली अरबीली सुनि,
तेरो अग-सग लहैं लाड़ौ लड़कात है ।
रूप-मद-छाके तैं गँवेली गरबीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उमगनि उमदात है ।

७८–इत–हग (राम)। ८१–आय–पाय। दियैं ०–दीजै पिय मौंन मानै यौं (राम)।

झलक। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य। [७९] चौचँद = शोर। [८०] चवाई = बदनामी करनेवाले। खीस = लज्जा। [८१] अरबीली = हठी। लाड़ौ = प्यार

आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
दान दियें पियै सौं न मानै वाँ ही जात है ॥ ८१ ॥

सोभा को निकेत नेत भाखत निगम जाहि,
ताके सुख हेत मीनकेत रसखेत है ।
सकल बननि सिरमौर ठौर ठौर जाकी,
राखैं चख-ढौर और थाकै चित-चेत है ।
राधा-पद-अंकित बिराजि रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तैं दीपति उपेत है ।
मधुर बिनोद जहाँ आनँद-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥ ८२ ॥

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकें छबि हू को अनूपम रूप कढ्यौ है ।
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ्यौ है ॥
आनँद के घन राग सौं पागि सुजान सुहागहि भाग बढ्यौ है ।
लाड़ तें लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ्यौ है ॥ ८३ ॥

घूँटै घटा चहुँधा घिरि ज्यौं गहि काढै करे जो कलापिन कूकैं ।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं ।
एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि थ्यावस सूकैं ।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरौ चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥ ८४ ॥

अजन त्यौर ही ताक्यौ करै नित पान लखे मुख-त्यौं रँग-चायनि ।
औरौ सिंगार सदा घनआनँद चाहैं उमाह सौं आपने दायनि ।

८२–नेत–जोरि (भदा०) । ढौर–ठौर (कॉक०, प्रयाग) । ८३–सुहागहि–सुहागिल (कॉक०) । ८४–ज्यौं–कै (राम) ।

भी बहल जाता है । गँवेली = गाँव की रहनेवाली । [८२] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है । राखै० = नेत्र उसे ही देखते हैं । उपेत = युक्त । [८३] चोज = उमंग । [८४] कलापी = मयूर । चहकै = जलाती है । ऊकैं =

तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि ।
ऐ परि नाच कै साँच छकौ जु लटू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि ॥८५॥

मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहौ ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान पै चाहैं परे तुम नेकौ न चाहौ ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ ।
कै बिपरीति मिलौ घनआनँद या बिधि आपनी रीति निबाहौ ॥८६॥

कबित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै ।
उठी है उदेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै ।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै ।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥ ८७ ॥

सवैया

मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै ।
तरुनाइयै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै ।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै ।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु तैं आपु लसै ॥८८॥

८८—लगि—रँग । तरुनाइयै—तरुनाई पै । गसै—बसै (राम) ।

उल्का, लुक । ध्यावस = धैर्य । [८५] त्यौर = चितवन । ऐ परि = ऐ परि = फिर भी । [८६] चाहैं = चाह मैं पड़े हैं । [८७] नेरे० = निकट (अनुकूल) होकर फिर दूर (प्रतिकूल) होकर । [८८] सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट । सौंधो = सुगंध, इत्र आदि । कोक = कोकशास्त्र के निर्माता । सुघराई = चतुरता ।

कवित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है ।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कबि मित्रन को पोखै मन चैन है ।
नेह-निधि बाढ्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौं मन मैं न है ।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचैगो स्रवन कहि सुधासने बैन है ॥ ८९ ॥

मोहिं दीठि-कारन हौ दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै ।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तैं पियौं या तिहारे रूप के रसै ।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
झटझटी लागै जौ पै बीच बरुनी बसै ।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं बिचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै ॥ ९० ॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं,
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की ।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं बरै,
ढरै नैन नीर बीर ! हरै मति आह की ।
जतन बुझे हैं सब जाकी झर आगैं, अब
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ।

८६—मन—कहूँ (राम) ।

[८९] अपूरब = पूर्वेतर दिशा ; अद्वितीय । बुध = ग्रह ; पंडित । कबि = शुक्र ; काव्यकर्ता । मित्र = सूर्य ; सखा । निधि = समुद्र । [९०] झटझटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना । [९१] घट = शरीर । बीर = हे सखी ।

जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
　　तब तेँ अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ९१ ॥
अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
　　आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैँ ।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
　　आँखिन के मारे आय तहीँ मड़रात हैँ ।
इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, डर
　　सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैँ ।
जानि अनखौँहीँ बानि लाडिले सुजान की सु,
　　करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैँ ॥ ९२ ॥
साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैँ सुजान,
　　तब ही सबनि तजी अब हौँ कहा तजौँ ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
　　यौँ ही इन काज लाज बिन हूँ खरी लजौँ ।
ऐसी कै बिसारी गौँ तिहारी न बिचारी परै,
　　आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौँ ।
कौन बिधि कीजै कैसैँ जीजै सो बताय दीजै,
　　हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौँ ॥ ९३ ॥
घेर्यौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
　　ता मधि उजारे प्यारे फानुस के दीप हौ ।
लोचन-पतंग संग तजै न तौऊ सुजान,
　　प्रान-हंस राखिबे कौँ भरे ध्यान-सीप हौ ।

९२–डर–उर । ९४–भरे-धरे (राम) ।

मति० = 'आह' करने की चेतना । झर = ज्वाला । उमाह = उमग । [९२] सिराएँ = बीत जाने पर ; ठंढी पड़ने पर । अनखौँहीँ = रूठनेवाली । [९३] सयान = चतुरता । निदान = अंत में । गौं = घात । बिसासी = विश्वासघाती । भाजत = भागते हो । भजौँ = भजती हूँ । [९४] घट = शरीर ; फानूस

ऐसैं कहो कैसें घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ।
दीठि-आगै डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागै,
मोहिं तौ बियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥९४॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि ह्वै हूजत क्यौं करुवे गहि दोसनि।
आपुन त्यौं तकियै सकियै कहि हाहा हठील न रूसियै रोसनि।
तासौं इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हो ऐ परि यौं मरियैगो मसोसनि ॥९५॥

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौं जु पै भूलन ही कौं ठिक ठानत हौ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥९६॥

कबित्त

रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह - ओपी अरुनई है।
उपटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
ओछी ओक धरैं प्यास-पीर-सरसई है।

९७–उपरि–उलटि। ओछी–आछी (राम)।

की हाँड़ी। अंतराय = विघ्न। पटनि० = परत पर परत करके लपेटे वस्त्र। पानुस = फानूस। पतंग = फतींगा। सुरत० = स्मृति के शासक। [९५] मीठे = मधुर, प्रिय। करुवे = कड़वे, विमुख। त्यौं = ओर। भिजई = सरस की। ऐ परि = फिर भी। ९६] भूलि रहे = मगन हो रहे हैं। सुधि० = आप मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अत: मेरी सुध इसी बहाने आप के मन पर चढ़ती रहती है। सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे

कैसैं घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥ ९७ ॥

नीकी नासापुट ही की उचनि अचंभे-भरी
मुरि कै इचनि सौं न क्यौं हूँ मन तें मुरै ।
रूप-लाड़ जोबन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै ।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै ।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरै ॥ ९८ ॥

अलग भयौ है लगि तुम्हैं और ठौरन तें,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै ।
क्यौं हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै ।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन बिधि टोहियै ।
जब तें सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥ ९९ ॥

सवैया

दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै ।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै ।

९८—जोबन—जीवन (राम) । ९९—लगि—लगि (अदा०) ।

भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते । भूलि कै = भूले भटके । [९७] उझिल = उमड़ाव । तेह = तीखापन । उपटि = उभर कर । ओछी = छोटी । ओक=अंजली । [९८] न मुरै = हटती नहीं । मिहीं० = मंद मधुर स्वर से । रुरै=छा जाती है । ढुरै = मुद्रा के साथ मुड़ती है । [९९] सुलग्यौ० = सुलगता (जलता) रहता है ; भली भाँति लगता है । खरक = खटक । दुहेली = दुखद । दीठि० =

पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै ।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ॥१००॥

कबित्त

जब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिबे की आन ।
रस-भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहाँ,
मधु-मकरंद-सुधा नावौ न सुनत कान ।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करत गान ।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे, 83.
मन-सिँघासन पै बिराजै तिन ही को ध्यान ॥१०१॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी ।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी ।
चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जोबन साखी ।
नैनन पानि बिराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥१०२॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी किधौं मान मवास गढास की घाटी ।
कै रसराज-प्रबाह को मारग बेनी बिहार सौं यौं दृग दाटी ।

१००–मधु–छबि (काँक०) । १०१–इन–है न (भदा०) । १०२–जोबन–जीवन (काँक०) ।

दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है । [१००] मधु = शराब । भीजि = शरूर चढ़ने पर । बलकै = नशे में उमंगित होती है । इकौसी = अकेली । [१०१] आन = अन्य । आन = शपथ । ज्यारी = जिलानेवाली । [१०२] पानिप = शोभा । गुन = गुण, डोर । पाट = रेशम । ही = हृदय । चाह = इच्छा । नैननि० = नेत्रों के हाथ में । राखी = रक्षा का

काम-कलाधर ओपि दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढावन-पाटी ।
जान की पीठि लखैं घनआनँद आनन आन तें होति उचाटी ॥१०३॥
ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं धरकै खरकै दुख दोहतु है ।
दृग-आगे तें बैरी कहूँ टरै न जग-जोहनि-अंतर जोहतु है ।
घनआनँद मीत सुजान मिलैं बसि बीच तऊ मति मोहतु है ।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहतु है ॥१०४॥

कबित्त

गहैं एक टेक टारि दीने हैं बिबेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहि रितौत हैं ।
कैसें कही जाय हेलो इनकी दुहेली दसा,
जैसें ये बियोगी निसिबासर बितौत हैं ।
कहिबे कौं मेरे पै अनेरे घेरे जाहिं नाहिं,
अति ही अमोही मोहिं नेकौ न हितौत हैं ।
जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखे नैन काहू न चितौत हैं ॥१०५॥
तें मुँह लगाई तातें मोहिं मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है ।

१०३–सधितटी–सिधुतटी । किधौं०–सोभित मान-मवास की (राम) । दाटी–डाटी । ओपि–कोपि (कोक०) । १०४–धरकै०–घर कै दुख को सुख । जग–जगि । मति–मन (राम) । १०५–नैन०–दृग काहिं ।

डोरा । [१०३] सुमेरु = पहाड़ , मेरुदंड । सधितटी = सधिस्थल । मवास = पहाड़ी किला । गढ़ास = गढ़न । रसराज = शृंगार , जलराशि । बिहार०–हिलने से । दाटी = प्रतीत होती है । ओपि० = घोटकर चमकाई । पाटी = पट्टी पटिया । आन = अन्य । उचाटी = उच्चाटन । [१०४] ढिग = पास । जोहने० = देखने के समय बीच में से झाँकता रहता है । [१०५] रितौत = खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं । हेली = हे अली । दुहैली = दुखद । अनेरे = विलक्षण, अपरिचित ।

तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन तें नींद गई नसि है ।
छोरि छोरि डारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है ।
आरस-रसीलो घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौं मेरी मति लीनी कसि है ॥१०६॥
चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय बावरो डराय काँपिबो करै ।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै बीचि आभा ऐन,
नैन हेरैं हेरनि हिये मैं भूख लै भरै ।
नेकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै ।
ताकैं तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमानि को गरूर ओरे लौं गरै ॥१०७॥
बेध्यौ लै बिसासी मोह गाँसी नेकु हाँसो ही मैं,
घूमि घूमि घनो मेरो मरम महा पिराय ।
हित न लखाय क्यौं हूँ धाय हाय कहा करौं,
जरौं बिपज्वाल पै न काल कैसें हूँ निराय ।
जोबन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई गई हेरि हौं हिराय ।
है री घनआनँद सुजान बैरी पैंड़े परयौ,
दै री अब ऊतर यौं धीर हू चल्यौ धिराय ॥१०८॥

१०७–बीचि–चिर (राज) । १०८–हित–होत ।

न हितौत = हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते । [१०६] सोई=सोई हुई । सोई = वही । गसि गयौ = चिपट गया । [१०७] चलदल० = पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है । निपात = पतन । बाय = वायु । बीचि = लहर , चचलता । ऐन = भरपूर । पीठि देना = विमुख होना । नीठि=कठिनाई से । तो = तेरा । [१०८] मरम = मर्मस्थल । न निराय =

सवैया

जिन ही बरुनीन सौँ बेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
बिष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौँ रस मैं अब रोष दिवावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०९॥

उर आवत है अपने कर द्वै बर बेनी बिसाल सौँ नीकैं कसौँ ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियेँ अनखौँहैं सुभाव के त्रास त्रसौँ ।
घनआनँद यौँ बहु भाँतिनि हौँ सुखदान सुजान-समीप बसौँ ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौँ ॥११०॥

साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैँ बिना ही कमान सौँ जोटैँ ।
दीसैँ जहीँ के तहीँ सु चलैँ अति घूमति है मति या चख-चोटैँ ।
घाय को चाव बढ़ैँ घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैँ ।
प्रान सुजान के गान-बिँधे घट लोटैँ परे लगि तान की चोटैँ ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन ।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौँहन ॥११२॥

११०–बिसाल–बिलास । कसौँ–गसौँ (राम) । नै–मैं (कॉक०) । ११२–रावरी–रावरे (राम) । मति–मन (कॉक०) ।

निकट नहीँ आता । पैँड़े० = पीछे पड़ा । धिराय = धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०९] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । बिष० = विषयुक्त । अजौँ = अब भी । [११०] नै = झुककर । [१११] सुर० = स्वररूपी बाण । जोट = प्रतिपक्षी पर । चाड़ = उत्कंठा । [११२] गोहन = साथ । दीठि० = दृष्टि को

कबित्त

मोहिँ दुख-दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिंता मोहिँ चूरि तोहि राखै निधरक है ।
ख्वाय कै जगावै मोहिँ बिहँसावै स्वावै तोहि,
तेरैँ भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौँ करक है ।
तोहि चैन-चाँदनी मैँ सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै बारै ह्वै बिषाद को अरक है ।
कहूँ घनआनँद घमँडि उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोवन-रूप-अनूप-मरोर सौँ अगहि अंग लसै गुन-ऐँठी ।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैँठी ।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैँठी ।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैँठी ॥११४॥
गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है ।
पन्ननि की पहुँचीन लखैँ पुनि आभा-तरंगनि संग रयौ है ।
नीलमनीनि हियैलैँ बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है ।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११५॥

११३–दोखै–सोखै । तोहि०–पोखै सुख तोहि मोहिँ । मोहिँ०–चिता चिता । बारै–मारै (राम) । ११५–पुनि–इन (राम) । छयौ–घयौ (कॉक०) ।

दुह लेता है । सौँहन=शपथैँ । [११३] ख्वाय=रुलाकर । करक=कड़क, टीस । अरक=अर्क, सूर्य । अतरक=अतर्क्य । [११४] गुन=गुण, डोर । चोख=फुरती । ऊठ=उठान । अमैँठी=उमेठी हुई । गरैँठी=टेढ़ी । टैँठी=(प्राकृत टंटा) चंचल । [११५] गोरे=गौर । डँडा=बाहु । पहुँचा=कलाई । पहुँची=एक गहना । रयौ=लीन हो गया । हियैलैँ=पछेली ।

कबित्त

प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तँ फिरि आयौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमडि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।
ताहि एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं हेरैं सरसायौ है ॥११६॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ़्यौ,
बिना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीकैं हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोच दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सरसैयै सुख,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥११७॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तँ टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कपोलनि सौं,
चाहि चाहि रक लौं सु संपति हियैं धरी।
ऐसैं ही मैं सहज बिरह कित हू तँ आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।

११६–पयोदधि–महोदधि। उमडि–उमगि। हेरैं–देखैं। ११७–सोच–सोऽब। सरसैयै०–सुख–दुख कैसे (राम)। ११८–कपोलनि–कलोलनि।

[११६] वार=इस ओर का तट, किनारा। सरूप=प्रेम का रूप। [११७] सुरस=जल, आनंद, प्रेम। [११८] प्रानदान=जीवनदायिनी।

अब घनआनँद सुजान प्रानदान भेटौं,
बिधि बुधिआगर पै जाचत वहै घरी ॥११८॥
प्रानन के प्रान एहो सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै ।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै ।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
वाहि चिंता-चिता-बीच ऐसें अब दाहियै ।
सब बिधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौं रसीले गुनगननि सराहियै ॥११९॥

सवैया

देखि सुजान छके घनआनँद ढीठ भए सु न नीठ सकोचत ।
चाह के दाह भरे कित तें नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत ।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत ।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत ॥१२०॥
तेरे बिना ही बनाय की बानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन ।
को कबि सो छबि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिंगार-कलापन ।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जबैं कछु लागै अलापन ।
नाचहि भाव के भेद बतावन, है घनआनँद भौंह-चलापन ॥१२१॥

कबित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रबीन ।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारौ,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन ।

११९—सहज—असह । १२०—छके—छए (राम) ।

[११९] भीजे=सरस, सुखी । [१२०] नीठ=कठिनाई से भी । नीरद=बादलों सी अश्रुवृष्टि । पानिप=पानी , शोभा । [१२१] बनावट=सजावट । सची=इंद्राणी । अलापन = उत्तमता । कलापन = समूह । चलापन = चंचलता ।

जतन कहा बनाऊँ तुम ही तेँ तुम्हैँ पाऊँ,
　　रावरोई गुन गाऊँ बावरे लौँ हितलीन ।
रहौँ लागि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
　　एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥१२२॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
　　तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो ।
निघटत नाहिँ मो घटाई, उघटत क्यौँ हूँ,
　　रावरी बडाई आहि प्रीतिपन पारिबो ।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौँ,
　　चातक बिचारे को है जीवन बिचारिबो ।
यातेँ निसदिन रस बरस दरस ओर,
　　टक जक लाय लोभी करत निहारिबो ॥१२३॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौँ मेरी दौर,
　　नाहि और ठौर, काहि साँकरै सम्हारियै ।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे
　　आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै ।
गुनमाला फेरौँ, निगुनी ह्वै नित हित हेरौँ,
　　बिरह - अधीर टेरौँ पीरहि निवारियै ।
पन तन ताकौ जो हो काचो सो तौ आहि पाकौ,
　　आनँद के घन प्रीति-साकौ न बिगारियै ॥१२४॥

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
　　रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।

१२२–बनाऊ–बताऊँ । गुन–जस । १२३–रस०–सब रस दरसाएँ और (राम) । १२४–हो–हौँ । पाकौ–याकौ (कॉक०) ।

[१२२] अजानता=अज्ञान । जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ । रसरासि=आनद की राशि; समुद्र । [१२३] निघटत०=घटती नहीँ । उघटत=कहने से । जीवनि=जीना । [१२४] साँकरै=संकट मेँ । आन=दुहाई । माला=समूह, जपमाला ।

देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय ।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय ।
ऐसें घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय करौं हाय हाय ॥१२५॥

बैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सौं कलोलै,
गैन-सग डोलै पै न परस-परोस है ।
हेरति हिरावै, एक ठौर हू न लहौं ठावै,
झुरि मुरझावै बीर ऐसी पीर को सहै ।
पाय न परति बात प्रान पैठि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है ।
आपने किये की छाँह बैठियै बखानै जग,
वे तो घनआनँद मो देखन हीं दोस है ॥१२६॥

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैं कौन पै घिरै ।
नाच की चटक लसै अगनि मटक-रंग,
लाडिली लटक-सग लोयन लगे फिरैं ।
अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं ।

१२५—करौं—कहौं (राम) । १२६—पैठि—पौढि । हीं—को (राम) । १२७—मतवारी—मतवारौ । प्यारी—प्यारौ (भदा०) । मटक—सटक । अभिनै—अनिनय (काँक०) ।

तन = ओर । साकौ=ख्याति । [१२५] निगोड़े = बुरे (गाली), पैर से हीन । तावरेन = ताप, ज्वर । न बसाय = बस नहीं चलता । [१२६] ऐन = घर । गैन = गमन । परस० = स्पर्श की निकटता । बीर=हे सखी । पाय०=समझ में नहीं आती । प्रान० = प्राणों में लेटकर, बसकर । [१२७] घूमरे = मत्त । अभिनै = अभिनय, नाट्य । सोधौ = खोज भी । कनावड़े = दबैल ।

राते तरवानि तरैं चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥१२७॥

अंग अंग छाई है उदेग-मुरझानि महा,
साँस लैबो आली गिरि हू तें गरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
जोबन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारै कौन,
बिरह-बिषम-जुर जीबो करुवौ लगै ॥१२८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसें बिधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाता पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥१२९॥

गोकुल-नरेस नंद-बंस को प्रसस चंद,
सोभा-सुखकंद प्रेय - अमिय - निवास है।
सो नित चकोर-चोप तो हित भर्यौ ही रहै,
सुनिहै सुजान कौन माधुरी - बिसास है।

१२८—मुरझानि—उरझानि, बिषम—बिपाद (राम)। १२९—अक—आँक (प्रयाग, काँक०)।

[१२८] सलत = घुसते हैं। तूल = रूई। हरुवौ = हलका। [१२९] सिराए = शीतल हुए। परेखो = पछतावा। बिधि० = भाल में ब्रह्मा के लिखे अक्षर।

उचित जु होइ ऐसैं मेरे मन आई,
जैसैं बाढ़यौ घनआनँद सुदृष्टि-झर आस है ।
जगत मैं जोति एक कीरति की होति है पै,
तो तैं राधे कीरति के कुल को प्रकास है ॥१३०॥

सवैया

फल होत दियैं सम कै अधिकै बरनैं कबि कोबिद यौं सब ही ।
बिपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही ।
उत कौं घनआनँद गौं है यही, इत की जु सुजान परी सु सही ।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपैं हम चिंत लही ॥१३१॥

नैन कहै सुनि रे मन ! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है ।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तैं भयौ है ।
लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है ।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है ॥१३२॥

नाच लटू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि ।
त्यौं सुर-सौंच-सवाद सनैं मन झूठियै लागति बीन की बोलनि ।
नेकु हँसैं सु करोरिक चदनि चेरो करैं दुति-दंत-अमोलनि ।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥१३३॥

मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौ न छकै को ।
भूल कौं सौंपि तबै जु सबै सुधि काहू की कानि कनौडत कै को ।

१३०–चंद–बदि । सो–जो । सुनिहै–सुनियै । बिसास–बिलास । उचित–उदित । जु होइ–जुन्हाई (राम)।बढाधौ–बाढी (काँक०, प्रयाग) । तो तैं०–राधिका तौ (राम)। १३१–परी–बनी(राम)। १३२–गुन–मन (काँक०)। १३३–मन–मत (प्रयाग।।

[१३०] झर = झड़ी । कीरति के० = कीर्ति (राधिका की माता का नाम) का वंश प्रकाशित है । [१३१] सम० = बराबर या अधिक । [१३२] तनकौ० = उन्हें मन में ही छिपा रखा है । [१३३] लड़ीलियै = सुहानेवाली । [१३४] मादिक = मदिरा । न छकै० = कौन मत्त नहीं हो जाता । कानि कै को कनौड़त=

प्राननि वारि निवारि कै लाजहि ऐसी बनै बिन काज, सकै को ।
बावरे लोगन सौं घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥१३४॥
जान प्रबीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भरयौ नित राजै ।
सो सुर साँच कहूँ नहिँ छाड़त ज्यौं ही बजावै लियैं मन बाजै ।
भावती मीड़ मरोर दियैं घनआनँद सौगुने रग सौं गाजै ।
प्यार सौं तार सु ऐंचि कै तोरत क्यौं, सुघराइयै लावत लाजै ॥१३५॥

कबित्त

पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनी है अनग अंग अंग रंग-बोरी सी ।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिनरैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी ।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
बिरह-अगारनि मगारि हिय होरी सी ॥१३६॥

चोप चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कींचि कै ।
घात लै अनूठी भरैं चेतक चितौन-मूठी,
घूँघरि चिलक-चौंध बीच कौंध सौं टिकै ।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै ।

१३५–लावत–लाजत (राम)। १३६–परि–परी (राम)। अंग अंग–मानो अंग (कॉक०)।

मर्यादा का विचार करके कौन दबता है। सकै०=कौन सँभाल सकता है। [१३५] राग=प्रेम ; गान। सुघराइयै=चतुरतर को। [१३६] दुहेली=कष्टमयी। होला=होरा, लपट में भुना अनाज का हरा पौदा। मगारि=जला कर। [१३७] चाँचरि=चर्चरी राग, होली का गान। चेतक=जादूभरी।

रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मार हुरिहाई ँ न कहूँ छिकै ॥१३७॥
सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल ह्वै,
दीन के हृदै कों दैया दुखनि कहा दरौ ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ ।
मेरो दोष देखौ तौ परेखो है अलेखैं ए जू,
मीन ढोलै निधि कैसैं बूझियत गादरौ ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है बिदरि गएँ बादरौ ॥१३८॥

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि ।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि ।
पै मनसा मधि रागत पागत लागत अंकनि जागत ज्यौं करि ।
ऐसेसुजान बिलास-निधान हौ सोएँ जगे कहि ब्योरियै क्यौं करि ॥१३९॥

कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति ताती कथा रसनाहि दहै ।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै ।

१३७–चेतक–बेतक । बीच–बीज (सभा) । १३८–मेरो–मेरे । अलेखें–अलेखो (राम) । ढोलै–डोलै (प्रयाग) । १३९–पै०–प्रेम निसा । अंकनि–अंगनि (राम । जगे–जपैं (काँक०) ।

घूँघरि = धुंध । चिलक = चमक दमक । हुरिहाईं = होली खेलनेवाली । न छिकै = छिंकती नहीं । [१३८] ढोलै = निमित्त । निधि = समुद्र । गादरौ = शिथिल । मूँदि० = बादलों के हट जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ में खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलों को नेत्रों में कब तक बंद किए रह सकता है । [१३९] निस्यौं करि = निश्चिंत होकर या स्यौं करि = काम के रंग से भींगे । सोएँ० = सोने में भी जगे रहते हैं । [१४०]

घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै ।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै ॥१४०॥
कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े ।
बैठि सभा मधि न्यारे रहैं, पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े ।
कौन पत्याय कहैं घनआनँद हैं सब सूधे सयान सौं ऐंड़े ।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥१४१॥
नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखै ।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै ।
जैसैं सुजान लखैं घनआनँद नेही न आन हियें अवरेखै ।
ऐसैं उजागर हैं जग मैं परि चदहि एक चकोरहि देखै ॥१४२॥

कबित्त

नेहो की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढै गुन दब के ।
चाड सिर चढत बढत अति लाडिलो है,
कैसैं गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के ।
खेल अलबेले हियो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के ।
कहिबे कौं कोउ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥१४३॥

१४२–लखें–लसैं (काँक०) । १४३–जेऽब–जब (प्रयाग) ।

ऊतर० = उत्तर के पैर में मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते । [१४१] अमैंड़े = मर्यादा न माननेवाले । चेटक = जादू । बैंड़े = टेढ़े । [१४२] न अवरेखै = नहीं ले आता । उजागर = प्रकाशपिंड । [१४३] बिलोय = मथकर । चाड़ = उत्कंठा । ओटपाय = उपद्रव । परेखौ = फल । चाँदनी० = उजाले में चोरी कर लेनेवाले । मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपखों की सी आँखें हो जाते हैं, बेकाम ।

सवैया

सॉवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै ।
नैननि बेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै ।
फागु के चाय चुए भरि भाय सौं छाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै ।
नैसिक हेरियै मेरियै सौंहँ सु एरी सुजान यौं चेरियै मोहि कै ॥१४४॥

बिन बूझ असूझ बिरंचि की बेस सनेहू न लागनि गैल गई ।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दई ।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लाखनि भाँति रई ।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भई ॥१४५॥

चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके ।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके ।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद कौंबरे अंग सुजान-बधू के ।
चोली-चुनावट-चोन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के ॥१४६॥

कबित्त

गाँसनि गसीले सुरसीले गरुवाई भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तें छोरी हौं ।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौं ।

१४४–अँगेट–अँगेठ (काँक०, प्रयाग)। फागु–दाय। सु एरी–ढरारे। १४५–की०–रचे सपनेहूँ (राम)। १४६–रई–दई। कित–किनि (प्रयाग)। ढिग–जिन (राम)। दाग–अंक (काँक०, प्रयाग) ; होत (कबित्त)।

[१४४] अँगेट = अंगदीप्ति। गुनै० = गुणरूपी डोर से युक्त करके। नैसिक = थोड़ा। सौंह = सामने। [१४५] बेस = प्रिय का वेश रूप। तम० = अंधकारमय। रई = युक्त हुई। [१४६] अठान = अकरणीय। परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छूओ मत। उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं या चुनावट डालते हैं। उसके कोमल शरीर पर चोली में बने उतू

नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ बिरह-गहर लै भकोरी हौं।
तरिबो सुन्यौ हो गुन गहेँ घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥१४७॥

सवैया

बात अनोखी कहा कहियै सुनि बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो।
है घनआनँद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबौ ॥१४८॥

कबित्त

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारेँ हेरि सौँहैँ न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तेँ मधुर महा भुकि भिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तेँ टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥१४९॥

१४७-सु रसीले-औ गरूर (राम)। १४८-बात-चाह। सुनि-सजि (राम) छीबो-दीबो (कबित्त)।

के दाग भी उभड़ आते हैं। [१४७] उररि=बरबस हृदय में धँसकर। गहर=गहराई। [१४८] बौरई=पागलपन। दुख०=छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुड़ता। अनमीच=बिना मृत्यु के। [१४९] अन०=न मानना जीति०=जीत का लाभ। सुठि=उत्कृष्ट या अत्यंत। अनखि=झुँझलाकर।

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब।
मोहि लियौ हँसि जोहि छबीले कहौं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भरयौ गहि द्वार परयौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥१५०॥

कबित्त

आरति के ऐन, धौसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि त्यौं अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि पाकि चूरे मत काचे,
ताचे साँच आँच के टरैं न टेक तैं कछूक।
रूप-उजियारे जान प्यारे हैं निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुज लाय ऊक।
नेमी अंध हौंस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसें अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥१५१॥

ललित लसौंहीं सु ढरौंहीं नेकु सौंही भएँ,
त्यौं ही रहि गहैं गौं ही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठै,
देखी बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनें कीनें मान,
जान प्यारी बिरचैं हूँ राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥१५२॥

१५०—जोहि—हेरि (राम)। या—वा (कॉक०)। १५१—टेक—टक (राम)। लाभ—लाख (प्रयाग) १५२—बोलनि—बोलिबे (प्रयाग)।

[१५०] दब = दबाव। [१५१] ईठि त्यौं = प्रिय की ओर। मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। ताचे = तपाए। कनौड़ = सकोच। ऊक = लुक। रीस = बराबरी। अरबरैं = हड़बड़ी मचाते हैं। [१५२] बसीठि = दूतत्व। बिरचैं० = विमुख होने

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग बिराजति रंगमई ।
घनआनँद जोबन-माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई ।
बसि प्रान सलोनी सुजान रह्यो चित पै हित-हेरनि-छाप दई ।
वह रूप की रासि लखी तब तैं सखी आँखिन कैं हटतार भई ।।१५३।।

कबित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै ।
आरसी जौ सम दीजै बूझ कों असूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै ।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तैं प्यारियै ।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा सकोच सोचन ही हारियै ।।१५४।।

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की ।
निपट नवेली नेह-झेली लाड़-अलबेली,
मोह-ढरहरी भरी बिरह-रितौन की ।
लोने लोने कोने छ्वै छबि लौं अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-बितौन की ।
एरी घनआनँद बरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचे गति तिरछी चितौन की ।।१५५।।

१५४—आपौ न—आपनो (काँक०) ।

पर भी मजीठ का सा न मिटनेवाला राग (प्रेम, रंग) है । [१५३] छाक= नशा । हटतार=हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला टकटकी । [१५४] गहर= गहराई, गहरी । पानिप=पानी, शोभा । [१५५] उघरि० = प्रेम का उद्घाटन । भरी० = विरह दूर करने में लगी हुई । लोने=सुंदर । औसर० =अवसर को

सोभा-बरसीली सुभ सील सौँ लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधैं मन छूटै और ओरनि तैं,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥१५६॥

छाए परदेस जान प्यारे सग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रुँधै गरै।
मोरनि की कूकैं सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकैं नहीं चातिक करेजो काढ़िबे अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तैं घनआनँद यौं,
बादर अडबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥१५७॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर,
उजागर सुजागर बिलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
बिधिना बनाय बाने अंग अंग लसे हौ।
छबि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन गूढ गाँसनि सौं गसे हौ।

१५६–ओरनि–ठौरनि (राम)। १५७–बादर०–बादरनि आडबर (काँक०,प्रयाग)।

ठीक ठीक बिताने की घात। [१५६] सील = शिष्टता; आर्द्रता। स्वादनि० = स्वादों का ऐश्वर्य। पानिप = पानी, शोभा। उकति० = उक्ति के छोटे आकार में उसके अपार सौंदय को भर सकना असंभव है। [१५७] हूकैं = पीड़ाएँ। करेजो० = कलेजा निकालने पर अड़े हुए। अडबर = बादल में सूर्यकिरणों से

भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
एहो घरबसे राति कौन घर बसे हौ ॥१५८॥
तिन हूँ तेँ हरई भई है गुरुजन आगेँ,
पुरजन-पुंज मैँ कहानी सी धौँ कौन काज ।
तो हित बोहित जानि मोहित बिहंग मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेह को सरितराज ।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैड़नि के सिरताज ।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजेँ की लाज ॥१५९॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है ।
कै अपने सपने हूँ न सोचत, मो चित ऊखिल ही लौँ तहाँ है ।
ये मडरात तऊ घनआनँद जीवनिमूरति जान जहाँ है ।
हाय दई न बसाय बिसासी सौँ ठौर-रहेन कौँ ठौर कहाँ है ॥१६०॥
जान सजीवन-प्रान लखैँ बिन आतुर आँखिन आवत आधे ।
लोग चवाई सबै निरदै अति बान से बैन अयान सौँ साधे ।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन बौरई नाधे ।
पीर-भरयौ जिय धीर धरै नहिँ कैसेँ रहै जल जाल के बाँधे ॥१६१॥

१५८—उजागर०—हौ जगत—उजागर । राति—आज (राम) ।
१६१—जाल—लाज (काँक०) ।

ललाई छाना । [१५८] सुजागर = सचेत, सुज्ञान । रसमसे = रस मेँ मग्न । घरबसे = उपपति । [१५९] हरई = हलकापन । हित = अपनाव । बोहित = जहाज । मोहित = मुग्ध । सरितराज = समुद्र । अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाला । [१६०] पानि० = हाथ मेँ, वश मेँ । कै० = अपने वश मेँ करके या अपने किए को । ऊखिल = अपरिचित, अजनबी । [१६१] आधे = आधे होकर । चवाई = बदनामी करनेवाले । बौरई० = पागलपन ने ठान रखी है (विलक्षण

कवित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है।
चलनि चितौनि बक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मत्र हू कौं सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६२॥

अघट घटाई भरयौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौं रावरी बड़ाई लौं निबटिहै।
नीके करि देखौ न परेखो उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरो पैज हाहा कैसें हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो जौ कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६३॥

आँखैं जौ न देखैं तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखैं लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चदहीन हूँ तें,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।

१६३—दीन०—दासन पै आनि दया हियहु लगी। जियैगौ०—जित तित लागी एक तेरी आस (संग्रह)। निबटिहै—निपटिहै (राम)।

वेदना)। [१६२] बिधि=ब्रह्मा, रीति। रिधि=ऋद्धि, ऐश्वर्य। निधि=खजाना। [१६३] अघट० = न घटनेवाली तुच्छता से युक्त। निघरघट = ढीठ। परेखो =

हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६४॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहां हैं मेरे प्रान संग,
जीबो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो बिचार कीजियत है।
रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसें धौं बिसारि दीजियत है ॥१६५॥

सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानौ घनआनँद सिंगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की ॥१६६॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमडि आछी बनि है।
मजन कै अंजन दै भूषन-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंहीं बंक तनि है।

१६६–भाग–सुभ (राम)।

। तन = ओर। [१६४] न चूकनि० = चूक मैं डालकर परीक्षा मत-
जेए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए। [१६५] जीबो० = अपने
ो को भ्रम समझती हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम = शरीर के धर्म।
ह = देहाध्यास शून्य। [१६६] रीस = बराबरी। चिहुर = चिकुर, केश।

अंग अग नूतन निकाई-उझिलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है ।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है ॥१६७॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकैं भरयौ उर कै कजरौटी ।
रोमहि रोम सुजान बिराजत सोचि तचै मति की मति औटी ।
प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी ।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६८॥

कबित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं ।
दीह दुख-दव हिय जारि उर अतर,
निरंतर यौं रोम रोम त्रासनि तचायहौं ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चलायहौं ।
ऐसैं घनआनँद गड़ी है टेक मन माहिं,
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ॥१६९॥

सवैया

अतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसासनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस ।
नैनउ धारि दियें बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस ।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस ॥१७०॥

१६७–छाई–झाँई (कॉक०) । १६९–दीह०–दुख-दव हिय जारि अतर उदेग आँच । निरतर०–रोम रोम त्रासनि निरतर । सम्हारि–सहारि । गड़ी–गही (कवित्त) । १७०–नैन उघारि हिये (कॉक०) ।

[१६७] घमड़ि=घिराव, सजाव । मंजन=मार्जन, स्नान ; उझिलनि=वृष्टि । [१६८] कजरौटी=कज्जली रखने का पात्र । [१६९] न सकायहौं=न डरूँगा । [१७०]

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच ही लौंडी ।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंडी ।
क्यौं करि थाह लहौं घनआनँद चाह नदी तट ही अति औंडी ।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ॥१७१॥

दोहा

जानराय ! जानत सबै, अंतरगत की बात ।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥ १७२ ॥

सवैया

आनन की सुथराई कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर ।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर ।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर ।
जान हियैं घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर ॥१७३॥

घूँघट काढि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि ।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि ।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि ।
देखत देखत दीसि परै नहिं यौं बरसै घनआनँद लाजनि ॥१७४॥

लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूपलता लगि दीठि-झकोरै ।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै ।

१७१–काज–बात (काँक०) । है जग०–दै जग जाचत (काँक०) । लहौं–लहै (कबित्त) । १७३–सुथराई–सुघराई (सभा) । की-के (काँक०, प्रयाग) । १७४–तिहि–अति (काँक०) ।

आवस = आँस, भाप । कहलाय = गरमी से व्याकुल होता है । थ्यावस = स्थिरता, धैर्य । [१७१] कनौंड़ी = दबैल, बदनाम । औंड़ी = गहरी । डौंड़ी = डुग्गी । [१७२] अंतरगत = मन । [१७३] सुथराई = बनावट की सफाई । सर = समता । रति = काम का बाण । चौसर = चार लड़ी की माला । [१७४] सकेलति = समेटती है । ऐन = घर । लाजनि = लावा ;

मौन भली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै ।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै ॥१७५॥

कबित्त

रूप-गुन-एँठी सु अमैठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी ।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति बेली आँचर टरैं टरी ।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा अरैं अरी ।
फद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी ॥१७६॥

सवैया

तै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे ।
कैसो सँजोग बियोग धौं आहि ! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे ॥१७७॥
खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है ।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहे तैं न दाह दग्यौ है ।
जानि परै नहिँ जान ! तुम्हैँ लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है ।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ॥१७८॥

कबित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं ।

१७५–चकोरै–झकोरै (प्रयाग) । १७६–निरैठी गरैठी (काँक०) । बेली–बौरी (राम) । १७७–औ सोच–असोच (काँक०, प्रयाग) । १७८–मौन–मान (प्रयाग) । चाकि–चौंकि (काँक० प्रयाग) । तैं न–तन (कबित्त)। दाह–दाग । (काँक०) ।

लज्जा । [१७५] लहकै = हिलती है । टोहति = टटोलती है । अकोरै = आलिंगन (की मुद्रा) । [१७६] निरैठी = मस्त । हरैं = धीरे से । [१७७]

जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
ब्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लघन करति हैं ॥१७९॥

चारु चामीकर चद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखें लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारी जाहिँ जान प्यारी
रूप की निकाई औरें अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई - तेज - अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियैं,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१८०॥

सवैया

प-खिलार दिवारी कियैं नित जोबन छाकि न सूधे निहारै।
ननि सैन छलै चित सो बित-चाव भरयौ निज दाव बिचारै।
ोति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान बिसारै।
ेव बिचारो परयौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै ॥१८१॥

१७९–उबरानी–डबरानी (काँक०, प्रयाग)। अधार–अहार (कॉक०, प्रयाग)।
:०–चपक–चमक (भदा०)। जाहिँ–नहिँ (कबित्त)। १८१–बित–चित
बित्त)। बिसारै–बिचारै (कॉक०)।

´=न जाने। [१७८] आहि० = लगा हुआ है। [१७९] अतन = कामो-
ार से। निपेटिनि = पेटू। भसमी० = भस्म करनेवाली पीड़ा, भस्मक रोग,
सके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय
ि नहीं होती। [१८०] चामीकर = सोना। चटक = रंग। अवरेखियति० =
राई जाती है। रवाँनी = (रमानी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८१]

कबित्त

बिकच नलिन लखैं सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जाप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौ परै बिषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८२॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसैं धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं बिषम बिषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले ॥१८३॥

रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरैं न मैन-आरतैं।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-भोयो बिषम बियोग-सर मारतैं।

१८२-लखैं-देखें (भदा०)।

चित=कौडी का चित पड़ना। चेटक=जादू। हारि०=मुग्ध हो रहा है। [१८२] बिकच=खिला हुआ। बिराग=उदासी की मुरझाहट। रूप=सौंदर्य, चाँदी। गुन=गुण, बत्ती। गुरझनि=गाँठ। चटपटी=वेग। [१८३] बै=बोकर। गौहन=साथ। हेली=क्रीड़ाशील या हे अली। [१८४] मैन०=

दरस - सुरस - प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं याँऽब द्वार तैं ।
जीवनअधार घनआनँद उदार महा,
कैसैं अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥१८४॥

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं ।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं ।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं ।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मोपैं ॥१८५॥

कबित्त

कंठ-काँच-घटी तैं बचन चोखो आसव लै,
अधर - पियालैं पूरि राखति सहेत है ।
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
काननि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है ।
छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम - प्यास - आस,
कीनी नेम - धरम - कहानी उपनेत है ।
ऐसे रस-बस क्यौं न सोवै और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥१८६॥
चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं बिष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है ।

१८४—लहै—लहौ (प्रयाग) । गुन—गन (प्रयाग) । पै—की (काँक०, प्रयाग) ।
१८५—श्री—सी (काँक०, प्रयाग) ।

काम-लालसाएँ । दिनदीन = दिनदिन दीन । [१८५] पानिप = शोभा । ओपैं = चमकाती हैं । [१८६] आसव = शराब । उपनेत = उत्पन्न । मीनकेत = काम-

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति बिषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है ॥१८७॥

रिसभरी भोरिबे कौं देखी सुनी प्रीति-नीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौं अमित उपायनि सौं,
ज्यौं ही बनै त्यौं हीं लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैं न टरति नेकौ,
हारयौ सब भाँति जो बिचारो सो कहा करै ॥१८८॥

सवैया

जीवन हौ जिय की गति जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक हाँ हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तें क्यौं अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै ॥१८९॥

कबित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन बिधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकस्यो न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।

१८८—टारैं—तऊ (कॉक०, प्रयाग)। १८९—गति—सब (कबित्त)। सु—जु (प्रयाग)।

देव। [१८७] अमी = अमृत। तमी=रात्रि। [१८८] दाय = दावँ। लहा = लाभ। [१८९] सौंज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा।

जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ॥१९६॥

डगमगी डगनि-धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुदर बदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकसे औचक आय,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥१९७॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है बिपरीति महा घनआनँद अबर तें धर कों झर आई।
जारति अग अनंग को आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥१९८॥

कबित्त

चाहत ही रीझी लालसानि भीजि सुख सीझी,
अंग-अंग-रंग-सग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनिद्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौंड़ी लौंडी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंडी नेह-मग डग द्वै गईं।

१९७—निकसे०—निकस्यौ अचानक है (राम)।

की। बनी = वणिज। [१९६] चेटक = जादू। [१९७] ढरनि = हिलना। बनमाला = लंबी माला। [१९८] ही = थी। झर = ज्वाला। अगिलाई =

ज्यौं बुधि सौं सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौं कबिताई सिखावै ।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै ।
रागबधू-चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिं गावै ।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद मो जिय बौरई-रीति रिझावै ॥२०३॥

कबित्त

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीब धीर होत लोटपोट है ।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसैं, प्यास की न टोट है ।
चलत सजीवन - सुजान - दृग - हाथन तैं,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है ।
जब जब आवै तब तब अति भावै ज्यावै,
अहा कहा बिषम कटाच्छ-सर-चोट है ॥२०४॥

सीस लाय, दृग छ्वाय, हिये पै बसाय राखौं,
इते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं ।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सौं मजन कियौ करौं ।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिंधु कौं तरौं ।
यातें घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं ॥२०५॥

२०३–रचै–कथै (कॉक०, प्रयाग) । कबिताई–सुघराई (कॉक०) ।
२०४–दृग–हेत (कॉक०) । भावै०–मन भावै (कबित्त) ।

त्रसरेनि = त्रसरेणु, धूलिकण ; पुराणों में यह सूर्य की पत्नी है । ऐन = अयन, घर । [२०३] बुधि = बुद्धि की अधिष्ठात्री । सुघराई = चतुरता । पोत = काँच की गुरिया । बौरई० = पागलपने का ढंग । [२०४] गति० = मार्ग पाने की आशा से । टोट=(त्रुटि) कमी । रुचि = कांति । [२०५] इते० = इतनी अधिक

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिँ,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैँ।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैँ।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
अवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैँ।
नेह-भोजी बातैँ रसना पै उर-आँच लागैँ,
जागैँ घनआनँद ज्योँ पुंजनि-मसाल हैँ ॥२०६॥

सवैया

कंत रमैँ उर-अंतर मैँ सु लहै नहीँ क्योँ सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैँ गहैँ आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौँ घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैँ वेई दिन-राति, बखानैँ तैँ जाय परै दिन-राति को अंतर ॥२०७॥

कबित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैबे कौँ रसीलो रसधाम है।
जीवन बरसिबे अनंदघन आपुन पै,
चातिक तैँ कोटिगुनी जक आठो जाम है।
आरति पराई सोई जानै न बखानैँ बनै,
देखैँ दसा औरै बिसरत बिसराम है।

२०६—लिखाए—लखाए (काँक०, प्रयाग) । बहकि—चहकि (वही) । काहू—कहूँ (कबित्त) ।

श्रद्धा उमड़ती है। के ल० = क्रीड़ा की माधुरी से भरे। [२०६] पाँगुरी = पंगु। राती = अनुरागमयी, लाल। दसा = विरहावस्था, बत्ती। नेह = प्रेम, तेल। बातैँ = बातेँ ; बत्तियाँ [२०७] तेह = तीखापन, आँच। परतंतर = अधीन होकर। जाय० = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियोँ में इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनोँ विपरीत सी लगने लगती

साधा तन हेरियै निबेरियै सु बाधा वारि,
प्राननि आधार तिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०८॥
हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग-रूँधियै मरौं।
हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी बिधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचभे सौं जरौं भरौं ॥२०९॥
मुख देखैं गौहन लगे फिरैं चकोर भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति रीझि चायनि सौं पायन-परस कीजै,
रसलोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातैं मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसैं हूँ निगोड़े नैन कैसैं चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारे जैसैं जानौ,
दुसह दसा की बातैं बरनी न आवहीं ॥२१०॥
अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी साँज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छबि-हेरे की।

२०८—रसधाम—सुखधाम (राम)। पै—मैं (राम)। २०९—रूँधियै—रूँधिकै (राम)। २१०—लगे०—लगेई फिरैं भौंर-झौंर (राम)। कीजै—काजै (राम)।

हैं। [२०८] रसैबे=रसमय करने के लिए। साधा=साध, उत्कंठा। [२०९] निघटि०=गलती तो हूँ पर समाप्त नहीं हो जाती। भरौं=दिन काटती हूँ।

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रबाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की ।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं बिचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२११॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई ।
रूप की लोभिनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई ।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोडी मरैं अकुलाई ।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥२१२॥

कबित्त

साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै ।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै ।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै ।
पिय-मनसा लौं वारी मिहँदी अनदघन
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥२१३॥

सवैया

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गन छावत ।
देखैं कहा? सपने हू न देखत नैन यौं रैनदिना झर लावत ।

२११—द्रवित—छबित (काँक०) । मूरति—सूरति (काँक०) । अकि—ऐकि (कॉक०) । २१२—आन—औन (काँक०, प्रयाग) । दुखहाई—दुखदाई (कॉक०) । २१४—गन—गुन । सपने—सपनो (राम) । लखैं—परै (काँक०) । तन—तब (काँक०, प्रयाग) ।

[२१०] गौहन = साथ । गोय० = छिपा लूँ । [२११] सौंज = सामग्री । अनेरे = विलक्षण । [२१२] आन = अन्य, बुरी । [२१३] पखान = पत्थर, पक्ष । [२१४] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध

जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत ।
कौन बियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ।।२१४।।

कबित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिंधे,
इते हू पै बिषम बिषाद-जुर लू बरै ।
सूरे पन-पूरे हेत - खेत तैं हटैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे ।
संकट-समूह मैं बिचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान ! कैसैं प्रान ऊबरे ।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ।।२१५।।

दसन-बसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै ।
साँसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धरे
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै ।
जान प्यारी ! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै ।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै ।।२१६।।

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे ! भलें ही लसत हौ ।

२१५–तैं हटैं–मैं लहैं । बापुरे–बावरे । यहै–ऐसी (काँक०) ।
२१६–जु–सु (काँक०) ।

की भाँति खिलने में बाधक बन जाते हैं । [२१५] हेत० = प्रेम का रणक्षेत्र
[२१६] दसन = होंठ । ओली = झोली । हित = निमित्त । फगुवा = होली

जीव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन,
किंतहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥२१७॥

तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही ऊतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलेखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसो बैस,
चित-चढी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥२१८॥

कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चुहल चित्त जगियै रहति है।
तपति - बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥२१९॥

२१७–समाज–समान (काँक०)। एतो–इतौ (प्रयाग)। चोप०–चोप ही हू (काँक०, प्रयाग)। चुहल–चहल (कबित्त)। जगियै–लगियै (राम)।

का उपहार। [२१७] हित = प्रेम के फंदे फेंका करते हैं। दै = देकर (भेजकर)। उघरि=उचटकर, पृथक् होकर। घुरि = घुलकर, भली भाँति मिलकर। [२१८] बैस = (वयस्) उम्र। रावरी० = यदि आप का वश चलै, आप कर सकैं तो। [२१९] केसू = किंशुक के फूल। चाँचरि = (चर्चरी) वसंत के गाने।

सवैया

अकुलानि के पानि परथौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै ।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यौं ठहरै ।
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै ।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिरहा-बिष की लहरै ॥२२०॥

कबित्त

रातिद्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की ।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछू न बसाति यौं उपाव-बल-हारे की ।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की ।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥२२१॥

हाहा करि हारी ननिहारी रूखियै महा री,
मो हू सौं चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावँ न धरैयै नावँ ऐसियौ कहाय हूँ ।
राकानिसि आली ब्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चदा पै न ढरी चंदमुख हूँ ॥२२२॥

२२०—छिनकौ—छिन क्यौं । को ठिक—कोटिक (काँक०) । २२२—ऐसियौ—ऐसे औ (राम) । कहाय०—कहा अहूँ (काँक०, प्रयाग) । ढरि—टरि (काँक०) । हूँ—तूँ (प्रयाग) ।

चहल = चहलपहल या कीच । [२२०] चेटक = कनौड़ा । ठिक ठहरना = ठिकाने लगना । [२२१] बजमारा वज्र के मारे भी जो न मरे (गाली) । जुहार० = सहायता के लिए चिल्लाकर । तिहारे०=आप के किए की । [२२२] ननिहारी=

सवैया ा पान ।

अकुलानि के पानि परयौ दिनराति सु ज्यौं छि॰न मट घोटिबो ।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज के॰ै राखि,
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद ा उर ओटिबो ।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिर॰ अनंदघन,
ौं चक चोटिबो ।

कवित्त

ाति ताती,
रातिद्यौस कटक सजे ही रहै ॰नि पै लोटिबो ॥२२५॥
कहा कहौं गति या बिय॰रफ तकि,
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिर॰ यौं जरयौ करै ।
कछू न बसाति यौं उ॰कारनि सौं,
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जु॰कनि करयौ करै ।
जूझिहै निकसि टेक अनंदघन,
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मि॰बीथिनि ररयौ करै ।
चलैगी कहानी घनआ॰ारी । तेरे,
हाहा करि हारी ननिहारी रूखि॰आँसुनि झरयौ करै ॥२२६॥
मो हू सौं चिन्हारी मा
साधि कै समाधि सी अराधति है सँजोग बियोग दुहूँ ।
अरहि पकरि अति ा न परै समझै कछु हूँ ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ तौ समै लहियै न सुहूँ ।
नावँ न धरैयै नावँ॰झ तैं पून्यो अबूझ कुहूँ ॥२२७॥
राकानिसि आली ब्याली भई ॰सान लै सान चढावत ।
ढरि चल्यौ चंदा पै॰ल घायल चोप बढ़ावत ।

२२०—छिनकौ—छिन क्यौं । को ठिक—कोटि॰प्रयाग) । २२७—तिन—तित (राम) । (राम) । कहाय०—कहा अहूँ (कॉक०, प्रयाग) ।(कॉक०) । प्यासे—प्यारे । बढावत— चहल = चहलपहल या कीच । [२२०] चेट॰टकर । उर०=छाती पर सहना । परैखैं= लगना । [२२१] बजमारा वज्र के मारे २६। बिडरयौ = नष्ट हुआ सा होकर । सहायता के लिए चिल्लाकर । तिहारे०=अ॰ल के समान शीघ्र बीतता था । सुहूँ =

यौं घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत ।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कबित्त बनावत ॥२२८॥
चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयौ ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघरयौ उनयौ ।
चित चाह-निबाह की बात रहौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयौ ॥२२९॥

कबित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं ।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसैं पहचानहीं ।
जान प्रानप्यारे के बिलोकैं अबिलोकिबे कौं,
हरष - बिषाद - स्वाद - बाद अनुमानहीं ।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२३०॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै ।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चायनि लुभाय रहि ना सकै ।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्यौं हा,
कंपित करनि केलि-चाव-दावँ ही तकै ।

चटावत (कबित्त) । २३०—रहैं—फिरैं (काँक०, प्रयाग) । तिन०—तेन हूँ सो दखत भूली की (वही) । अबिलोकिबे—अवलोकिबे (काँक०) ।

(शुद्ध) पूरा, ठीक । कुहू = अमावस्या । [२२८] मायल—प्रवृत्त । मेरे० = अर्थात् मेरी कविता का उद्गार स्वाभाविक है । [२२९] उनयौ = छाना । बिसासन = विश्वासघातों के भय से । [२३०] बिलोकैं० = प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं । साखैं० = वस्तुतः वे ही ठीक आँखैं हैं । अन्य

लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै ॥२३१॥

भूलनि करी है सुधि जान ह्वै अजान भए,
खुलि मिले कपट सौं निपट रसाल हौ।
त्यागहि आदर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित धरि चित उचित लहा लहौ।
जहाँ जब जैसैं तहाँ तब तैसैं नीके रहौ,
सब बिधि प्रानप्यारे हित आलबाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
एहो घनआनँद जू गरैं गुनमाल हौ ॥२३२॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सौं चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौं घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि झुंड हिंडोरनि झूलते।
ग्रीषम तें हतई जु लता द्रुम-अकनि लागतीं ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौं इत के हित की सुधि भूलते ॥२३३॥

कबित्त

उठे बड़े भोर चैन चोर लाह साह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चलि गेह कौं।

२३१—चायनि—चाड़नि (राम)। सरस—परस (कॉक०)। चाव—भाव (राम)। २३२—जैसैं०—तुम जैमे तही तैसें नीके रहौ अजू (राम)। जू गरैं—जा गरैं (प्रयाग। २३३—घन—घिरि (प्रयाग)। अकनि—अगनि (कॉक०)। इत के—इत की (राम)।

तो मोरपख में की आँखें हैं जो व्यर्थ की होती हैं। [२३१] ओप्यौ=चमकाया हुआ। सिहाय=लालायित होकर। मादिक=मद, शराब। ढोरत०=हवा करते हैं। चिबुक=ठुड्ढी। भरीन=भरन अर्थात् वृष्टि द्वारा। [२३२] भूलनि०=मुझे भूलने की ही याद है। मान=रूठना। लहा=लाभ। हित०=प्रेम के थाला। [२३३] हतई=मारी हुई। [२३४] मेह=वृष्टि।

छाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जके थके बैन नैन, निदरत मेह कौं।
दुसह दसाहि देखैं समै बिसमय होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कौं।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि बिषम रच्यौ बिरचि बेह कौं ॥२३४॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागैं न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।
चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन बियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥२३५॥
मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रसरंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
द्वै उर एक भए धुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रबाह बह्यौ है ॥२३६॥
अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहौं जबै तब रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-बिचित्र दसा सों थकौं।
अनदेखें दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न ब्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि बिचारि बिचारि जकौं ॥ २३७॥
स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुखकारी।

२३४–लाह–लाल (प्रयाग)। २३५–पै–कै (काँक०)। यह–हिय (प्रयाग)। २३७–सदेह–सनेह (काँक०)।

बेह०=(वेध) छेदने के लिए। [२३५] देखत०=प्रिय को जब तक देखती हूँ तभी तक प्रफुल्लता रहती है। खागी=लगी हुई, मिली हुई। [२३६] भोय०=भींगकर मिल गया है। [२३७] न ब्यौरि०=विवेचना करके समझ नहीं सकती। [२३८] बीज=(विद्युत्) बिजली। धूम=

कै छकि छायौ सिँगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी ।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी ।।२३८।।

कित जाउँ लै जान-सजीवन! प्रान कौं आन के लेखे न छाँहीं धिजौं।
इहि साल दहीं नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-बारि भिजौं।
दुरि आपुन पै हू इकौसैं मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीभि पै रीभि खिजौं।।२३९।।

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीच तज्यौ तरसै ।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै ।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।
बिछुरैं मिलैं मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै ।।२४०।।

कबित्त

तेरे देखिबे कौं सब ही त्यौं अनदेखी करी,
तऊ जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे ।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाव मोही,
सोही कहि कैसैं ऐसी निठुराई अति रे ।
बिष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान !
जोवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे ।

२३९-छाँहीं-छाँहैं (काँक०) । आपुन०-आप नए हू (कबित्त) । रीभि०-रीभनि (काँक०) । २४०-मीच-मीत (कबित्त) । छटा न-छटानि (काँक०) । दसा-कथा (वही) ।

धुएँ मैं लपटौं की भाँति । सिँगार = शृंगार (कविपरंपरा मैं यह श्यामवर्ण माना जाता है) । [२३९] न धिजौं = नहीं समझा जाता । दुरि० = फिर भी स्वयम् अपनी ही ओर से छिपकर आपसे अकेले मैं मिलती हूँ । डर० = दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीं देख पाती । अपनी इसी विलक्षण रीभ पर रीभकर खीभती रहती हूँ । [२४०] वह = मीन । यह = मेरा मन । न सहारि = सँभाल नहीं सकता । यह = मेरा मन । तपै = तपता है । आवरी = व्याकुल । थरसै = त्रस्त होती है ।

जाहि जो भजै सो ताहि तजे घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, काहू कहूँ पाई पति रे ? ॥२४१॥
लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़यौ सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयौ जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहा लहौं ॥२४२॥
कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।
क्यौं करि बितैयै, कैसैं कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तैं चूकियै।
बनी है कठिन महा, मोहिँ घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकियै ॥२४३॥
अधिक बधिक तैं सुजान ! रीति रावरी है,
कपट - चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।

२४१–तऊ–तू हू (राम)। जाहि०–नहि जौन (कॉक०)। कहूँ–काहू (कवित्त)। २४२–करै–रहै (कॉक०)। सब–बस (कॉक०)। पै–यौं (कॉक०, प्रयाग)। २४३–मति–गति (कॉक० प्रयाग)। ढूकियै–हूकियै (प्रयाग)।

[२४१] पति=प्रतिष्ठा। [२४२] जियरा=जीव, प्राण। हियरा=हृदय छाती। धक्यौई०=जलता ही रहता है। दौ=दावाग्नि। खोयबो०=खाने का ही लाभ होता है, अपने को खो बैठती हूँ। [२४३] आपु त्यौं०=अपनी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाती। रितैयै०=मन कहाँ हलका करूँ।

गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
　　मरै न जियै, सो महा बिषम दया-छुरी ।
हौँ न जानौँ, कौन धौँ ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
　　लखी क्यौँ परति प्यारे अंतर-कथा दुरी ।
कैसैँ आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
　　बनक - निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४४॥

बिष को डवा है कै उदेग को अँवा है, कल
　　पलकौ न बाहै अथवा है चक्र बात को ।
बीजुरी को बंधु किधौँ दुख ही को सिंधु है, कि
　　महामोह-अंध दंड अतन-अलात को ।
द्रोह को दिनेस कै हजार निज देस, किधौँ
　　आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को ।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
　　कैसैँ हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥२४५॥

मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
　　मीन-जल-कथा है कि या हू तैँ कि सेखियै ।
ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा डरै,
　　भरौँ हौँ, न मरौँ जान! हियैँ अवरेखियै ।
पलकौ बिछोह-आगै कलपौ अलप लागै,
　　बिलपौँ सदाई, नेकु तलफनि देखियै ।

२४४—मरै०—मरहि न जियै (राम)। ही०—हो या (प्रयाग)। या-वा (काँक०) बनक—बानक (प्रयाग), बानिक (काँक०)। २४५-डवा—टेवा (कबित्त)। मोह—मोद (काँक०)। तलफनि—तलफति (काँक०)।

जीवन० = मरूँ भी तो उनके बिना कैसे मरूँ। मीचौ = मृत्यु भी। ढुकियै= छिप सकूँ। [२४४] चुगौ=चारा। निपाँख=पंख से हीन, पक्ष या सहायक से रहित। ही = थी। बनक=बन की वस्तु, फँसाने का चारा, सजधज। [२४५] डवा=थैला। अँवा=आँवाँ। चक्र बात० = बवंडर। अतन० =

सूनो जग हेरौं रे अमोही ! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखँ लेखियै ॥२४६॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु बोलति है ।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है ।
रिस-सग महा रसरंग बढ्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है ।
घनआनँद जान पिया के हियँ कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२४७॥

तुम साँची कहौ हित कै चित की कित भूल-भरे इत आय परे ।
कि कहूँ पहिली परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे ।
बलि बैठौ सुजान तौ को बरजै धरि पावन पावन नैन करे ।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहिं रग-तरंग तरे ॥२४८॥

कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी ।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास-डरी ।
इत काहू सौं मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी ।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैंड़े परी ॥२४९॥

अब यौं उर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँन बोलियै री ।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलौं तौ मिलौं, मन तें गस-गूज न खोलियै री ।
दृग देखन की कछु सौं हैं नहीं, इन गौहन भूलि न डोलियै री ।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहैं परेखनि छोलियै री ॥२५०॥

२४७-ननिहारनि—बनिहारनि (काँक०) । रिस०-रिस रग (प्रयाग) २४८—धरि०—धरिपाइन । २४९-भुराई—बुराई (काँक०) । २५०-री—जू (प्रयाग) तें—सों (काँक०) ।

काम के अलातचक्र का दंड है । जंत्र=यत्र । [२४६] भरों=दिन काटती हूँ । [२४७] उर०=मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है । गौहन=साथ । फिरि०=रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई । [२४८] चित की=चित्त की बात । पावन=पैरों को । पावन=पवित्र । [२४९] डरी=डली, टुकड़ा । भुराई०=भोलापन मेरे पीछे पड़ गया है । [२५०] गस=गाँस की लपेट ।

कबित्त

मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
बैरी सु अनग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते प बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन - गवन - सग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥२५१॥

सवैया

बारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-बिकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम,सु बोलनि सीखिबे कोकिला कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छबि आन क्यौं आँखिन छूजति।
एरी बसत-लजावनि कत सौं जान ह्वै मानमई कित हूजति ॥२५२॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५३॥

कबित्त

राधा नवयौवन बिलास को बसत जहाँ,
अंग अग रंगनि बिकास ही की भीर है।
प्यारो बनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहिँ धीर है।

२५१—पारै-पावै (काँक०, प्रयाग)। तैं जु—नेकु (वही)। तीखे—जीए (काँक०)। २५२—आन-और (प्रयाग)। २५३—कर—करि (काँक०)।

[२५१] पिता = अर्थात् मन। [२५२] भजैं = सेवा करते हैं। [२५३] खगे = लगे। गडन = कपोलपाली। [२५४] साँसन = श्वासों से।

सुरनि - समाज साजै कोकिला-कुहूक राजै,
सॉसन अनेक सुख - सौरभ - समीर है ।
स्वेद - मकरंद औ मनोरथ मधुप - पुंज,
मंजु बृंदाबन देस जमुना के तीर है ।।२५४।।

सवैया

निसद्यौस खरी उर-मॉझ अरी, छबि रंग-भरी मुरि चाहनि की ।
तकि मोरनि त्यों चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की ।
चट दै कटि पै बटि प्रान गए गति सौं मति मैं अवगाहनि की ।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिं कराहनि की ।।२५५।।

किहि नेह बिरोध बढ्यौ सब सौं उर आवत कौन के लाज गई ।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-मॉझ भई तिन तें हरई ।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन मानिक ही अनखानि ठई ।
घनआनँद जान अजौं नहिं जानत, कैसे अनैसे हौ हाय दई ।।२५६।।

इत बॉट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसें उराहनो दीजियै जू ।
अब तौ सब सीस चढाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ।।२५७।।

२५४–देखि०–देखें कामहू के हिय मैं न (कॉक०, प्रयाग)। सुरनि–सुरत (प्रयाग)। राजै–जानै (राम)। स्वेद–स्वाद। औ–को (राम)। २५५–ढोर–ठौर (प्रयाग) कौर (कॉक०)। ढोरनि–एरनि (कॉक०)। बटि–वढि (कबित्त)। २५६–किहि–कित (प्रयाग)। नेह–बेह (कॉक०)। जिहि–कित (कॉक०, प्रयाग)। मानिक०–मानि कहा (कॉक०)। ठई–छई (कॉक०)। हौ–है (कबित्त)। २५७–हमारियौ–हमारि हू (कॉक०)।

[२५५] ढोर० = साथ लगे। बाह = प्रवाह। चट० = कमर को फुरती से घुमाकर। जक = रटन। [२५६] हरई = हलकापन अनखानि = रूठना, अन + खानि, खान से अलग। अनैसे = बुरे। [२५७] बॉट = हिस्सा। चाड़ =

बधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, हति कै गति रावरी क्यौँ हूँ न बूझि परै ।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै ।
घनआनँद यौँ अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै ।
दिनरैन सुजान-बियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥२५८॥

कबित्त

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी
तो सो और कौन, मन ढरकौंहीं बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौँ समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै ।
जान उजियारे गुन-भारे अत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै ।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैँ राखौँ पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हाहा ! नेकु आनि दै ॥२५९॥
एक आस एकै बिसवास प्रान गहैँ बास,
और पहचानि इन्हैँ रही काहू सौँ न है ।
चातिक लौँ चाहै घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है ।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है ।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसी तुम करौ तौ बिचारन कौं कौन है ॥२६०॥

२५८–क्यौं०–क्यौँ करि । २५९–एरे–अरे (कॉक०, प्रयाग) । बारी–बीरी (कबित्त) ; वारि (संग्रह) । २६०–एक–एकै (संग्रह) । बिचारन–बिचारिन (कॉक०, प्रयाग) ।

उत्कंठा । [२५८] आवरी = व्याकुल । मूझि० = मुरझा जाता है । न जूझि० = मर नहीँ जाता । [२५९] वारी = निछावर होती हूँ । अंत = अन्यत्र या अंत मेँ । पीठि० = पहचानकर विमुख हो गए या पहचान से विमुख हो गए । [२६०] गहैँ० = ठहरते हैँ । कौं = के लिए ।

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रानप्यार,
कहाँ तैं दुरथौ सो बैरी आड़े आनि ह्वै भयौ ।
जियरा बिचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ ।
रावरे हू रंचक बिचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख यौं दयौ ।
मारि टारि दीजै ऐसो नीच बीच भलो नाहिं,
वहै रसभीनो घनआनँद रहै छयौ ॥२६१॥

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्रानति खरे खगौ ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मोह सौं मढ़े हियो ठगौ ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई - भरे रोम रोमहि अमी पगौ ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥२६२॥

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को ।
राग बिराग धमार त्यौं धार सी, लौटि परयौ ढँग यौं सब ही को ।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६३॥

सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई ।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई ।

२६१–निपट–निपटै (काँक०, प्रयाग)। २६४–लखि–लगि (प्रयाग)।

[२६१] आड़े=सामने। [२६२] खगौ=धँसते हो। उघरे=पृथक् हो। [२६३] सौंधे=सुगंधित पदार्थ। अबीर=अभ्रक का चूर्ण, बुक्का। ही=हृदय। धमार=होली के गान। धार=तलवार। [२६४] बिस०=विश्वासघातिनी (रात्रि)।

अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई ।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६४॥

मन जैसँ कछू तुम्हैँ चाहत है सु बखानियै कैसँ सुजान ही हौ ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौँ लगियै नित लौ ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैँ करि बास निरंतर अंतर गौ ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौँ तकियै अब तौ ॥२६५॥

लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसद्यौस कटै ।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ हिय तेँ न हटै ।
घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै ।
सपनो सो टरै फिरि सौगुनो चेटक बाढत डाढत घोटि घटै ॥२६६॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैँ तजि आपुनपौ झझकैँ कपटी जे निसाँक नहीं ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तेँ दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥२६७॥

कबित्त

करुवो मधुर लागै वाको बिप अंग भए,
याहि देखैँ रस हू मैँ कटुता बसति है ।
वाके एक मुख ही तेँ बाढत बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है ।

२६ —लगियै–लगिबै (काँक०) । २६६–घोटि–घोरि (प्रयाग) । २६७–इत–यहाँ (कबित्त) । लला–कहौ (वही) ।

[२६५] लौ=लगन । अंतर=मन । गौ=चला गया । उघरौ०=जगत् हट गया । [२६६] बिसमै०=बुद्धि एकबारगी आश्चर्य मेँ लीन हो जाती है । चेटक=माया । [२६७] बाँक=वक्र । निसाँक=निःशंक । आँक=अंक, चिह्न । मन=हृदय , ४० सेर । छटाँक=थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग । 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाँछ' होता है अथवा छटा+अंक = शोभा की

सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौं कोटिगुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिँ डाहनि डसति है ॥२६८॥

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैँड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौँ ही,
चातक ! घातक त्यौँ ही तू हू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौँ करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौँ रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६९॥

सवैया

बैरी बियोग की ऊकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौँ, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनँद जाय छए उत, पैँड़े परयौ इत पातकी चातक ॥२७०॥

कबित्त

अतर मैं बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।

२६८–तासोँ–तातेँ (कांक,० प्रयाग)। २७०–ऊकनि–हूकनि (कबित्त) ह्वै–है (प्रयाग)।

झलक। [२६८] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ। सरवग = सर्वांग। लहरि = विष का दौरा। डरारी = डरावनी। बिसारी = बिसैली। डाहनि= नागिन से होड़ लगाकर। [२६९] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले। पैँड़े० = पीछे पड़े। कलापी = मोर। घेरौ० = घेरनेवाली सेना। बजमारे=वज्र मारनेवाला, वज्र का मारा हुआ, दुष्ट। घोरि०=गरज ले। [२७०] ऊकनि=जलन

लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझै नाहिँ,
बूझौ न परति, ऐसेँ सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यात,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैये नेकु,
हमैं खोय या विधि हो कौन धौं लहा लहौ ।।२७१।।

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो। तन आँखिन ढोरत हे ।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सोँ आनि निहोरत हे ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौँ सब भाँतिन भोरत हे ।
मन माहिं जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौँ जोरत हे ।।२७२।।

घनआनँद प्यारे सुजान! सुनौ जिहि भाँतिन हौँ दुख-सूल सहौँ ।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौँ ।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौँ ।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय! दूरि तेँ पाय गहौँ ।।२७३।।

बिरहा-रबि सोँ घट-ब्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इक लौ छतियाँ ।
हिय - सागर तेँ दृग - मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ ।
घनआनँद जान अनोखी दसा न लखौ दई कैसेँ लिखौं पतियाँ ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ ।।२७४।।

२७१–बासी–बाम। प्रवासी–प्रबास (प्रयाग)। सूझै–सूझौ (राम)। २७४–इक लौ–इकली (कबित्त)। नित–तित (काँक०) ओलतियाँ–वैलतिया (काँक०, प्रयाग)।

से। तन=ओर। तक=टकटकी। पैँडे० = पीछे पड़ा। [२७१] अंतर=मन। अंतर=पार्थक्य। जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। खोय=जीवन नष्ट करके। लहा= लाभ। [२७२] ढार=ढलन। मो०=मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे। बिसवासी=विश्वासघाती। [२७३] चहौँ = देखती हूँ। [२७४] घट = शरीर। खिवैं = चमकती हैं। इक लौ=एक ही ढंग से, निरंतर।

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिबासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।
घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी! निज नैन बिसेषि सुजान छकैं॥२७५॥

कबित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! बिछुरैं तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसैं धरौं धीर बीर! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखैं अनदेखैं तहीं अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की॥२७६॥

सवैया

क्यौं हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंड़े परयौ बिरहा बजमारो।
ज्यौ बहरै न कहूँ छिन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तें आवै तँवारो।
हौं ही भरौं इकली, कहौं कौन सौं, जा बिधि होत है साँझ सबारो॥२७७॥

कबित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तैं बढ़नि लियें आई है।

२७५–पियके–पिय तो (वही)। कौतुक–कौतिक (काँक०)। २७६–खरक–बरक (वही)। अनदेखैं–मन देखैं (वही)। २७७–इकली–अकली (कवित), अकिली (प्रयाग)।

ओलतियाँ=छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी। [२७५] भायनि=भावों से भरकर। न ब्यौरि०=निर्णय नहीं कर पाते। [२७६] हिलग=चाह। खरक=खटक। टोह=खोज। [२७७] तँवारो=मूर्छा। सबारो=

जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यो,
　　सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है ।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
　　सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है ।
आली ! घनआनँद सुजान सौँ बिछुरि परैँ,
　　आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥२७८॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकौं नित नींद ही जागनि है ।
हित-पीर सौँ पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहा कहूँ लागनि है ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है ।
सुखमै मुखचंद बिना निरखैँ नख तैँ सिख लौँ बिष-पागनि है ॥२७९॥

कबित्त

घर बन बीथिन मैँ जित तित तुम्हैँ देखौँ,
　　इते हू पै जान ! भई नई बिरहामई ।
बिषम उदेग-आगि लपटैँ अँतर लागैं,
　　कैसैँ कहौँ जैसैँ कछू तचनि महा तई ।
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
　　बचिबो अचभो, मीचो निदर करै गई ।
आनँद के घन लखैँ अनलखैँ दुहूँ ओर,
　　दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥२८०॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौँ, जु गयौ मन मो तजि रोपन तैँ ।
जिय ! ता बिन यौँ अब आतुर क्यौँ तब लौं तनकौ बिरमायौ न तैँ ।

२७९—कहा०—कहौ कहा (कबित्त) । २८०—फूटि०—फूटि फटि (सग्रह) ।

सबेरा । [२७८] अंतक=यम । झालरति=झलराते ही लहलहाते ही । आपौ=अपनापन , आप, जल ('घन' के साहचर्य में) । [२७९] सुखमै=सुखमय । [२८०] अँतर=अंतर, मन । तपनि=ताप । निदर० = निरादर करके मृत्यु भी चली गई । निरदई=निर्दय , निर+दई, दैव के शासन से परे । [२८१]

घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हतैं ।
अधबीच परयौ दुख-ज्वाल जरै सठ ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं ॥२८१॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियो परि बाँचि न देख्यौ ॥२८२॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८३॥

तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख ।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो दहैगो, परयौ लहि तू तौ सदा सुख ।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियें रुख ।
ऐसी सुहाई तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुराइहौ जौ मुख ॥२८४॥

छप्पय

महो-दूध सम गनै, हंस-बग भेद न जानैं ।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानै ।
चदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सँग तोलैं ।
बिन बिबेक गुन-दोष मूढ़-कबि ब्यौरि न बोलैं ।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन ।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥२८५॥

२८३–जनाइयै–जनावत (काँक०)। २८४–दहैगो–पै क्यों न (कबित्त)। सुहाई–सुहाय (वही)। २८५–बग–बक (कबित्त)। सँग–सम (वही)।

बिरच्यौ=उदास हो गया। को०=किस सुख के लिए दरवाजे पर चिपके रहैं। [२८२] पन=प्रतिज्ञा। न अवरेख्यौ = नहीं अंकित की। [२८३] आगौ= अग्रगण्य, बढ़कर। पीर०=पीड़ा नहीं समझता। रागौ=गाना। [२८४] सेल= बरछा (कष्टदायक)। [२८५] मही = मट्ठा। ढाक = पलाश। राँग=राँगा।

कहियै काहि जनाय हाय जो मो मधि बीतै ।
जरनि बुझौं दुख-जाल धकौं, निसिबासर ही तै ।
दुसह सुजान बियोग बसौं ताही सँजोग नित ।
बहरि परै नहिं समै गमै जियरा जित को तित ।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन ।
ऐसी बिरचि बिरचि को कहा सरयौ आनंदघन ॥२८६॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई ।
बंक महाबिष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई ।
यौं घनआनँद चेटक मूरति लै जल अंतर ज्वाल बसाई ।
कैसैं दुराइहैं जान अमोही, मिलाप मैं एतियौ ऊखिलताई ॥२८७॥

कबित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं किये बिसाल जे बिछोह-छत हैं ।
प्रीनस अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान,
बिष - भोए बिषम - बिसास - बान - हत हैं ।
प्यार मैं पटम पूरा, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान ये अमोहिन के मत हैं ।
पौन को प्रबेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैं बीच पारे परबत हैं ॥२८८॥

२८६–काहि–कहा (कॉक०)। जरनि–जरि न (वही)। २८७–जल–जब (राम)। २८८–बिसाल-बिलास (कॉक०)। पटम–परम (कबित्त)।

रूपौ=चाँदी भी। कबि=पंडित। ब्यौरि=विवेक करके। [२८६] बुझौं=बझती हूँ, शिथिल पड़ती हूँ। धकौं=तपती हूँ। बहरि०=समय कटता नहीं। गमै=भटकता है। सरयौ=काम निकला। [२८७] बिष=विष मिला देनेवाली। सुधाई=अमृत से ही। सुधाई=सीधापन। चेटक=मायाविनी। ऊखिलताई=अजनबीपन, उष्णता। [२८८] मिलत०=नहीं भरते (घाव)। अमिलताई=

अनाकनी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै ।
मोन हू सौं देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै ।
जान घनआनँद ! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं मलोलिहै ।
रुई दियें रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥२८९॥

सवैया

घनआनँद जान ! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै ।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै ।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या बिधि सौं भजि कै ।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥२९०॥

कबित्त

रूप-उजियारे जान ! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं ।
सुखद सुधा त हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं ।
सुंदर सुदेस आँखैं बहुरयौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हियें रमैं ।

२८९–जानियैगी–देखियैगी (कॉक०, प्रयाग) । मेरियै–मेरियौ (प्रयाग) ।
२९०–घन सकट–धन सक्ट वही) । पूरन–पूरि न (वही) ।

फटे रहने की बान, खटाई (अम्ल) अर्थात् कपट । छत=घाव । अनेरे=दूर ; विलक्षण । बिसास=विश्वासघात । पारे=डाले । [२८९] आरसी=(आदर्श) दर्पण । त्यौं = ओर । बुलाय०=पाप को बुलाकर तब मेरी मूकता (मौन) बोलेगी । पैज = प्रतिज्ञा । मलोलिहै=पछताएगा । बहरायबे की=बहलाने की; बधिर बने रहने की । [२९०] भजै०=कहाँ भागे । भजि कै=अर्थात् प्रेम करके ।

ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन
रसहि बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥२९१॥

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु बियोग तिहारैं ।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारैं ।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारैं ।
है पतझार बसत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारैं ॥२९२॥
जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ ।
संगम रग अनग उमंगनि झूमि न आनँद-अबुद छावतौ ॥
लाड़िलो जोबन त्यौं अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं प्यावतौ ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥२९३॥

कबित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे ।
हिये मैं उदेग आगि लागि रही रातद्यौस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे ।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे ।
जीबे तैं भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीयहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२९४॥

२९१-हियेँ-हियो (काँक०, प्रयाग)। रसहि-सुरस (कबित्त)। २९२-तिहारैं-निहारैं (प्रयाग)। कढे-कटे (काँक०)। २९३-प्यार-पार (काँक०)। प्यावतौ-भावतौ (कबित्त)।

[२९१] तमैं=अंधकार को। जमैं = यम को। सुदेस=अच्छी बस्ती। भाग०= भाग्य से उद्घाटित, भाग्य से भरी। रस=जल, आनद। [२९२] मनोज= कामदेवरूपी हाथी। पात०=पत्तों का गिरना। डारें=उच्छ्वासरूपी डाल में। [२९२] आनँद=आनंद का बादल, घनानद। अधरासव=होंठ का आसव (शराब)। परेखो=पछतावा। [२९४] देख=देखते हुए। हिराने=खो गए।

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं बेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-ब्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे ॥२९५॥
चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै।
ज्ञान हूँ तैं आगैं जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावँ छ्वै ॥२९६॥

२९५-ध्यावैं-धावैं (प्रयाग)। कैधौं-क्यौं धौं (वही)। २९६-द्वै-ग्वै (संग्रह)। भोग०-भोगलात।

पिराने=दुखने लगे। पल=पलकें। थाके=थक गए, रुक गए। दुहेली=दुःख की। [२९५] जानराय=ज्ञानियों मैं श्रेष्ठ। निरगुन=निर्गुण (ब्रह्म), गुणहीन; आकाश। दई=दैव के शासन को न माननेवाला। [२९६] सोऊ=चकोर भी। एक०=वे एक ही हैं केवल देखने में दो हैं, प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी में अभेद हो जाता है। भोगी०=विषयी भी जिसमें डूबकर वशीभूत हो जाते हैं। विषयानंद को भूलकर प्रेमानंद मैं मग्न हो जाते हैं। भूले=बेहोश, प्रेममग्न। सुधि के०=सतर्क होकर चलनेवाले नहीं चल सकते। कैं=के ऊपर। [२९७] प्यास पाना=प्यास को समझना ('पीर पाना' की भाँति)।

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान है पावत क्यौं दृगप्यास नहीं ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥२९७॥
सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुरयौ कब आय बसायहौ ।
साचनि ही मुरभयौ पिय जो हिय सो सुख सींचि उदेग नसायहौ ।
हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौं बियोग के ताप तसायहौ ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं ख्वाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥२९८॥

कबित्त

जहाँ तैं पधारे मेरे ननननि ही पाँव धारे,
वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड पै मनौ ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फँट छोरि बैठौ,
मोहिं वा बिसासी को हौ ब्यौरो बूझिबे घनौ ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसैं आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२९९॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अक आएँ जोति-जालनि जगत है ।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस - तम - सग रंग - रोचनि पगत है ।

२९८-सींचि-सींचि (वही) । तसायहौ-तपायहौ (कबित्त) । काहि-सौतैं (काँक०, प्रयाग), । २९९-हौ-है (कबित्त) ।

कुसुमाकर=फुलवाड़ी । बास = गंध, पता । [२९८] सींचि=कर । [२९९] पैंड़=डग । झूठ०=झूठ की सत्यता से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा । हित०=

सुनि जान प्यारी ! घनआनँद तें दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है ।
नीठि दीठि परैं खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगें चंद्रमा कलंक सो लगत है ॥३००॥
उघरि नचे हैं, लोक-लाज तें बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे ।
जके हैं थके हैं मोह-मादिक छके हैं अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चाव रे ।
औसर न सोचैं घनआनँद बिमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरबरानि आवरे ।
देखि देखि फूलैं ओट भएँ भ्रम भूलैं, देखौ
बिन देखें भए ये बियोगी दृग बावरे ॥३०१॥

सवैया

कित जोग-कथा सु बृथा ही बकौ, यह तौ तब ही अनुमानि लई ।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई ।
घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई ।
ब्रज खेत हो हेत सुमारनि को तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥३०२॥
चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर ! अजौं दुख पीसत ।
साँस हियैं न समाय सकोचनि हाय इते पर बान कसीसत ।

३००–कलंक–कलंकी (कबित्त) । ३०१–भएँ०–भ्रमन ही (कबित्त) । ३०२–जोग–लोग । बकौ–करौ (कबित्त) । खेत०–देखत होत (वही) ।

प्रेम के कच्चेपन से पुष्ट । [३००] अपूरब=अद्वितीय, पूर्वेतर दिशा । सुधाधर= चंद्रमा, सुधा+अधर, अमृतपूर्ण होंठ । मित्र=सूर्य, सखा, प्रेमी । कला= चद्रमा की १६ कलाएँ, विद्या । नीठि=कठिनाई से । [३०१] मादक=शराब । चीतैं=सोचते हैं, ध्यान मैं लाते हैं । लोचैं=कामना करते हैं । अरबरानि=हड़-बड़ी, घबराहट । आवरे=शिथिल, दीन । [३०२] गौं=घात । सठ०=पूँजी

ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत ।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०३॥
ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि बिदेह को लेखौ ।
देखति जो अखियाँ दुखिया नित बैरियौ की सुपने सु न देखौ ।
हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखौ ॥३०४॥

कबित्त

दूध-धाराधर झूमि झर लायौ ब्रज पर,
पूत भयौ नद कैँ सभागो परिवार को ।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ्यौ निधि मगल अपार को ।
नीरस पर्यौ हो सबै जगत रसीले बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार को ।
जियें औ जियेंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति-मंडन उदार को ॥३०५॥

कुल-उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है ।
राधा नाम नीको घनआनँद अमी को सोत,
रंचक उचारैं रसरानी होति बानी है ।
सबै जग मगल-निकेत भयौ याहि आएँ,
महा-प्रेम-संपति-बिलास-ठकुरानी है ।
गोकुल प्रकास्यौ ब्रजचंद के उदोत आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावल रवानी है ॥३०६॥

३०४–हौ–हे (प्रयाग) ।

की हानि । [३०३] कसीसत=खींचते हो । [३०४] ज्यौ०=जी बहलता नहीं । [३०५] धाराधर=बादल । सभागो = भाग्यशाली । निधि=समुद्र । [३०६] लली०=माता कीति की पुत्री । सिहानी=मुग्ध हो गई । रावल=राधा का

ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन को पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि हीं करिकै, बियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय तास मद फेटिहौं ॥३०७॥

सोए बहुतेरो, मेरो सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग! जगौगे।
पीर-भरे लोचन! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौगे?।
अंग अंग! कौ लौं तुम्हें दहैगौ अनंग कहूँ,
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥३०८॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना बिष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥३०९॥

३०७—तास—ताप (कबित्त)।

समान। रवानी=आनद के प्रवाह में मग्न। [३०७] खरी=उत्कट। अमी०=अमृत का भांडार। उरमडन=हृदय के भूषण, प्रिय। [३०८] रसोत=दारुहल्दी से बनी एक औषध जो आँख के घाव में लगाई जाती है; रसवत्, रसमयता।

कबित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
　　तुम पैंड़े परे, राखि रह्यो यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह भूलि हू न हातो होय,
　　तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
　　याकैं महा मोह मो बिना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
　　तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥३१०॥

बिरह तपत आछे आँसुन सौं चायनि च्वै,
　　पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
　　मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
　　रावरी सौं और हियें मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि वारी,
　　हाहा इन नैननि अतीत किन हूजियै ॥३११॥

चोरथौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
　　चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
　　फाँसी तैं सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
　　उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।

३१०—भूलि—नेक (कबित्त)। याकैं—याको (वही)। ३११—चायनि०—च्वाय चोवा (कबित्त)। वारी-धारि (संग्रह)। इन—नेकु (कबित्त)।

गसौं=ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ [३१०] पैंड़े=पीछे पड़े। न हातो०=दूर नहीं होता। [३११] मंजन=माँजना, रगड़ना। अतीत=अतिथि।

वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिं नाहिं ठौर,
मारत परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ ॥३१२॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे बियोग हरी बरषा-रितु बेलि सी बाल भई ।
हिय-खोपनि चोपनि-कौंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई ।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित्त नई ।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥३१३॥

कबित्त

आरसी उसास ज्यौं तुषार तामरस त्यौं ही,
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत को ।
पावक तैं पारो काँजी छिये हूँ बिचारो छीर,
बारुनी सौं सुचि जैसैं लेखौ कफ गीत को ।
ऐसैं घनआनँद बिचार - वारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत को ।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौं दुहेलो मन मीत को ॥३१४॥

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि बैरी बियोगहिं सौंपनि ।
जाय लुभाय रहे तित ही जित चाड़ भई नई चित-चौंपनि ।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसू रतौहैं किये हिये-खौंपनि ।
क्यौं घनआनँद यौं बचियै जिय जात दिध्यौ अनियारियै कौंपनि ॥३१५॥

३१२–मारत–मानतु (संग्रह)। ३१३–हरी–ही सों (कबित्त), भरी (कॉक०)। खोपनि–पोषनि (संग्रह)। घूमनि–धूमनि (प्रयाग)। ३१५–लुभाय–भुलाय (कबित्त)।

[३१२] छद = छल । अत = निदान, अंत में । [३१३] खोपनि = फटन । कौंप = कौंपल । [३१४] तुषार = पाला । तामरस = कमल । बारुनी = शराब । सुचि = पवित्र । दुहेलो = कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश में आनेवाला । [३१५] नाहर = सिंह । केसू = किंशुक, पलाश । रतौहैं = रागमय;

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल ! अनेकन सौं सरसौ ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौं तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ ।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ तव गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तें दरसौ ॥३१६॥

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सों पागि जगाए ।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए ।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए ।
भोर हूँ ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३१७॥

कबित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी मति गति गई खोय है ।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि सो बसत बन गोय है ।
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन जागैं गयौ सोय है ।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातें नैन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१८॥

सवैया

घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै बिनती कर जोरि करौं ।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अजू धरि ध्यानहिं दूरि तें पाय परौं ।
मन भायौ बियोग मैं जारिबो जौ तौ तिहारी सौं नाकैं जरौंऽरु भरौं ।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख-बीच अमीच मरौं ॥३१९॥

चाड़—चाह (वही) । ३१८—सो—कै । गोय-जोय (वही) । ३१९—अजू-अहो (कबित्त) ।

रक्त से भरा । खोंप = चिराव, बेध । कौंपनि=कोंपलों से , नोकों से । [३१६] त्यौं=ओर । दया० = दया करके । [३१७] चौचँद=क्रीड़ा, कौतुक । का०= किस छल से छूटकर यहाँ तक आए । [३१८] जोय=देखकर । [३१९]

जान प्यारी दूरि ही तैं चेटक चरित कोटि,
मति उपचारिन की हेरत हिराति है।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सौं,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है ॥३२४॥

सवैया

किहि बान ठनी, हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान कर्‌यौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भर्‌यौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच रर्‌यौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम पर्‌यौ ॥३२५॥

कबित्त

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे। कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद ज्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चिनारि दोऊ हैं न हो हमारैं तातैं,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥३२६॥

सवैया

मो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन, ज्यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हू दूनो बिदेह तें दाहक।

३२४—उपचारिन—उपचारनि (संग्रह)। गति—चाह (वही)। ३२५—बान—ठान (कबित्त)। ३२६—कहूँ—कहै (कॉक०, प्रयाग)। चितारि—चिन्हारि (कबित्त)। गतिनि—गति सुनि हारी (संग्रह)।

लगते। हमैं०=मेरा हृदय पहचान पाते। [३२४] छियैं=छूने से। चेटक=माया। उपचारी=औषध का यत्न करनेवाला। [३२५] निहकाम=कामना-हीन। [३२६] गति=दशा; चाल। परनि=पड़न, स्थिति। अरति०=

चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अनाहक ।
प्रान धरोहर है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ॥३२७॥

कबित्त

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं ।
रति - रसना - सवाद - पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सौं माँजिहौं ।
जान प्रानप्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अगनि अनंग-दुख भाँजिहौं ।
कब घनआनँद ढराँहौं बानि देखैं सुख
सुधा - हेत मन - घट - दरकनि राँजिहौं ॥३२८॥

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैं और रुची तौ रुचै न तुम्हैं बिन मोहिं जियौ जू ।
आँखिन मैं ढरि आय रहै सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू ।
सूल भयौ गुन जो जिहि अंग को दीप सो बारि बियोग दियौ जू ।
हाय सुजान ! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू ॥३२९॥
सखि सूधे सुभाय लख्यौ मग जात सो टेढो ह्वै प्राननि बीच खग्यौ ।
मुसक्यानि गई मुसक्यानिहिं मैं मन सो धन नेकु निहारि ठग्यौ ।
घनआनँद भोजे कटाछन सौं रस पागि लई तन स्वेद उग्यौ ।
जसुदाकृत पुन्य के पुंजनि को फल पापनि मो अँखियानि लग्यौ ॥३३०॥

३२७—धरोहर—हरौहर (कबित्त) । ३२८—पाय०—पिय चूमे (काँक०) । देखैं सुख—देखें (कबित्त) । राँजिहौं—सुठि राँजिहौं (वही) । ३२९—ढरि०—ढरिआई (कबित्त) जिहि—तिहि ; ३३०—प्रानन—मारग । (कबित्त) । कटाछन—कहा छिन (काँक०) । पापनि—पापिनि (राम) ।

अड़ती है । [३२७] बलकै = बकता है । बलाहक = मेघ । बिदेह = कामदेव । अनाहक=व्यर्थ । [३२८] राँजिहौं=टाँका लगाऊँगी । [३२९] खग्यौ=धँस गया । [३३०] रूखे = उदासीन ; चिकनाहट से रहित । चिकने = मिलकर , चिकना-

हाय बिसासी सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकने अति, सोहौ ।
आपुनपौ अरु आप हु तें करि हाते हतौ घनआनंद को हौ ।
कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तें न बिछोहौ ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥३३१॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद कला-कुल-धारी ।
सोभा-समूह भई घनआनँद मूरति अंग अनंग-जिवारी ।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार बिलास मैं रासबिहारी ।
मेरो मनोरथ हू बहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥३३२॥

अक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ ।
देखि रहौं, अनदेखें दहौं सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ ।
जान ! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरु काहि सुनाऊँ ।
यौं घनआनँद रैनदिना नहिं बीतत, जानियै कैसें बिताऊँ ॥३३३॥

गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जनावति हौ न ।
दुराव कियें कहा होत सखी ! रँग और भयौ ढंग ऊतर कौ न ।
हिय धरको, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानिहु तौ न ।
बढायहौ बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥३३४॥

कबित्त

कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानै मन वारे का कहैऽब को सुनै सु कौन ।
निधरक जान अलबेले निखरक-ओर,
दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हौ न ।

३३१–बिसासी–सनेही (कबित्त)। ३३२–अग–रग (वही)। ३३३–नहिं०–न बितीतत। ३३४–जनावति–जतावति (कबित्त,)।

हट से युक्त होकर। करि० =दूर करके। [३३१] जा० = जिसके कारण। जसोदा =यशोदा (यश देनेवाली)। जिवारी=जिलानेवाली। मनोरथ हू० = मेरे मनोरथ (मन के रथ) को भी चलाइए जैसे अर्जुन का रथ चलाया था। [३३२] अंक=गोद। [३३३] धरको=धड़कन। तौ० =तो नहीं थी। [३३४]

पर - दुख - दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौंहैं देखि कै बिबस बकि परी मौन ।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३५॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखास मरौं, इत की तौ चितार रही न उनै ।
रचि कौन से घात लियौ है हियो, बिन हेरैं न जीव बिचारि गुनै ।
घनआनँद ऐसी दसानि घिरैं दुखिया जिय सोचनि सोस धुनै ।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३६॥

कबित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे ।
गुपत लपट जाको तम ही प्रगट करै,
जतननि बाढै, गुरु लोग अर कै रहे ।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे ।
बारिद सहाय सौं दवागिनि दबति देखौ,
बिरह-नवागिनि तैं नैना झर कै रहे ॥३३७॥

सवैया

सावन-आवन हेरि सखी ! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी ।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ।

३३५–कहैऽब०–कहौऽब को सुनौ (कांक०)। कहा०–कहैऽब। को–को (कबित्त) ३३६–दिखास-दिखाई। चितार–चिन्हारि। घिरैं–घिरयौ (कबित्त)। ३३७–तम–तन (राम), तुम (कांक०)। नवागिनि–दवागिनि (राम)।

न्हानै = छुटपन में। निखरक = खटक से रहित। [३३५] ढरकौंहैं = ढलनेवाले। भसम = भस्म करनेवाली। [३३६] मुख = मौखिक प्रेम या मुँहदेखा स्नेह [३३७] गुरु = बड़े। अर = अड़ करके। [३३८] सम्हारि = जब सँभाल

बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी ।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी सौं लागति आँखिन देखी ॥३३८॥

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियैं परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ॥३३९॥

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ ।
स्रौन-सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहाँ प्याऊँ ।
हाय मरयौ मन पीर तैं प्रीतम ! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ ।
चाहत जीव धरयौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३४०॥

निसद्यौस उदास उसास धकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी ।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी ।
इत की गति कौन कहै को सुनै मन हा मन मैं यह पीर पकी ।
भरियै जिहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी ॥३४१॥

प्यारे सुजान के पानि को मडन खडन खेद अखंड-कला को ।
ज्यौ सरस्यौ जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को ।
सूछम सो, पै भरयौ अतुलै सुख रंक बिभौ जुग नेन-पला को ।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ, बिछोह मैं ज्यावत मोह छला को ॥३४२॥

घूमत सोभ लगे कम पागनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी ।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान ! सुमूरति माँगत नेरी ।

३३९—के-की (काँक०, प्रयाग) । अँसुवानि०—अँसुवानहिँ (कबित) ; ·· कौं (काँक०) । ३४०—स्रौन—कौन (काँक०, प्रयाग) । मरयौ—मनौ (प्रयाग) ३४२—खेद—बैद (कबित्त) ।

करनी चाहिए तभी भूल बैठे । [३३९] परजन्य = पर्जन्य, बादल , पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए हो . जीवन = जल; प्राण । [३४०] स्रौन= श्रवण, कान । सौं = शपथ । [३४१] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध । टकी = टकटकी । [३४२] मंडन = गहना । हेत० = प्रेमरस की वृष्टि । पला =

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निबेरी ।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि, भूलौ नहीँ सुधि लेहु सबेरी ॥३४३॥

ललचौँहीँ लगौँहीँ, भईँ तुम सौँहीँ इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीँ ।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अरराय परीँ ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैँ मिलैँ गाढ-जँजीर-जरीँ ।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैँ तुम्हैँ देखि अरीँ ॥३४४॥

कबित्त

सुरति करौँ तौ बिसरे जौ होहि जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग- मूरति महा रहैँ ।
सुधि करैँ वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैँ ।
गूढ़ि गति ब्यौरिबे की भूलियौ सुरति मोहिँ,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैँ ।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिँ,
सुधि तिन ही मैँ तेई सुधि मैँ सदा रहैँ ॥३४५॥

सवैया

जब तेँ तुम आवन-आस दई तब तेँ तरफौँ कब आयहौ जू ।
मन-आतुरता मन ही मैँ लखौ मनभावन ! जान सुभाय हौ जू ।
बिधि के दिन लौँ छिन बाढि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू ।
सरसौ घनआनँद वा रस कौँ जु रसा रस सौँ बरसायहौ जू ॥३४६॥

अगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई ।
नैननि बोरति रूप के भौँर अचंभे-भरी छतिया-उथराई ।

सरस्यौ–तरस्यो (संग्रह) । २क–रंग (राम) । ३४५–महा–कहा (काँक०) । ब्यौरिबे–धारिबे (संग्रह) ।

पलड़ा । [३४३] घूमत=चक्कर खाता हुआ । थान=स्थान, डेरा । नेरी=निकट रोर=शोर । सबेरी=शीघ्र । [३४४] अरराय०=टूट पड़ीँ । [३४६] जान=ज्ञानी । बियोग०=वियोगदूर करोगे । रसा=पृथ्वी । [३४७] सुथराई=सफाई

जान - महा - गरुवे - गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई ।
पैने कटाछनि ओज मनोज के बानन बीच बिधी मुथराई ॥३४७॥

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं ।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं ।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं ।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४८॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवनि-औधि बदी ।
बरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै बाढति है इत सोच-नदी ।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी ।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ॥३४९॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की ।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रबीनन की ।
बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की ।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥३५०॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ ।
सब ही बिधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ ।
घनआनँद चातक-पुजनि पोषन, तोपन रंक महा धन हौ ।
जन-सोच-बिमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३५१॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै ।

३४७—हेरि० -घेरि रह्यो (वही)। ३४८—रुमाच—रोमाच (प्रयाग)। चाहनि—बाहनि—(काँक०)। टग—टक (प्रयाग पल—पग (काँक०)। माँपति—नाँपति (प्रयाग)।

उथराई=किंचित् उठान । रत्यौ० = रति भी थोड़ी पड़ गई। मुथराई=कुंदपना [३४८] टग = टकटकी। [३४९] मैन = मदन, काम । मदा= मद, शराब । बहीर = सेना का सामान । जाति० = समाप्त होने पर आ रही है । [३५०] निधि = समुद्र । [३५१] पतिलीन = प्रतिष्ठाहीन ।

रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै ।
टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै बिहारियै उमंग - रंग भीजियै ।
पयोद - मोद छाइयै, बिनोद कौं बढाइयै,
बिलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५२॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई ।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय ! कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई ।
बातैं बिलाय गईं रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई ।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५३॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तैं महासुख पायौ ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रसमै घनआनँद छायौ ।
ये गुन क्यौं न रचै सजनी ! उन रंग-रचे अधरानि रचायौ ॥३५४॥

कबित्त

जीवहि जिवाय नीकें जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिँ जथारथ करत हौ ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ ।
चाह - बेली - सफल - करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर - आलबालहि भरत हौ ।

३५३–उमग्यौ–उमड्यौ (कॉक०, प्रयाग) । गुन–गुनि (सग्रह) रचै–सचै (प्रयाग), सजीवन सों (कॉक०) । उन०–उन रूप रचे (प्रयाग), उनसों परचे (कॉक०) । ३५४–सुजान–जू जान (कॉक०, प्रयाग) ।

[३५२] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान । पयोद० = घनआनँद, आनँद के घन । [३५३] संभ्रम=भ्रांति मात्र । [३५४] सिरावन=ठंढा करनेवाले ; दूर

प्यार सौँ छकौंहीँ ढरकौँहीँ मृदु बानि-बस,
बिबस ह्वै आप ही तैं मो पर ढरत हौ ॥३५५॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुदर स्याम ।
चलौ चलियै मिलि दैन बधाई भई अब ही सब पूरनकाम ।
जसोमति सौँ झगरा अगरो कार लेहु रुचै जिहि जो अभिराम ।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५६॥

मुख-चाहनि कौँ चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना ।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना ।
घनआनँद जान तुम्हैं बिन यौँ गति पंगु भई मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना ॥३५७॥

कबित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तैं ।
जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख साँच्यौ हँसि जोहतैं ।
अचिरजनिधि है तिहारी सब बिधि, प्यारे !
कृपा होति फलित ललित लता छोह तैं ।
मिलन तैं ज्यौं ही बिछुरन करि डारयौ. वारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तैं ॥३५८॥

सवैया

रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौँ अंगनि मोरति है ।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है ।

३५८–है–हौं (कबित्त)। ३५९–हियौ–हियै (राम)।

करनेवाले। [३५५] निधि = भांडार। छकौंहीँ = छका देनेवाली, संतुष्ट करने वाली। [३५६] अगरो = बड़ा, भारी। [३५७] चाहनि = देखना। सुधि-आवति ना = होश नहीँ आता। [३५८] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण। [३५९]

अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई, हियो अनुराग लै बोरति है ।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैं डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३५९॥

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली ।
मद जोबन, रूप छकीं अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली ।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-बेलि फली ॥३६०॥

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढै कि जियैं गहि काढै ।
अमीनिधि पै बिष-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढै ।
सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढै ।
बियोग मैं बैरिनि बाढति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ बाढै ॥३६१॥

हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै ।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै ।
बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियो रस पागै ।
सुहाग सों ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ॥३६२॥

कबित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय थाँवरो ।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि उर 'गोरी गोरो' जपै नित साँवरो ।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनें सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास ब्रज-भाँवरो ।
कलाधर केलि को, सुफल बानी-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो ॥३६३॥

३६२–हियो–हियैं (कबित्त)।

को०=रति भी क्या है। [३६०] रली=युक्त। चोज=उमंग। [३६१] या=रात। [३६२] मिहीं=पतली। अनी=नोक। सुहाग=रोली की बिंदी। [३६३] थाँवरो=थाला। भाँवरो=आवर्त। नाँवरो=नाम।

सहज सुहायौ राधा-माधौ मन भायो,
कुंज-पुंज छबि छायौ घनआनँद-निवास है।
रितुनि को चिंतामनि रसनि सौं रह्यौ सनि,
देखैं बनै जैसो बनि राजै सु प्रकास है।
दंपति-सुजान फूली केलि कै फलित सदा,
कलित ललित लीला-बलित-बिलास है।
ऐसे बनराजै बरनत बानी क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजै चाहत बिकास है ॥३६४॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ, होति रही है सदा चित-चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रची ती।
प्रान-पपीहन के धन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियें, हित की गति कौं, सुख सौं नित बीती ॥३६५॥
जित चाहत हौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६६॥
हम सौं हित कै कित कौं नित ही चित-बीच बियोगहि बोय चले।
सु अखैबट-बीज लौं फैलि परयौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौ ख्वाय कै रोय चले ॥३६७॥

३६४-राधा०-राधा माधव के मन भायौ कुंजपुंज छायौ (राम)। दपति०-दपति सुजान केलि बेलि (वही)। रितुराजै-रितुराजौ (वही)। ३६५-धन-घन (कबित्त)। ३६६-जित-जिन (प्रयाग)। पाय-पाई (वही)। ३६७-नित-हित (कबित्त)। छाय-छाँह (प्रयाग)। हम-हमैं (वही)। ज्यौ-जौ (वही)। ख्वाय-हाय (संग्रह)।

[३६४] कै=द्वारा। बनराज=वृंदावन। [३६५] धुर की=अत्यंत। ती=थी। हित=प्रेम [३६६] बिसास=विश्वासघात। झला=झड़ी, वृष्टि। पाय०=समझ में नहीं आती [३६७] अखैबट=अक्षयवट। समोय=अनुरक्त होकर।

कबित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै,
ढकी लाग-आग की लपेटैं जीव ही सहै।
वे तौ गौं गहेले हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है।
पातनि तकन, मूल भूले फिरैं फूले बृथा,
आली! बनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्यॉं घर बसे, ह्यॉं उजारि बसि को रहै ॥३६८॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन उरे हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू।
उर बैठे दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि खवावत हौ, छाहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तें आन जू।
सूझत हौ बूझन हौ चाखत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥३६९॥

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाए हौ हमैं दई।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई।

३६८-गहेले-गवेले (कॉक०, प्रयाग)। ३६९-मिलन-मिले न (प्रयाग)। उरे-वुरे (वही)। घुरे-धुरे (वही)। बैठे-बैठि (राम)। आपै-आयै (प्रयाग)। चाखत-चाहत (कबित्त)।

[३६८] गौं०=अपनी घात को ही समझनेवाले। तावरी०=गरम क्यों होती है। घर०=दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। [३६९] उरे=दूर, पृथक्। मौन०=आपके निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं। [३७०] जई=अंकुर।

इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई ।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥३७०॥

सवैया

नीके नए अति जी के लगौं हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक ।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहौरि दै हाथ सज्यौ भटनायक ।
पौन-तुरंग चढ्यौ बनि यौं बनितानि अहेरैं कढ्यौ दुखदायक ।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३७१॥

राधे सुजान इतै चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है ।
माखन तें मन कौंवरो है यह बानि न जानति कैसें कठोर है ।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिबे को न जोर है ।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है ब्रजचंद सु तेरा चकोर है ॥३७२॥

नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हैं ।
घनआनँद झूमि कटाछन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हैं ।
जिय-बेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन सायक हैं ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटे निबटे नटनायक हैं ॥३७३॥

राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजें अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै ।
दीठि मिलें मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है ।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३७४॥

वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं बिचारो अमी ।
अरु बंक बिसाल रँगीले रसाल बिलोचन मैं न कटाछ कमी ।

३७१—चाप—चाय (प्रयाग)। ३७२—इतै—चितै (कबित्त)। है यह—है यह (प्रयाग)। सु—पै (कबित्त)। ३७३—हैं—हो (कबित्त)। सायक—लायक (वही)।

[३७१] चहौरि=सँभालकर। [३७२] कौंवरो=कोमल। [३७३] निखरे०=साफ-सुथरे। निबटे=पूरे, पहुँचे हुए। [३७४] सैननि=सकेतों से।

घनआनँद जान अनूपम रूप तेँ रीति नई जिय माँझ रमी ।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३७५॥

सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ भरि पूरि रहे जिहि रंग झिलौ ।
इहि लायक हौ बहु भायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ॥
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ ।
हम और कछू नहि चाहति हैँ छिनकौ किन मानस-रूप मिलौ ॥३७६॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस को बन सो दरसै सो ।
जे बनमानस ते सर से तिन सौँ मिलि मानस क्यौँ सरसै हो ।
हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै मो ।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान जहाँ घनआनँद कौँ बरसै जो ॥३७७॥

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित ।
काननि पैठि कै प्राननि बेधति, दीसै नहीँ अकुलानि यहै नित ।
क्यौँ भरियै, करियै सु कहा, हमैँ आनि बनी इन लोगन सौँ इत ।
भीर मैँ हाय अकेले अधीर हैँ रीझहि लै रिझवार गए कित ॥३७८॥

चलिबे मधि बैठि रहे हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ ।
किहि ठाँ तिहि बास कहाँ पुनि सो इहि संग बिचारि कै रंग रलौ ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पोष पलौ ।
जग मैँ छल सो बलि जीवन कौँ कल सौँ तुम ही किन ताहि छलौ ॥३७९॥

३७५–अरु–बरु (काँक०) । ३७६–बसु०–वहौ नायक (कवित्त) । ३७७–को बन सो–के बन सो (कवित्त) । जहाँ–हहा (वही) । ३७८–नहीँ–नई (सग्रह) यहै–नितै (वही) । ३७९–ठाँ०–ठानहिँ (कवित्त) ।

[३७५] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी । [३७६] झिलौ=लीन होते हो । ऊखिल=अपरिचित । हेत०=प्रेम ठानते हैं । मानस०=जिस रूप में मन आपको देखना चाहता है । [३७७] मानस=मनुष्य । मानस=मन । बन०=बनमानुस । सर०=साधारण तलैया । मानस=मानसरोवर । [३७८] भरियै=दिन काटूँ । [३७९] जग०=संसार में मेरा यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्यों नहीं

जात चले उहि गावँ सबै जिहि ठावँ को ठीक न सूझत काहू ।
कैसो मिलाप लियौ इन मानि मिले मग आनि अनेक उलाहू ।
पौन के भौन रहे बसि गौन मैं आपनी आपनी चाह उमाहू ।
आहि नहीँ मधि सोई सुजान जु है घनआनँद ओर-निबाहू ॥३८०॥

मंजुल बंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तेँ ।
द्यौस मैं रैन सो चैन को ऐन, पै जोति जग्यौ जगि दंपति-देह तेँ ।
हास-बिकास बिलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तेँ ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर डुलै बिजना भरि नेह तेँ ॥३८१॥

कबित्त

मद - उनमाद - स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं ।
सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हू सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं ।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३८२॥

सवैया

बात के देस तेँ दूरि परे, जड ता नियरे सियरे हिय दाहैं ।
चित्र की आँखिन लीनैं बिचित्र महारस-रूप-सवाद सराहैं ।

३८०–सूझत–बूझत (कबित्त)। मिलाप–मिलाय (प्रयाग)। मानि–भौन (कबित्त)। मग–मन(वही)। पौन–कौन(वही)। जु–सु (वही)। ३८१–जग्यौ-पग्यौ (कबित्त)। डुलै–ढुलै (वही)। ३८३–जड़०–जियरे सियरे हियरे दुख दाहै (कबित्त)।

छल लेते। [३८०] जिहि०=जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीं। उलाहू=(उल्लास) उमंग। उमाहू=उत्साह। ओर-निबाहू=अंत तक निर्वाह करनेवाला। [३८१] बंजुल=अशोक। अछेह=अखंड। अदेह=कामदेव। तेह=प्रचंडता। [३८२] अवार०=देर तक। भोए=युक्त। [३८३] कठप्रेम=वह प्रेम

नेह कथैं सठ नीर मथैं हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं ।
क्यौं घनआनँद भीजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहैं ॥३८३॥
हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी ।
टपक्यौई परै यह अंकुर ओस लौं ऐसी कछू रस-रीति घुरी ।
बिछुरें कित सांति मिले हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी ।
तुम ही तिहि साखि सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी ॥३८४॥
नाहिं पुकार करै सुनि आहिन, को कित ह्वै केहि दोष लगैयै ।
संगम पै बिछुरे मरियै, इनि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै ।
ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै ।
ह्वै घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥३८५॥
आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहि लौटनि ।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि ।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझे बिन ढग अनंग सरौटनि ।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३८६॥
द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनै ।
कहि कौन सकै दुति लेस कछू जिहि राधिका मोहन हू बरनै ।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छबि छाकि धरे मधुरे चरनै ।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनै ॥३८७॥
लाल लपेटी सुही जुही-माल सिँगार को साज बिराजति खोही ।
पीरी पिछौरिया फेट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही ।

३८४–टपक्यौई–पटक्यौई (कबित्त)। ओस०–ओसलौं (वही)। साखि–साधि (सग्रह)। ३८५–ह्वै–है (कबित्त)। केहि–किन (काँक०)। इनि–यहि (कबित्त) ३८७–दुति०–उहि बेस (कबित्त)। सरनै–बरनै (काँक०)।

जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [३८५] पुकार=आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [३८६] करौटनि=करवटें बदलने में। सरौटनि=शिकन, सलवट। [३८७] मधुरे=प्रिय। बनराज=वृंदावन। [३८८] सुही=

फूले कदंब-तरैं करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छबि सोही।
आजु सखी घनआनँद चाहि न जानति हौऽब कहौं तब कोही ॥३८८॥

स्याम-मनोहर आगम रूप कि सोहे महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि की यह रासि किधौं हरि हेरनि गैनी।
अंजन सी मनरंजन है ब्रजचंद-चकोरन कौं सुखदैनी।
भाव बढ़ै चित चाव चढ़ै रँग-रैनि किधौं रसराज की रैनी ॥३८९॥

कबित्त

अभिलाषी प्रिय के दृगनि प्रतिबिंबवारी,
मन बित जामैं अद्भुत चित-चोरना।
किधौं साँवरे की गोरी भावना सरूप धारयौ,
ताही मैं दिपति जान प्यारी छबि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि लालरानि भोई,
सातिक सिथिल होति नीबी बर-डोरना।
राग अनुराग भाग सुभग सुहाग-भीजी,
रीझनि छबीली झूलै सरस हिंडोरना ॥३९०॥

सवैया

कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।

३८८—लाल-भाल (कबित्त)। चाहि-वाहि (वही) कहा०-कहौं कत तोही (वही)। ३८९-आगम-ता तम (कबित्त)। हेरनि-हेरत (वही)। ३९०-मन-मानि (राम)। बिन-बिनु। ३९१-हिय-हित (कॉक०)। औसर-औरस (प्रयाग)। तनकै-तनकौ (कबित्त)।

लाल। खोही=पत्तों की छतरी। पीरी०=पीला दुपट्टा। [३८९] सैनी=श्रेणी, पंक्ति, समूह दृग तार=पुतली। गैनी=मार्ग। रँग=आह्लाद। रैनि=रजनी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज=शृंगार (श्याम वर्ण)। रैनी=खूँटी [३९०] छबि०=शोभा की पराकाष्ठा। सातिक=सात्त्विक भाव। नीबी=फुफुँदी। [३९१] चेटक=मायावी। चेत=चेतना।

चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकै मिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ ॥३९१॥

जान हौ ए जू जनाऊँ कहा, न गए कितहूँ जु कहौं इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत न्यौं उर तें कढि यौं उर मैं कब छायहौ।
मोसौं बिछोहि कै मोहि भया करि मो मधि रावरे सूधे समायहौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥३९२॥

दृग दीजियै दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै।
करि बंदन दीन भनै सुनियै दुख-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ॥३९३॥

कबित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध जाहि,
आए सो हरष औ बिषादहू न गत को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन मैं,
रस छाकै ताकै वाहि ठगिया ठगत को।
ताही न्यारो मिल्यौ जौ बिचारो सो तौ ताहू मधि,
ताहि रग ढग राखैं सुमन पगत को।
ऐसी दसा जाग्यौ भाग जागैं जौ जगाय भेंटै,
प्रेम मैं जगत जिहि खेम मैं भगत को ॥३९४॥

सवैया

प्रानंनि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।

३९२–जनाऊँ–जनाहु (कबित्त)। समायहौ–सुभाय हौ (वही)। आय–आप (प्रयाग) ३९३–तहीं–नहीं (कॉक०)। दुख–भ्रम (कबित्त)। स्याम–मीत (प्रयाग)। ३९४–जाहि–ताहि। बिषादहू०–बिषादन दगत। वाहि–ताहि। जाग्यौ–भाग्यौ। खेम–प्रेम (वही)।

[३९२] जान=ज्ञानी। सिरायहौ=ठंढी करोगे। [३९३] मोर०=मोरपख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै=नाचे, चचल बना रहे। खटक=वेदना। [३९४]

मोहन रूप सरूप-पयोद सौं सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौं ।
नावँ धरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नावँ सहौ क्यौं ॥३९५॥

सोरठा

जौ लौं जगै न भूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख ।
वही होय अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥ ३९६ ॥

कबित्त

वेई कुंज-पुंज जित तरैं तन बाढत हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन ज्यौं गहि गौ ।
सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सींची जिन,
वही जमुना, पै आली ! वह पानी बहि गौ ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
ताहि छियेँ देह दैया महा दुख दहि गौ ।
वेई घनआनँद जू जीवन कौं देते तिन,
ही को नावँ मरिनि के मारिबे कौं रहि गौ ॥३९७॥

इतै अनदेखेँ देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकनी ही सौं बाँध्यौ दीठि-तार है ।
जान घनआनँद बिनाऽब सुबनक हेरैं,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है ।
छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है ।
तेरैं बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
बिरही बिचारिनि की मौन मैं पुकार है ॥३९८॥

३९६–भूल–मूल (राम) । होय–होत । ३९७–ज्यौं–सो (वही) आली–हेली । ताहि–नाहिं । नावँ०–नाम मारिनि । ३९८–बिनाऽब–बनाव (सग्रह) ।
ठगिया=ठग । [३९५] पीरक=पीड़ा देनेवाले । [३९६] मूल=अर्थात् ईश्वर ।
[३९७] गहन=ग्रहण की दु.खदायिनी छाया । बीचि=लहर । [३९८] बहरा-

सवैया

लरिकाई-प्रदोष मैं खेल खग्यौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ ।
बहुरौ करि पान बिषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धुंध सौं चातिक-नेम लयौ ।
जड जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तें भोर भयौ ॥३९९॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै ।
धर अंबर खूँदि खगै न कहूँ जियरा इन सोचन बीच बरै ।
घनआनँद जौ गुरु-ज्ञान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै ।
मिटि जाहिँ बिचार-बिकार सबै तब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥४००॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन भाव अनेक लै एक से पोहै ।
दै मन मजु सुमेर तहाँ बिबि ओर गतागत कै न बिछोहै ।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै ।
या बिधि जो सुमिरै घनआनँद मो मत साधु-सिरोमनि सो है ॥४०१॥

खंजन ऐसे कहा मनरजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सो ।
कंजनि लाज को लेस नहीँ, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो ।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो ।
मीत सुजान सिरावत तो दृग है घनआनँद रग अपार सो ॥४०२॥

३९९-खेल०-टोड लग्यौ (राम) । बहुरौ-बहुरयौ । धुंध०-धूँधरयौ (वही) । ४००-बरै-जरै (राम) । ४०१-लै-सो (राम) । ४०२-तो-मो (राम) । है-छै (वही) ।

वनि=बहलाना या बहरापन [३९९] प्रदोष=संध्याकाल । बिषै=विषय, भोग-विलास । तमी=रात्रि । धु ध=माया मे आच्छन्न । केसनि=वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैं। [४००] पारद=पारा । धर= पृथ्वी । अबर=आकाश । खगै न=लगता नहीं । रसायन=वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो [४०१] गुन=गुण, तागा । सुमेरु=माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया । बि बि=(द्वि) दोनों । गतागत=जाना आना । [४०२]

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासोँ नहीँ ठहरै ठिक मान को, क्यौं हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान ह्वै, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की निन्नि तान भरी, कित भौँहनि तानति ।।४०३।।

कान्ह ! परे बहुतायत मैं अकिलैनि की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौँ घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ।।४०४।।

कबित्त

पानिप अनूप रूप जल कौँ निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कैँ चाय ढरि कै ।
परथौ जाय रगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार ताहि कैसैँ सकै तरि कै ।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौँ,
बिबस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै ।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तैँ बच्यौ को सिवार कौँ पकरि कै ।।४०५।।

सवैया

कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिँ संग, तिहारी तरंग तकैँ मति बौरै ।
गढौ बतियानि, मढौ घतियानि, डढौ छतियानि, निदान की ठौरै ।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ।।४०६।।

४०३–है-हे (राम) । ४०५–कैँ–कौँ (राम) । ४०६–लखावत–लगावत (कॉक०) ।

बान०=बाण मारकर जिलाना । मार=काम । [४०३] निहोरिहै=खुशामद करेगी । ठिक=स्थिरता । सठ०=बुरा रोष । [४०४] अकिलैनि=अनन्य प्रेमिका की । बिमनैन=विमनस्कों की । [४०५] सिवार=केशों का उपमान । [४०६]

कबित्त

इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै।
पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर बिचित्र अंग भाव रंग सौं सनै।
मुरली मैं गौरी धुनि ढौरी घनआनँद तें,
तेरे द्वार ठठकनि ऊठम घने ठनै।
हाहा हे सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नेकु,
आवन गुपाल देखि लीजै बन तें बनै ॥४०७॥

भएँ अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
ताहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे।
जीवै जग मारि राख्यौ झूठियै प्रतीति साँच,
साँचै झूठ जानि कछू औरै अभिलाखि रे।
कृपाबल पैयै कैसें पगुहि न नँघैयै निधि,
ऐयै जैयै भूलनि सुध्यें सुधाहि चाखि रे।
जीवन मरत जौ पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं समीपैं करि राखि रे ॥४०८॥

सवैया

ब्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई।
न परेखो कछू पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहिं को सिखवै सुखई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूलि सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए हैं दई ॥४०९॥

४०७–ढौरी–टेरि (राम)। तें–हैं। ठठकनि–टहकनि। ऊठम–ऊधम (वही)
४०८–पगुहि०–पगुहीन धैयै (राम)। ४०९–हैं–ए (राम)।

निदान=रोग के कारण की पहचान। [४०७] सुही=लाल। गौरी=गौरी राग।
[४०८] भूलनि०=सुध को भूल जाना। मीचु=मृत्यु। [४०९] भाँति=ढग।

कबित्त

बासर बसंत के अनंत ह्वै कै अत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है ।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है ।
प्यारे घनआनँद सुजान ! सुनौ बाल-दसा,
चदन-पवन तैं पजरि सियराति है
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के सग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥४१०॥

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन-
रातैं जैसैं बीतत सुने तैं डफ-घोर कौं ।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जात,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं ।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं बियोग-झकझोर कौं ।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४११॥

दोहा

गोरी ! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप ।
दावानल सो पान ये करत बिरह-सताप ॥४१२॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु हा आपुन-त्यों बरसौ ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहन सौं सरसौ ।

४११–पैठि–बैठि (प्रयाग)। चुहल–चहल (राम)।

ठकुराइति०=बड़ों की प्रीति। [४१०] राति=अँधेरा ही अँधेरा। पजरि०=प्रज्व-लित होकर ठढी पड़ जाती है। [४११] घोर=ध्वनि। चुहल=विनोद। [४१२]

रसनायक मायक, लायक हौ कितहूँ झर लाय कहूँ तरसौ ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौ ॥४१३॥
इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देखि सकै न बडो बिधि कूर, बियोग-समाजहि साजि पिलै ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥४१४॥
मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा ।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा ।
जिय जाचक ह्वै जस देत बडो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा ॥४१५॥
अतर हौ किधौं अत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं ।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं ॥४१६॥

कबित्त

होनि सौं मढयौ पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायबे बनाई रहठानि हैं ।
साँचो झूठ देखियै सुपेखनै लौं पेखियै हो,
सोई लखि लैहै जाहि पूरी पहचानि है ।
वही घनआनँद ह्वै पोखत सुजाननि कौं,
नीर न्यौरि छीर पीबो हंसनि की बानि है ।

४१३–निबाहन–निबाहिनि (राम) । ४१४–कहौं–कहा (प्रयाग) । ४१७–लौं–लै (राम) । हो–है । लैहै–जैहै । पीबो–पीयै । उपजि–उपजै (वही) ।

स्यामघन=श्रीकृष्ण ; काले बादल । [४१३] तरसौ=अरत करते हो । [४१४] बास=गंध । पिलै=टूट पड़ता है । धीर० = धैर्य को निगल जाती है । [४१५] अपढार=बेढंगे तौर से ढलनेवाला । लहा=लाभ । [४१६] अभागिनि०=मैं अभागिनी बिपत्ति सहूँ । अकि=अथवा । [४१७] होनि=अस्तित्व, सत्ता । अनहोनि=अन-

कैसो अचरजखानि दीसि परयौ जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकी उपजि बिलानि है ॥४१७॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, बहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ ।
भरि नैन हियैं हरि सूझ सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ ।
घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तैं सिख लौं चरचाय रह्यौ ।
लखि सूनो सकै कित रावरो ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१८॥
मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जो बटिहै ।
बहु ओरनि लै भटकावत यौं, अटकावत क्यौं न कहा घटिहै ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहै ।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै ॥४१९॥

कबित्त

रास मैं सुरस दसौ दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चुहल चोख आप-आपनी मची ।
सुधाई सौं भरे सुर साँचे साधे लघु गुरु,
भीजी धुनि सुनि मति राग-रंग ह्वै रची ।
पौन गौन थकि स्रौन रूपियै जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मौन कछू लै पची ।
रीझि घनआनँद रही है छकि छाग तहीं,
यातैं अब रीझनि कहूँ न रंचकौ बची ॥४२०॥

४१९-पटिहै०-पढिहै बढि (काँक०) । बटिहै-चटिहै (कवित्त) । यौं-क्यौं (वही) । ४२०-मैं०-सिंधु (राम) । चोख-चोप । ह्वै-है (वही) ।

स्तित्व, असत्यता । रहठानि=रहने का स्थान । साँचो०=यह असत् सत् दिखाई पड़ता है । सुपेखनै०=देखने को तो यह सुंदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते, जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है । उपजि०=इसकी उपज ही नाश है । [४१८] चौचँद=बदनामी । करि०=नाक के बल । [४१९] पन की०=इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी । बटिहै=समाप्त हो जायगी । खोरि=दोष । नम०= अर्थात् मरणासन्न हो जायगी । [४२०] मौन०=मौन ने

सवैया

हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिं कहूँ ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिं कहूँ ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे थरु नाहिं कहूँ ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिं कहूँ ॥४२१॥

कवित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हौ हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू ।
बिनाई कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहैं क्यौं न करौ दान प्रान-परितोष जू ।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू ।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥४२२॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचै मन,
मौन होत सोई सुख मुख पुनि ल्यावई ।
मौन मिहीं बात है समझि कहि जानौ जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैं भरि प्यावई ।
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझ घनआनँद निबेरै याहि न्यावई ।
कहैं कौन मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिं मारि मारि ज्यावई ॥४२३॥

४२१-रची–चची (कॉक०)। सौन०–औ जडकियै ' राम)। याने–पावैं (वही)। ४२२–हौ–हो (राम)। बिनाई–बिना ही। दान–दीन (वही)। ४२३–मौन होत–मोहन हौ (राम)। कहँ०–कहै कोऽब (वही)।

ही वह स्वाद कुछ पचा पाया। वह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है। [४२१] मन०=आपका मन कहीं अन्यत्र अनुरक्त नहीं है। [४२२] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। [४२३] मिहीं=सूक्ष्म, गूढ़। कान०=जिसके नेत्रों में कान हों, जो

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बातहि पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो सूछमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥४२४॥

कबित्त

सुधि करें भूल की सुरति जब आय जाय
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातें सुधि भूलै सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसें सुधि हौन कौं।
मेरो सुधि-भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ !
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥४२५॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यों जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तबहीं तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही झूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥४२६॥

कबित्त

रसिक रँगीले भलो भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैं।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।

४२४–सूछमता–है छमता (कबित्त) ४२५–अचौन–उचौन (काँक०)।

देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले। [४२४] अलेख=ब्रह्म। [४२५] अचौन=आचमन, पीना। [४२६] झूलिहै=समाप्त हो जायगी। [४२७] अचाह०=

चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-सगी, मनमोहन त्रिभंगी. मेरे
प्राननि अधार नंदनदन उदार हैं ॥४२७॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बडो कित ब्यौरि सकौं हित की बतिया।
घनआनंद जीवन-प्रान लखौ सु लिखी किहि भाँति परै पतिया ॥४२८॥

कबित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखौ,
सब ही के जिय नेकौ मीच सौं न है चिन्हारि।
होनि सो सही है अनहोनि हूँ वही है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न मोच कोउवै बिचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कहै कौन.
ऐसी जाहि सूझै दीजै प्रानौ तिहि बूझि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनंद मैं,
उघरि छए हैं पै पसारो आपनो पसारि ॥४२९॥

सवैया

पीठि दियैं सब दीठि परैं निमुहैं, जग डीठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही नितहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनंद औरनि सौं मुख फेरै ॥४३०॥

४२८—बरराय—बहराय (काँक०)। ४२९—सो०—सहो ह्वैहै (राम)। प्रानौ०—प्रान तेहि चूकि। पसारो—पसारि (वही)। ४३०—नितही—तिनही (राम)।

जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए कल्पवृक्ष हैं। [४२८] बरराय०=बर्राने लगती है। [४२९] मीच=मृत्यु। चूकि=भूलकर, बिना बिचार किए ही। [४३०] निमुहैं=बिना मुँह के। सकेरै=सकेलै, एकत्र करे।

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत ।
चाहनि चोप उमाह उमग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत ।
हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत ।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या बिधि आरत ॥४३१॥
हम आपनो सो बहुतेरो पचैं कि बचैं अपलोक तें एकौ घरी ।
न रहै बस नैसिक तान भिदैं छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी ।
घनआनँद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री ।
कित जाहिं कहा करैं कैसैं भरैं यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥४३२॥

कबित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भरयौ,
पानिप अपार धरें जोबन अदेह को ।
उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को ।
दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिं देहिं स्वाद-सुख आनँद अछेह को ।
मोहिं नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग अंग अररात रग मेह नेह को ॥४३३॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छई ।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजीं अभिलाषनि लाख जई ।
घनआनँद ही उनए इन मैं बहु भाँतिनि ये उन रग रई ।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अँखियाँ रसरासि भई ॥४३४॥

४३२–पचैं–करैं (राम) । अपलोक–अवलोक तें–(काँक॰) ; अबलोकनैं (सग्रह) । ४३३–धीर–धरि (प्रयाग) । ओरनि–बोरनि (काँक॰) ।

आगर=अत्यत । [४३१] आरति॰=आप वेदना से रहित हैं । [४३२] अपलोक=वदनामी । [४३३] अदेह=रूपहीन । अपूरब=अपूर्व, अनुपम, पूर्व से इतर दिशा । अछेह=अछेद्य, अखंड । [४३४] जईं=अनुरक्त हुईं ।

छप्पय

चलनि रही मॅडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यौ तू।
बृथा बाद पचि मरयौ सबद-सोधौ न धरयौ तू।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कबहूँ न करयौ तू।
अजौं चेति जड जीव किनि कित आयौ जैबो कहाँ।
चित चलाय नित ह्वै अचल, घनआनँद चलिबो जहाँ ॥४३५॥

सवैया

जिय सूझ करौ हठि बूझत जौ कि बृथा रुचि बीच पच्यौ परि क्यौं।
अरु भूलि गई सुधि ऊतरु की अपराधन तैं न बच्यौ डरि क्यौं।
घनआनँद त्यौं सुनि लेहु अबै सु बजायहै साँच खच्यौ टरि क्यौं।
कित कौं करतूतिहि खोरि लगै नित या बिधि मोहिं रच्यौ हरि क्यौं ॥४३६॥
हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं ब्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सम्हारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥४३७॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कों गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छियै किहि घाँ सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिसमै ॥४३८॥
रस-रंग-भरो मृदु बोलनि कौं कब काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू।

४३५—तू-तैं (प्रयाग)। ४३६—जौ-हौं (राम)। त्यौं-तौ। सु०—सुनै जाय है। टरि—ढरि। लगै-लई। हरि—मरि (वही)। ४३७—आँसू-आँसुनि (कॉक०)। सम्हारै-सहारै (राम)। ४३८—छियै—छिपै (राम)।

[४३५] छल=भ्रांति, मिथ्या। सबद०=वास्तविक बात की खोज। चित०=चित्त मैं विचार करके। [४३६] पच्यौ=परेशान हुआ। साँच०=सत्य असत्य कैसे होगा। खोरि=दोष। [४३८] घाँ=प्रकार, तरह। [४३९] रस=प्रेम, जल।

अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तें मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना परि रीझनि छायहौ जू ॥४३९॥

कबित्त

बीतनि को रूप तूँ ठहरि हेरि गए बीते,
ऐसें जरि जग मैं निसा अहा बिताव रे।
ठहरनि बातनि तें बहुरि अहुरि नीकैं,
निहचै सौं हियो भरि संसय रिताव रे।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हेत-बात सुनि हाहा चेतहि चिताव रे।
ऐसें रंग रचै जौ बचै तौ घनआनँद ह्वै,
तचै कैसें ताप आप जीवन हिताव रे ॥४४०॥

सवैया

चितवै जिहि भाँति, सकौ सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानत जीवत कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।
घनआनँद कैसें सुजान हौ जू उहि सूखनि सोच न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ ॥४४१॥

कबित्त

सबद-सुरूप वहै जानन सुजन चहै,
अचिरज यहै और होत सुर लाग मैं।
बेद-भेद ताके जानि परी यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाव पावत बिभाग मैं।
पूरि तानैं बानैं पहचानैं घनआनँद जौ,
पाँवड़े करत रीझि प्रानपति आगमैं।

४४०–तूँ०–झूठ हेरि (राम)। गए–गयो। जरि–जगि। निसा–कहा। निहचै०–नह्यो सो न हियो मार। तचै–नचै (वही)। ४४१–चितवै–बितवै (प्रयाग), चितयौ (कबित्त)।

[४४०] बीतनि=क्षणभगुरता। बहुरि०=अहुर बहुर कर, किसी प्रकार बचकर। रिताव=खाली कर, दूर कर। [४४१] न हितात=अच्छा नहीं लगता। बनाय

सूछम उसास गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन,
पौन पट रॅग्यौ पेखियत रंग-राग मैं ॥४४२॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, जु परयौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गनै गन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे बिधि आनंद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही ॥४४३॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलॅ अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हौं तॅ बिना तुम्हैं मरि मरि जावॅ,
एक गावॅ बसि बैरी ऐसी राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढौं दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसारी यह कसकै नई करक।
आनॅद के घन हो सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसॅ सोई है कृपा-ढरक ॥४४४॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भरयौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस कीच मैं।
ऐसो अचेत जु सॉच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल जरयौ अब होत हरयौ हरि नेकु, कृपा घनआनॅद-सीच मैं ॥४४५॥

४४२—यहै—चहै (राम)। ताके०—ताको जानि परयौ। पावत—तिन ही। बानै—ठानै। पेखियत—देखियत (वही)। ४४३—गनै—गुनै (राम)। ४४४—बैरी०—ऐसी जियै (राम)। ४४५—न—सु (राम)।

कै=कृत्रिम। [४४२] सुर=ध्वनि। लाग=प्रीति। आगमैं=आगमन मैं। गुन=सूत। [४४३] तन=ओर। बिसरै०=विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति मैं लगे रहते हैं। [४४४] मरक=खिँचाव। करक=पीड़ा। [४४५] भ्रम=मिथ्या।

आयौ महारसपुंज भरयौ घनआनँद रूप-सिँगार को मौरै ।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरै ।
मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैं धुनि मैं मति बौरै ।
आज की मोरनि की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरै ॥४४६॥
धर अंबर तैं जु कछू लखियै सु समै गुन-बीतनि रूप बन्यौ ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक ठान ठन्यौ ।
घनआनँद तौ सहजैं सब जान तकौ रहि जानि जौ बोध जन्यौ ।
उत की इत की सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४७॥

दोहा

सहज रचै सोई बचै, बृथा पचै संसार ।
सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्यौहार ॥४४८॥
सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारैं सीस ॥४४९॥
हरि तुम सौं पहचानि को, मोहिं लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यौ फिरौं, बसौं कृपा के देस ॥४५०॥
मोसे अनपहचान कौं, पहचानै हरि कौन ।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४५१॥

कबित्त

दीनौ जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-सर भरे हो ।

४४६–को–के (राम) । ४४७–धर–घर (काँक०) । समै–सबै (राम) । ठहरै–बहरै (वही) उतकी०–उन की इनकी (राम) । ४४८–संसार–ह्वै सार (राम) । ४५०–फिरौं–रहौं (राम) ।

[४४६] मोरै=मुकुट ही । सुदेस=उत्तम । [४४७] गुन-बीतनि=गुणरहित । चेटक=माया, जादू । बोध०=बोध उत्पन्न हो । [४४८] सहज=सरल, स्वाभाविक [४५०] कृपा०=कृपा में ही । [४५१] कृपा०=जैसे आपके नेत्रों में कृपा के

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अग-अग-संग रंग ररे हौ ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरथौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४५२॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा-नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५३॥

सवैया

रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी ।
समुहाय तहाँ हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की ।
उत मूठि-गुलाल उठै उकसैं सु लगै पहिलैं छतिया दुचकी ।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥४५४॥

कबित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वैहै खेह खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहैगो नहीं रे नाम ।
फूलै भ्रम भूलै कित झूलै मोह फंदनि तू,
तनकौ सम्हारै किनि प्रानन के सगी स्याम ।
जागत हू सोवै खोवै समै सो रतन बौरे,
पाय घनआनँद तचै अचेत काम धाम ।
आएँ औधि-औसर उसासहू उसरि जैहै,
धरेई रहैंगे धनधाम धधे धूमधाम ॥४५५॥

४५२–जनाय–जनाई (राम)। जुगति–सुगति (काँक०)। सर भरे–गद्गभरे (राम)। रग–रस (वही)। ४५३–बरसौ–दरसौ (राम)। बरसौ–दरसौ (वही)। ४५५–मोह–भ्रम (संग्रह)। उसासहू–उसासहि (राम)।

कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन में है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५२] ढरहरे=द्रवीभूत। आनँद०=आनंद के बादल; घनआनंद। निरभर=पूर्ण, निर+भर=जो भरा न हो। नीठि=किसी प्रकार भी। [४५३] ऐन=घर। हित=प्रेम या लिए। [४५५] खेह=धूल। हाते=दूर

सवैया

संग लगे फिरौं हौं अलगो रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नीरस रांचनि हौं सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परयौ तुम तैं घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत से हौ कहा वहौ सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५६॥
मन मेरो अनेरो घनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौं ।
सुखकंद अहो ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही सौं लरौं ।
अनमोह भए जु न मोहत हौ मनमोहन या बिधि याहि भरौं ।
घनआनँद ह्वै दुख-ताप तपावत क्यौं करि नावँहि नावँ धरौं ॥४५७॥
रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैंगी ।
पावन-साध असाध भई इहि जोवनि यौं मरिबोई करैंगी ।
हाय महादुख है सुखदैन बिचारौ हियैं भरिबोई करैंगी ।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान कहा अँखियाँ बरिबोई करैंगी ॥४५८॥
सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न थिरै ।
निसिद्यौस घुमेरिनि भौंरि परयौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै ।
घनआनँद भीजत सोचनि सूखत थाकनि दौरि सम्हारि गिरै ।
तन तौ यहि लाज बिरथो घर मैं बन मैं मनमोहन-संग फिरै ॥४५९॥

कबित्त

बिरह की बेदनि तें गिरे जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आएँ दुख दूनो है ।
बिलखत छाँड़ी द्यौस चारिक चिन्हारी करि,
बारि दियौ हिये मैं उदेग को अभूनो है ।

४५६–अलगौ–अलगै (राम) रहौं–हिहौं (काँक०)। वहौ–कहौं (राम)।
४५७–सौं–तें (खोज)। अनमोह–मनमोह (काँक०)। भरौं–अरौं (खोज)
तचावत–तपावत। क्यौं०–भावतै (वही)। ४५८–यौं०–कौं (कबित्त)।

होकर। काम०=कामना के घर में। उसरि०=छिन्नभिन्न हो जायगा। धूम०=धूम-धक्कड़। [४५६] गुन=गुण; डोर। खगावत=मिलाते क्यों नहीं; कसते क्यों नहीं। [४५७] अनेरो=दुष्ट। [४५८] साध=उत्कंठा। असाध=असाध्य। भरि

ऐसैं कैसैं कौ लौं रूँधि राखियै पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद बिहूनो है ।
बसत हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४६०॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तें हटै नहिं हाय हितैबो ।
लेखो कहा हमसौं है तुम्हैं हमहीं है घरी जुग कोटि बितैबो ।
पूरि परेखैं रह्यौ चित-चातक हौ घनआनँद कैसें रितैयो ।
आँखि बिसासिनि आस गही न तजै इतन पर बाट चितैबो ॥४६१॥

देख तुम्हैं तब लेखें लिखैं लिखिबा लखिबे भई आहि अहा गति ।
एक सा आँसुनि बाढि बहैं न रहैं झरना लौं गहैं सु महा गति ।
यौं दिनरात मरैं घनआनँद देखौ बिचारि कै नेकु हहा गति ।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहौ नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति ॥४६२॥

हौ सु भले हौ कहा कहियै हम आपने पूरन भाग लहे हो ।
आँखि निगोड़िन हा यह दोष अजू तुम तो गुन-गाँस-गहे हो ।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय कित उमहे हो ।
लै मन बैठि रहे तब त्यौं अब क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हो ॥४६३॥

रूप-सुदेस को राज करयौ करौ छत्र-गुमानहिं सीस धरे जू ।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चोप चहूँ दिसि चौर ढरे जू ।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरे जू ।
राचत हैं तुम्हैं जाचत यौं ब्रजजीवन रावरी आस करे जू ॥४६४॥

बांई=दुख से दिन काटना । [४५९] घुमेरिनि०=बेसुध रूपी भँवर में [४६०] गिरे=शिथिल हो रहे हैं । गात=गात्र, अग । अभूनो=आग । दुहेलो=दु.खमय । बिहूनो=विहीन, रहित । [४६१] हितैबो=प्रेम करना । [४६२] अहा गति=आनद की स्थिति । महा गति=तीव्र चाल । हहा गति=हाय दुर्दशा । कहा गति=क्या वश ! । [४६३] गाँस=फदा । [४६४] दिन-दूलह=प्रतिदिन दूल्हा,

तुम्हैँ देखि जियौँ पियौँ रूप-अमी घनआनँद प्यारे सदा सौं कहौँ ।
मिलि जाहुँ तुम्हैँ रँग नीर लौं पाय पै हाथ मिलौ नहीँ तासौँ कहौँ ।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौँ कहौँ ।
सुनि ऊतर देत न तौऽब कहौ कि तुम्हारे सवादहि कासौँ कहौँ ॥४६५॥

प्रीति के दाँवहि बैर सो लैन कौँ ताकि रही भरि कै अभिलाखनि ।
चातक-चोपनि चाहति ही घनआनँद अंग सवादिली चाखनि ।
लाज-लपेटी लखावति क्यौँ करि सील मैँ साह तेँ सौगुनी साखनि ।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर वहै हियरा धरि राखनि ॥४६६॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाष-महोदधि-मंजन कै ।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ बसी मन रंजन कै ।
तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै ।
घनआनँद-रूप निहारन कौँ ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६७॥

नंद के आनँदकंद उदै ब्रजचंद बधाएँ सबै मिलि जाहीँ ।
नैन हियैँ सुनि ही कै जियैँ अभिलाष चकोरनि तेँ अधिकाहीँ ।
दूध दही रु मही की नदी वही गोकुल गाँव-गरथारिन माँहीँ ।
आनँद को घन चोपन सौँ अति ही बरसै सरसै हित-छाँहीँ ॥४६८॥

गोकुल-घाँ तेँ कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है ।
रानि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है ।
चाह-समुद्र सुनेँ सरस्यौ घनआनँद नैनन कौँ रसकंद है ।
आजु लखौ सजनी रजनी-दुति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६९॥

कबित्त

गोकुल-गरथारिन मैँ महा गहमह माँची,
गोपी-गोप उमहे बधाएँ ब्रज-ईस को ।

सदा दूल्हा । [४६५] अपढार=सरलता से ढलना । [४६६] सवादिली = स्वादिष्ट । साख=प्रतिष्ठा । [४६७] पद०=चरण कमलों से । [४६८] गरथारि= छोटी गली । [४६९] घाँ=ओर । सुछंद । पूरब०=पूर्वजन्म के भाग्य से ।

एक एक बीचि-बीच सायर असेष जहाँ,
सूखौ राखि बोरैं तीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है बिथक्यौ है ओज,
खोजैं सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पपीहा,
सोभासीवँ जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७४॥

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं नित नाथ बिसासनि मारत हाय तऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुबास भरी घनआनँद है ढुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरी रसना सौं कहा कहियै बकि सोई उठै कित कौ कस कीजै ॥४७५॥

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब हो बिधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम पिकीन की प्यास भर्‌यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥४७६॥

नीकी नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति ओप बढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि फँदी फिरि चोपनि मोहन मंत्र पढ़ी है।
रीझनि भीजे सुधा-रत स्याम सदा घनआनँद गँड़ अढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ी है ॥४७७॥

प्रेम के पाले परै जिय जाको धरै कल क्यौं अकुलानिमई है।
दीसत देखौ दसौं दिसि प्रीतम कौन अनूठियै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यौ तब लाज सम्हारै सु बीति गई है।
जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भेंट भई है ॥४७८॥

४७४–सुजान०–सुरूप को पपीहा करि (संग्रह)।

अमुना=इस प्रकार। [४७४] बीचि=लहर। सायर=सागर। महिमंड=महिमा-वान्। सिखंड=मोरपख। [४७५] खिसियौ=रोष से हिचकती हुई भी। कस०=खींची जाय [४७७] अढ़ी=लगी। [४७९] बनायनि=भली भाँति।

तजि के रगनि संग अलीन लै झूलत फूल सौं प्यारे बनायनि ।
सामुही ह्वै सधि बैठति द्वै इक झूलति आप गेसावति पायनि ।
साँवरे छैल तहाँ रचि ताकहीं यौं मिहँदी लौं लग्यौ घुरि चायनि ।
गीतनि भास भिदैं घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७९॥

हरि राधा जहाँ जहाँ राजत हे वह ठौर जथारुचि रजन हैं ।
सु सँजोग बियोग महारस रूप तिही तित ही मन मजन दैं ।
न मिलै बिछुरै कतहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन जैं ।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४८०॥

गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करैं अनिमेखनि ।
मडित मोद अखडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि ।
मोहन ही सबके धन जीवन प्रीति रची रसरीति बिसेखनि ।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह, असेखनि ॥४८१॥

तुम्हैं प्रान लगे तुम प्राननहूँ मनमोहन मोह न मानियै जू ।
निठुराई सौं कौ लौं निबाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनियै जू ।
दरसे तैं कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातिक दानियै जू ।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियै जू ॥४८२॥

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ही राखौ ।
बंसी बजावनि रीझि रिंगावनि पाननि ताननि खेत ही राखौ ।
एहो सुजान सुनौ घनआनँद चातक त्यौं अब हेत ही राखौ ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसें सचेत ही राखौ ॥४८३॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि बेस-बिलास निहारियै हूँगे ।
कानन बीच बसैं भरि प्यास अमीनिधि बैननि पारियै हूँगे ।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सुसम्हारियै हूँगे ।
प्रान धरे मुरझैं उरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥४८४॥

४८५-अचंभे०-अभै भरयौ लेखिय (सग्रह) ।

[४८०] मंजन=मार्जन, स्नान [४८१] असेखनि=परीपूर्ण । [४८२] सोहन= शोभन । अरसौ=आलस्य मत करो । घुरि=घुलकर । भास=ध्वनि । [४८३]

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं ।
संग सदा तित को सुधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं ।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचभे भरयौ लखि ऊखिल-घाँतैं ।
यौं घनआनँद-ओर उनै उघरै किनि रे मन! तू सब घाँतैं ॥४८५॥

कबित्त

मेरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद इते पै साखि सुनी प्रानपति है ।
अतर मैं रहौ पै न अतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँपति है ।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते तौ तुम जानौ अति है ।
कहौ हाय बूझति हौं सूझति मलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो तिहारी यह गति है ॥४८६॥

सवैया

भरि-जोबन-रग अनग-उमंगनि अंगहि अंग समोय रहे ।
उर फागुन-दावँ को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे ।
घनआनँद चोपहि चोपनि लै उर चौचँद नेकु न सोय रहे ।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥४८७॥

गोरे कपालनि लाला गुलाल की भोय रही कछु पौंछौं पाछैं ।
दर्पन देखि हियैं हुलसै सुलसै छबि छ्वै मुसक्यौंही कटाछैं ।
ओठ पै मानिक-ओप अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं ।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्रानंनि तोखति पोखति आछैं ॥४८८॥

कन-स्वेद भयौ सु बिराजत यौं उडुपौ नभ तारनि संग भयौ ।
मद लाली चढै अति ओप बढै मुखचंद तैं प्रात-पतंग भयौ ।

४८६-उइयौ०-नव (सग्रह)।

रिँगावनि=चलाना। [४८५] ऊखिल=अपरिचित। घाँ=ओर। [४८६] साख०=
मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८७] चौचँद=बदनामी। भोय०=डूब रहे। [४८८] पौंछौं०=

भयौ आदिहि कज कुमोदनि के, रति-अत चहैं भ्रम-भग भयौ ।
घनआनँद ओज मनोज-उमगनि अगनि अद्भुत रग भयौ ॥४८९॥
लाल के तोही मैं प्रान बसैं तुहूँ जानति प्रीति की रीति सयानी ।
ज्यौं व्रजजीवन जीवत तो बिन त्यौं कहा मीन मरै बिन पानी ।
तो हित-प्यास भरयौ घनआनँद आस पपीहन तें अधिकानी ।
राधे हठीली कहैं किनि हे, कब तें यह रूठनि है मनमानी ॥४९०॥
मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै ।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन त्यौं तब ही कबहूँ को हिलै ।
घनआनँद रोमहि रोम भिजै रसरग-समोदनि अग झिलै ।
उनसौं मिलि जौ बिछुरै सजनी सु न जानति हौं किहि भाँति मिलै ॥४९१॥
परदेस बसे बस ह्वै बिधि के जिय जावत यौं कछु नाहि नई ।
जु परै सु सहैं कित कासौं कहैं जग दीसि परयौ सब सुनिमई ।
घनआनँद जान मिले न कहूँ इहि हेत सम्हार अचेत भई ।
यह तौ सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मीत लई ॥४९२॥
नित हौ चित हौ हित हौ कित हौ इत हौ इतने पै उदेग दहैं ।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनद कासौं बिथाहि कहैं ।
बसि एकहि बास बिसास करौ बस नाहिं बिसासी बना सु सहैं ।
हम सग किधौं तुम न्यारे रहौ तुम सग बसौ हम न्यारी रहैं ॥४९३॥
देखि बिचारि बिचारै सचारहि कौनहीं कौन सवाद पग्यौ तू ।
राचि पच्यौ बहु प्रीति सुरीतनि लाग लच्यौ अलगाय लग्यौ तू ।
यौं भ्रम भूलि परयौ स्रम कै, अब लौं सुधि ना बिन बोध ठग्यौ तू ।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौं जड क्यौं न जग्यौ तू ॥४९४॥
कीर बैर बिसासिनि बँसुरिया सब ही कुल मैंड की एँड दली ।
मँडराति रहै धुनि कानन मैं मन प्रान पगे रहैं रग रली ।

४९५—धुनि—पुनि । मन०—व्रजमोहन (संग्रह) ।

पौंछने पर भी । कार्छै=पास । [८९] उडुप=चंद्र । पतग=सूर्य । [९०] तिन०=उनकी ओर होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का हिल रहा है । झिलै=कष्ट सह रहा है । [४९४] लच्यौ=नमित । [४९५] भटभेर=मुठभेड़ ।

घनआनँद क्यौं बचियै भटभेर अचानक होत गरयारँ गली।
कित जाहिं कहा करैं कैसें रहैं मनमोहन गोहन लागि छली ॥४९५॥
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं अंगनि जोति सुरंगनि जागति।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा किये पिय-लोचन पागति।
और सिंगारनि की सब ही रहौ याहि बिचारत ही मति रागति।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतिन के तरवानि तैं लागति ॥४९६॥
ब्रज की छबि हेरि हरयौ हित होत, खली मिलि जूथनि जूथ जुही।
घन घोरि घुरे चहुँ ओरनि तैं बरसैं परसैं सरसैं सु फुही।
तिहिं कुंजन मैं रसपुंज-भरे बिहरैं हरि-राधिका चोप उही।
घनआनँद नैन-पपीहन कौं नित ही रसरासि रहौ समुही ॥४९७॥

कबित्त

भले ही रसीले अरसीले सुनि हूजियै न,
गुननि तिहारे उरभयौ है मन गाय गाय।
काननि सुनो है तैसैं आँखिन हू देखैं जातैं,
दीखत नहीं औ सब ठावँ रहे छाय छाय।
ऐसैं घनआनँद अचंभे सौं भरे हौ भारी,
खोए से रहत जित तित तुम्हैं पाय पाय।
एक बास बसे सदा बालम बिसासी, पे न
भई क्यौं चिन्हार कहूँ हमैं तुम्हैं हाय हाय ॥४९८॥

सवैया

सुनि कै गुन रावरे बावरे लौं उरझानि सुरूप की बानि परी।
दरसे बरसे सरसे परसे घनआनँद रीझ बिकानि परी।
प्रगट्यौ न कहूं अब यौं उघरे गति जानि परी जु न जानि परी।
रसदानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९९॥

४९७–घुरे–जुरे (सग्रह)। ४९८–अचंभे–अभेद। (सग्रह)।

गरयारँ=गलियारा छोटी गली में। [४९६] तरवानि०=पैरों से आग लगती है, नख से सिख तक भस्म होने लगती हैं। [४९७] फुही=सीकर हलकी वृष्टि। उही=वही। समुही=सम्मुख। [४९८] बालम=प्रिय। [४९९] बाँट=हिस्से में।

घातनि ठानत बातनि छानत चायनि दायनि जाचि रहे हौ ।
यौं घनआनँद चाँचरि देत न हाथ लगौ छल बाचि रहे हौ ।
छाय तऊ उघरेई परौ हित-काचे तऊ पन पाचि रहे हौ ।
फाग सो खेलत डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥५००॥
ठगई धरि कै लगई जु करी न गई अजहूँ करौ घातैं पढ़े ।
षचि कै रचि कै सचि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै बातैं पढ़े ।
बिन लेखे मिलौ न बड़े लिखधार कहौ हित-मूरति कातैं पढ़े ।
घनआनँद छावत भावत हौ दिन पारि इतै उत रातैं पढ़े ॥५०१॥
रग भरयौ उन सूखति हौं उन सौंधो रच्यौ भई हौं नकबानी ।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो दृग आवत है भरि पानी ।
आँच तचे हम सीरी परैं पिय मो हिय खाँप गुली सुखदानी ।
आनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ॥५०२॥
आए हौ फाग मनाय कै लाल कियौ जित नेह नयौ थपनौ जू ।
आछे निचोय भिजै पठए फगुवा मन-मानतो लै अपनौ जू ।
भूलि परैं सुधि मेरियौ लीनी किधौं कछू देखति हौं सपनौ जू ।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपीहन तें तपनौ जू ॥५०३॥

कबित्त

अपबस होहु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुबस बसौ बिसासी तहीं बस और के ।
कहा जानौं कितहूँ कसक है कि नाहीं तुम्हैं,
भौंर से भुलाने देखियत ठौर ठौर के ।
साँचिली बिचारी भोरी हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौर के ।

५०० — छानत-बानत (संग्रह) । छाय० — ढाँपे तऊ (वही) । ५०१ — ऐसियै — ओखियै (सग्रह) । लिखधार — खिलदार (वही) । ५०२ — आँच० — ऐंचत चीन्हब सीच परै (संग्रह) । गुली — पुली (वही) ।

[५००] छानत=बाँधते हो । [५०१] दिन०=बुरे दिन डालकर । रातैं=रात्रि, अनुरक्त होना । [५०२] सौंधो=सुगध । नकबानी=नाक मैं दम होना ।

क्यौं ह्वै घनआनँद पपीहनि को गति कहा,
मन भए पगु ये तिहारी एक ठौर के ॥५०४॥

सवैया

कोगति की मति का गति की अति की रति प्रापतिदाइनि देखी ।
देवनदी-अहियान-पदी महिमान बदी स्रुति साखि बिसेखी ।
और कहौ कहि कौन सकै घनआनँद यौं उर ही अवरेखी ।
तेरेई तीर तिबिक्रम, ताकि दया करि दै बिदिसा अनिमेखी ।५०५॥

कबित्त

नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा
रूप के बिधान को बखान कहा सूर सौं ।
सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोडो दिन भरै भखि ऊरसौं ।
चाह की चटक तें भयौ न हियँ खोंप जाके,
प्रेम - पीर - कथा कहै कहा भकभूर सौं ।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कौं,
दैया कहूँ काहू कौं परै न काम कूर सौं ॥५०६॥

सवैया

नेह सौं भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति ।
रूपउज्यारे अजू ब्रजमोहन सौहनि आवनि ओर निहारति ।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि बियोग निवारति ।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति ॥५०७॥

५०४–भुलानें–लुभाय (सग्रह) । और–ठौर (वही) ।

[५०५] अति०=अत्यत प्रेमप्राप्ति की दात्री, अत्यत प्रिय बना देनेवाली । देवनदी=गगा । अहियान=शेषशायी विष्णु के पद से उद्भूत । श्रुति=वेद । अवरेखी=विचार किया । तिबिक्रम=त्रिविक्रम, वामन का अवतार । बिदिसा=विदिशा, एक नदी । पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है । वामन ने त्रिविक्रम रूप इसी के तट पर धारण किया था । अनिमेखी=निरतर । [५०६] सूर=अधा । भरै=काटता है । भखि०=खाकर । ऊरसौं=कुरसी, स्वादहीन वस्तु को । खोंप=कोंपल, अंकुर । भकभूर=उजड्ड, मूढ़ । [५०७] नेह=प्रेम, घृत । भोय=भिगाकर । सँजोय=जलाकर । दसा = अवस्था, बत्ती ।

कृपाकंद

कवित्त

नेक उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै ।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लैकै मंदन कृपा करै ।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद ह्वै,
मूढ हू प्रगट गूढ छंदन कृपा करै ।
आरति - निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति वदन कृपा करै ।।१।।

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ
डरे रहौ डर कौन गनै हानि लाहे कौं ।
लोक परलोक जो कछू हैं तो न छूहैं हम,
छीलर रचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं ।
महा घनआनँद घमंड पाइयति जहाँ,
सोच सूखा परौ करमठ दुख दाहे कौं ।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यो रहत सदा,
कृपादिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ।।२।।

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै ।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसकानि सौं रंग महा लहियै ।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है बहियै ।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ।।३।।

[१] मदन=मंद बुद्धिवालों पर । मूढ़० = मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है । आरति० = क्लेशनाशक [२] डरे० = फेंके रहैं । छीलर = तलैया । [३] जीवनी = सजीवनी ।

स्याम-सुजान-हियेँ बसियै रहै नैननि त्यौँ लसियै भरि भाइनि ।
बैननि बीच बिलास करै मुसकानि सखी सौँ रची चित चाइनि ।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि ।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥४॥
बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दृस्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई ।
ज्ञान कृपा गुन-गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई ।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-सपति साधि कृपाई ।
यौँ सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥५॥
बलकै झलकै सुख रग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै ।
मन बाढ़ि चढै अति ऊरध कौँ टक टेक सौँ स्याम सुजान तकै ।
जक एक, न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै ।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीला-कृपा-मधुपान छकै ॥६॥

कबित्त

मंजु गुज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेमपुंज छबि धरै हरै दरप मनोज को ।
चाव-मतवारो भाव - भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के चोज को ।
और फूल भूलि रीझ भीजि घनआनँद यौँ,
बदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को ।
बानी रससानी ता मधुब्रत की, लह्यौ जिन
कृपा - मकरद स्याम - हृदय - सरोज को ॥ ७ ॥

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।

६–छबीली–छबीले (बृदावन) । ७–रससानी–रसरानी–(बृंदा०) ।

[४] रची=अनुरक्त । [५] आधि=मानसिक क्लेश । ठाँ=स्थान । [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है । सील०=शिष्टता न रह जाए; शील से आवृत हो जाए । उछकै न=नशा उतरेगा ही नहीं । मधु=शहद, शराब । [७] चोज=उमंग

रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को ।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ॥८॥

नेम लियौ सब बातनि तैं अब बैठिहै साधि कै त्याग महातप ।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सौं देखि तप्यौ जम-बाद को आतप ।
कैसैं कहै कछु भोई सवाद मिलै बडी बेर सौं याहि मिल्यौ टप ।
मौन हू जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै जीभ कृपा-जप ॥९॥

क्यौं हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसे तैं ।
हाथ चढै जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं ।
नीरस मानस ह्वै रसरासि बिराजत नैसिक जा सरसे तैं ।
ऊसर हू सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसे तैं ॥१०॥

ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अगनि धोइबो ।
त्यौं मन कौं तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो ।
बे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भ्रम भार अपारहि ढोइबो ।
जागत भाग कृपा-रस पागत दीखत यौं सहजै सुख सोइबो ॥११॥

आयु जौ बायु तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं ।
ताहि महागनि तोहि कहा गति बैठें बनैगा बिचारत क्यौं नहीं ।
नेमनि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं ।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं ॥१२॥

कबित्त

चाहियै न कछू ताकी चाह जातैं फल पायौ,
यातैं वाही बन के सरूप नैन कीनौ घरु ।

९–त्याग–ज्ञान (राम) । जम–जग । जीभ–एक (वही) । ११–भ्रम–भरि (राम) । पागत–माँगत (लदन) । १२–आयु०–आय जौ छाय (राम) ।

मधुब्रत=भ्रमर । [८] गति=मोक्ष । [९] आतप=धूप । टप=शीघ्र । [१०] परसे तैं=क्या तूने स्पर्श किया ? मानस=मन, मानसरोवर । नैसिक=थोड़ा । [११] ज्यौ=जी, चित्त । घँघोइबो=गंदे जल में डुबोना । [१२] महागति=परम

जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु।
महा घनआनँद फुहार सुखसार सींचे,
हित-उतसवनि लगाय रंग-भरयौ झरु।
प्रेम - रस - मूल फूल - मूरति बिराजौ मेरे,
मन - आलबाल कृम्न - कृपा को कलपतरु ॥१३॥

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखैं पै हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ।
तातें सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरै हियें अवरेख्यौ।
जे निरखे उरझे तिन मैं किनहूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ।
प्रान-पपीहन कौं घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥१४॥
काहे कौं सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय के को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे! बचाय ही लीहै ॥१५॥

कवित्त

साँवरे - सुजान - रंग - सगमतरंग - भीजी,
दरस - परस - पैज - पूरन बसीठि है।
एक गुनहीननिहीं सूझत सरूप जाको,
कृपा-मद-अंध तिन्हैं सपनैं न नीठि है।

१३–ताकी–जाकी (राम)। जातें–तासों (वही)। १४–हौं–मैं (वृंदा०, लंदन)। सोच०–सूचक छीन (लंदन)। कृपा०– कृपाकर (वृंदा०)। १६–संगम–संग मति रंग (राम)।

गति। गति=अर्थात् शक्ति। पारत०=पालता क्यों नहीं। [१३] बन=वृंदावन। सुदेस=सुंदर। [१४] अनलेखे=अगणित। बिन०=सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] छीलर=तलैया। छीहै=छूएगा। [१६] पैज=

सदा घनआनँद बरसि प्रान - चातकनि,
पोखति पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है ।
साधन असाधन त्यौं सनमुख होति कैसैं,
सबै दिसि पीठि कृपा-मन तन दीठि है ॥१६॥

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चोंच की खोंच सु क्यौं करि धारौं ।
त्यौं रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौं ।
पै गुन ताके अनेक लखौं निहचै उर आनि कै एक बिचारौं ।
कूल बढाय प्रबाह बढै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि सम्हारौं ॥१७॥

कबित्त

अमल अपूरब उजागर अखड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है ।
तारनि प्रकासै मित्र-मडल मैं मडन ह्वै,
बन घन राजै रसनायक निसंक है ।
आनँद - अमृत - कंद बदनीय प्रानन को,
सुषमा सपत्ति हेरैं काम कौन रक है ।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा - चद्रिका - मै नंदनंदन मयक है ॥१८॥
हरि हू के जेतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिन ढरै दातुरी ।
दीनता न आवै तौ लौं बधु करि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूर भाजै देखि चातुरी ।

१७-सम्हारौं-सहारौं (कबित्त) ।

प्रतिज्ञा । बसीठि=दूती । नीठि=कठिन । ईठि=इष्ट । [१७] खोंच=कोंछ, झोली । रतनाकर=रत्नों का समूह । जीरन=जीर्ण, पुराना । [१८] चितारिबो=ध्यान में लाना । तारा=पुतली, आकाश का तारा । मित्र=सखा, सूर्य । आनँद०=

गुननि बँधे हैं निरगुन हू अनदघन,
मति बीर यहै गति चाहैं धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर बिचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही कै एक आतुरी ॥१९॥

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही गुनहीनन तें सब दोष प्रमानैं।
हा हा बुरौ जिन मानियै जू बिन जाँचें कहौ किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं हैं हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपाकर रावरे जौ मन के मन मानैं ॥२०॥

कबित्त

रही न कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तें बचाय राखैं सुखन सौं सानि हैं।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएं,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।
तापु बापुरेनि की सिरानी आय नेकु ही मैं,
छाए घनआनँद सुबात-बस आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू सग,
बिन पहचानि कृपा - लीनैं पहचानिहैं ॥२१॥

सवैया

जल मैं थल मैं भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैं।
सम रूप सदा गुनहीनन सौं निज तेज तें त्रासति नाप-तमैं।

१६–को०–को जोतिक (राम)। ढरै–बढ़ै (कबित्त)। २०–ढरौ–बड़े (लदन)। रावरे–रावरो (वही)। २२–सरसै–दरसै (लदन)। अरसै–सरसै (वही)। तिन–नित (लदन)।

आनदरूपी अमृत का बादल। मै=युक्त [१९] दातुरी=(दातृत्व) दान की वृत्ति। बीर=हे सखी। [२०] कृपाकर=कृपा की खान। [२१] बात=वायु, बचन। [२२] सम०=विषम को भी सम कर देती है। अरसैं=चलने मैं

घनआनँद जीवनरासि महा बरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्रानन‍ि संगम रंग अभंग कृपा ढरसी सब ठौर हमैं ॥२२॥

पद

भजि मन कृपासहित सुखरासि।
सो राधिका दृगनि अभेद गुन दृस्टि रूप नित रही प्रकासि।
बदन-कमल मधि स्याम भँवर हित मंद हँसनि रसढरी बिकासि।
रसिकहि पान कराय छिनक मैं डारति बिषम बियोगहि त्रासि।
हियहीं बसति लसति जिहिं ढरकति कोरि कोरि माखन उपहासि।
जगजीवन मय है आनँदघन तिस उपजावति प्यासहि नासि ॥२३॥

कृपाकलपतरु श्रीगोपाल।
अति रसमय अचित्य फलदायक प्रफुलित सदा धरैं बनमाल।
गोपीजन - मन - आलबाल मधि सोभित सोभामूल रसाल।
चढि बढि भाव-बेलि चहुँ दिसि तें ललित केलि सुख बलित बिसाल।
गुन अनंत साखा सुदेस लसि राजत रुचिर चरित्र-प्रबाल।
मधुर रूप मकरंद बृस्टि दृग-मधुप पपीहा पन-प्रतिपाल।
अवनीमनि बनराज भाग पर जगमगात जगि जोतिनि जाल।
सेवित छबि छाया आनँदघन अखिल तापमोचन सब काल ॥२४॥

कोऊ कृपा-बल दूबरो ह्वै करि क्यौं नहिं साधन के सत साधौ।
लीन कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि एँचि अराधौ।
मेरैं कृपा घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिं राधिका-माधौ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधौ ॥२५॥

२३–तिस–सग (वृदा०) । २५–सत–सब, सव (सग्रह) ।

आलस्य नहीं करती। [२३] माखन=मक्खन। तिस=(तृष्णा) लालसा, प्रेम। [२४] आलबाल=थाला। रसाल=रसिक रसमय। सुदेस=सुंदर। प्रबाल=नए पत्ते, कोंपल बनराज=वृंदावन। भाग=आधार, अचल। [२५] सत=

कबित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू ।
प्रेम सो रतन जातेँ पाइहै सहज ही मैं,
वह नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू ।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढत अमंद यौं तरगनि उमाहि तू ।
बोहित बिलास हू चढाय लैहै सोई हा हा,
कृस्न-कृपा सिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥२६॥

पद

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं ।
बहुतै बहुत प्रान-सर्बसु लै वारि सकौं तौ वारौं ।
तोही तैं जीहा मझार को सब अभिलाष उघारौं ।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरनि संग सम्हारौं ।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित की कृपा-भरोसो धारौं ।
आनँदघन प्रीतम सुजान हौ मौनहि गहैं पुकारौं ॥ २७ ॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध को अध-आवन-आस-बिसास तहीं ।
गति औसर की अति दीसि परी बरुनी खुलि फेरि मिलैं कि नहीं ।
इहि बीच बिचारियै जीवन सौं मरियै तिहि साधन-सोच महीं ।
घनआनँद-बात-कृपा-बस है अब यौं सब ही करतूति रही ॥२८॥

• २६–वह–वहे (राम)। २७–तोही०–त्यौं ही तौ हिय के (राम)। की–को (वही)। २८–तहीं–नहीं (राम)। मिलैं०–फिरै कि तहीं। बात–गात। है–ह्व (वही)।

सत्त्व, बल, सौ। एक=एक क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती। [२६] नेग०=भेंट हो जाय। बोहित=जहाज। [२७] उघारौं=प्रकट करूँ। [२८] गति० = जीवन की गति अवसर मात्र है।

कबित्त

बिना माँगे देत माँगि लेत सु तौ मूढ ताते
गूढ गति जानिबे कौं प्रभु हौ उदार हौ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन रिझवार हौ।
गुननि सरूप छाय रहे घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ।
बिपति तिनैंई परौ जिनके न पति तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥२९॥

सवैया

औगुन हूँ करि लेत गुनै निगुनीनि ढरै गुन की अधिकाई।
झूमि रही घनआनँद यौं बरसै सरसै सुख-सीतलनाई।
मोहिं महारस-रासि मिली जिन पागि दई मति-मोद-मिठाई।
रीझि कृपा लखि रीझि रही अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥३०॥
जे करतूति पचैं दुहुँलोक लै तेही लहौ जु कछू उन पायौ।
कोप-कृपानिधि के हिय तें हम रकनि बाँट कृपा-धन आयौ।
जाहि न भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥३१॥
सदा द्रव मूरति प्रेम पगे भली भाँति जगे भए आप हि आप।
महा निहचै सौं रचे रचना पे हियें सियरानं प्रबोध प्रताप।
खिले हित रंग मिले नित सग झिले सब अग हिले चित चाप।
कृपा घनआनँद छाँह बढ़े तिन्हैं ब्यापत क्यौं दुख-आतप-ताप ॥३२॥

२९—देत-(राम) में नहीं। प्रभु०—प्रभु अति ही (राम)। सदन—सदा न (लदन)। तिनैंई—तिनहि (राम)। ३२—द्रव—द्रव (राम); लगे-जगे, रचना०—रचिये हिय के। झिले—झले (वही)। चाप—जाप (लदन)।

[२९] बूझ=बुद्धि। [३०] अकि=या कि अथवा। [३१] करतूति०=जो कर्म-साधन में परेशान रहते हैं। [३२] द्रव०=कोमलता की मूर्ति। हिले०=चित्त के

कबित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हौ हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू।
बिनाई कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहैं क्यौं न करौ दान-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत लता-पोष जू ॥३३॥

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातैं सुधि भूलै सो कृपा तैं पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।
मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ,
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौं तौ सम्हारौं फिरि कौन कौं ॥३४॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौं जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तब ही तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरा ह्वै रही झूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३५॥

३३–मोहन०–मोह नाहिँ है (राम)। दान–दीन। हेत–हित (वही)। ३४–कूकौं कहूँकौं (वृंदा०)। ३५–अब यौं–अठयौं (वृंदा०)।

सतरंगी धनुष से युक्त। [३३] मोह=भ्रम। [३४] सुधि०=प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो आती है। अचौन=आचमन, पीना। [३५] झूलिहै=भूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा धन-धाम स्यामसुंदर सुजान माद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरात - मयक प्रेम - सागर अपार हैं।
नित हित-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्रानिनि अधार नंदनदन उदार हैं ॥३६॥

सवैया

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारैं ।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारैं ।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सहारैं ।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारैं ॥३७॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन करै इहि भाय कौं गौन-समै ।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै ।
गति बूझ परी, किन सूझत रे, कहिबो न छियै किहि घाँ सुगमै ।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि ल रसमै तजि दै बिषमै ॥३८॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक ।

३६-अचाह-अचाही (वृंदा०)। ३८-बूझि-सूझि (वृंदा०, लंदन)। किन०-सु न बूझत क्यौं (वही)। छियै-छिपै (राम)। ३९-बैरी०-ऐसी। जियै (राम)।

[३६] अचाह०=अचाह व्यक्ति के लिए कल्पवृक्ष। [३७] मसोस=पछतावा। पारैं=डालें। [३८] किहि०=किस प्रकार। आहि=है। रसमै=आनंदमय, प्रेम रूप। बिषमै=विषमय, विषम। [३९] मरक=खिंचाव। ढरक=ढलना।

जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि बैरी ऐसी राखियै मरक ।
देखि देखि ढूँढौं दुख-दसा दीख मिलो, हा हा
मात ओ बिसारौ यह कसकै नई करक ।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यो हू कैसे सोई है कृपा-ढरक ॥३९॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भर्यौ अति उत्तम नीच मैं ।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैं ।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं ।
ज्वाल-जर्यौ अब होत हर्यौ हरि नेकु कृपा-घनआनद-सीच मैं ॥४०॥

दोहा

सुख-सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥ ४१ ॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिं लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यो रहौं, बसौं कृपा के देस ॥ ४२ ॥
मो से अनपहचान कौं पहचानै हरि कौन ।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥ ४३ ॥

कबित्त

दीनो जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहर हौ ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचे रोम-रोम,
भाव - निरभर लै सुभाव - सर भरे हौ ।

४०—न—सु (राम) । ४२—मोहिं—मोह (वृ दा०) ।

[४०] नीच=नीच मन । भ्रम = मिथ्या ससार । मीच=मृत्यु । [४१] अवनीस= हम राजा हो गए । [४२] इहि०=क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं । [४३] कृपा०=जिस प्रकार आपके नेत्रों में कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अग-संग रग ररे हौ ।
ऐसें क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैसें या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४४॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा - नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५॥

दोहा

तुम नियरे अति दूरि हौं, मिलन उपाय न कोय ।
एक ढरौंहीं कृपा तें अनहोनी हू होय ॥४६॥

सवैया

सग लगे फिरौ हौ अलगौ रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नीरस राचनि ही सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परयौ तुम तें घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत से हौ कहा बहौ सोवत मोहि जगावत क्यौं नहीं ॥४७॥

कबित्त

लखें नहीं जनम अलेखैं तौ सकल बातें,
ऐसो जग-पैठ मैं गवैंबाई लहौंगो कहा ।

४४–जनाय–जनाई (राम) । सरभरे–गहभरे । रंग–रस (वही) । सग–भंग (वृंदा०) । ऐसें–ऐसी (वही)। ४५–बरसौ०–दरसौ पै बरसौ (राम)। ४६–ढरौंहीं–करौ हरि (राम)। ४७–अलगौ-अलगै (राम)। वहौ–बहु (वृंदा०), बहौं (लदन) ।

भी मौन में है। [४४] ढरनि=ढलना। ढरहरे=ढलनेवाले, कृपालु। आनँद०=आनद के बादल, घनआनंद। निरभर=निर्भर पूर्ण। गहभरे=भली भाँति भरे हुए। रस०=रसयुक्त। नीठि=कठिनाई से भी। [४५] रस=जल; प्रेम। ऐन=अयन, घर। [४६] एक०=अद्वितीय, केवल। [४७] खगावत०=बाँधते या

लहाछेह कहै हूँ तैं अतर अनंत परे,
या बिधि की मिलनि बियोग दौ दहौंगो कहा ।
चिरजीवौ मोहिं मारि तुम्हैं सुख होहु प्यारे,
परबस महा कहा कहा न सहौंगो कहा ।
कृपा-घनआनँद पपीहा की पुकार लागौ,
तुम सनमुख हू पै बिमुखै रहौंगो कहा ॥४८॥

छप्पय

भूल न कबहूँ होय सुरति की सुरति देहु हरि ।
सुरति किये ही रही कृपा-अवलोकनि सौं ढरि ।
सुचि चरित्र रुचि परचि राचि चित-चेत थकै तहँ ।
निज सरूप की लहनि कहनि अरु रहनि एक जहँ ।
सुंदर सुदेस आनंदघन छाय रहे सु बिनोद बनि ।
संदेह - ताप - व्यापनि हरौ अंतरजामी जानिमनि ॥४९॥

पद

माधौ कब पुकार लागौगे ।
मो उर अजन अजिर मैं निज जोतिहि जमाय जागौगे ।
गहि गुन कृपा दोष गन मेरे अंतर तैं त्यागौगे ।
नीरस रचनि बचाय रँगीली प्रीति सुरस पागौगे ।
मोसे सिथिल अचेत ओर अपनी रुचि खुलि खागौगे ।
आनँदघन आरत चातक त्यौं प्यास-रूप रागौगे ॥५०॥

४८—नहीं—नाहिँ (राम)। तौ०—तब सब। लहौंगो—लहैगो। कहै हूँ०—कहौं तौ है (वही)। दौ—दै (वृंदा०) होहु—होय (राम)। कहा०—कहा सरथौ। लागौ—जागौ। हू पै—भए (वही)। ४९—रही—रहौ (राम)। ढरि—हरि (लंदन)। रहनि०—कहनि लहनि (राम)।

कसते क्यों नहीं। [४८] पैंठ=हाट, बाजार। गवैंबोई=खोना ही। लहाछेह=तीव्र। [४९] सुरति०=अपने प्रेम की स्मृति। चेत=चेतना, बुद्धि, होश। [५०] अजन=

आयौ सरन बिकार भरयौ ।
तुम सरबज्ञ अज्ञ हौं बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु करयौ ।
सदा दयाल दीन - दुख - मोचन यही सुमिरि सबहीं बिसरयौ ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा द्वार परयौ ।।५१।।
भूल - भरे की सुरति करौ ।
अपनी गुननिधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरौ ।
या असोच कौं सोच कीजियै हा हा हो हरि सुढर ढरौ ।
कृपाकंद आनंदकद हौ पतित पपीहा-तपति हरौ ।।५२।।
करौ सु ज्यौं चित चरन जटै ।
हित - मकरंद पान करि कबहूँ कहूँ न काहू भाँति बटै ।
ताप-कला प बिलाहिँ कृपानिधि सब बिधि मोहादिकनि हटै ।
पन-पराग रचि परचि अरचि रुचि सुचि सुरूप गुनगननि रटै ।
बार बार बिनती है हो हरि हौ पूरन सुनि कहा घटै ।
दुखित दीन चातक आनँदघन एक तिहारी ओर डटै ।।५३।।

सवैया

सुरझै किन रे उरझे मन तू ममता गुरझैं उरझावत क्यौं ।
जित को तित ही लगि ह्वै अलगौ इत के हित-फंदनि आवत क्यौं ।
घनआनँद कृस्न-कृपा-रस कौं करि पान जियैं न जिवावत क्यौं ।
निहचै जचि रे परिचै रचि रे थिरता सचि रे भ्रमि धावत क्यौं ।।५४।।

५४—रे—दै (राम) । ह्वै—है । जियैं—हियैं । परिचै—पचि रे (वही) ।

निर्जन जनरहित । अजिर = आँगन । खागौगे=प्रवृत्त होओगे । रागौगे = प्रिय लगोगे । [५१] कृपाकद=कृपा के बादल । आनदकद=आनद के मूल । [५२] सोच=चिता, फिक्र । [५३] जटै = जुड़ जाय । बटै= हटे, बहके । कलाप=समूह । [५४] गुरझैं=गाठैं । सचि=संचित कर ।

कबित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन - कृपा - पियूष पालत रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन कौं।
गोबिंद गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद - गेह
गिरा अगराई गुन - गरिमा - गनन कौं।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है सनिधि सबादनि सनन कौं ॥५५॥

बिष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भली सबै दिस तैं रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ बिषै बिस तैं रे।
परयौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तैं रे।
नित हितमय उदार आनँदघन रस बरसत चातक-तिस तैं रे ॥५६॥

पद

तुम्हैं रुचै सो रचौ कृपानिधि।
हम कछु जानत नाहिं बापुरे दीन हीन सब भाँति बिधि अबिधि
सुनि सुचि साख सदा तें स्वामी रहे रसीले गुननि गनत गिधि॥
चातक-जन-पुकार आनँदघन अब दरसै बरसै ही पन सिधि ॥५७॥

५५—पालत—पालन (राम)। गहे—गाय। अगराई—अरगाई (वही)। संनिधि—रसनिधि (वृ दा०) ५६—हितमय—हित मैं (राम)। चातक०—आनँद मिस (वही)। ५७—रीति०—प्रीति जानि (राम)।

[५५] जन=दास। अपनैन०=अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अगराई=अग्रता, श्रेष्ठता। [५६] सटकनि=हटना। गटकनि=पीना। तिस=तृष्णा। [५७] बिधि=विहित कर्म। अबिधि=निषेध, निषिद्ध कर्म। साख=प्रसिद्धि। गिधि=परचकर.

जिहि लजाउ सु न कीजै स्वामी ।
मो मन दसा असाधि कृपानिधि कहौं कहा हौ अंतरजामी ।
असुचि असोच पोच पै गुन सुनि उरझत मुरझत पतित सकामी ।
सरसि दरसि बरसौ, परसौ जू आनँदघन चातक-हित नामी ॥५८॥

कबित्त

दान के बिधान यौं बखानत सुजान सत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं ।
सूछम पुनीत पै निपट ताकी रीनि नीति,
जानत जे एक दानी एही रसवंत हैं ।
फल आगैं लागै पाछैं अंकुर मनोरथ को,
पानिप - निधान मान - महिमा - महंत हैं ।
तातें मन चातक तू पन लै सजीवन सौं,
कृपा - घनआनँद अधार जगजत हैं ॥५९॥

पन ऊँची दीठि नीठि नीचियौ न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकद के ।
सुधा कौं सुरालै लखै नीच कीच कैसैं चखै,
तोषे रस-पोषे घनआनँद अमंद के ।
जिन पर रीझ-भीजे छाए सुख-सपै लियैं,
लसत रसत प्यारे जसुमति नद के ।
तिन्हैं तेई तकैं तेऊ तहीं पान छकैं और,
कैसैं देखि सकैं जे अजाची जगबद क ॥६०॥

५८–एही०–राय साजवंत । जगजंत–जराजत (वही) । ६०–संपै०–सपदा लै (राम), सबै लियै (वृदा०) । तहीं–तिहि (राम) । सकैं–जकैं (राम) ।

लुभाकर । [५८] पोच=नीच । [५९] जगजत=जगद्यन्त्र । [६०] कंद=बादल । सुरालै=सुरालय, मदिरा का स्थान या देवलोक । संपै=(शंपा)

सवैया

द्वारे न जाइहौँ जू जन के जगदीस तिहारियै पौरि परथो हौँ ।
आस की पासहि काटि कृपा-बल पूरन पैज भरोसैँ भरथौ हौँ ।
ह्वै अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अरथौ हौँ ।
हौ पनधारी सुने घनआनँद सौँचन की अभिलाष हरथौ हौँ ।।६१।।

कबित्त

दौरि दौरि थाक्यौ पै थके न जड दौरनि तैँ,
गति भूलै मन की न दुरी कछू तोतैँ रे ।
तातैँ ठौर दीजै याहि, सुधि लीजै मोदघन,
बूझियै न बिड़रथौ अनाथ तोहि होतैँ रे ।
हाय हाय हे अमोही हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब ह्वैहै वही रची जो तैँ रे ।
आस-बिसवास दै असाधन हूँ साधि लै न,
साधन कृपा है और कहा सधै मोतैँ रे ।।६२।।

६१—द्वारे०—द्वार न जाइहै या (राम)। हौँ—है। की—के। भरोसैँ—भरोसो। सुने—सुनौ (राम)। हरथौ—अरथौ (वृदा०, लंदन)। ६२—थके०—थक्यौ न तऊ (राम)। दुरी०—न दूरि। दै०—ऐन साधन हूँ साधन दैन (वही)।

बिजली; (संपत्) धन संपदा। जगबद=जगद्वंद्य। [६१] जन=साधारण जन। पौरि=द्वार। पास=पाश, फदा। खरो०=अत्यंत लुब्ध होकर। हरथौ=हराभरा, प्रसन्न। [६२] मोदघन=आनंद के बादल, घनआनंद। बिड़रथौ=छिन्न भिन्न। होतैँ=होते हुए।

वियोग-बेलि

(बंगाली बिलावल)

सलोने स्याम प्यारे क्यौं न आवौ।
दरस-प्यासी मरैं तिनकौं जिवावौ ॥ १ ॥
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ।
लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हौ ॥ २ ॥
रहौ किन प्रान - प्यारे नैन - आगैं।
तिहारे कारनै दिन - रैन जागैं ॥ ३ ॥
सजन! हित मानि कै ऐसी न कीजै।
भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ॥ ४ ॥
कहौं तब प्यार सौं सुखदैन बातैं।
करौ अब दूरि त दुखदैन घातैं ॥ ५ ॥
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ।
अकेली कै हमैं ऐसैं दुरे हौ ॥ ६ ॥
सुहाई है तुम्हैं यह बात कैसैं।
सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसैं ॥ ७ ॥
दिखाई दीजियै हा हा अमोही।
सनेही ह्वै रुखाई क्यौंऽब सोही ॥ ८ ॥
तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनै।
हिये मैं लै, दिये बिरहा अभूनै ॥ ९ ॥
उजारौ जौ हमैं काकौं बसैहौ।
हमैं यौं ख्वाय कै औरैं हँसैहौ ॥ १० ॥
कहौं अब कौन सौं बिरहा - कहानी।
न जानी ही न जानी ही न जानी ॥ ११ ॥

२—हैं—जू (लंदन)। ३—रैन—रैनि (कॉ०क०)। ६—ये—यह (लंदन)।
११—कहौं—कहैं (सभा)।

[९] अभूनै=(अबीखा) पुष्ट आग, हृदय मैं प्रचंड आग लगी है।

लिखौं कैसें पियारे प्रेम - पाती ।
लगैं अँसुवन झरी ह्वै टूक छाती ॥ १२ ॥
परयौ है आनि कै ऐसो अँदेसो ।
जरावै जीभ अरु कानन सँदेसो ॥ १३ ॥
दसा है अटपटी पिय आय देखौ ।
न देखौ तौ परेखौ है परेखौ ॥ १४ ॥
अजू ऐसैं कहौ कैसैं बितैयै ।
अवधि बिन हूँ सदा पैंडो चितैयै ॥ १५ ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ।
पुकारौं मौन मैं कहिबो न आवै ॥ १६ ॥
अचंभे की अगनि अतर जरौं हौं ।
परौं सियरी मरौं नाहीं भरौं हौं ॥ १७ ॥
कहा जाने तुम्हारे जी कहा है ।
असोची मोहिं तौ संसो महा है ॥ १८ ॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै ।
लग्यौ मन बावरौ तोरैं न टूटै ॥ १९ ॥
अजौं धुनि बाँसुरी की कान बोलै ।
छबीली छैल-डोलनि - संग डोलै ॥ २० ॥
सलोनी स्याम - मूरति फिरै आगैं ।
कटाछैं बान से उर आनि लागैं ॥ २१ ॥
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै ।
चितवनी बक जियरा-बीच सालै ॥ २२ ॥

१२–लिखौं–लिखै । १३–जीभ-जीव (वही) अरु–औ (खोज) । १६–कहिबो–कहिबे (सभा) । १७–अगनि–अगिन (वही) । सियरी–सीरी (वृंदा०, सभा) । १८–जाने-जानो (सभा) । तुम्हारे–तिहारे । तौ०–तोसी सो (वही) । २१–से–सी (सभा) । २२–चितवनी०–चितौनी बंक जिय मैं आय ।

हसन मैँ दसन-दुति की होइँ कौंधैँ।
बियोगी नैन चेटक चाहि चौंधैँ ॥ २३ ॥
अधर कौँ देखि प्यासे प्रान दौरैँ।
अमी के पान बिन ह्वै बिबस बौरैँ ॥ २४ ॥
अचानक आय भेँटनि जब सतावै।
कहौ तब की दसा कहि को बतावै ॥ २५ ॥
लगै लालन! बिरह को तब चटपटी।
कहौ कैसैँ सहौँ यह गति अटपटी ॥ २६ ॥
बहै तब नैन तैँ अँसुवानि-धारा।
चलावै सीस पै यौँ बिरह आरा ॥ २७ ॥
इतै पै जौ न पावौ पीर प्यारे।
रहैँ क्यौँ प्रान ये बिरही बिचारे ॥ २८ ॥
सुहाई है तुम्हैँ कैसैँ अनैसी।
कहैँ कासौँ करौ तुम ही जु ऐसी ॥ २९ ॥
जरावै नीर तौ फिरि को सिरावै।
अमी मारै कहौ जू को जिवावै ॥ ३० ॥
जु चंदा तैँ झरैँ दैया अँगारे।
चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे ॥ ३१ ॥
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे।
करै बिरहा हमारे हाल ऐसे ॥ ३२ ॥
अचंभो है अचंभो है महा जू।
सनेही ह्वै कहौ कीनौ कहा जू ॥ ३३ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैँ कियौ है।
बली अबलान मारन पन लियौ है ॥ ३४ ॥

२३—होइँ—होत। चाहि—चाय। २४—प्रान—नैन (वही)। २५—भेँटनि—भेजनि (वृंदा०), मदन (सभा)। २६—कहौ०—कहौ कैसे इह गत। २७—यौँ०—बिरहा जु आरा (वही), बिरह अपार (काँक०)। २८—पावौ—पाऊँ (सभा) ३१—प्यारे—पारे (खोज) ३३—महा—यहाँ (सभा)। ह्वै—हौ। ३४—अबलान०—अबलीन मारैँ सु न।

करौ अब सो तुम्हैं आछी लगै हो।
जसोदानद जैसैँ जस जगै हो॥ ३५॥
तिहारे नाम के गुन बाँधि डारी।
बिचारौ जू बिचारी है बिचारी॥ ३६॥
दया दिखराय बिनती कीजियै जू।
परैँ पायनि हियँ धरि लीजियै जू॥ ३७॥
भरोसो है भरोसो है भरोसो।
रही ब्रत धरि अजू अब तौ परोसो॥ ३८॥
रँगीले हौ छबीले हौ रसीले।
न जू अपनीन सौं हूजै गर्साले॥ ३९॥
तुम्हैं बिन क्यौं जियैँ तुम ही बिचारौ।
बचैँ कैसेँ कहौ तुम ही जु मारौ॥ ४०॥
लगौ नीके सबै बिधि प्रान - संगी।
तिहारी मीन है प्यारे तरगी॥ ४१॥
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे।
हमारे हौ हमारे हौ हमारे॥ ४२॥
तिहारी हैँ तिहारी हैँ तिहारी।
बिचारी हैँ बिचारी हैँ बिचारी॥ ४३॥
तुम्हारे नाम पै हम प्रान वारे।
जहाँ हौ जू तहाँ रहियै सुखारे॥ ४४॥
तुम्हैं निसिद्यौस मनभावन असीसैं।
सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं॥ ४५॥
लगौ जिन लाड़िले जू पौन ताता।
सुहाई है हमैं तुम कौं सुहाता॥ ४६॥

३७–दया-दमा (खोज)। ४१–मीन–मौन (सभा)। ४६–लगौ–लगै (भरत)। ताता–ताती (सभा)।

[४५] कसीसैं=खिँचना, रुजू होना अर्थात् कृपा करना।

गह्यौ तुम ही जु प्यारे दीन दोखैं।
दया की दृस्टि सौं फिरि कौन पोखै ॥ ४७ ॥
सुरति कीजै बिसारैं क्यौं बनैंगी।
बिरहिनी यौं अवधि कौ लौं गनैंगी ॥ ४८ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियौ है।
मिलौ औरन हमैं बिरहा दियौ है ॥ ४९ ॥
नहीं पाई परैं प्यारी लपेटैं।
कहौ हा हा कहाँ धौं आहि पेटैं ॥ ५० ॥
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी।
न करिहैं मान फिरि सौं हैं तिहारी ॥ ५१ ॥
चढाईं मूड अब पायनि परैंगी।
कहौ जोई अजू सोई करैंगी ॥ ५२ ॥
दई कौं मनि कै, अब आनि ज्यावौ।
पियासी हैं पियारे सुरस प्यावौ ॥ ५३ ॥
तिहारा ह्वै कछू क्यौं हूँ जियैंगी।
बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैंगी ॥ ५४ ॥
यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ।
रह्यौ पहचान को ही मैं न लेसौ ॥ ५५ ॥
बिसासिनि बाँसुरी फिरि हूँ सुनैंगी।
कि यौं ही सीस औसेरनि धुनैंगी ॥ ५६ ॥
न तोरौ जू कहौ क्यौं ही ऽब जोरी।
निगोड़ी प्रीति की दुखदैन डोरी ॥ ५७ ॥
करी तुम तौ अजू गुनखान हाँसी।
परी गाढ़ी गरैं बिसवास फाँसी ॥ ५८ ॥

४७—दृस्टि बृस्टि। ४८—कौ०—कब तक। ४९—तैं—तक। ५०—आहि—आह (वही)। ५४—कछू—बिछुर (खोज)। ५६—औसेरनि—ऐसें सिर—(वही)। ५७—ही—हूँ (सभा)। गाढ़ी—गाढ़ैं।

न छूटै जू न छूटै जू न छूटै ।
ठगौरी रावरो बिरहाऽब लूटै ॥ ५९ ॥
हमारैं एक तुम सों टेक प्यारे ।
मिले मैं कै कपट ह्वै गए न्यारे ॥ ६० ॥
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी ।
अहो ब्रजचद क्यौं पहचान लोपी ॥ ६१ ॥
छबीले छैल तुम कौं पीर काकी ।
बिथा की कथा तें छतियाँ जु पाकी ॥ ६२ ॥
सजीवन साँवरे कब यौं ढरौगे ।
मरैं साधा, बिरहबाधा हरौगे ॥ ६३ ॥
टरै नाहीं हिये तें हेत - थाती ।
सम्हारौ आय कै प्यारे सँघाती ॥ ६४ ॥
बढै आसा हियैं भादौं - नदी सी ।
न दीसे को मसोसो भाँवरी सी ॥ ६५ ॥
तिहारो ह्वै दुखारी बूझियै क्यौं ।
सुनो सुखदेन प्यारे दीन हैं यौं ॥ ६६ ॥
दईमारानि की अब दया आनौ ।
परैं पा दूरि तें ब्रजनाथ मानौ ॥ ६७ ॥
सनेही हौ तुम्हैं सब गाँव जानै ।
सबै मिलि रावरे गुन कौं बखानै ॥ ६८ ॥
अजू अब सक लागै प्रानप्यारे ।
सुने जिन कान मोहन गुन तिहारे ॥ ६९ ॥

५९–बिरहा०–बिरहीन (खोज) । ६०–हमारैं–हमारी (सभा) । मिले–मिलन । ६४–सम्हारौ–सह्यारौ (वृदा०) । ६५–मसोसो–मसोसैं (सभा) । ६६–यौं–ज्यों (सभा) । ६८–हौ०–है तुम्है सँग राख (खोज) । ६९–सक– संग (सभा) । मोहन–मोतें (खोज) । तिहारे–निहारे (वृदा०) ।

[६४] सँघाती=सगी ।

तिन्हैँ घटि बात कैसेँ सही परिहै ।
बिना ही काज जियरा जूझि मरिहै ॥ ७० ॥
हमैँ तुम तौ लगौ सब भाँति नीके ।
करौ किरपा हगौ ये साल ही के ॥ ७१ ॥
कहा वारैं निछावरि ह्वै रही है ।
कही कौ लौँ कही है जू कही है ॥ ७२ ॥
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लीजै ।
तनक मन नाम के गुन बाच दीजै ॥ ७३ ॥
धरैयै नावँ कौँ अब नावँ ऐसैँ ।
दुहाई है सुहाई परै कैसेँ ॥ ७४ ॥
सदा तेँ रावरी बिनमोल चेरी ।
घरनि तेँ काढि बन बंसीनि घेरी ॥ ७५ ॥
किये की लाज है ब्रजराज प्यारे ।
बिराजौ सीस पै जग मैँ उज्यारे ॥ ७६ ॥
सदा सुख है हमैँ तुम साथ आछैँ ।
लगी डोलैँ छबीले - छाँह - पाछैँ ॥ ७७ ॥
तुम्हैँ भेटैँ तुम्हैँ देखैँ भले ही ।
जगे सोए 'रु बैठे हू चले ही ॥ ७८ ॥
न न्यारी है न न्यारी हैं न न्यारी ।
भई है प्रानप्यारे - प्रान - प्यारी ॥ ७९ ॥
हमारी औ तिहारी एक बातैँ ।
रँगीलैं रगरातैँ द्यौस - रातैँ ॥ ८० ॥
सदा आनद के घन स्याम संगी ।
जिवौ ज्यावौ सुधा प्यावौ अभंगी ॥ ८१ ॥

७०—घटि—घर (खोज) । ७१—किरपा०—फिर पातरो ये (सभा) । ७३—बीच—माहिँ (काँक०) । ७५—बसीनि—बासीनि (सभा) । ७६—उज्यारे—उजारे (वृंदा) । ८१—जिवौ—जियौ (सभा) ।

[७१] साल= शल्य) पीड़ा। [७७] आछैँ=रहते हुए। [८१] अभंगी=अखड,निरंतर।

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपबधू - चित - चोर ।
आनँदघन बंदन करै, जै जै नदकिसोर ॥ १ ॥
लगा इस्क ब्रजचंद सूँ, अंदर अधिक अनूप ।
तब ही इस्कलता रची, आनँदघन सुखरूप ॥ २ ॥
स्याम सुजान बिना लखैं, लगे बिरह के सूल ।
तामैं इस्कलता भई घनआनँद को मूल ॥ ३ ॥
संजोगी हूँ इस्क सैं, इस्क - बियोगी खूब ।
आनँदघन चस्मों सदा, लग्या रहे महबूब ॥ ४ ॥
बिरह सूल सौं बारि करि, घनआनँद सौं सींच ।
इस्कलता झालरि रही, हिये चिमन के बीच ॥ ५ ॥

अरल्ल

सजन सलोना यार नद दा सोहना ।
रसिकबिहारी छैल सु मनमथ - मोहना ।
दिखलावो मुखचद सु झाँकी प्यारिया ।
आनँद-जीवन ज्यान असाडी ज्यारिया ॥ ६ ॥
पल पल प्रीति बढाय हुवा बेदरद है ।
आसिक-उर पर जान चलाई करद है ।
घनी हुई महबूब सु मरम न छोलियै ।
आनँद-जीवन ज्यान दया कर बोलियै ॥ ७ ॥

२–सूँ–सों (बेल०) । अंदर–सुदर (खोज), अंधर (बेल०) । ४–हूँ–से (बेल०) । लग्या–लगा (वही) । ६–ज्यान–जान (बेल०) ।

[२] इस्क=प्रेम । [४] चस्म=आँख । महबूब=प्रिय । [५] सूल=पीड़ा , काँटा । बारि=काँटे की रोक । [६] दा=का (पुत्र) । सोहना=(शोभन) सुदर । मनमथ=कामदेव । असाडी=हमारी । ज्यारिया=जिलानेवाली । [७] करद=छुरा । घनी० = बहुत चोट कर चुके ।

क्यौँ चितचोर किसोर हुवा बेपीर है ।
भौंह कमाने तान चलाया तीर है ।
अंत कहा हौ लेत नद के लाडिले ।
आनँद-जीवन ज्यान सुचित के चाडिले ॥ ८ ॥

इस्क नहीँ यह होय करंदे जोर हौ ।
लीना चित्त चुराय अनोखे चोर हौ ।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है ।
आनँद-जीवन ज्यान अटपटी रीति है ॥ ९ ॥

प्यारे प्रीत बढाय लिया चित चोर कँ ।
हूठ्यो दै इठलाय चल्या मुख मोर कँ ।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौँ जहर है ।
आनँद-जीवन ज्यान किया तैँ कहर है ॥ १० ॥

हो हलधर दे बीर चले कित जात हौ ।
निठुर कान्ह महबूब न सुनदे बात हौ ।
इत्थूँ आवत नाहि सु की तकसीर है ।
आनँद-जीवन ज्यान बढी उर पीर है ॥ ११ ॥

भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है ।
बाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है ।
गावति हैँ ब्रजनारि फाग रँगबोरियाँ ।
आनँद-जीवन ज्यान सु हो हो होरियाँ ॥ १२ ॥

८—जीवन—धन के। चाडिले—लाडिले (वही)। १०—चल्या—चलौ (बेल०), लल्या (वृदा०)। ११—दे—के (बेल०)। न०—सुनिदे। इत्थूँ—इत्थे। बढी०—कहा बेपीर (वही)।

[८] अंत०=मारते क्यों हो। [९] करदे०=जबर्दस्ती करते हो। [१०] हूठ्यो०=हाथ मटकाकर। [११] हलधर०=बलदाऊजी के भाई। इत्थूँ=(अत्र) यहाँ। की=क्या। तकसीर=अपराध, चूक। [१२] चंग=डफ के ढंग का एक बाजा।

मॉभ

की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है ।
बूका बंदन अगर कुमकुमा भरै गुलालन झोरी है ।
आनँद-रग घने से भिजवै हाथ लिये पिचकारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी, जिद असाडी ज्यारी है ।। १३ ।।

अहो अहो नँद-नंद साँवरे छिन छिन बानक न्यारी है ।
ओढे जरद दुसाला यारो केसर की सी क्यारी है ।
आनँदघन हित-प्यारे ज्यानी मूरत लगदी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ।। १४ ।।

सजन सनेही यार नद दे एती क्या मगरूरी है ।
दरदबंद दरसन दी खातर बदा हुकम हजूरी है ।
ब्रजमोहन घनआनँद तैंडी रीति अटपटी न्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ।। १५ ।।

यारॉ गोकुलचद सलोने दिया चस्म दा धक्का है ।
ढारि दिया घनआनँद जानी हुसन सराबी पक्का है ।
सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारॉ झुक झारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ।। १६ ।।

दरदबंद डाला बेदरदी खूब इस्क दा फंदा है ।
हँस हँस कर मन मूसि लिया बे बडा गरीब गिरदा है ।

१३–कीकी०–' खूबी (बेल०) । से–सो । १४–ओढे–ओढौ । १५–रीति–निपट (वही) ।

उपग=जलतरंग । ताल=मँजीरा । [१३] तुसाडी=आपकी । बूका=बुक्का, अभ्रक का चूर्ण । बंदन=सिंदूर । महर=कृपा । दी=की । जिंद=जिंदगी, जीवन । असाडी=हमारी । ज्यारी=जिलानेवाली । [१४] बानक=सजधज । जरद=पीला । लगदी=लगती । [१५] सजन=स्वजन, प्रिय । नद दे=नंद के पुत्र । मगरूरी=घमंड । दरसन०=दर्शन के लिए । तैंडी=तेरी । [१६] चस्म०=आँख की चोट । ढारि०=पीछे लगा लिया । सैन=इशारा । झुकि०=क्रुद्ध होकर चलाई है ।

टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ १७ ॥

जिगर जान महबूब अमाने की बेदरदी दैंदा है ।
पाक दिलाँ दे अदर धँसकर बेनिसाफ दिल लैंदा है ।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद अस डी ज्यारी है ॥ १८ ॥

दिलपसद दिलदार यार तू मुज्जनूँ की तरसाँदा है ।
रत्ति-दिहाडे तलब तुसाडी अक्ल इलम उडाँदा है ।
मैंनूँ ध्यान आन नहि जानी तू घन-कुंज-बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ १९ ॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है ।
बिसरै नहीं रैनदिन जी से प्यारा प्रीतम प्रानी है ।
दीजै इन्हीं असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ २० ॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमाने तित जावौ जू ।
कदी कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू ।
आस लगी अँखियाँ नूँ याराँ दीजै झाँकी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ २१ ॥

१७–हँस०–हस हस (बेल०)। १८–बे०–बिना साफ । १९–उडाँदा–लडाँदा । आन०–न आवत । प्रानी–प्यानी (वृंदा०) । २०–इन्ही–यही (बेल०)। कदी०–कहीं कदी (वही) ।

[१७] हस=हँसकर । मूसि०=चुरा लिया । बे=रे । गिरदा=फदा लगानेवाला । [१८] अमाने=जो किसी को माननेवाला न हो । दैंदा०=देता है । बे०=अन्यायपूर्वक । लैंदा०=लेता है । [१९] की=क्या । तरसाँदा=तरसाता है । दिहाडे=दिन । अक्ल=अक्ल, बुद्धि । इलम=इल्म, ज्ञान । [२०] महर=गोपों के सरदार । मैंडा=मेरा । असानूँ=हम को । [२१] कदी=कभी ।

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोने गात ।
आवत धीर-समीर तैँ, चल्या पुलिन को जात ॥ २२ ॥

निसानी

यननूँ क्यौँ कर गहि सकौँ घनआनँद पीया ।
मैं तैँडी लटकन फँद्या क्या तुजनूँ कीया ।
क्यौँ महबूब सुजान तैँ गोरै क्या कीया ।
मैँडा दिल तैँने अबे क्यौँ मुसि कै लीया ॥ २३ ॥
चोर लिया चित चाहते घनआनँद जानी ।
मैँडा दिल तैँ मोहि कै उर औरहि ठाना ।
इस्क सहर के बीच है यह अकह कहानी ।
अलकौँ से बाँधे रहैँ महबूब गुमाना ॥ २४ ॥
क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीँ
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीँ ।
घनआनँद नित दीजियै नहि कीजै नाहीँ ।
अँखियाँ तैँडी चुभि रहीँ मैँडे दिल माहीँ ॥ २५ ॥

दोहा

आनँद के घन जान के, कीन्हौँ तुम मोँ हेत ।
रूप-सुधा दरसाय कै, कहर जहर क्यौँ देत ॥ २६ ॥
बंसी के बिच मोहनी, मोहन याको नाम ।
आनँदघन निरमोहिया, मोह्यौ सगरो गाम ॥ २७ ॥

२२—सलोने—सलोनो (बेल०) । २३—पीया—दीया ।

[२२] धीर समीर=कुंज विशेष । पुलिन-तट । [२३] यननूँ=इनको । तैँडी=तेरी । फँद्या=फँसा हुआ । तुजनूँ=तुझको । मैँडा=मेरा । अबे=ओ, ऐ । मुसि कै=चुराकर । [२५] मैँडे=मेरे ।

दोहा

बरसैँ आनँदघन अनत, इत नित नित ही छाय ।
प्रान-पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय ॥ ३३ ॥
आनँद के घन तुम बिना, तलफत नेही दीन ।
पल हू कल नहिं परत है, जैसे जल बिन मीन ॥ ३४ ॥

निसानी

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिं भावै ।
नयन असाडे लागनै तुजही नूँ धावै ।
हुण क्या कीजै लाडिले वेखन नहिं पावैँ ।
जुलम करैँ ये बावरे मुजनूँ तरसावैँ ॥ ३५ ॥
तैँडे मुख पर तिल अबे अति खून करँदा ।
अलकैँ तैँडी यौँ छुटी ह्वै नागिन लसँदा ।
तिलक बीच छापे अबे दिल का है फंदा ।
चंदागोबिँद सु नँद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३६ ॥

दोहा

आनँदघन हित पोखि कै, पाले प्रान अमीन ।
ते ही अब बिललात यौँ, जैसेँ जल बिन मीन ॥ ३७ ॥

निसानी

दे गिरंद गिरँदा हूवा बे जिंद असाडी छीनी है ।
छिप छिप कर मुखडा दिखलावै रीति अनोखी लीनी है ।
मगजदार महबूब करंदा खूब मजे दी यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी प्यारी है ॥ ३८ ॥

३४–तलफत–हीतल । ३५–लागनै०–लागतैँ तुम (वहीं) । ये–जे (बेल०) । मुजनूँ–तुजनूँ ।

[३३] अनत=अन्यत्र । [३४] मुजनूँ=मुझको । असाडे=हमारे । [३५] हुण=अधुना, अब । वेखन०=देखने नहीं पाते । [३६] करँदा=करता है । लसँदा=सुशोभित हैं । नँद दे=नंद के पुत्र (गोविंदचंद्र) । [३७] अमीन=अमृतों से । [३८] गिरंद=फंदा ।

अहो अहो घनआनँद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है ।
बेपरवाही जाहर कर कर चस्मा नूँ चमकाँदा है ।
नोक नजर टुक करदा नाहीं की तकसीर हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ३९ ॥
ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चस्मों बिच आया है ।
इस्क सराबी कीया मुजनूँ गहरा नसा पिलाया है ।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है ।
महर लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ४० ॥
हीन भए जल मीन छीन बुधि मैंडी पीर न पावै है ।
लाय कलंक यार अपने कूँ तैं ही छिन मरि जावै है ।
आनँदघन इस दिल दी बेदन लहै सुजान बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ४१ ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की छबि निरखै धरि ध्यान ।
इस्कलता के अर्थ कौं समझै चतुर सुजान ॥ ४२ ॥
आनँद के घन छैल सौं करि ले चित को चाव ।
इस्कलता जौ चाहिये तौ बृंदाबन आव ॥ ४३ ॥
इस्कलता ब्रजचद की जो बाँचै दै चित्त ।
बृंदाबन सुखधाम सो लहै नित्त ही नित्त ॥ ४४ ॥

३९–अहो०–अहो अहो (वही) ।

गिरँदा=बधन लगानेवाला । जिद=जिंदगी प्राण । असाडी=हमारी । मगज-दार=बुद्धिमान् । [३९] जित्थूँ०=जहाँ तहाँ जाता है । चस्माँ नूँ०=आँखों को चमकाता है । नोक=अनी, कोना । करदा०=करता नहीं । की०=हमारा अपराध क्या है । [४०] जद=जब । चस्मों०=नेत्रों के बीच । इस्क०=प्रेममदोन्मत्त । मुजनूँ=मुझको । [४१] हीन०=मिलाइए 'सुजानहित', छंद ४ ।

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसैं अवगाहौं ॥१॥
जमुना कहैं रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी ॥२॥
जाके तीर रसिक रसरंगी। बसत लसत गोपाल त्रिभंगी ॥३॥
जमुना को रस कहत न आवै। नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥४॥
जो रस अगम अगोचर महा। सो याके तट प्रगटित अहा ॥५॥
या जमुना की भाग-निकाई। मति अति रीझि बिचार बिकाई ॥६॥
महा रसवती राधापति को। पूरन-प्रेम-तरंगनि तति की ॥७॥
श्रीजुत अंगराग की धारा। जमुना-रूप अनूप अपारा ॥८॥
सबिता पिता उजागर यातैं। कृस्नचंद सुख पावत न्हातैं ॥९॥
बिबिध केलि सुख-बेलि बढावै। बनमाली कौं निपटै भावै ॥१०॥
जमुना बृंदाबन की सोभा। नित नित प्रगटि करति हित-गोभा ॥११॥
कुंजनि पुंज तरंगनि तोषै। कुंज-रमन कौं बहु बिधि पोषै ॥१२॥
जमुना हृदय हेत की खानि। कौन सकै या मरमहिं जानि ॥१३॥
गुपत प्रगट रस जमुना जानै। जमुना को हित को पहचानै ॥१४॥
घूमति फिरति भरति भाँवरी। नित संगम-रंगनि साँवरी ॥१५॥
गौर चरन राधा को गोय। स्याम-रंग मैं धरथौ समोय ॥१६॥
राधा को रस जमुना जानै। भानु-नंदिनी नातो मानै ॥१७॥
जमुना-हृदै रहति नित राधा। जमुना लखैं टरति भ्रम-बाधा ॥१८॥
सुख-सेवा साधिबो करति है। राधा-धव केर सहि ढरति है ॥१९॥
यह जमुना का मरमु कह्यौ है। जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥२०॥
या जमुना कौं हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुंदरस पाऊँ ॥२१॥
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥२२॥

१३—हृदय—पाय (प्रयाग)। या०—पामर नहिं (वही)।

[११] गोभा=अंकुर। [१३] हेत=हित, प्रेम। [१७] भानुनंदिनी=भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)। [१९] राधा-धव=राधा के

यह जमुना मेरी सुखदायनि । याकी लहरि भरयौ चित चायनि ॥२३॥
उफनत स्याम - रसामृत - सिंधु । बिबिध भाव बर पूषन-बंधु ॥२४॥
या जमुना को मोहिँ प्रसाद । रसनैं जमुना-सुजस - संवाद ॥२५॥
ऐसी जमुना मोकौं चहियै । जमुना-कृपा कहाँ लौं कहियै ॥२६॥
जमुना के तट फूल्यौ फिरौं । हेरि तरंगनि रगनि हिरौं ॥२७॥
जमुना लीला - रंग दिखावै । परम प्रीति की रीति सिखावै ॥२८॥
यह जमुना जीवति है मेरी । जमुना सी जमुना ही हेरी ॥२९॥
ऐसैं ही जमुना यह देखौं । नित नित नैननि भाग बिसेखौं ॥३०॥
जमुना - महिमा बेद बखानै । सप्तसिंधु-भेदिनि जग जानै ॥३१॥
जमुना जल - करुना - रसरैनी । दरस - परस पूरन-पद-दैनी ॥३२॥
जमुना देखि न देखै जम कौं । भानकुँवरि मेटति दुख-तम कौं ॥३३॥
जमुना - जलहि सहज हू पियैं । भव-दव-ताप न ब्यापति हियैं ॥३४॥
जमुना देखत ही हरि दरसैं । स्याम रूप आनँदघन बरसैं ॥३५॥
बहुत भाँति महिमा जमुना की । कहि को सक न सकति रसना की ॥३६॥
गोकुल-घाट पियौ जिन पानी । जमुना-रस-महिमा तिन जानी ॥३७॥
जमुना - तीर बसत बलबीर । गोचारन-सुख बिलसत तीर ॥३८॥
स्याम - सरीर गुननि गंभीर । जमुन-तीर बिहरत बलबीर ॥३९॥
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात । मसरत सुभग साँवरे गात ॥४०॥
कहा कहौं जमुना को भाग । अनुराग पूरन रस-पाग ॥४१॥
पैरत जमुना अपने रंग । कान्ह कौतुकी ग्वारनि संग ॥४२॥
बिबिध कलाल केलि बिस्तारत । जमुना सौं पूरन पन पारत ॥४३॥
यह जमुना रस-रास खिलावै । पुलिन सुमंडल रुचिर रचावै ॥४४॥

२५–सवाद–सँवाद (प्रयाग)। ३०–ऐसै०–ऐसइ या जमुना हौं। ३२–जल-जा। ३४–भव–तव। ३५–आनँद०–आनदनि। ३६–को०–न सकति (वही)।

पति, श्रीकृष्ण। [२४] पूषन०=सूर्य का बधु, चद्रमा। [२५] रसनैं=रसना को जीभ को। [२७] रगनि=आनद मैं। हिरौं=खो जाता हूँ। [३४] दव=दावाग्नि। [३६] सकति=शक्ति। [४०] मरसत = मसलते हैं,

स्रमित जानि ब्रजमोहन धीर। जमुना सीतल सजति समीर ॥४५॥
बहुत भाँति जमुना सुख देति। उमँग-भरी हित-लहरैं लेति ॥४६॥
महल टहल की चहल पहल है। जमुना लहरनि भरी लहलहै ॥४७॥
जमुना बिहरनि बैठि सदेसनि। सगन स्यामसुंदर सजि बेसनि ॥४८॥
जमुना बिबिधि कलोलनि ठानति। टहल-रीति जमुनाई जानति ॥४९॥
यह जमुना मेरी जिजमानि। दंपति-सुख-सपति की दानि ॥५०॥
मधुर - केलि - चितामनि जमुना। रटि जमुना जटि राखी रसना ॥५१॥
जमुना दई रसवती बानी। तब जमुना-रस-रीति बखानी ॥५२॥
जमुना जमुना जमुना कहौं। धीर-समीर-तीर बसि रहौं ॥५३॥
जमुना मोकौं सब कछु दियौ। दरसि परसि सरसान्यौ हियौ ॥५४॥
जमुना नावँ जगत - उजियारो। रसिक जननि कौं अति ही प्यारो ॥५५॥
जो जन जमुना को रस चाखै। सो नित जमुना जमुना भाखै ॥५६॥
जमुना चाहि चैन चित होत। उमगि चलत लीला-रस-स्रोत ॥५७॥
जमुना कहत जीभ जगि परै। कृस्नचरित - लीला-रस ढरै ॥५८॥
जमुना कहत कृस्न ढरि आवै। रस ह्वौ रस निज दरस दिखावै ॥५९॥
जमुना ढरैं ढरत ब्रजनाथ। बहत जानि कै गहत सु हाथ ॥६०॥
ऐसो जमुना को प्रताप - बल। और कहा यातैं उत्तम फल ॥६१॥
जमुना को फल जमुना न्हैयै। नित ही जमुना जमुना गैयै ॥६२॥
जमुना जाचैं जमुना पैयै। मन बच करि जमुनाई ध्येयै ॥६३॥
जमुना सब-स्वारथ - भडारिनि। जमुना परमारथ-बिस्तारिनि ॥६४॥
जमुना है मगल की माला। जमुना देखी दीन-दयाला ॥६५॥
जमुना जो कछु मो पर ढरी। पावन पैज प्रगट है करी ॥६६॥
जमुना सुकृत कहाँ लौं बरनौं। पालै पोखै राखै सरनौं ॥६७॥
जमुना सुख-समाज दरसावै। नीरस मनहिं परसि सरसावै ॥६८॥

६३—ध्यैयै—धैये (प्रयाग) ।

रगड़ते हैं। [४८] टहल = काम-धधा। सगन = मडली-सहित। [४९] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, सपन्न। जिजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, दानशीला। [५१] जटि० = जड़ रखा है। [५९] धीर०=

कृस्न - तरंगिनि यातेँ कहियै। जमुना देखि कृस्न उर गहियै ।।६९।।
जमुना तेँ निरवधि रस लहियै। जमुना चहियै जमुना चहियै ।।७०।।
जाके मन जमुना को पन है। रती अतुल को पूरो मन है ।।७१।।
जमुना जमुना जमुना एक। जमुनाई सौँ निबहौ टेक ।।७२।।
बृंदाबन जिहिँ जमुना - कूल। यह नित ही मोकौँ अनुकूल ।।७३।।
जमुना - तट बनराज निकेत। सदा स्याम को निज संकेत ।।७४।।
यह जमुना यह बन मेरो धन। या जमुना बन सौँ मेरो पन। ७५।।
यह जमुना यह बन यह पन है। यह जमुना-बन मान्यौ मन है ।।७६।।
जमुना बन पन मन मैँ बसौ। रसना जमुना के रस रसौ ।।७७।।
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ। मति जमुना-कीरति-गुन गुनौ ।७८।।
जमुना - बचन मौन मैँ रचौ। मन जमुना-चिंतन मैँ खचौ। ७९।।
जमुना सुंदर लोचन देखैँ। सजौ सिँगार सुअंजन रेखैँ ।।८०।।
राधा मोहन - सहचरि दरसौ। जमुना दरसि केलि-सुख सरसौ ।।८१।।
जमुना को आनद अमोघ। गोपीजन - बल्लभ रस - ओघ ।।८२।।
मो पर ढरौ भरौ रस-रंगनि। निरखत जमुना रुचिर तरंगनि ।।८३।।
निरवधि रस की रासि रसीली। हित-कादंबिनि नित बरसीली ।।८४।।
प्रगट पुहमि अचरज यह देखि। जमुना-कीरति-कला बिसेखि ।।८५।।
जमुना को मंगल जस गायौ। रसना निज सवाद-फल पायौ ।।८८।।
जमुना - जस जैसेँ मन भायौ। जमुना - ही अपढार कहायौ ।।८७।।
जमुना - रस - जस ऐसैँ कह्यौ। बानी निज परमारथ लह्यौ ।।८८।।
जमना-जस कौँ जियरा तरस्यौ। जमुना कृपा-सुरस उर सरस्यौ ।८९।
तब कछु जमुना-मरमहि परस्यौ। बानी ह्वै आनंदघन बरस्यौ ।९०।।

दोहा

जमुना - जस बरन्यौ बिसद, निरवधि रस को मूल ।
जुगल - केलि - अनुकूल है, बसिबो जमुना - कूल ।। ९१ ।।

७५–बन०–सोँ ही (वही)।

कुंज बिशेष। [६६] पैज=प्रतिज्ञा। [६७] सरनौँ=शरण में भी। [८२] ओघ=प्रवाह, बाढ़। [८४] कादंबिनि = मेघमाला। [९०] अपढार=आप से आप ढलनेवाला।

प्रीति-पावस

चौपाई

बन बिहरत मोहन घनस्याम । गिरि-गोधन-समीप सुखधाम ॥१॥
रितु बरषा हरषी ब्रज बसिकै । जित तित बसत स्यामघन लसिकै ॥२॥
उमहि असाढ बाढि यौं रहै । चोप-चटक आगम ही चहै ॥३॥
भयौ करति कौंधनि सी हियैं । देखें जियैं चटपटी लियैं ॥४॥
सावन-रूप महारस-प्यावन । ब्रजलोचन हरियारो सावन ॥५॥
मनभावन हित झूमि रिझावन । ब्रजमोहन है ब्रजसुख-सावन ॥६॥
नित ह्वौ हित-झलानि झुकि बरसै । नित ब्रजमोहन-सावन सरसै ॥७॥
सो बिलसत बरषा-सुख बन मैं । उनए नए नेह के पन मैं ॥८॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी । बन भीजत डोलत बनवारी ॥९॥
सुम्लि सखा-समाज-सँग सोहै । मन लोचन अभिलाषनि दोहै ॥१०॥
बरन बरन सिर ललित लपेटा । कोरि कोरि मनमथ-मद मेटा ॥११॥
रचे रुचिर पातन के छतना । मुख-छबि सम सारद-ससि सत ना ॥१२॥
मधुर अधर अभिगुंजी धरै । कान्ह मुरलिया सुर-सँग ररै ॥१३॥
मित्र अनेक एक मन मतै । सदा स्यामसुंदर-रुचि रतै ॥१४॥
बहुत भाँत बन लीला करै । परम-चरित्र कहे क्यौं परै ॥१५॥
गिरि कदरनि कहा छबि कहियै । सब रितु रुचिसमूह सुख लहियै ॥१६॥
तहाँ बैठि बन ब्रज छबि हेरत । फैलि फैलि सुखरासि सकेलत ॥१७॥
बिहरत कबहुँ कलिंदा-तीर । कहा परति क्यौं सोभा-भीर ॥१८॥
मेघ-माधुरी जमुना-तीर । तैसो सुंदर स्याम सरीर ॥१९॥
बृंदाबन घनस्याम-सरूप । ताल तमाल कदंब अनूप ॥२०॥

२–तित–नित (भदा०)। ११–कोरि०–कोटि कोटि मनमथ। १३–अधर०–उर अली गुंजा। १५–परम–प्रेम। रुचि–सुख। १८–कबहूँ–कहूँ। २०–सरूप–सुरूप (वही)।

[७] झला = वृष्टि। [११] छतना = छाता। [१२] कोरि = करोड़। [१३] अभिगुंजी = अभिगुंजन करनेवाली। [१४] मतै = मत करते हैं।

कुंज-पुंज बानिक बहु भाँतिन। लसत लतागन अपनी पाँतिन ॥२१॥
मोहन ठावँ माहनै मोहन। को है बरनि सकत छबि-जोहन ॥२२॥
ताल बिसालनि झूला मेलत। फूलनि झूलि झूल रस झेलत ॥२३॥
सुख-सहेत ब्रज गोरिनि घाती। दिनहीँ कियौ रहत अधराती ॥२४॥
पावस-दिन मावस-निसि मनौं। निसि-विलास कैसैं धौं गनौं ॥२५॥
भीजे रहत प्रेम - पावस मैँ। संगम पर्ब लहत मावस मैँ ॥२६॥
जमुना - पूर परम सुखदायक। दरस परस सरसत ब्रजनायक ॥२७॥
उमड्यौ रहत सदा आनँदघन। यह जमुना यह बरषा यह बन ॥२८॥
हित - पावस नित ही इत रहै। चातक - चोप सदा निरबहै ॥२९॥
फिर पावस रितु जब इत आवै। रीझ भीजि रस-पारस पावै ॥३०॥
रितु अनरितु इत की रितु औरै। सेवति रसिक स्याम सिरमौरै ॥३१॥
मुरली मैँ मलार धुनि पूरति। या बिधि जड़-जंगम-चित चूरति ॥३२॥
बन - ब्रज नेह - मेह बरसावै। यह पावस-सुख कहत न आवै ॥३३॥
सजल नैन देखैँ अनदेखैँ। उघरति नहीँ न लगत निमेखैँ ॥३४॥
चटक - चोप चपला हिय लवै। सबही दिस रस-प्यासनि लवै ॥३५॥
बरन बरन अभिलाषनि धुरवा। मुदित मनोज-मनोरथ मुरवा ॥३६॥
भीजति भिजवति बाहर घर मैँ। कछु सुधि नाहिं परति हित-झर मैँ ॥३७॥
सब ब्रज रस - धाराधर धूमि। सदा एकरस आरति झूमि ॥३८॥
बढ़त प्यास ज्यौं ज्यौं झर सरसै। आनँदघन ब्रज अचरज बरसै ॥३९॥
दामिनि-प्यास भरयौ घन डोलै। सदा मिलन मैँ मानत ओलै ॥४०॥
नित ही इतहि कोकिला कूजै। केलि-कलाधर आसनि पूजै ॥४१॥

२२—मोहनै०—मोहन को (वृंदा०)। २४—सहेत—सहेट (भदा०)। २६—पर्ब०—प्रबल होत। २८—उमड्यौ—घमड़्यौ। ३०—पारस—या रस। ३१—की रितु—की रति।

[२४] सहेत = संकेतस्थल। घाती = घात (दाँव वाला। [२६] मावस = अमावास्या। [२७] पूर = प्रवाह। [३५] लवै=चमकती है। [३६] धुरवा= बादल के स्तंभ मुरवा=मोर [३८] धाराधर=बादल। [४०] ओलै=विरह ही।

रस की फैल सदा ब्रज दरसै। सदा अपूरब अबुद बरसै ॥४२॥
सब बिधि भरत मनोरथ क्यार। ब्रज पावस नित दरसत प्यार ॥४३॥
यह पावस या ब्रज नित बसै। सदा स्यामघन इत रसमसै ॥४४॥
अद्भुत घन दामिनि सुख सरसै। रस पीवतहू प्यासनि बरसै ॥४५।
चढ़े रहत नित हियनि हिंडोरनि। बिह्वल प्रेम-झूल झकझोरनि ॥४६॥
मधुर प्रेम - पावस के गोत। रसनिधि राधा मोहन - मीत ॥४७॥
सूहे बरन बसन अनुराग। धारे रहत सदा बडभाग ॥४८॥
भींजे सहज भिजावत सदा। नव घन दामिनि रस-संपदा ॥४९॥
ब्रजबन भीजि रह्यौ है रस मैं। ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैं ॥५०॥
यह पावस नित ही इत रहै। बरसनि सुख-सरसनि को कहै ॥५१॥
अचरज-झर लाग्यौई दरसै। घन तरसै चातक-रुचि बरसै ॥ २॥
दामिनि घनहिं भिजै रस पीवै। घन दामिनिहिं देखि ही जीवै ॥५३॥
अद्भुत घन दामिनि को धर्म। लह्यौ न परत अनोखो मर्म।५४॥
प्यासनि बरसत अति रस भरै। अचरज घन दामिनि संचरै ॥५५॥
बरन - बरन लीला - रस - रंगनि। नित नवीन पूरन सब अंगनि ॥५६॥
ब्रजबन रस सींचत घुरि ढुरिकै उघरि घमड़ि अरु घमडनि दुरिकै ॥५७॥
बिसद केलि-रस - रेलि बढी है। प्रबल प्रेम - भर नदी चढी है ॥५८॥
उमग असाढ चटक झर सावन। भरि भैंटनि भादौं मनभावन ॥५९॥
बारह मास छ रितु यह पावस। पून्यो को सुख देत अमावस। ६०॥
या ब्रज सब रितु अचरज-रूप। अचरज गोपी कान्ह अनूप ॥६१॥
सुरस प्रीति - पावस ज्यों बरसै। त्यौं ही सब रितु को सुख सरसै ॥६२॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै। लहत लहत मति सुरति भुलावै ॥६३॥
या ब्रज सहज प्रीति - पावस है। सब रितु सुख इकरस ब्रजरस है ॥६४॥

४२—सदा अपू०—जहाँ अपू०। ४३—क्यार—प्यार (वही)। ५०—है—हित (भदा०)। ५२—बरसै—परसै। ६४—सुख०—आइ करन।

[४३] क्यार=(केदार) क्यारी। रसमसै=रस बरसाता है। [४८] सूहे= लाल। [५८] बिसद=स्वच्छ। रेलि=प्रवाह।

जिनके दृग चातक मन मोर। तेई तकत सु पावस-ओर ॥६५॥
रसकदंब - कादंबिनि दरसै। भीजि भीजि आनँदघन बरसै ॥६६॥
सब रितु मच्यौ रहत चौमासो। बरसि बहायौ सब ही साँसो ॥६७॥
तोष पोष जैसो जब चहियै। हित-पावस मैं नित ही लहियै ॥६८॥
यहाँ आय पावस हू भीजै। नित त्यौहार मनावत जीजै ॥६९॥
सो पावस ब्रज बसि यौं सोहै। सोहै मोहै पटतर को है ॥७०॥
फूले सरस कदंबनि पुंज। महा मनोहर मधुकर-गुंज ॥७१॥
अमित लतागन फूलनि छाए। सोभित बन के सदन सुहाए ॥७२॥
बनवारी को सुख दरसावत। पैठत बैठत बूँद बरावत ॥७३॥
गायनि को सुख देखत ठाढ़े। लिये लकुट आनदनि बाढ़े। ७४॥
साँवल-बरन सहज ब्रजमोहन। मन दृगनि के मनोरथ-दोहन ॥७५॥
सुहृद-संग बिहरत बन फिरै। अँखियाँ निरखि न क्यौं हूँ घिरै ॥७६॥
मुरली माँझ मलार जमावत। पावस को सौभाग्य बढ़ावत ॥७७॥
सुरहि परसि पखान जल होय। ब्रज पावस-गुन धरयौ समोय ॥७८॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर। पावस बिहरत ब्रज-सिरमौर ॥७९॥
गावत गोपी रितु के गीत। भीजत रीझन मोहन-मीत ॥८०॥
झुरमट झूला बगर बगर है। पावस को सुख डगर डगर है ॥८१॥
सरवर तीर समाजहि सजै। झूलै, गावै, निरखै, लजै ॥८२॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति। पीवत नैननि मानत साँति ॥८३॥
पावस को सुख बहुत प्रकार। ब्रज बन बिहरत रसिक उदार ॥८४॥
गोप-कुमर सबके मन मोहत। सब रितु हित सब ही बिधि मोहत ॥८५॥

६६—मन—या (वही)। ६९—जीजै—नीजे (वृंदा०)। ७५—साँवल—सावन (भदा०)। ७६—घिरै—फिरै। ८५—रितु—ही।

[६६] कदब=समूह। कादबिनि=मेवमाला। [६७] साँसो=सशय। [७०] पटतर=समानता। [७३] बरावत=बचाते हुए। [७८] सुर=स्वर, मुरली की ध्वनि। पखान=पाषाण। समोय=सँजोकर। [८१] झुरमट=समूह भीड़। बगर=घर। डगर=गली। [८३] साँति=शांति।

सोभित खोही लकुट सुदेस । पावस ग्वार मनोहर बेस ॥८६॥
ब्रज-बन गैल-गरथारनि गाहत । लहत फिरत ज्यौं ज्यौं सुख चाहत ॥८७॥
बहु बिधि पावस के सुख बिलसै । नित गोपी गुपाल मिलि हुलसै ॥८८॥
चोप-हरथारी हिलमिल बाढ़ी । पावस निज सपति है काढी ॥८९॥
राधा - मोहन रचन - बिहार । उर धरि पावस कियौ बिचार ॥९ ॥
श्री ब्रजभूमि बास करि पावस । कृस्न - ब्रजबधू रस का पारस ॥९१॥
पाय तुस्ट ह्वै अति छबि छाय । हित हरियारी रची बिछाय ॥९२॥
तापर ते पद धरि धरि सरसैं अति कोम । तृन-अकुर परसैं ॥९३॥
बन बेलिन बहु भांति फूल फल । सरनि समाज भरे नरमल जल ॥९४॥
बिलसत सब सुख मोहन स्याम । उर पर पीत जुही की दाम ॥९५॥
कौतुक - रूप सदा बनवारी । आनँद - मूरति रसिकबिहारी ॥९६॥
सहज सिंगार कहा कछु कहौं । रूप-गहर की थाह न लहौं ॥९७॥
बरन मनोहर जगत उज्यारो । कारो ब्रजलोचन को तारो ॥९८॥
पावस बर बन घूमत डोलै । जोबन-छक्यौ छैल-गति बोलै ॥९९॥
ब्रजरस भिजै रिझै इन राख्यौ । ब्रजरस-सार सोधि इन चाख्यौ ॥१००॥
आतंक अ ल प्रीति-पावस को । जल-रसियै चसको ब्रजरस को ॥१ १॥
भीजे रहत प्रीति - पावस - रस । पावस-सुख बिलसत भीजनि बस ॥१०२॥
यौं ही भीजत भिजवत रहौ । ब्रजरस सुख-सपति नित लहौ ॥१०३॥
गोप - दुलारे जसुदा-जीवन । अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥१०४॥
पावस - प्रीति पपीहा दरसै । तोषै पोषै पीवैं तरसै ॥१०५॥
घन चातक को मरम न परसै । ब्रज प्यासनि आनँदघन बरसै ॥१०६॥

९०—रचन—चरन (वही)। ९१—पावस—छावस (भदा०) । पारस—पावस। ९२—ह्वै—है । छाय—छावै । ९५—पीत—पीन । १०१—आतँक—चातक । सपति—सवाद (वही) ।

[८६] खोही=पत्तों का छोटा छाता या कबल की घोघी । सुदेस = सुदर । [८७] गरथार=गलियारा, छोटी गली । गाहत=घूमते हैं। [८९] हरयारी= हरियाली । [९५] दाम=माला । [९७] गहर=गहराई ।

प्रेम-पत्रिका

प्लवग

कान्ह तिहारी पाती तुमहिं सुनाइहौं।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जौ पाइहौं॥ १॥
कटुक प्रीति को स्वाद मिठास-भरयौ महा।
छ्वै रसना करि किलक कहौ बरनै कहा॥ २॥
जानै बिरही प्रान और कैसैं बनै।
तीखी तरल सुबात कहत रसना छनै॥ ३॥
स्रवन सहैं ते और लहैं पर-पीर कौं।
धनि धनि हो ब्रजनाथ तिहारे धीर कौं॥ ४॥
सुखी हौ सुखदैन हमारी हम भरैं।
बाँको बार न होउ असोस सदा करैं॥ ५॥
अकथ कथा की पाती छाती ह्वै भई।
नेकु लागि पिय बाँचौ दूरि भए दई॥ ६॥
बिसरि गए बिसवासी सरक सनेह की।
मुरली-बेधनि बेधी गति मन देह की॥ ७॥
धरी दूरि पहचान निकट की को कहै।
सुधि भूले सब भाँति परेखनि ज्यौं दहै॥ ८॥
बृंदाबन घन कुंजैं देखति हैं जबै।
पात फूल फल डार बिराजत हौ सबै॥ ९॥
ढिग ह्वै यौं दुख देत दूर तें दूरि से।
हाथ न लागत हाय रहे हौ पूरि से॥ १०॥

१–तिहारी–तेरी (याज्ञिक)। हाय कहूँ–कहूँ जौ तुम्हैं। २–छ्वै–द्वै (बृंदा०)। ४–स्रवन–श्रवन (याज्ञिक)। हो–है। ७–गए–गई (वही)। मन०–मद नेह (बृंदा०)। ८–ज्यौं–जो (लदन) ९–हौ–है (बृंदा०)।

[२] किलक=पुकार। [३] छनै=छिद जाती है [७] सरक=मद्यपान।

बिबस बिसूरि बिसूरि रात दिन बीतई।
सब बिधि हारी हाय बिरह बल जीतई ॥ ११॥
चेटक चितहि लगाय निचीते ह्वौ भले।
जुवती-जन-मद-गंजन घातन ही पले ॥ १२॥
परमेसुर डर करौ निवारि अनीति कौं।
प्रेमी परम प्रबीन एक रस रीति कौं ॥ १३॥
जानि बूझि अनकनी दयाल न दीजियै।
दुखिया जन को जतन कछू तौ कीजियै ॥ १४॥
या बिधि ब्रज बसि रहैं बिसासी सॉवरे।
तुमहीं देउ बताय सबै बिधि भॉवरे ॥ १५॥
कँवल नैन वह चितवनि सालति है दई।
बेध्यौ हियो दुसार सुसार कपटमई ॥ १६॥
अब पिय कपट न करियै हरियै कदन कौं।
पाय डारि कित मूड़ चढावत मदन कौं ॥ १७॥
सुदर रसिक सजीवन तुम ही तैं जियैं।
तुम बिन कहूँ न रहैं कहैं सौं हैं कियैं ॥ १८॥
ऑखिनि कहा दिखावैं मन बैठे रहौ।
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहौ ॥ १९॥
धरी धरोहर पिय की प्रान सुदाम हैं।
जब चाहौ तब लेहु जु गावत जाम हैं ॥ २०॥
सदा सुखी सुख देत रहौ दुख पावत नाहीं।
कीरति जोन्ह सु जगमगै जसुधा-सुन पाहीं ॥ २१॥

१३–डर-कौं (याज्ञिक)। प्रेमी०–प्रेम परम परबीन। १४–अनकनं आनाकनी नहिं। जन–जिय (वही)। १६–दुसार–उसार–(वृ दा० १७–कपट–निपट (याज्ञिक)।

[१२] निचीते=निश्चिंत। [१५] भॉवरे=चक्कर काटनेवाले भौं [१६] दुसार=आरपार छेद। सुसार=प्रवेश। [१७] कदन=कष्ट, पीड़ा। पाय= पैरौं पर गिरकर। [२०] दाम=द्रव्य।

मंगल मूरति सबन कौँ सुख लै बिस्तारौ ।
हम निपटै राउरी हैँ आसरो तिहारो ॥ २२ ॥
तुमरी कुसर कुसर सदा ब्रज मैँ नित है हो ।
और भाँति कहि को सकै प्रीतम सोँ लै हो ॥ २३ ॥
नित सुहाग-पागी रहैँ ब्रजनाथ गुसाँई ।
आनँदघन उनए रहौ निसिबासर छाँई ॥ २४ ॥
तुम चाहा सु करौ जु सही कछुव न कहैँ ।
आनँदघन रसरासि चातकी ह्वै रहैँ ॥ २५ ॥
या पाती कौँ देखि पथिक प्रानै लहै ।
आसा निगड़ समेत चलन उमह्यौ रहै ॥ २६ ॥

कबित्त

वही जमुना है वही बन वेई कुज-पुंज,
वही रितु वही चंद ओर सब वहियै ।
वेई हम वही मन वेई अभिलाष लाख,
वही धुनि मुरली की अजौँ रमि रहियै ।
कान्हर किसोर चितचोर ओर के बिसासी,
अब ही दुरे हैँ कहूँ ढूँढ़िबै उमहियै ।
बिरहा बिषम घनआनँद यौँ छाय रह्यौ,
सीरी परि दहियै हो गति कासोँ कहियै ॥ २७ ॥

सवैया

मुख देखि जियौँ अनदेखेँ मरौँ मुख चाहि मरौँ तौ जियौँ सु करौ ।
ब्रजजीवन आनँद के घन हौ इन दीन पपीहनि पीर हरौ ।
झर पै झर लाय दबाइयै लाय बलाय लै पाय परौँ कि ढरौ ।
अब औसर है सुखदैन सुनौ इक बार जिवाय कै जीबो करौ ॥ २८ ॥

२६–देखि–देस (वृंदा०, लदन) । उमह्यौ–उनयो (याज्ञिक) । २८–पीर–प्रान (याज्ञिक) ।

[२३] कुसर=कुशल । [२६] निगड़=बेड़ी । [२७] ओर के=चरम सीमा के, अत्यंत । बिसासी=विश्वासघाती । [२८] झर=झड़ी वृष्टि । लाय=लगाकर । लाग=आग ।

सीतल सुंदर मोहन मदिर कंदर केलि - कलानि बिसेषे ।
गोबिंद गोधन ग्वारन कौं घनआनँद छावत भावत देखैं ।
फूलन कै फल कै दल कै ललकै जल कै भरि भाव असेपैं ।
लै मन हाथ रहै हरि को-हरि हाथ रहौ गिरिनाथ सु लेखैं ॥ २९ ॥

कबित्त

बृंदाबन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम - नैन पहचानहीं ।
राधिका दरस कौं सुदेस आदरस याहि,
चाह्यौई करत जब जब जैसें जानहीं ।
ऐसे रग मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं ।
जमुना कें तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैं ई बखानहीं ॥ ३० ॥

स्याम यामैं बसे यह बसै स्याम-हियें सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै ।
यही बृंदाबन देखौ प्रकट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै ।
नैन बैन मनसा समोय राख्यौ बड़भागी,
तिनहीं की कृपा को सु अजन बिचारियै ।
महा अचरज-धाम मोहिं ऐसें दीसि पर्यौ,
दीसत न काहू बिन दीसें लाल-प्यारियै ॥ ३१ ॥

२९—कदिर—कंदन । बिसेपें—बिसेखौ (वही) । ३०—जैसें—जैसो (लंदन) । दुरयौ—उरयौ (बृंदा०) । ३१—दुरयौ—उरयौ (बृंदा०) । बैन०—मन साँवरे को मोहि (बृंदा०), बैन मनसा रमाय (याज्ञिक) ।

[३०] गोभा=अकुर । सुदेस=सुदर । आदरस=आदर्श, दर्पण । मरीचैं=किरणें । बितान=चँदोवा । [३१] समोय०=लीन कर रखा है । लाल०=श्रीकृष्ण और श्रीराधा ।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदावन कहौ कैसैं करि दीसई।
दीसत दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरयौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई।
परैं तैं परैं है भयौ हाय यह बृंदावन,
राचैं, रज जाचैं ईस हू से बकसीसई।
ताहि दौरे जात पाय लियौ है सबनि सुधो,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई॥ ३२॥

बृंदावन-माधुरी अचंभे सौं भरी है देखौं,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै।
अंग - रंग - संग एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधा रानी अवरेखियै।
सुवन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदीकूल,
आनँद को घन रसमूरति बिसेखियै।
देखत दुरयौ सो अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा ही तैं परस-गुन पेखियै॥ ३३॥
बृंदावन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहू गए तैं रस - पारस क्यौं पाइयै।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकैं,
सुभर भरयौ है तौ लौं उर न बसाइयै।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा - चरन - रज आँखिनि अँजाइयै।

३२–परैं तैं–बरैं तैं। ३३–देखौं–देखैं (याज्ञिक)। एकमेक०–एक एक ह्वै (वही), एकमेक धोहयौ है सदा (बृंदा०)। सो–है (याज्ञिक)। तैं–पै (बृंदा०)। ३४–पारस–या रस (याज्ञिक)। है–लै जौ (वही)।

[३२] हरयौ=हराभरा। बिसे०=पूर्णतया। राचैं=अनुरक्त होते हैं। बकसीस=प्रसाद, भेंट। परीसई=स्पर्श करते। [३४] भानुजा=वृषभानुजा, राधा।

निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥ ३४ ॥

राधा-हरि-आरति मरोरि मोडि मारति है,
या बिधि जिवाय जिय दसा करै औरई ।
बन उपबन ब्रज बाखर खरिक खोरि,
गिरि गह्वर उफनाति प्रेम - रौरई ।
कहा जानौं कैसी है कहा है दुहुँनि की लाग,
रंचक बिचारैं अति बाढति है बौरई ।
रमन रँगीली भूमि आनँद को घन भूमि,
रमड़ि रमड़ि दरसत ठौर ठौरई ॥ ३५ ॥

सवैया

ब्रजमोहन राधिका की रहठानि सदा अनुराग सुहाग भरयौ ।
कहि आवत क्यौं निरखेई बनै गिरि गोधन मैं जु कछू लै धरयौ ।
भरि भोवत नैन हियैं दिन रैन सहेटनि भेटनि ढार ढरयौ ।
सु कलिंदी के कूल अनंदनि मूल सनेह को देस है दीसि परयौ ॥ ३६ ॥

कवित्त

जोई हौं बिचारौं गैल तहीं तहीं दीसै छैल,
आडोई अरैल पै छराए लौं न छ्वै परै ।
तौ की गति कहा कहौं कहाँ जाऊँ कैसे रहौं,
नैन मूँदें चहौं चित भावनानि भ्वै परै ।
आनँद को घन प्यारो चेटक घमड लियैं,
चहूं ओर घुरि घेरि चोपनि सौं च्वै परै ।
गोकुल को बसबास सास ननदी को त्रास,
दूखते को चोट लौं कनौड़ें भेंट ह्वै परै ॥ ३७ ॥

३७–भ्वै–च्वै (लदन) ।

[३५] आरति=लालसा। बाखर=घर। खरिक=पशुशाला। खोरि=गली। रमड़ि०=बिलासपूर्वक, क्रीड़ा करते हुए। [३७] छराए लौं=माया दृश्य की भाँति। तौ=तब। भ्व०=लीन हो जाता है। दूखते०=पीड़ावाले स्थान पर ही चोट लगने की भाँति।

सवैया

सौंधँ सनी अलकैं बगरीँ मुख जोबन जोन्ह सौँ चंदहिँ चोरति ।
अगनि रंग-तरंग बढ़ी सु किती उपमानि के पानिप ढोरति ।
मोहन सौँ रस-फाग मची सु भली भई हौँ कब तेँ ही निहोरति ।
आनँद के घन रीझनि भीजि भिजै पठई कहा चीर निचोरति ॥ ३८ ॥

कबित्त

एक डोलै बेचति गुपालहिँ दहेँडी धरेँ,
नैननि समान्यौ सोई बैननि जनात है ।
और उठि बोलै आगेँ ल्याइ री कहा है मोल,
कैसो धौँ जम्यौ है ज्यौ सवादै ललचात है ।
आनँद को घन छायौ रहत सदाई ब्रज,
चोपनि पपीहा लौँ चहूँघा मँडरात है ।
गोकुल-बधूनि की बिकानि पै बिकाय रहै,
गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकात है ॥ ३९ ॥

सवैया

बसि नैन हियेँ दुरि दूरि लसौ सुख-दैन सदाई सहायक हौ ।
कितहूँ दरसौ कितहूँ सरसौ गति को समझै पन-पायक हौ ।
जित झूमि झरौ तित भाग भरौ घनआनँद जू रसनायक हौ ।
ब्रजमोहन छैल छबीले सुनौ कहियै सु कहा सब लायक हौ ॥ ४० ॥

कबित्त

मोहन के बदन मिठास-भरी तानैं भिदि,
मीठियै लगति जब मिलै सब डाटि लै ।
भोरी ब्रजगोरिनि की लाज-पाज तोरि तोरि,
गैल करि देति खेद-बाधा-खाई आटि लै ।

३९–धरेँ–लियेँ (संग्रह)। समान्यौ–समायौ। ल्याइ–लाव। ४०–दरसौ०–दरसौ गति को समझै मन की तुम तौ। सु–तौ।

[३८] सौंधँ=सुगंध से। पानिप=शोभा। ढोरति=बहा देती है। [३९] दहेँडी=दही की मटकी। [४०] पन०=पन को पी जानेवाले। [४१] डाटि०=डटकर

ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढति है,
काढति घरनि तें उपायनि उचाटि लै।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै बन व्यापक है,
देखौ गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥ ४१ ॥

कौनैं हरि देव सो बतावौ हरिदेव हा हा,
नाँवैं हरिदेव पै हियो हू हरि लेत हौ।
गिरिवर-कंदरानि मंदिर मैं बसौ लसौ,
साँवरे सलोने साधु से दिखाई देत हौ।
आनँद के घन झूमे रहत सदाई इतै,
घेरौ अबलानि दान माँगौ घरि हेत हौ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद - भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥ ४२ ॥

नाम कौं न नेम बाँध्यौ प्रेम सौं सुलेखो कहा,
धायौ नहीं धाम लीला-माधुरी बिभूति कौं।
जनम जनम तें अपावन असाधु महा,
अपरस पूति सौं न छाँड़ै अजौं छूति कौं।
भूलि मोह-मेहै राच्यौ भ्रम-धूम-धूँधरि सौं,
केवल कलंकी-रूपी जननी-प्रसूति कौं।
करुनानिधान कान्ह आपने गुनैं सम्हारौ,
मेरी गति कौन जौ बिचारौ करतूति कौं ॥ ४३ ॥

जप-रस-धारा मन मज्जन करै न जौ लौं,
तिय-रसहीन-ज्वाला प्रानहि पजारें कहा।
अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसें,
बासना न धोवै तौ लौं तन के पखारें कहा।

चख लेती है। पाज=बाँध। खाईं=खाईं को भरकर। बजाय=डंके की चोट। गति०=राग से भरकर यमुना की गति अवरुद्ध कर दी है। [४२] हरि०=हरण करके दे देते हैं। नाँवैं०=नाम से तो हरकर 'देने' वाले पर काम से हृदय भी हर 'लेने' वाले हो। दान=कर। भाय=भाव। दाय=दावँ, घात। [४३] अपरस=नीरस।

बृंदाबन-माधुरी अगाध है अगम अति,
बातैं सुनि सखै सठ हठ-पन पारै कहा ।
आनँद को घन झूमै केवल कृपा-समीर,
सहज बनक देखौ ढकै औ उघारै कहा ॥ ४४ ॥

कछू न करत यामैं सब कछू करत हौ,
मोसे अनकछू सौं कछू न हौ करत क्यौं ।
अतर की जानौ जानि बूझि राखौ अंतर कौं,
गाँसनि गसीले महा ढीले न ढरत क्यौं ।
जगत के जीवन छबीले घनआनँद जू,
छाए सब ठौर हा हा छिये न परत क्यौं ।
साँचे कपटी हौ सूधी बातनि हूँ टेढ़े परौ,
परे तें परे हौ पै न टारे हू टरत क्यौं ॥ ४५ ॥

मतिमान ह्वै कै मति मानिबो कहाँ तें सीखे,
रति मानि आए अति मान मोहि दियौ है ।
घूमरे दृगनि कछू पिये से फिरत कहा,
पटहि पलटि आए महा पोढ़ौ हियौ है ।
इते मान सौं हैं खाय खाय न अघाए कहूँ,
सुघर कहाए सठता को हठ लियौ है ।
भोरहीं भले हौ जू भले को मुख देखि चले,
कितहूँ तें मोहू कौं दरस आय दियौ है ॥ ४६ ॥

पूति=दुर्गंध । छूति=अस्पृश्यता । मोद०=आनंदघन को । [४४] अपरस= अस्पृश्य, अप्राप्य । सपरस=सस्पृश्य, छूत से युक्त । बनक=सजधज । [४५] अतर=अंतःकरण । अतर=भेद । गाँस=गाँठ, भेद की बात । गसीले= युक्त । ढीले=शिथिल । न ढरत=द्रवीभूत क्यों नहीं होते । छिये०=छुए नहीं जाते, पहुँच में नहीं आते । परे०=परात्पर होकर भी सदा निकट रहते हो, हटते नहीं । [४६] खंडिता का कथन है । मतिमान=बुद्धिमान् । मति०=न मानना । रति०= प्रेम करके । पट०=वस्त्र को पलटकर, दूसरे के वस्त्र पहनकर । सुघर=चतुर ।

भूषन कौं भूषन हौ कहा लै सिँगारै कोऊ,
अति ही अनूप रूप कैसेँ धौं कह्यौ परै।
आनँद के अबुद रसीले ब्रजमोहन जू,
पपीहा बिचारे पै न चाय हू रह्यौ परै।
दीसौ अनदीसौ नैन लागेई रहत सदा,
लहाछेह रावरो छबीले न लह्यौ परै।
खुलि मिलिबे मैं दूरि दुरि दुख देत दैया,
सीतलता तुम्हैं मेरो हियौ क्यौं दह्यौ परै ॥ ४७ ॥
स्याम-रंग-रँगी दीठि लोयन भगौहैं सदा,
अंगनि अनंग-ज्वाला दुरी पजरति है।
नखसिख भसम-चढ़े से गात देखियत,
आँसुनि की धारा हू न धोइयौ परति है।
बिकल अचेत तारी तुम ही त्यौं लागी रहै,
रातिद्यौस ताकौं सोई जानैं ज्यौं भरति है।
चातकी भई है घनआनँद तिहारैं ब्रत,
जोगिनि तैं अधिक बियोगिनि बरति है ॥ ४८ ॥

सवैया

दिन फाग के भागनि आनि मिले लगि लेत हैं दावँहि दायनि सौं।
मची राधिका मोहन त्यौं हित होरी रची रुचि चाँचरि चायनि सौं।
लखि दीठि रँगी नव जोट जगी गुन जोबन रूप सुभायनि सौं।
... . ॥४९॥
रसना बलभद्र सुनाम लियैं सब ठौर सबै बिधि होति भली।
ब्रजमोहन मोह की मूरति राम जतैं धनि रोहिनि पुन्य फली।

[४७] भूषन०=गहनों को भी शोभित करनेवाले। लहाछेह=शीघ्रता, फुरती। [४८] भगौहैं=गैरिक, गेरू के रंग का। भसम=भस्म, राख, प्रचंड अग्नि। तारी=ध्यान। राति०=वे ही रातदिन उस प्रकार उसका समय व्यतीत करना जानते हैं। मिलाइए—जानै वेई दिनराति बखानैं तैं जाय परै दिन राति को अंतर। [४९] दावँ=अवसर। दाय=घात। [५०] जतैं=जिससे या जहाँ। धनि=

घनआनद छाय सदा ब्रज पै बरसौ सरसौ करि रंग रली।
मन रे सुख-संपति चाहत जौ नित ही भजि लै मुसली कुसली ॥ ५० ॥

कबित्त

गुरनि बतायौ राधा-मोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृंदावन गाढ़ै गहि रे।
अद्भुत अभूत मही-मंडल परे तें परे,
जीवन को लाहौ हाहा क्यौं न ताहि लहि रे।
आनद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौं पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥ ५१ ॥

सवैया

अब सो करियै ब्रजमोहन जू जु करौं बिनती कर जोरि यही।
सब ठौर तें दौर थकै मन की कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही।
घनआनँद दीन पपीहन कैं तुम ही धन जीवन-मूल सही।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे की रही ॥ ५२ ॥

बसी मैं मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लई बपुरी अबला सब।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौं को बरनै 'रु सुन्यौ किनहूँ कब।
व्यापि रही चर थावर लै घनआनँद घोर घमंडन की फब।
कानन मूँदेऊ तैसियै बाजति क्यौं भरियै करियै सु कहा अब ॥ ५३ ॥

छप्पय

ब्रजबासिन की सहज होय जौं प्रापति मन कौं।
यहै आस बिसवास राखि पालै हित-पन कौं।

५३–फब-भब (सग्रह)। तैसियै–तैसियौ (लदन)।

वन्या, स्त्री। रोहिनि=बलरामजी की पत्नी रोहिणी। मुसली=मुसल धारण करनेवाले बलराम। [५१] गाढ़ैं०=भली भाँति ग्रहण कर। बहि=वहन कर। पुलिन=तट। [५२] पौरि=द्वार। देहुँ०=पड़ा रहूँ। [५३] थावर=स्थावर।

नितलीला - रगमगे - नैन - थाकनि - सँग डोलै ।
जमुन-तीर तरु - बेलि केलि-रस झेलि कलोलै ।
अहोभाग कहियै कहा आनँदघन अभिलाष - झर ।
क्यौं न लगैं आसा - लतैं, फूल - सहित ऐसो सुफर ॥५४॥

कबित्त

आनँद को अबुद पपीहापन पैज धरैं,
झूम्यौ देखियत ब्रज बंसी-धुनि-घोरना ।
चोप चपलानि की चमक चारु चहूँ कोद,
लाख लाख अभिलाष ऊमस को ओर ना ।
रस-झर लाग्यौ हित-हरियारी नित नई,
नीकी प्रीति-पावस को समै चित-चोरना ।
हिलनि मिलनि झूल आस-लाँबी झूलनि सौं,
झूलत गुपाल - गोपी हिलग - हिँडोरना ॥ ५५ ॥

सवैया

मित्र के पत्रहि पावत ही उर काम-चरित्र की भीर मची है ।
सीस चढावति आँखिनि लावति चुंबन की अति चोप रची है ।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौनि अची है ।
छाती सौं छ्वावत ही घनआनँद भीजि गई दुति-पाँति नची है ॥ ५६ ॥

कबित्त

ऊधौ बिधि-ईरित भई है भाग-कीरति,
लहो रति जसोदा-सुत पायनि परस की ।
गुलम लता ह्वै सीस धरयौ चाहै धूरि जाकी,
कहियै कहा निकाई महिमा सरस की ।
झूम्यौई रहत सदा आनँद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी-बरस की ।

५४—यहै—पैहै (सग्रह) । झर—ऊर । क्यौं न०—क्यां लगैं फूल । सुफर—सुघर ।

फब=छटा । [५४] जैं=जैसे । [५५] पैज=प्रतिज्ञा । कोद=ओर । ओर=सीमा, अंत । [५६] अचौनि=आचमन, पीना । [५७] ईरित=घोषित । आरति=

आँखिनि लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥५७॥
गोपिनि के आँसुनि सों सींची अति लोनी लगै,
देखि पाई भाग जागैं जीवन की मूरि मैं ।
मोहन रसीले को सुरूप दरसावै मन-
रंजन सुअंजन कै राखौं चख पूरि मैं ।
याही मिलि रहौं कहा कहौं जैसो जिय आवै,
हेत-खेत गहौं है निपट चूरि चूरि मैं ।
सीसहि चढाऊँ घनआनँद कृपा तें पाऊँ
प्रेमसार धरयौ है समोय ब्रज-धूरि मैं ॥५८॥

सवैया

आवैं कहूँ मनमोहन सो गली पूरव भागनि कौं ब्रज ऊजै ।
आय कछू न बसाय तवै दुरि देखिबो दूभर छाँह क्यौं छूजै ।
माँगति हौं बिधिना पै बड़े खन जौ कबहूँ जिय आसहि पूजै ।
चौथ को चंद लखें ब्रजचंद सों लागै कलंक तौ ऊजरे हूजै ॥५९॥
रीति यौं चेटक ही सों भरी धुनि मैं करै धीरज-दोहन बाँसुरी ।
घेरि लै आनि बसावै बनैं ब्रजनारिनि कै परी गोहन बाँसुरी ।
रीझ भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छोहन बाँसुरी ।
हाथ लियें रहैं रैनदिनाँ मनमोहन की मन-मोहन बाँसुरी ॥६०॥

कवित्त

ऐसी कृपा कीजिय कृपानिधि निवारि भ्रम,
भाँवरी करौं सदाई ब्रज-बन-भाँवरी ।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि,
चकि जकि चाहि रहौं वहै छवि साँवरी ।

६०-यौं-या (संग्रह)।

लालसा। [५८] लोनी=सलावण्य। समोय=मिलाकर। [५९] ऊजै=आंद लित होता है। खन=क्षण। ऊजरे=उज्ज्वल; हर्षित। [६०] चेटक=जादू

आनद के घन हौ पपीहा प्रान पोखियै जू,
हित-छाँह छाय मेटौ सोच-घाम-ताँवरी ।
छोरि सब ओर तैं सुदेस लै बसैयै हाहा,
मोहन रसीले यौं गसैयै मोह - डाँवरी ॥ ६१ ॥

ब्रज बृंदाबन गिरि गोधन जमुन - तीर,
सुबस सुदेस पुर बन सुख - साधा को ।
जाकी भूमि भागहि सिहात हैं गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख्ख सब बाधा को ।
एकरस बिहरत दोऊ महारस भीजे,
आनँद-पयोद प्रीति परम अराधा को ।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होइ,
तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को ॥ ६२ ॥

राधा-रूप-साधा साधिबे को महाचिंतामनि,
गौरी गाय चायनि च्वै साँवरो सम्हारई ।
ग्वैंडे आय टेरत है, नेह सौं निबेरत है,
जातैं भरि पावत है भाव भरि ग्वारई ।
धौरी ढार ढौरी लै बुलाय बोलि सौंपि देत,
काजर कुरंगनैनी चोपनि चितारई ।
दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि,
आनँद को घन रंग - झलनि झमारई ॥ ६३ ॥

ऐसे परबस हौ रसीले ब्रजमोहन जू,
झूठी बतियानि लै कै साँच सौं मढ़त हौ ।

६१–रहौ–रहै (लंदन) । छाय–छई (वही) । ६२–जमुन–जमुना (लंदन) । जाकी–जागी (वही) । ६३–आय–आप (लंदन) ।

[६१] ताँवरी=मूर्छा । यौं०=अपने प्रेमबंधन में ऐसा बाँधिए । [६२] गोधन=गोवर्धन । पयोद=घन । [६३] ग्वैंडे=गाँव का परिसर । निबेरत=पृथक् करता है । धौरी=धवल, सफेद । चितारई=लगाती है । झला=वृष्टि । झमारई=झाँवरा

तुम्हैं दब कौन की लजौं हैं नैन सौं हैं खात,
रूखें रुख राखि राखि बादहिं बढत हौ ।
आनँद को घन झूमि झूमि रसबाद नाधौ,
प्राननि के प्यासे क्यौं परेखनि दहत हौ ।
आए हौ सुधारि भेषौ आरसी लै मुख देखौ,
निखरि सलोने स्याम चित पै चढ़त हौ ॥ ६४ ॥

भाव भरे चाव भरे सरस बनाव भरे,
हियें तें कढत कसें कसक-कसौटी के ।
सुंदर सलोने ब्रजमोहन दरस पगे,
परम सरम अपरस तापतौटी के ।
रसना को भाग, साँचे सौंनानि सुभूषन हैं,
जगमगि रहे महा मोहन हथौटी के ।
भीजे घनआनँद अनूप रूप-झलनि सौं,
रसिक पपीहा साछी आछी अछरौटी के ॥ ६५ ॥

सहज सुगंध भाँति भाँति भाव-फूल बिछे,
सम रस-रीति जामैं केसरि की झोलना ।
बिसद सुबास नाना बिधि सौं सवारि रच्यौ,
चोकल गुननि गस्यौ गूढ गाँस खोलना ।
राधा-मनमोहन-बिलास को सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठबोलना ।
तन कहूँ क्यौं न बसौ बस न तनक मेरो,
मन ब्रज-मडल को उड़न-खटोलना ॥ ६६ ॥

६६—सहज—बिबिध, सरस (संग्रह)। सम—सब (वही)। केसरि—कसरि (लंदन)। सुबास०—सुबासना बसन सों सुधारि सज्यौ (संग्रह)। सँवारि—सँभारि (लंदन)। मनमोहन—ब्रजमोहन (संग्रह)। तन०—तनकौ न कहूँ (वही)।

कर देता है, जल से भर देता है। [६५] कसक०=वेदना की कसौटी। अपरस=जिसका स्पर्श न किया जा सके। तापतौटी=जलन की व्याकुलता। हथौटी=हाथ की शैली। झला=वृष्टि। साछी=साक्षी। अछरौटी=वर्णमाला लिखने का प्रकार,

सवैया

चारिक द्यौस रचे चिकनाय कै दीसत नेह-निबाहन-रूखे।
भूमि झमारहि दै घनआनँद राखत हाय बिसासनि सूखे।
छैल छबीले भरे छल-छद्द ठरौ ढब हौ अनदोखहू दूखे।
रावरे पेट की बूझि परै नहीँ रीझि पचाय कै डोलत भूखे॥ ६७॥

सोरठा

जासौँ अनबन मोहि, तासौँ बनक बनी तुम्हैँ।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे॥ ६८॥

कवित्त

अंग सुखमूल, रंग रुचिर गुलाब फूल
कोमल दुकूल तूल - पूरित अजायबी।
छूटीँ छबि - रसमैँ चटक चोखे बसमैँ,
बिलोकैँ मन बस मैँ न रोकैँ रहै दायबी।
केसरी लपेटा छैल बिधि सौँ लपेटे,
मुख बीरा कंठ हीरा-जोति उपमा लजायबी।
मीत कैँ सिंगार घनआनँद उदार देखैँ,
रीझनि पसीजै तन कछु न सहायबी॥ ६९॥

चलि रे सुबल आजु याही कैँ बगर कालिह,
जो ही मैँ लखाई घनआनँद सु ओबरै।
छरहरे गात मँडरात भौँर भाँवरी दै,
छूटे बार मोतिन कौ द्वै-लरी बनी गरै।

वर्ण-विन्यास। [६६] बिसद=निर्मल। [६७] झमार=वृष्टि के जल से भर देना। अन०=रूप मेँ निर्दोष होकर भी मन से सदोष हो। रीझि०=मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो। मेरी रीझ की तो चिंता नहीँ करते पर दूसरोँ से मिलने-जुलने की ताक मेँ लगे रहते हो। [६८] अनबन=बिगाड़, मनमुटाव। बनक=मैत्री। परेखनि०=पछतावोँ से गुहकर। गुन=गुण, डोर। [६९] तून=रूई। अजायबी=अद्भुत। रसमैँ=रश्मियाँ। चटक=स्पष्टता। चोखे०=तीक्ष्णता की उत्पत्ति से युक्त। दायबी=दावँ, अवसर की खोज मेँ रहनेवाला। केसरी=पीला। लपेटा=पगड़ी।

आँचर उलटि सीस डारै कैँ न जानै क्यौं,
निहारतही हियेँ त्यौं जु बात मन मैँ धरै ।
औचकाँ हीं कित इत डीठि कैँ परत, पीठि
दैन देखि नैन ईठि नीठि न कह्यौ करै ॥ ७० ॥

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भीजी,
रीझी कहूँ स्यामैं देखि दसा ताकी को कहै ।
फंद की मृगी लौं छंद छूटिबे को नेकौ नाहिं,
चारयौ ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है ।
मोहन को बेनु सुनै धुनै सीस, मन ही मैं
घुनै, भीरी सोच गुनै गहि बूडै सोक है ।
उघरै न बास गुरुजन आसपास घनआनँद,
कठिन कहा अहा नेह - झोक है ॥ ७१ ॥

पीरे पीरे फूलन की माला रचि हियेँ धारि,
वारि वारि ताही कौं सफल करैँ काय कौं ।
ऐसे धीर-काचे, पूरे प्रेम-रंग-राचे बीर,
पीरे फल चाखैँ अभिलाषैं नीके दाय कौं ।
डोलैं बन बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान,
धाय धाय भेटैँ भावती ही डिसि जाय कौं ।

७०-ओवरै-औसरै (खोज)। छरहरैँ-फरहरे। भौंर-मोर । कैँन-कौन । निहारत०-निहारें ते ही होवै त्यौं सु । औचकाँ-औचक (वही)।

उदार=उत्तम । सहायवी=सहायक [७०] सुबल=श्रीकृष्ण के एक सखा । बगर=घरे । ओवरै=कोठरी मैं । छरहरैं०=इकहरे शरीरवाली । कैं० = कोई जानता नहीं किस लिए । औचकाँ० = अचानक कहीं से किसी की दृष्टि पड़ती है तो वह पीठ फेर लेती है और उसके पीठ फेरने की शोभन छटा से नेत्र हटने की बात बहुत कहने पर भी नहीं मानते । [७१] भीति=दीवाल । रही०=भीत पर चित्रलिखी सी लगती है । छंद=उपाय । घुनै=छीजती है । भीरी०=सोच के ढेर मैं दबी । गुनै०=गुण (गुण, डोर) को पकड़कर भी शोक मैं डूब रही है ।

उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं,
गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गौरी गाय कौं ॥ ७२ ॥

सवैया

प्रेम - अमी - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूनन की रुचि-राजी ।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी ।
राग-रची अनुराग - जची सुनि हे घनआनँद बाँसुरी बाजी ।
मैन - महीप बसंत - समीप मतो करि कानन सैन है साजी ॥ ७३ ॥

कबित्त

नीकी नई केसरि को गारौहू गरब गारै,
फीका रारि गारि सी निहारैं रूप गोरी को ।
चारु चुहचुही मँजी एड़िन ललाई लखैं,
चपरि चलत च्वै बरन बूकी रोरी को ।
हँसि बोलैं कोरिक कपूर सौंधे बारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक उन्हैं चोरी को ।
प्यारे घनआनँद के राग भाग काग देखौ,
रग-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥ ७४ ॥

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी ।
कोँवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकैं बजाय हरै हियरारी ।
साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौनि मैं दासति न्यारी ।
कान ह्वै पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥ ७५ ॥

७४—गारौ—गारै (लंदन) । बूकी—बूका (वही) । रोरी—बोरी (कबित्त) । रग—रस (वही) ।

उघरै०=परदा न खुल जाय । [७२] बाय=वायु (आकाश, शून्य) । गौरी=एक रागिनी । ढौरा=ढंग । गौरी=गौर वर्ण । [७३] रुचि०=सुंदर पंक्ति । बनराज=वृंदावन । [७४] रारि०=अर्थात् केसर भद्दी जान पड़ती है । रारि=लड़ाई । गारि=गाली । चुहचुही=आर्द्र । सौंधे=सुगंधित द्रव्य । वारि०=निछावर करके फेंक देना पड़ता है । [७५] सौनि=मुहँ मैं अबीर की ललाई ।

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै ।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि सु गावति गारि बजाय डफै ।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरै मधुरी डग लंक लफै ।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥ ७६ ॥
पातरे गात किये नवसात, निकाई सौं नाक चढाएँई बोलै ।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गरथारैं ई डोलै ।
स्यामहि चाहि चलै तिरछी मन खोलौं खिलारि न घूँघट खोलै ।
आली सौं आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलै ॥ ७७ ॥
हरि-नेह-छका तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सौं काज करै ।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि अरै ।
घनआनँद रूप - अनूप - भरी धरनी पर सूधे न पाय परै ।
पिय को हिय ताहि लखें अभिलाषनि लाखनि लाखनि भाँति भरै ॥ ७८ ॥
चाल-निकाई लखें बिलखें पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति ।
पाय परै न परै मति पाय सची तरसै थरसै, न कछू रति ।
घूँघट-बीच मरीचन की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति ।
लाजनि सौं लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥ ७९ ॥

कबित्त

चुँहटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
भहराई जानि सम्हराई मुँह चाँपि कै ।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै ।

७६–सु०–गवावति (कबित्त)। ७७–खोलौं–खेलै (कबित्त)। ७८–अनूप–गरूर (कबित्त)। ७९–माल–भाल (लदन)। मद–मृदु (वही)।

[७६] रफै=सुंदर ढग। लंक०=कमर लचकती है। दृग०=नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी=गोपी। गुलफ=टखना। [७७] नवसात=सोलहो शृंगार। मन०=मन खोलने पर भी। घामरि=बेहोशी। [७८] रहठानि=वासस्थान। [७९] थरसै=त्रस्त होती है।

दिन होरी-खेल की हराहर भरयौ हो सु तौ,
भाग जागेँ सोयौ निधरक नैत ढाँपि कै ।
सपने की संपति लौं दुखदैन जान्यौ घन-
आनँद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कै ॥ ८० ॥

तरुनाई - बारुनी - छकनि - मतवारे भारे,
झुकि घुकि धाय रीझि उरझि गिरत हैं ।
सम्हरि उठत घनआनँद मनोज - ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं ।
सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कसि,
कर ही मैं लियेँ निसिबासर फिरत हैं ।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागेँ बीर,
गिरिधर - धीरता के किरचा करत हैं ॥ ८१ ॥

सिसुताई-निसि सियराई बाल-ख्यालनि मैं,
जोबन बिभाकर - उदोत - आभा है रली ।
गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तेँ अधिक अब लागन लगी भली ।
सकुच - बिकच-दसा देखेँ मन आई मनौ,
चाहति कमल होन कौन रूप की कली ।
बड़भागी रागी चलि ऐहै घनआनँद सो,
आँखिनि सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥ ८२ ॥

८०–चुँहटि–चिहुँटि (कबित्त)। नेत–नैन (लदन)। ८२–दखेँ–देखौं (कबित्त)। घन–अलि (लंदन)।

[८०] चुँहटि=चुटकी से स्पर्श करके, चिकोटी काटकर। औटपाई= नटखटपने से। उरे=दूर, पृथक्। नाहर=शेर। हराहर=छीना-झपटी। नैत=सुअवसर [८१] बिफरत=उत्पात करते हैं। मसि=अजन। चुहट= कसक। किरचा=टुकड़े। [८२] बिभाकर=सूर्य। गमागम=जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। बिकच=खिलने की।

सवैया

जात नए नए नेह के भार बिँधे उर ओर घनी बरुनी के ।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं बोलत सोत अमी के ।
भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जहीं के ।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन और दिनान तें लागत नीके ॥ ८३ ॥
होते हरे हरे रूखे जो दूखे, कितै गई सो चिकनानि तिहारी ।
मोह-मढी बतियाँ जु गढी सु कढ़ी छतियाँ छिदि बंक बिहारी ।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होत दुखारी ।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बारि चिन्हारि बिसारी ॥ ८४ ॥
भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सौंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ ८५ ॥
नैन की सैन मैं कोटिक मैन लजैंऽरु भजैं तजि कै सर पाँचनि ।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं पघिल्यौई परै चित चाह की आँचनि ।
ता पिय के हिय कौं हसि हेरि लई सु गई सी नई गति नाचनि ।
नूपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रबीन अधीन किये सुर साँचनि ॥ ८६ ॥
पूरन चंद के चूरन कौं तट धूरि हँसै सु कपूर किती पति ।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽब कहा परसै पय की गति ।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति ।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैं सबिता-दुहिता अति ॥ ८७ ॥

८३–बोलत०–रोल तमोल (कबित्त)। ८६–की–के (कबित्त)।

[८३] अमी=अमृत। अँकोर=भेंट। [८४] होते०=रूखे दूखे भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे। [८५] न हारति=नहीं थकती। तारनि=आकाश के तारों को। तारनि सौं=पुतलियों से। इकतार=लगातार। भावतो=प्रिय। आँसुनि०= उस अवसर पर आँसू गिराती है [अथवा आँसुओं द्वारा अवसर को निचोड़ देती है, खो देती है]। सौंहन=सम्मुख। जोहन०=देखने की। आरति=लालसा। [८६] सर०=अपने पाँचो बाणों को। प्रबीन=(वीणा बजाने में) निपुण।

घूँघट - ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सु घात बनावै ।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर छरा धरि ढूकति आवै ।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै ।
बाल अनूठियै ऊठि गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥ ८८ ॥

कबित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद - सुधाधर उदोत - आभा रद की ।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की ।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग - बोरी,
छैल-मति छकै छबि हेरैं रदछद की ।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥ ८९ ॥

सवैया

दावँ तकै, रस-रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै ।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै ।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट बितै अँगुठाहि दिखावै ।
भावती गौं-बस ह्वै रसिया हिय-हाँसनि सौं सनि आँखि अँजावै ॥ ९० ॥
पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली ।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली ।

८९—सौं—मैं (लंदन) ९०—ठठि—लखि (लदन)।

[८७] पति=प्रतिष्ठा । मघवा०=इंद्रनील, नीलम । पय=पानी । मति=समता । सविता०=यमुना । [८८] उसारि=वस्त्र मेंसे निकाल कर । बरा=बाँह का एक गहना, टाँड । छरा=नारा, नीबी । ऊठि=उमंग । मूठि चलावै=जादू करती है । [८९] तिलोनी=फुलेल से सुगंधित । रदछद=होंठ । रली=भरी । कोक०=लाल कमल । [९०] ठठि=शान से डटकर । छराय=छलावा, मायादृश्य । चोट०=आघात बचाकर ।

घनआनँद खेल-अलेल दसै बिलसै, सु लसै लट झूमि झुली ।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥ ९१ ॥

आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन ।
साँवरी पोति-छरा छलकै छबि गोरी अँगेट लखैं सम कोइ न ।
एडी झवैंलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै डग दोइन ।
आवती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगौहैंई लोइन ॥९२॥

कवित्त

साँचे रस-रंग अग फूलि फैलि फबि दबि,
देखि देखि मालती - लतानि ढकसति है ।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओटि कीजै,
अलक छबीली मन छूटियौ कसति है ।
कहा कहौं राधे घनआनँद पिया कै हिय,
बसि रसि जैसी मेरी आँखिनि ससति है ।
कौन धौं अनूठो रस प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हसनि बसंत कौं हसति है ॥ ९३ ॥

गलिन मैं छलो, रली तिनहीं सौं चली भली,
धोखैं बावरे ह्वै हियें रावरे प्रतीति है ।
आजु लौं लला हो काहू बाम सौं न काम पर्‌यौ,
देती जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है ।
गाल क्यौं बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावँ ग्वैंडे जानि परै हार जीति है ।

९३—फबि—छबि (याज्ञिक) । आँखिनि०—आनिल समाति है (लंदन) ।

[९१] अछेह=अखंड । हेत=जोश । तुली=ठीक, अदाजभर । अलेल=किलोल । खुली=फबी है । [९२] तिलौनी=सुगधित । लोइन=सुदर । पोति०=काँच की गुरियों की लड़ी । अंगेट=अंगदीप्ति । झवैंलिनि=झाँवे से रगड़ी हुई । लावनि= पैर रखना, चलना । लोइन=लोचन । [९३] ओटि०=छिपाने पड़ते हैं । ससति=

आन हमैं बावा बृषभानु की अरैं न टरैं,
गई करैं धरैं सो अबै ही सबै बीतिहै ॥ ९४ ॥

गोरे भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है ।
बदलि परी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचभे की समीति लेखियत है ।
देखें भूलियत कछू कहत न आवै सखो,
इनकी हिलग नई नई देखियत है ।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद बरस यह,
ब्रज बृंदाबन ही मैं यौं बिसेखियत है ॥ ९५ ॥



९४–हियें०–हियरा रे परतीति (याज्ञिक) । सो–तौ (वही) । ९५–गोरे–गौर (खोज) ।

समा जाती है । [९४] ग्वैंडे=परिसर, निकट । आन=शपथ । गई करैं=अप्रतिष्ठा करैं । सबै०=सब कुछ निबट जायगा । [९५] समीति=समूह । हिलग=लगन ।

प्रेमसरोवर

दोहा

प्रेमसरोवर अमल बर, ढिग कदंब - तरु - पाँति ।
भानकुँवरि-बिहरन सुथल, कांति अपूरव भाँति ॥ १ ॥
सोभा-झर लाग्यो रहै, झूमि सघन तरु - बेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥ २ ॥
सब रितु-हित सोभित सरस, करियै कहा बखान ।
कीरतिलली अलीनि मिलि, खेलन की रहठान ॥ ३ ॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखैं बनै बनाव ॥ ४ ॥
बरन बरन नव पाट के, झूला झुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥ ५ ॥
जूथ - जूथ - सँग झूलई, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचिरज - रूप निहारि ॥ ६ ॥
बिच झुरमुट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप - झलानि की, बदन भरे अति फूल ॥ ७ ॥
भूषन बसन सुरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
मोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥ ८ ॥

---

[१] भानकुँवरि=श्रीराधा । [२] झर=झड़ी । [३] कीरतिलली=श्रीराधा । रहठान=स्थान । [४] पाट=रेशम । झुले=लटके हुए । [७] झुरमट=वृक्षों का समूह, निकुंज । झूल=पैंग । फूल=प्रसन्नता । [८] रंग=आनंद ।

ब्रजविलास

दोहा

मोहन ब्रजबन की थली, भली रँगरली ठौर ।
मन आएँ आवै सु क्यौं, कहौ फिरि कछू और ॥ १ ॥

ललित लाल लीला रली, ब्रजबन-रुचि रहठानि ।
आँखिनि देखें ही भट्टू, आँखिनि पैठत आनि ॥ २ ॥

सदा सुहायो रसमसो, सुंदर ब्रज को बास ।
मोहन-मुख-सुखमा सन्यौ, सोहत सहज प्रकास ॥ ३ ॥

ब्रजबन जमुना गिरितटी, मची रहति रसकेलि ।
सब ठाँ भीजे देखियै, आनँदघन - रस - झेलि ॥ ४ ॥

कहा कहौं ब्रज की बनक, कान्ह कुँअर कैं हेत ।
घर बाहिर बीथी बगर, मन दृग मोहे लेत ॥ ५ ॥

मोहनहीँ सौंहीँ तकैं, जिते गरधारे आहि ।
ब्रज-गलीनि की लालसा, दीसति स्यामहि चाहि ॥ ६ ॥

कृपा करैं ब्रजनाथ जौ, ब्रजदरसन के नैन ।
या ब्रजबन की माधुरी, तौ परसै उर - ऐन ॥ ७ ॥

जमुना - कूल सुहावनो, ललित बलित तरु-बेलि ।
सूचत राधारमन की, महा मधुर रसकेलि ॥ ८ ॥

प्रेमरंग - रस - रगमगो, सुदर ब्रजबन - भूमि ।
ब्रजजीवन आनंदघन, हित बरसत नित झूमि ॥ ९ ॥

ठौर ठौर सोभा महा नई नई हित - जोति ।
मुदित उदित ब्रजचंद लखि, जगमग जगमग होति ॥ १० ॥

मोहन मदनगुपाल को, मोहन यह ब्रज देस ।
अति उदार भागनि भर्‌यौ, राजत नंद नरेस ॥ ११ ॥

मुरली - धुनि काननि रमी, राति द्यौस मझराति ।
त्यौं मूरति आँखिनि बसी, सनमुख ही दरसाति ॥ २५ ॥
घर हीं मोहन के रहीं, बाहिर राधा नाँव ।
उलटी गति है प्रेम की, जानत गोकुल गाँव ॥ २६ ॥
छको छकी सब अंग हौं, छकी मोह कॆ छाक ।
उघरि परी घूँघट कियैं, निपट अटपटी ताक ॥ २ ॥
हित - टौंना आँखिनि परयौ, हरयौ हिये को धीर ।
जागति हौं बतराति हौं, सँग सोवन की पीर ॥ २८ ॥
दुसह बिरह जदुनाथ को, मिल्यौ कहूँ तें आइ ।
बिछुरि बिसासी यौं मिले, कछु गति गही न जाइ ॥ २९ ॥
संग लगें डोलै सदा, बोलै नाहिन बात ।
एक बात बूझैं सु क्यौं, अनमिल की कुसरात ॥ ३० ॥
तिन्हैं चैन क्यौं बिन हमैं, हमैं चैन जौ नाहिं ।
कहा मिलैं वे अनमिलू, हम बिछुरैं मिलि जाहिं ॥ ३१ ॥
सुनै कौन बरनै सु को, ब्रज को दुसह बियोग ।
बन्यौ आनि ऐसैं सखी, अनमिल सौं संजोग ॥ ३२ ॥
बाय - बावरो गाँव सब, भूलन माँझ सम्हार ।
मुँह मूँदैं डोलैं थके, कान्हैं कान्ह पुकार ॥ ३३ ॥
बन जमुना गिरि ब्रजगली, लखियत मोहन स्याम ।
देखत भूली है भई, मोहि आठ हू जाम ॥ ३४ ॥
एक कान्ह देखें जियैं, ये सब ही ब्रज लोग ।
चेटक रूपी कान्ह को, अचिरज बिरह-सँजोग ॥ ३५ ॥
मोहन - मूरति साँवरी, डोलति डीठिहि लागि ।
अँसुवनि दरसत स्याम घन, जल मैं लागी आगि ॥ ३६ ॥
बाढ़्यौ रहत गुपाल हीं, ब्रज को दुसह बियोग ।
यातैं सब ठाँ होत है, ब्रजमोहन - संजोग ॥ ३७ ॥

ब्रजमोहन - मै ह्वै रह्यौ. देखत बिरही लोग ।
यातैं कछु कहत न बनै, अचिरज बिरह - सँजोग ॥ ३८ ॥
ब्रज छायौ आनंदघन बिरह - सँजोग अनूप ।
दरसै सुंदर स्याम को, मोहन अचिरज - रूप ॥ ३९ ॥
अचिरज गति मन दृगनि की, लगि मोहन के संग ।
करत रहत हम सौं सदा, नवरंगी पै रंग ॥ ४० ॥
बिछुरैं जियैं मिलै न ते, मिलै न तिन्हैं बिछोह ।
सब पै समझि परै नहीं, ब्रजमोहन को मोह ॥ ४१ ॥
प्राननाथ ब्रजनाथ सौं, बिछुरैं जियै सु कौन ।
अकथ कथा ब्रजप्रेम की कछु बरनत है मौन ॥ ४२ ॥
मोहन - रस बरनैं सुनैं, औरैं रसना कान ।
बिमन भएँ मन समझियैं मोहन ही की आन ॥ ४३ ॥
मोहन मन मोहन लगे, मानहु मोहन संग ।
जकि थकि रहियै लखत ही. ब्रजमोहन के रंग ॥ ४४ ॥
कबै मिले बिछुरे कबै, बिषम बिसासी स्याम ।
मिलैं अमिल अमिलैं मिलै. ये कपटनि के काम ॥ ४५ ॥
अहा कहा गति प्रेम की, क्यौं हूँ समझि परै न ।
मिलैं अनमिलै एक से, कछु कहिबे को है न ॥ ४६ ॥
निपट नवेलो देखियै, या ब्रज हित - व्यौहार ।
गहे गहि रहे एक से, मोहन - गुन आधार ॥ ४७ ॥
अचिरज मोहन साँवरे. अचिरज नेही नैन ।
ब्रज अचिरज सौं रचि रह्यौ. बरनैं अचिरज बैन ॥ ४८ ॥
महा मरम ब्रज प्रेम को, कहा बरनियै ताहि ।
मोहन - गुन गहि बूडियै, कौन सकै अवगाहि ॥ ४९ ॥
मिलैं चटपटी बिरह की. बिछुरैं मिलन-बिनोद ।
लपट - लपेट्यौ बरसई. ब्रज मैं प्रेम - पयोद ॥ ५० ॥

ब्रजमोहन आनंदघन, कियँ पपीहा मान ।
घन-पन - प्यास-परथौ फिरै, ब्रज-रसरीति प्रमान ।। ५१ ।।
प्यासनि ही बरसै सजल, सदा करत रसपान ।
रीझ भीजि सूखत बदन, अचिरज मरम बखान ।। ५२ ।।
को समझै ब्रज प्रेमगति, मनि बिचार बौराय ।
अतुल अगम रसरीति क्यौं, रसना परसी जाय ।। ५३ ।।
रहि न सकै ब्रजरस बिना, रसनैं परथौ सवाद ।
कहि रहि सकै न फिरि बकै, मौन-गह्यौ उनमाद ।। ५४ ।।
रसै आनि रसना ढरथौ, रस ही करथौ बखान ।
ब्रजरस यौं रसना रस्यौ, बस्यौ नैन मन प्रान ।। ५५ ।।
ब्रजरस के रसिया रतन, अचिरज-खानि अमोल ।
चौंप चटक टाँकीनि सौं, कढ़त रंग मगे बोल ।। ५६ ।।
ब्रज-सोभा ब्रज की कुसल, ब्रजजीवन घनमूल ।
ब्रजनायक ब्रज मैं सदा, जित तित हित अनकूल ।। ५७ ।।
ब्रज सनमुख राजत सदा, ब्रज तें पोढी पीठि ।
सोवत जागत एकरस, रहत ब्रजै त्यौं डाठि ।। ५८ ।।
ब्रज सुदेस मन बसत नित, ब्रजे बसत मन धाम ।
नित लीला ब्रजनाथ की, दरसत आठौ जाम ।। ५९ ।।
ब्रज - सुखमा दृग जानई, ब्रजलोचन कें चाय ।
ब्रजबिनोद आनंदघन, रह्यौ निरंतर छाय ।। ६० ।।
सबै ओर ब्रजकौतुकी, आप सामुहैं होत ।
प्रेमपियूष मयूख तें, स्रवै सु लीला - सोत ।। ६१ ।।
ब्रजस्वरूप आँखिनि बसै, ब्रजमोहन - रस - स्वाद ।
स्रवननि त्यौं मँडरात है, मोहन - मुरली - नाद ।। ६२ ।।
नखसिख ब्रज व्यापक भयौ, कहा कहौं निज प्रीति ।
ब्रजमोहन बिलसत सदा, यह अपनी रसरीति ।। ६३ ।।

सकल कला ब्रजचंद की, प्रगटति नेही - अंग ।
ब्रजजीवन जिय मैं बसे, करत महा रसरंग ।। ६४ ।।
ब्रजबिलास दरसै सदा, ब्रजमंडन को साथ ।
ब्रजमोहन पायनि लगे, ब्रजनेही - हिय - हाथ ।। ६५ ।।
ब्रज को अमल अगाध रस, बूड़त है चित चाहि ।
लीला अचिरज लहर कौं, सकै क्यौँऽब अवगाहि ।। ६६ ।।
नेही मन गोहन लग्यौ, हठि ब्रजमोहन छैल ।
भूलैँ हू सुरत्यै रहै, ब्रजबन - बीथिन गैल ।। ६७ ।।
ब्रजसंपति कौं पाय कै, भयौ निपट ही रंक ।
मन ब्रजरज छानत सदा, लखि मोहन-पद-अंक ।। ६८ ।।
श्रीब्रजमोहन - माधुरी, रही नैन - मन छाय ।
अद्भुत रस आनंदघन, प्यासै बढ़ति अघाय ।। ६९ ।।

———

६६-मोहन-मडल (लदन) ।

[६९] अघाय=छककर , भली भाँति

सरस बसंत

दोहा

बृंदाबन आनंदघन, राजत जमुना-कूल ।
सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि-अनुकूल ॥ १ ॥
बनसंपति दंपतिमई, नई नई नित जोति ।
कृस्न-राधिका-रूप तें, जगमग जगमग होति ॥ २ ॥
या बन की सोभा सरस, कमलनैन कौं चैन ।
बर बानिक बरनौं कहा, सब रितु अचिरज-ऐन ॥ ३ ॥
रितु औरै मौरै नवल, बृंदाबन तरुबेलि ।
सहज सुहायो देखियै, आनंदघन रसकेलि ॥ ४ ॥
या बन सरस बसंत रितु, बिलसत मधुर किसोर ।
फागु खेलि चौंपनि खिल, चाहत बन की ओर ॥ ५ ॥
चाहनि चाह भरयौ सुबन, प्रफुलित सरस बसंत ।
गुंजभरे अलि-पुंज मिलि, सोहत अति रसवंत ॥ ६ ॥

चौपाई

घमड़ि पराग लता-तरु भोए । मधुरितु-सौरभ-सौंज समोए ॥७॥
बन बसंत बरनत मन फूल्यौ । लता लता झूलनि संग झूल्यौ ॥८॥
खगनि-चुहक पिक-कुहक सुहाई । बन मनमथ की फिरी दुहाई ॥९॥
मलय-पवन-आगम सुखसार । रोचक महा सुदेस सुढार ॥१०॥
बरसत पुहुप पुहुमि पर सोहत । बन-छबि लखि ब्रजमोहन सोहत ॥११॥
भौंरनि चौंर चाय सौं ढोरत । परम प्रीति रसमसे झकोरत ॥१२॥
कुसुम सु आसव स्यामहि प्यावत । बन-तरु जड़ पै यौं जिय ज्यावत ॥१३॥
मधुरितु मधुप-हित-भरी टपकत । मधुप-किसोर चौंप सौं लपकत ॥१४॥

१—राजत—राजित (लंदन) । सुखद—जु सुख (बृंदा०) । ३—बानिक—बानन (लंदन) । ४—केलि—कैलि (लंदन) । १४—मधुप-हित०—मधुफल हित भरि (लंदन) ।

सरस बसंत साँज बहुरंग। लियेँ फिरत बनमाली-संग ॥१५॥
कुंजन के प्रकार बहु भाँति। जमुना-तीर बिराजति पाँति ॥१६॥
नवपल्लव दरपन-दुति दबै। या बन की छबि या बन फबै ॥१७॥
पुहप-तलप जित तितहि रचावै। यातेँ सरस बसंत कहावै ॥१८॥
बनबिहार के स्रमहि निवारै। मदनगुपाल-प्रीति-पन पारै ॥१९॥
सरस बसंत प्रीति की गोभा। प्रगटित होति बिराजति सोभा ॥२०॥
बृंदावन बसंत रसवंत। राधा-माधव कामिनि-कंत ॥२१॥
तन मन फूले बिहरत बन मैँ। फूली ललित सखी जन-गन मैँ ॥२२॥
रूपमंजरी रुचिर सु अंगनि। नई तरुनई बरसति रंगनि ॥२३॥
या बन बर बसंत की संपति। बिलसत लसत रँगीले दंपति ॥२४॥
सरस राग हिंदोल जम्यौ है। नाद-स्वाद दिसि-दिसिनि रम्यौ है ॥२५॥
मुरली-टेर व्यापि बन रही। थिर-चर-गति कछु परति न कही ॥२६॥
तैसिय होति भवँर-झंकार। सरसत बन बरसत सुखसार ॥२७॥
सरस बसंत समय सुख बढ्यौ। होरी-खेल-चाव चित चढ्यौ ॥२८॥
सहज रंगमगे राधा-मोहन। रंगनि भरत हरत मन जोहन ॥२९॥
होरी सो खेलिबो करत हैँ। फिरि फागुन के रसहि ढरत हैँ ॥३०॥
खेल चुहल रुचि रचनि मची है। दुरी चौँप अब उघरि नची है ॥३१॥
ब्रज कैँ बास खेल रचि राख्यौ। बन बसंत औसर अभिलाख्यौ ॥३२॥
सरस बसंत फागु को खेल। बिटपी बिटनि कामिनी मेल ॥३३॥
तरु बेलिनि झुरमटहि निहारि। फागु खेलि गौँ रहे बिचारि ॥३४॥
बनसंपति दंपतिरुचि सरसै। जित तित फागु-खेल ही दरसै ॥३५॥
बन तन मन होरियै भरी है। औसर पै अति उघरि परी है ॥३६॥
सरस बसंत भावती होरी। मदनगुपाल माधवी गोरी ॥३७॥
सरस बसंत सहज तन सोभा। तैसिय बन प्रगटित गुन-गोभा ॥३८॥

३०-सो०-नो खेल कौ (वृं दा०)।

[१४] मधुप-किसोर = भ्रमरबाल। [३३] बिटनि = शखाओं पर, सखाओं से।

लहलहानि तन बनहि लसी है । पुहप-बिकास हुलास हँसी है ।।३९।।
अंग अंग बहु रंग प्रकासै । तन बन एकमेक ह्वै भासै ।।४०।।
सरस बसंत रूप बनराज । राधा - मोहन - प्रेम - समाज ।।४१।।
सरस बसंत बिचारत बनै । बरसत मोद नैन अरु मनै ।।४२।।
हित-होरी खुलि खेल मच्यौ है । अमित अतन-रति-ओज लच्यौ है ।।४३।।
सरस बसंत फागु के रंग । मिलि रस बढ्यौ अमोघ अनंग ।।४४।।
ब्रज बन सरस बसंत - बिकास । होरी - खेल अनंग - बिलास ।।४५।।
यह बसंत यह होरी चौंप । छिन छिन नई नई रुचि कौंप ।।४६।।
सौरभ घमंड रमड़ रस रेल । सरस बसंत फागु को खेल ।।४७।।
मधुरितु मधुर फागु या बन है । चौंपनि बिबस खिलारिन मन है ।।४८।।
मन की फूल फैलि तन छाई । बन बसंत - संपति सरसाई ।।४९।।
यातैं सरस बसंत बन्यौ है । फागु खेलि अनुराग सन्यौ है ।।५०।।
सरस बसंत फागु - रस भोए । अचिरज अंग अनंग-समोए ।।५१।।
सरस बसंत अनंत मौर है । और रतिपति रंग - रौर है ।।५२।।
ललित लहलहनि मधुर महमहनि । अंग डहडहनि रंग गहगहनि ।।५३।।
ब्रज बृंदाबन सरस बसंत । बिहरत रसिकराय रसवंत ।।५४।।
चटक चाव चढ़वारि महा है । अति रस रँग कहि परत कहा है ।।५५।।
सरस बसंत खेल रँगभरे । मुकलित बैस - बिलासनि ढरे ।।५६।।
बहु रँग संपति सरस बसंत । ब्रजबन बिलसत राधाकंत ।।५७।।
भाग फाग अनुराग राग भरि । प्रमुदित सरस बसंत केलि करि ।।५८।।
नित ही सरस बसंत बिराजै । मधुरितु समय परम सुख साजै ।।५९।।
जा हिय सरस बसंत बिकासै । बृंदाबन मधुरितु सुख भासै ।।६०।।
केलिमंजरी प्रगटित होय । दंपति - संपति दरसै सोय ।।६१।।

४२—मनै—सनै (बृंदा०) । ४५—अनंत—अनग (बृंदा०) ५१—फागु—भागु (लंदन) । अंग—रंग (वही) ।

[४३] अतन=कामदेव । [५२] रंग०=आनंद का कोलाहल । [५३] लह०= लहलहाना, हरा भरा होना । महमहनि=सुगंध । डह०=प्रसन्न होना । गह०=रंग का चढ़ना ।

ब्रजबन बिसद बिहार-बिनोद । सरस बसंत बढावै मोद ॥६२॥
परमानन्द - भाव उर जागै । सरस बसंत रीतिरस पागै ॥६३॥
महा मधुर मधुरितु-सुख लहै । सरस बसंत - माधुरी कहै ॥६४॥
बानी स्रवै प्रेम - मकरंद । सरस बसंत - बिकास अमंद ॥६५॥

दोहा

ललित फागु रचना रची बिलसत सरस बसंत ।
जै जै राधा माधवी, जै बनमाली कंत ॥ ६६ ॥

गोपीबल्लभ - पद - कमल, सुंदर प्रीति - पराग ।
मन-मधुकर मकरंद-बस, मंडित पूरन भाग ॥ ६७ ॥

मूरति सरस बसंत की, बनमाली अभिराम ।
प्रफुलित रूप अनूप तन, मोहन अगनित काम ॥ ६८ ॥

राधा - बदन - बिकास - रस, मोहन मधुप सुजान ।
चोंपनि चसकैं दृगनि भरि, करत निरंतर पान ॥ ६९ ॥

मुकलित बस बसंत को, अद्भुत अमित बिकास ।
राधा - माधव - माधुरी, पीवत सरसैं प्यास ॥ ७० ॥

हित - फूले झूले रहत, गौर स्याम तरु - बेलि ।
जमुना कैं तट बैन बट, मधुरितु - रँग रसकेलि ॥ ७१ ॥

यह बसंत या बन बनै, धनि वृंदाबन - खेत ।
रसिकराय आनंदघन, नैन हियैं भरि देत ॥ ७२ ॥

राधा - मोहन छैल जुग, रस - रगमगे खिलार ।
फागुन सरस बसंत के, सब रितु मैं रिझवार ॥ ७३ ॥

गुपत प्रगट चोंपनि भरो, मचो रहत रस - फाग ।
सब रितु एकै रितु रहै, होरी सों अनुराग ॥ ७४ ॥

६८—तन-मन (लदन) । ६९—बिकास-प्रकास (वृंदा०) । ७१—रँग०—रग सकेलि (वृंदा०) ।

फागुन-रस भीजे सहज, आँखिनि बिलसत आय ।
यह सुख सरस बसंत को, हिय भरि रह्यौ घुमाय ॥ ७५ ॥

हित - होरी मचियै रहै. नित ही सरस बसंत ।
फिरि फागुन की को कहै, रंग - तरंग अनंत ॥ ७६ ॥

हित की गति कहत न बनै, हिय ही होति लखाय ।
फाग भाग अनुराग को, फूलि रह्यौ बनराय ॥ ७७ ॥

ब्रजबासी राधारमन, बृंदाबन सुख लेत ।
फाग - भरे फूले रहैं, पूरन प्रेम - निकेत ॥ ७८ ॥



[७५] घुमाय=चारों ओर, सर्वत्र ।

अनुभवचंद्रिका

चौपाई

ब्रजबन स्याम-रंग रचि रह्यौ। ब्रजबन को सुरूप यह लह्यौ ॥१॥
ब्रजबन देखन के दृग औरै। ब्रजबन सुखद स्याम सिरमौरै ॥२॥
ब्रजबन परम तत्व को सार। ब्रजबन लीला नित्य बिहार ॥३॥
तन तैं निकसि मन पगै पन सौं। तब पहचान होय ब्रजबन सौं ॥४॥
ब्रजबन को सुरूप आनंद। कृस्नचंद नित उदित सुछंद ॥५॥
अद्भुत प्रेमसुधा झर सरसै। कृस्नचंद आनँदघन बरसै ॥६॥
या रसमय ब्रज बन को रूप। अमल अखंड अगम्य अनूप ॥७॥
लीला-रस-बिलास को सागर। ब्रजबन गोकुलचंद उजागर ॥८॥

दोहा

गोकुलचंद मयूख लखि, जे दृग भए चकोर।
ते ब्रजबन देखत सदा, बिसरि साँझ अरु भोर ॥९॥

चौपाई

ब्रजबन सोभा मन ही जानै। मनमोहन - मन बैठि बखानै ॥१०॥
ब्रजबन निरवधि रस लै सान्यौ। ब्रजबन-रस रसिया ही जान्यौ ॥११॥
या ब्रजबन मैं जो कछु होय। प्रगट निगमहूँ राख्यौ गोय ॥१२॥
परम परें सो कैसैं भनै। महा मरम न बिचारत बनै ॥१३॥
या ब्रजबन-रस-बस को होय। सबनि अगोचर लहै न कोय ॥१४॥
ब्रजबन-महिमा अधिक अगाध। नित्यानंद बिनोद अबाध ॥१५॥
गोपभेष गौ पालत सदा। ब्रजबन बिलसत निज सपदा ॥१६॥
परमधाम को परम धाम है। ब्रज बृंदाबन सरस नाम है ॥१७॥
ब्रजबन - सुख ब्रजमोहन लेत। सो सबही ब्रजबन लै देत ॥१८॥
ब्रजबन ब्रजमोहन को हेत। कछु कहि परत न अति रस-खेत ॥१९॥
ब्रजबन-रस सबही तैं न्यारो। मुरलीधर प्रानेसुर प्यारो ॥२०॥
या ब्रजबन बाँसुरी बजति है। लीला ललित समाज सजति है ॥२१॥

ब्रजबन बंसी - धुनि मँडराति। ऐसी कछु बंसी - धुनि जाति ॥२२॥
धुर के सुरनि बजी सो बजी। स्रवननिहूँ सुनि बहुरि न तजी।२३॥
कहा कहौं ब्रजबन की बात। सुमिरत सब बिचार बिसरात ॥२४॥
ब्रजबन दरसि दरसि फिरि डरै। हरि लौं हियरा डारति झुरै ॥२५॥
लीला ललित लोभ नहि जगै। ब्रजबन सौं कैसैं पन पगै ॥२६॥
इतने पै कछुवै न सुहाय। ब्रजबन नैन हियैं मँडराय ॥२७॥
ब्रजबन - बासी स्याम सुजान। गोपीबल्लभ रूपनिधान ॥२८॥
सुंदर डीठि कबहुं जौ करै। मन-तन-सँग ब्रजबन लै धरै ।।२९॥
तन मन ब्रजबन रहै समोय। कृपा करैं तौ सब कछु होय।३०॥
इन आँखिन जौ ब्रजबन दरसै। हमकौं सोई सब सुख बरसै ॥३१॥
आस-बास ब्रजबन मैं रहौ। मन तन ब्रजबन - मारग गहौ ॥३२॥
ब्रजबन - सोभा नैन बिलोकौ। सब तन तें ब्रजबन मन रोकौ ॥३३॥
फुरौ सहज आनंद - बिलास। सफल होहु यौं ब्रजबन - बास ॥३४॥
ठौर ठौर सौं बिनती यहै। नित ही मन तन इतहीं रहै ॥३५॥
ब्रजबन ही जीवन - धन जानौं। मन तन ब्रजबन-रस लै सानौं ॥३६॥
ब्रजबन-सरि-सरिता-जल पियैं। उपजै सांति जरि गए हियैं ॥३७॥
लीला - अंकुर उपजै मन मैं। यातें मचलि परयौ ब्रजबन मैं ॥३८॥
ब्रजमंडल बनराज - बिहारी। गोपीनायक लायक भारी ॥३९॥
सुढरि गुननि ढरकत ढिग आय। हरिहैं आधि मधुर मुसिकाय ॥४०॥
यह ब्रजबन-प्रसाद की आस। ब्रजबन कृस्न-कृपा - बिसवास ॥४१॥
ब्रजबन बसि ब्रजनाथहि गाऊँ। श्रीगोपीपद - रज सिर नाऊँ ॥४२॥
जमुन - तीर ब्रजजीवन - केलि। मन रसना हित धरूं सकेलि ॥४३॥
स्रवन सुनौं ब्रजबन-गुन-गीत। मंगलमूरति परम पुनीत ॥४४॥
आनँद - लहर उठै मन दबै। ब्रजबन के सुख साधौं सबै ॥४५॥
ब्रजबन सदा बिनोदहि परसौं। दरसौं सोभा हियरा सरसौं ॥४६॥
ब्रजबन-रसिक-संग अभिलाखौं। तिनतें सुनि बूझैं कछु भाखौं ॥४७॥

३९–लायक–नायक (लंदन)।

[२५] डरै=पृथक् होती है, दूर होती है।

ब्रजबन-रस की गाँसनि खोलौं। जौ राखै तौ गौंहन डोलौं ॥४८॥
ब्रजबन बसिबे को यह फल है। जिनि मिलि दरसत रूप अमल है ॥४९॥
ब्रजबन बसियै रसिकौ मिलैं। ब्रजबन-भाव इन्हैं मिलि खिलैं। ५०॥
रसिक-सजीवन ब्रजबन-बासो। राधा - मोहन सदा बिलासी ॥५१॥
ब्रजबन परमानंद - रसायनि। गोपी-पद-रज यह रसदायनि ॥५२॥
ब्रजबन बसि पद-रज-रति मिलै। मति गति अति आनँद-रस झिलै ॥५३॥

दोहा

प्रकटी अनुभवचंद्रिका, भ्रम - तम गयौ बिलाय।
ब्रजमंडन की कृपा तें, रह्यौ मोद - घन छाय ॥५४॥
ब्रजबन - लीला - माधुरी, निरवधि रस को सार।
रसिक - मुकटमनि कृपा तें पायौ प्रान - अधार ॥५५॥

---

[५३] झिलै=धँसती है। [५४] मोद-घन=आनंद का बादल ; आनंदघन।

रंगबधाई

चौपाई

घोष-नृपति - घर ढोटा जायौ। ब्रज पर आनँदघन बरसायौ ॥१॥
मधुर स्याम ब्रज-लोचन-तारो। गोकुल जीवन जगत - उज्यारो ॥२॥

दोहा

लीला ललित गुपाल की, अति अद्भुत रसकंद।
आनँदघन बरस्यौ उदै पूरन गोकुलचंद ॥३॥

चौपाई

जसुदा-कूख-ककुभ ह्वै निकस्यौ। पूरब भाग अपूरब बिकस्यौ ॥४॥
सदा सनमुखो सबहीं भाँतिनि। ब्यापक रुचि चरित्र-कुल-काँतिनि ॥५॥
अचरज-प्रभा कछु न कहि आवै। सबकौं सबहीं दिसि दरसावै ॥६॥
मित्र - मडली - मडन लसै। निसिदिन मन नैनन मैं बसै ॥७॥
ब्रज की कमलमुखी लखि फूलैं। गोकुलचंद पालनैं झूलैं ॥८॥
रंगबधाई को सुख जैसो। मन लोचन नहिं जानत तैसो ॥९॥
महा घोष बाजन को भयौ। बंदी बिरुद दसौं दिसि छयौ ॥१०॥
ब्रज निरवधि सुखसिंधु बढ़्यौ अति। बरनत थकै कोरि सारद-मति ॥११॥

दोहा

कृस्नचंद मैं मन दियैं, फुरै सु मंगल - मोद।
सबै कोद बरसै लसै, ब्रज मैं प्रेम - पयोद ॥ १२ ॥

चौपाई

नद महोछे के सुख देखैं। जीवन-जनम मानियत लेखैं ॥१३॥
दधिकादौं सुख - भादौं भई। ब्रज मैं सोभा प्रगटी नई ॥१४॥
आनँद उफनि उठ्यौ थिर चर मैं। मंगल ब्याप्यौ धर अबर मैं ॥१५॥

१–पर–पै (लंदन)। १५–उठ्यौ–बढ्यौ (वृंदा०)।

[१३] महोछे=महोत्सव। जीवन०=जन्म लेखे मैं मानते हैं, सफल समझते हैं।

सजन - बंधु ब्रज मैं इकठौरे। मगन गरथारनि डोलत दौरे ॥१६॥
आवत धावत मिलत सु लपटत। प्रेममगन नाचत अरु रपटत ॥१७॥
नंद - सदन रस - रंगबधाई। कोटि फागु खेलैं अधिकाई ॥१८॥
इक दिसि मागद सूत रटत हैं। बदी बिरुदनि पढि न हटत हैं ॥१९॥
निकरध झगरत नेग चुकावत। झगरि झगरि हित-चौंप बढावत ॥२०॥
बरनौं कहा नद को देबो। भरि थकि परैं लेतहूँ लेबो ॥२१॥
कान्ह-दरस - हित आसा पूजी। रहै काहि अभिलाषा दूजी ॥२२॥
धौंसा धुधक ढोल ढमकारनि। इत नटनचनि पुलकि किलकारनि ॥२३॥
गायक बिबिधि सोहिले गावत। अपनो मनबंछित भरि पावत ॥२४॥
जित जित चहत चकित ह्वै रहियै। या औसर की छबि कह कहियै ॥२५॥
सुर किनर अपसर लखि झूमैं। थके छके आनँद-बस घूमैं ॥२६॥
अतुलित रस को सिंधु बढयौ है। मुहँमाँग्यौ फल हाथ चढयौ है ॥२७॥
रावर की छबि बरनौं कैसें। सोबर को घर सोहत जैसें ॥२८॥
भागनि भरी जसोदा दिपै। दिसि दिसि जसदीपति सौं लिपै ॥२९॥
गोपबधू घर आनँद - भरी। गावति हँसति मल्हावति खरी ॥३०॥
अखिल भुवन-सुख सदन नंद कैं। जनम - समै आनंदकंद कैं ॥३१॥
सबकौं सबै मनोरथ मिलै। अपने रंग - उमंगनि खिलै ॥३२॥
गोकुल गाँव कलिंदी - तीर। बढ़ी महा मंगल की भीर ॥३३॥
सबही के हिय परम हुलास। सफल भयौ गोकुल को बास ॥३४॥
ब्रजपति सपति परति न बरनी। जसो सपूती सी जिहि घरनी ॥३५॥
यह धन धाम सदाई रहौ। नित नित सुतहित के सुख लहौ ॥३६॥
जागौ जियौ कन्हैया बारो। नंद-जसोमति प्राननि प्यारो ॥३७॥
लाड़िल अतिलड़ लला सलोनो। ब्रजमोहन सोहन दिनहोनो ॥३८॥
बड़ो होउ बड़भाग हमारैं। दिन दिन लोचन फलहि निहारैं ॥३९॥
सबकौं सब ही बिधि सुख पोखौ। हितुवनि देहु चैन-चित चोखौ ॥४०॥

२२–अभिलाषा–अभिलाषनि (लंदन)। २३–ढम०–ठनकारनि (वृंदा०)।

[१७] रपटत=गिर पड़ते हैं। [१९] मागद=मागध। [२८] सौबर=सुवर्ण। [३५] जसो=यशोदा।

गैयनि पालौ मैयनि हरषौ। नदहि परमानदहि बरषौ ॥४१॥
नित ही ब्रजजन-हित अनुकूलौ। जसुदाजीवन लला जरूलौ ॥४२॥
याको केस खसौ मति न्हातैं। या ब्रज की सुख-सोभा यातैं ॥४३॥
नित नित मोद बिनोदनि करौ। चित के चीते हित बिस्तरौ ॥४४॥
बलिबलि जावँ आज के दिन की। सुभ नछत्र सुभ घरी सुछिन की ॥४५॥
या घर यह दिन दिन हो रहौ। मगल - मोद सदा निरबहौ ॥४६॥
आनँद को घन रस जस बरसौ। हित-हरियारी नित ही सरसौ ॥४७॥
ब्रजजन चातिक यह रस पियौ। ब्रजजीवन-रस पीवत जियौ ॥४८॥
ब्रज सुदेस सुख सदा बिराजौ। गोपराज नित सजौ समाजौ ॥४९॥
श्रीयुत नंदराय - दरबार। नित ही आनँद मगलचार ॥५०॥
ब्रजमगल ब्रज प्रान-अधार। जै जै जै ब्रजराजकुमार ॥५१॥
स्याम राम की जोट छबीली। जसुमति रोहिनि रस-बरसीली ॥५२॥

दोहा

लाड़चाव बिलसौ लसौ, ब्रजजीवन रसकंद।
हित - पियूष पोषौ सदा, पूरन गोकुलचद ॥ ५३ ॥

---

[४२] जरूलौ=[जटुल] लछणवाले।

प्रेमपद्धति

चौपाई

कहा कहौं गोपिन को प्रेम । बिसरे जहाँ सबै बिधि नेम ॥१॥
प्रेम-पंथ बाँको अति आहि । सूधैं इन अवगाह्यौ याहि ॥२॥
इनके चरन सीस लै धरै । तब यह अगम गैल अनुसरै ॥३॥
अगह बस्तु मन याहि न गहै । रसना अकथ कथा क्यौं कहै ।४॥
इनको भाव इन्हैं बनि आयौ । कहूँ न पैयै सो इन पायौ ॥५॥
इनको परम प्रेमपद दूरि । महामूरि इन पायनि धूरि ॥६॥
सो अति अलभ हाथ क्यौं लगै । परम प्रेम कैसें उर जगै ॥७॥
सिव बिधि सुक उद्धव से जाचत । महिमा-बस अचरज-रस राचत ॥८॥
सुमरि समझि मूझत अभिलापनि । ब्रज बसि निरवधि रस की चाखनि॥९॥
ब्रज परिकर सौभाग सराहि । बूडत बिषमय महिमा चाहि ॥१०॥
महा मरम सकत न अवगाहि । को धौं समझि सकै फिरि याहि ॥११॥
परम प्रेमगति कछु उर फुरै । दिव्य ज्ञान उघरैं हू दुरै ॥१२॥
व्याकुल ह्वै कलमलत सलोभ । जाचत जनम ब्रजधरनि-गोभ ॥१३॥
रस-सवाद रसिया ही जानै । बिन रस भएँ कौन अनुमानै ॥१४॥
सो रस अमिल मिलै धौं काहि । निगम नेति करि बरनत जाहि ॥१५॥
ते कछु जो अनुमानत ताहि । मगन होत लीला अवगाहि ॥१६॥
अति लघु ह्वै ब्रजरज आराधत । गोपी-मग डग सोधत साधत ॥१७॥
अनुचर-गति बिन रज क्यौं मिलै । भाव-बेलि-पुहुपावलि खिलै ॥१८॥
ब्रजरज-रूप गुरु-कृपा दरसै । तब रस परम हेत हिय सरसै ॥१९॥
रसकदंब चूड़ामनि स्याम । राधारमन परम अभिराम ॥२०॥
रस ही रस अपने रस ढरैं । तब ब्रजरज-अधिकारी करैं ॥२१॥
बढ़ै चौंप उपजै उर भाव । जानि परै ब्रजजन-चित-चाव ॥२२॥
गोपी नट गुपाल की प्रिया । हरि-हित-भरीं खरीं सब क्रिया ॥२३॥
काहू समय कछु न रुचि और । जगि पै रहै काम की रौर ॥२४॥
गोपिन के बस गोपीनाथ । नित बिहरत ब्रजबन इक साथ ॥२५॥
मोहनचंदहि कियौ चकोर । मोहमई माचत चहुँ ओर ॥२६॥

अरस - परस - रस भीजे रहैं। ब्रजबन को सहेट - सुख लहैं ॥२७॥
ब्रज-बस कृस्न गोपिका - लाग। महाभाग पूरन अनुराग ॥२८॥
रचे सहज ही अति रस राचनि। कहै कौन पूरन पन-पाचनि ॥२९॥
मुरली - धुनि गोपिन ही सुनी। जु कछु बजाई मोहन गुनी ॥३०॥
सब अनसुनी करी धुनि सुनिकै। टरयौ धरम धीरज सिर धुनिकै ॥३१॥
प्रबल प्रेम को ओज दिखायौ। जगमोहन हूँ पकरि नचायौ ॥३२॥
या रस - बिबस एकरस रहै। अति अमोघ सुखसंपति लहै ॥३३॥
ब्रज - भूतल अभूत रससाज। सजे रहत नित प्रेम-समाज ॥३४॥
बर बिहार ब्रजबधू - संग को। निरवधि रससागर - तरग को ॥३५॥
को धौं कहै लहै धौं कौन। बानी बिरल अपूरब मौन ॥३६॥
बिन इन कृपा परस नहि मन को। अतिअपरस है पन ब्रजजन को ॥३७॥
सब तैं ऊँचो सब तैं न्यारो। या रस-बस ब्रजनायक प्यारो ॥३८॥
रिनी भएँ रस को जस राख्यौ। रसिकसिरोमनि यौं अभिलाख्यौ ॥३९॥
सो धौं कहौ कौन छ्वै सकै। याको अधिकारी ह्वै सकै ॥४०॥
गोपिनि हितगति चितहि बिचारै। परम प्रेम पूरन पन धारै ॥४१॥
गहै सु गति गोपिन जो गही। या ब्रज-रस को साधन यही ॥४२॥
रूप-अटक की खटक सम्हारै। ब्रजमोहन-मुख-ओर निहारै ॥४३॥
रुकनि बढ़नि अभिलाष तरंगनि। मगन होन उमगनि रसरंगनि ॥४४॥
दिन बितवनि चितवनि समायकै। जियहि जिवावनि चटक चायकै ॥४५॥
सब ठाँ एक स्याम की सूझ। बूझि न परति छकनि की बूझ ॥४६॥
इनतैं प्रगट प्रेम की पद्धति। अति ही गुपत समझि मुरझै मति ॥४७॥
तातैं गोपिन के गुन गाऊँ। इनकी रचनि मनैं परचाऊँ ॥४८॥
इनकी सु लगलगन सौं लागौं। मधुर किसोर-रूप-रस पागौं ॥४९॥
बस ह्वै बिबस कियौ ब्रजमोहन। लाग्यौ लाग्यौ डोलत गोहन ॥५०॥
रसिक - मुकुटमनि इनकौं नवै। जु कछु करै सोई संभवै ॥५१॥
महा उग्र ऊरध रस - पदबी। ब्रजनायक बिन काहू न दबी ॥५२॥

[२९] पाचनि=पकना। [३७] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके। [५२] न दबी=आरूढ़ नहीं हुआ।

यह रस ब्रज बृंदाबन धाम । गोपिनि मिलि बरखत घनस्याम ॥५३॥
रासबिहारी गोपिनि किये । बस करि लिये सदा सुख दिये ॥५४॥
नाचि नाचि कै भलैं नचाए । प्रबल प्रेमबस अबस लचाए ॥५५॥
निपट निसंक निरंकुस मोहन । फँदे रूप - गुन बिहरत गोहन ॥५६॥
भिजए रीझ रसिक रिझवार । ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥५७॥
अति रसबिबस मगन करि राखे । परसि सरसि अपरस फल चाखे ॥५८॥
यह सवाद गोपिनि हीं लह्यौ । नेति नेति निगमन हूँ कह्यौ ॥५९॥
कहै कहा कछु थाह न पावै । निरवधि रस कौं थाके थकि धावै ॥६०।
मिलै न गोपी-पद-प्रसाद बिन । सब अधिकारी बिकल किये इन ॥६१॥
ललचि ललचि जाचत अपनो सो । पै नहि टरत मोह सपनो सो ॥६२॥
देखि देखि भूलत सुधि साधत । अगम अगाह वस्तु आराधत ॥६३॥
ब्रजरस निपट अटपटो आहि । को धौं याहि सकै अवगाहि ॥६४॥
प्रबल तरंग रंग अति आगर । ब्रज अचिरज-रस को सुख-सागर ॥६५॥
श्रीगोपी - पदरज - अवलंब । लहियत ब्रजरसकेलि - कदंब ॥६६॥
तातैं नंद गोप ब्रजबास । जौ पाइयै कृपा अनयास ॥६७॥
तन धरि धरि यह बानक बनै । ब्रजरज खरिक - कीच मैं सनै ॥६८।
अलभ लाभ को भाजन होय । ब्रजव्यौहार रहै हिय भोय ॥६९॥
ब्रजजन सहज रीति कौं परखैं । ब्रज की प्रीति सहज मन करखैं ।७०॥
कृस्न - गोपिका - कौतुक ताकै । उछकि परै जब या रस छाकै ॥७१॥
गोपी - प्रबल - भाव उर फुरै । तब सब ओर आप ही दुरै ॥७२॥
घूमत फिरै सुरति - भूल्यौ सो । तन मुरझान्यौ मन फूल्यौ सो ॥७३॥
स्याम - रूप रसभूप उज्यारो । लखै सहज ब्रजलोचन-तारो ॥७४॥
ताकी कहा बहुरि गति कहियै । जौ राखै तौ निरखत रहियै ॥७५॥
ये ब्रजबधू परम बड़भाग । यह रस इन ही को निज भाग ॥७६॥
इनको गैल छैल - रस लहियै । तातैं सब तजि ब्रज बसि रहियै ॥७७॥
आस - बास ब्रज हो मैं रहौं । गोपीपद - प्रसाद मैं लहौं ॥७८॥
यह ब्रजरस मेरे मन मान्यौ । अनजानौ हूँ यहि पै जान्यौ ॥७९॥
जदपि स्वाद याको अति दूरि । ब्रजरज मिली सजीवन-मूरि ॥८०॥

याही लै निज नयन आँजिहौं । याहि चाहि मन-मुकुर माँजिहौं ।।८१।।
यह ब्रजरज - रस करिहौं पान । गोपीपद - प्रसाद सनमान ।।८२।।
गोपीपद - रज - रस अभिमान । परम गूढ मति मूढ निदान ।।८३।।
रहि न सकौं बिन कियें बखान । अब रसना उचरै नहिं आन ।।८४।।
हियरा ब्रजरस - ढारैं ढरयौ । केलि - बेलि अवलंबन करयौ ।।८५।।
कछुक परयौ ब्रजरस को चसको । दूभर परस प्रेम अपरस को ।।८६।।
सोऊ सुगम मोहि परस्यो है । गोपीपद - प्रसाद सरस्यौ है ।।८७।।
रस जो रसै कहा रसना बस । नतरु कहाँ रसना कित यह रस ।।८८।।
बकिबो करत मौन की बात । सुनि मेरे स्रवनौ न अघात ।।८९।।
हौं ही बरनौं हौं हीं सुनौं । हौं ही समझौं निगुनौं गुनौं ।।९०।।
जितो कहावैं तितियै कहौं । ब्रज - सनेह को छेह न लहौं ।।९१।।
मौन बकै बानियौ न बोलै । ब्रजरस-सिंधु अगाध कलोलै ।।९२।।
यह रस पीवत प्यासे सरसैं । अब तौ उघरि उघरि हित बरसैं ।।९३।।
यहरस पाएं सब कछु पायौ । या ब्रजरज मैं उघरि दुरायौ ।।९४।।
गोपीरस गोपालै जानत । भावक-जन तिन कृपा बखानत ।।९५।।
त्रिभुवन सत - सिरोमनि गोपी । अतुल प्रेम पूरन पन - ओपी ।।९६।।
गोपी-छिट रस को बट पाय । सदा रह्यौ आनँदघन छाय ।।९७।।
जीवन सरस भयौ ब्रजरस तैं । घूमत गोपी-रस - आरस तैं ।।९८।।
हियो बिरस या रस - उदगार । जै जै राधा नंदकुमार ।।९९।।
दंपति - कृपा - भरोसो मोहि । जातें ब्रजरज पाई टोहि ।।१००।।
अब न और कछु या बिन चहियै । याही रज मिलि मिलि रस लहियै।।१०१।।
गोपी - चरन - रैंन मेरे धन । गोपिन के पन सौं पारयौ पन ।।१०२।।
परम प्रेमपद्धति कछु कही । गोपीपद - प्रसाद तैं लही ।।१०३।।
सब रस को निगूढ मत यही । ब्रजरज गही भयौ अब सही ।।१०४।।
गोपीवल्लभ के गुन गनौं । गनि गनि निज सरूपसुख सनौं ।।१०५।।
गौर-स्यामसय ब्रजबन देखौं । ठौर ठौर लीला अवरेखौं ।।१०६।।

[९१] छेह=(छेद) विच्छेद । [९६] ओपी=ओपित, देदीप्यमान । [१०२] रैंन=रेणु, रज ।

लह्यौ परम रस को बिरजास। श्रीव्रज बृंदाबिपिन - बिलास ॥१०७॥
भ्रम-तम गयौ भयौ सु प्रकास। गोपी - पदरज पूजी आस ॥१०८॥

दोहा

प्रगट प्रेमपद्धति कही, लही कृपा - अनुसार।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्भुत रस - आसार ॥१०९॥
सुरति स्याम सौं मिलि रही, करत धाम के काम।
यह गति व्रज अबलान की, प्रबल प्रेम नव दाम ॥११०॥
बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति।
याही तें सब तें अमिल, या व्रज की रसरीति ॥१११॥
प्रेमअवधि आनँदघन, लिये महारस पागि।
सर्वस साध्यौ बिसरि सुधि, मोहदसा उर जागि ॥११२॥
कहि न परति कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि।
व्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाहै ताहि ॥११३॥
सदा मगन मुरली धरैं, गावत व्रज को प्रेम।
व्रजनायक नेही निपुन, गहे प्रेम को नेम ॥११४॥
गोरस ह्वै सो रस लियौ, जो नर लहैं न कोय।
लैंनि दैंनि अति रसमसो, गति मति रही समोय ॥११५॥
घर बैठी बन मैं फिरै. गोपिन की यह गैल।
गोहन क्यौं न लग्यौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥११६॥

११०—प्रबल०—परम प्रेम तकि राम (राम)। ११३—अवगाहै—अवगाधै (राम)।

[१०७] निरजास=(सं० निर्यास) निचोड, निष्कर्ष। [१०९] आसार=वृष्टि। [११०] सुरति=स्मृति, ध्यान। दाम=रस्सी। [१११] गुनी=गुणी, रस्सीवाला। [११२] मोह० = अचेतावस्था। [११५] रसमसी=रसमय। समोय रही=लीन हो रही है। [११६] गैल=गली ; रीति। गोहन=साथ।

गाँव गाँव बाखरि बगर, ब्रजमोहन मँडराय।
कहौ ताहि कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥११७॥

एकहि लगि दुहुँघाँ खगी, लगी पुरातन प्रीति।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥११८॥

परम प्रेमगति अगम अति, अमल अपूरब रूप।
सब तैं न्यारी सुचि सुमिल, ब्रज - रसरीति अनूप ॥११९॥

मधुर मुरलिका - नाद सौं, मति गति लई बिलोय।
निगम तान बेधे मरम, बिषम बिषामृत मोय ॥१२०॥

प्रेमपरावधि ब्रजबधू, सुनि बसी - धुनि मंद।
तजत भईं सब कछु तबै, भजत भईं ब्रजचंद ॥१२१॥

आरजपथ भूलीं भलै, बिबस परीं हित - फंद।
ब्रजमोहन ब्रजमोहनी, पूरन प्रेम अमंद ॥१२२॥

थकित चलीं सुनि मुरलिका, सु धुनि अपूरब गैल।
बिबस भईं अपबस कियौ, मदनमनोहर छैल ॥१२३॥

अतुल अनूप सुरूप गुन, गोपी परम पुनीत।
जिनके बस रसनिधि सदा स्याम सजीवन मीत ॥१२४॥

ब्रज बृंदाबन देखियै, पूरन प्रेम - समाज।
गोपराजनंदन नवल, नित बरसत रसराज ॥१२५॥

चौंप चाव तिनही नयौ, नवल रूप नवरंग।
ब्रजबाला ब्रजचंद की, अद्भुत केलि अभग ॥१२६॥

११७–बाखरि–पोखरि (राम)। ११९–सुचि–सुठि (वृ दा०)। १२०–तान–बान (राम)। १२१–कछु०–सकुच तब। १२२–ब्रजमोहनी–मनमोहनी। १२६–रामनगर की प्रति में यह दोहा यों है–चोप बाल ब्रजचंद की अदभुत केलि अभग।

[११७] बाखरि=घर। बगर=बरोठा, प्रकोष्ठ। [११८] ठाँ=ओर। [१२०] मोय=भिँगोकर। [१२२] आरज०=मर्यादा का मार्ग। [१२५] रसराज=शृंगार।

गिरिबर घन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार।
सदा कुलाहल मचि रह्यौ, लीला ललित अपार ॥१२७॥
परम अमल अति ही अमिल, हरि-ब्रजबधू-बिलास।
जाँचत हैं बिधि संभु से, श्रीब्रजमडल - बास ॥१२८॥
श्रीपद - अंकित ब्रजमही, छबि न कही कछू जाय।
क्यौं न रमाहू को हियो, या सुख कौं ललचाय ॥१२९॥
रची निरंतर केलि यह, अद्भुत अमित रसाल।
बिहरत भरें अनंद सौं, गोपी मदनगुपाल ॥१३०॥
मिलि बिछुरत बिछुरैं मिलत, अचरज मिलन-बिछोह।
जग मोहन जग तैं बिरल, ब्रजबन लीला मोह ॥१३१॥
देखत भूली सी लगैं, लखि ब्रज को ब्यौपार।
चकचौंधी सबके चखनि, अचरज प्रेम - बिहार ॥१३२॥
यह बिनोद या ब्रजबनै, अद्भुत अमल अखंड।
गान करत ब्रजकेलि को, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥१३३॥
रसिक - सिरोमनि साँवरो, रमनीमनि ब्रजबाम।
बिलसत हुलसत एकरस, ब्रज बृंदाबन धाम ॥१३४॥
महाभाग ब्रज की बधू, निज बस किये गुपाल।
रिनी रहे हित मानि कै, सुकृती परम रसाल ॥१३५॥
गोपिनि की पदवी अगम, निगम निहारत जाहि।
पद-रज बिधि से जाचहीं, कौन लहै फिर ताहि ॥१३६॥
एक कृपाबल पाइयै, मतिगति रति भरिपूरि।
निकट होति पाछैं परें, श्रीपदपकंज - धूरि ॥१३७॥

छाके हूँ अछके रहत, अछके छाक—उमग ॥ १२८—अमल—अमिल (राम)। अमिल—सुमिल (वही)। १२८—मंडल—मंडन। (वृंदा०)। १२९—भरैं—भरि (राम)। १३१—बिरल—बिलग। १३६—जाचहीं—जोवहीं।

[१२८] अमिल=अप्राप्य।

गोपिन को रस गुपत अति, प्रगट करै तिहि कौन ।
सुक सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥१३८॥

गोपी-मदनगुपाल मिलि, मोहन ब्रजबन - केलि ।
अति प्यारी न्यारी नवल, निरवधि आनँद-बेलि ॥१३९॥

परम प्रेमगति को लहै, मन बुधि थकित बिचारि ।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपौ हारि ॥१४०॥

गोपी - रसलंपट कियौ, हियौ आपनो स्याम ।
ब्रजबन बसि हुलसत सदा, प्रकट इकौसैं धाम ॥१४१॥

अतुल रूप-गुन - माधुरी, परम अपूरब साज ।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥१४२॥

परम प्रेम - गुन - रूप रस, ब्रज - संपदा अपार ।
जै जै जै श्रीगोपिका, जै जै नंदकुमार ॥१४३॥

१३८-सुक-मत्र । १३९-न्यारी-भरी (वहीं) ।

[१४१] इकौसैं=एकांत, अकेले । [१४२] रसमसो=रसीला ।

वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन

दोहा

बरीसानु गिरि गाइयै, परम पुनीत सुथान ।
उज्वल बपु हिय स्यामरस, जहाँ उदित बृषभान ॥१॥

चौपाई

गिरि के नावँ गावँ ढिग बसै । बरसानो सरसानो लसै ॥२॥
भागनि भरी भूमि रँगभीनी । काहू बर बिरंचि रचि कीनी ॥३॥
कीरतिकुवँरि राधिका जितई । खेल्यौ करति निरत-रति तितई ॥४॥
सोहति संग सबै सहिँदोली । कछुक लियेँ अप - अपनी ओली ॥५॥
हिलनि मिलनि खेलनि चित चायनि । गावति गीतनि लै लै नायनि ॥६॥
खरक खोरि गहबर घाँ डोलति । सींचति स्रवन सुधा जब बोलति ॥७॥
राधा की हौं चौकस चेरी । सदा रहति घर बाहिर नेरी ॥८॥
नांको नावँ बहुगुनी मेरो । बरसाने ही सुंदर खेरो ॥९॥
याही घर की जाई बाढी । सदा रहति राधा - ढिग ठाढ़ी ॥१०॥
राधा - दृस्टि लियेँ ही रहौँ । जो कछु बूझैं सोई कहौँ ॥११॥
मन की पाय टहल अनुसरौँ । अपनी को मनभायो करौँ ॥१२॥
राधा हौँ सब भाँति पढाई । पायँ झवाय गुमान बढाई ॥१३॥
रससिंगार साँज सजि जानौँ । कबरी सोधौँ बहु बिधि बानौँ ॥१४॥
राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ । सोई अरथ हियेँ अभिलाख्यौ ॥१५॥
आछीताननि गाय सुनाऊँ । रीझि रीझि राधाहि रिझाऊँ ॥१६॥

[१] बरीसानु=बरसाना । बरी=सूर्य की पत्नी । सानु=चोटी, शिखर । बृषभान=बृषभानु, राधिका के पिता ; बृषराशि का सूर्य । [४] निरत०= रतिलीन, प्रेमविह्वल । [५] सहिँदोली=सखी । ओली=कोंछ, झोली । [७] खरक=पशुओं के चरने का स्थान । खोरि=गली । गहबर=निकुंज, गुप्त स्थान । घाँ=ओर । [८] चौकस=सावधान । नेरी=निकट । [१२] अपनी को= अपनी स्वामिनी का । [१४] बानौँ=शैली, प्रकार या बाँधती हूँ ।

राधा - रीझ अटपटी अति है। सोई मो मति की गति रति है ॥१७॥
उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ ॥१८॥
छंद कबित्तनि रटौं चटक सौं। कहौं प्रेम-रसरंग अटक सौं ॥१९॥
नंदकुवँर को मुरलीनाद। सुनति कान दै लै सुरस्वाद ॥२०॥
रीझनि बिबस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला उर आनौं ॥२१॥
ताही सुरहि साध कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गाँसनि खोलौं ॥२२॥
दुरी बातहू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब ॥२३॥
रीझि बूझि के बनक बनाऊँ। चौंप चाव की रीझनि पाऊँ ॥२४॥
चित-हित-कीसमझति अति औंड़ी। राधा करी लाड़िली लौंडी ॥२५॥
ललिता सखी मोहि अति मानै। राधा को हित लै पहचानै ॥२६॥
प्रीति बिसेष बिसाखा करै। बिहँसि बोलि माथे कर धरै ॥२७॥
राधा - लौं हौं इन्हैं मनाऊँ। इन प्रसाद राधा मन भाऊँ ॥२८॥
सहचरि मेरो करतब चाहै। राधा के ढिग बैठि सराहै ॥२९॥
इन सबकी प्यारी सब बातनि। तकेँ रहति सेवा की घातनि ॥३०॥
गिरि बन बाग तड़ागनि खेलति। राधा सखि-समाज-सुख झेलति ॥३१॥
बहुत भाँति के कौतुक करहीँ। एक प्रान मन इक रस ढरहीँ ॥३२॥
बीनति पुहप बनावत भूषन। बनहि प्रकासति बदन मयूखन ॥३३॥
नंदराय को ललन छबीलो। ब्रजमोहन गुन-रूप - रसीलो ॥३४॥
तित ही निकसत आनि अचानक। बरनौं कहा मनोहर बानक ॥३५॥
तब सबके मन दृग सकेलि कै। करत हाथ कछु खेल खेलि कै ॥३६॥
मुरली - तान सुनाय अचगरो। बस करि लेत सब गुननि अगरो ॥३७॥
हिलग-चौंप-बस रस अभिलाखे। रसिक छैल चितवनि मैं चाखे ॥३८॥
रूपमाधुरी पीवत प्यावत। ब्रजजीवन यौं जीव जिवावत ॥३९॥
नित यह चुहल रहति बन गहबर। लग्यौ रहत आनँदघन को झर ॥४०॥
इत उत की हितरीति अटपटी। हौं ही समझति चौंप-चटपटी ॥४१॥

---

[१८] उकति०=उक्ति की युक्ति से। [२८] राधा०=राधा की ही भाँति।

गोकुलगीत

चौपाई

नंदराय को गोकुल गाऊँ । आप बरनि आप ही सुनाऊँ ॥१॥
यह सुख मुख ह्वै को उच्चरै । सुख ही निज सुख बरनन करै ॥२॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार । गहमह रहति महर के द्वार ॥३॥
कान्ह कुवँर जीवन सब ही के । हुलसत बिलसत लागत नीके ॥४॥
मैया महरि जसोमति रानी । भागनि भरी बिधाता बानी ॥५॥
निज कृत फल निज नैननि देखै । ओपित करत भाग की रेखै ॥६॥
ऐसी यहै सपूती जग मैं । जगमगाति महिमा जगमग मैं ॥७॥
सुत सनेह सौँ सब ब्रज सान्यौ । याके सुख सबको सुख जान्यौ ॥८॥
बरस्यौ करति दूध की धारनि । जै जै कृस्न - पपीहा - पारनि ॥९॥
ब्रज की मंगलरासि रहौ नित । ऐसैं ही तोपौ पोपौ हित ॥१०॥
बडभागी नँदराय साधु मन । जिनके ऐसी धन यातैं धन ॥११॥
मोहन पूत होय सो लेखैं । कहत न बनै बनै सुख देखैं ॥१२॥
खेलनि हसनि चलनि अरु गावनि । स्यामसुँदर की रसबरसावनि ॥१३॥
भीजे रहत सबै ब्रजबासी । आनँदघन गोपाल - उपासी ॥१४॥
जमुना - तीर गाँव की राजनि । कहा कहौँ गोकुल-छबि-छाजनि ॥१५॥
गोकुल-छबि आँखिनिहीँ भावै । रहि न सकै रसना कछु गावै ॥१६॥
चहूँ ओर अति चुहल चैन की । पोषै चितवनि कमलनैन की ॥१७॥
आनँदघन बिनोद-झर बरसै । कान्ह कान्ह ही सबकौं दरसै ॥१८॥
सोएँ जगे कान्ह ही जिनकैं । तिनकी सुख - संपति है तिनकैं ॥१९॥

१९—तिन—तिन्ह (लदन) ।

[११] धन=(धन्या) पत्नी । धन=धन्य , भाग्यवान् । जिनकैं=जिनके ध्यान मैं । तिनकैं=उनके ही पास ।

साँझ भोर लीला - भर भीजे । डोलत नव नव पुलक पसीजे ॥२०॥
यह गोकुल नित नैननि दरसौ । प्राननि पै आनँदघन बरसौ ॥२१॥

दोहा

स्याम-जोति जगमग भरयौ, गोकुल दिपत सुदेस ।
जै जै ब्रजरानी सदा, जै जै नंद नरेस ॥२२॥
सुख सोभा संपति महा, राम स्याम कौ चाव ।
लाड़ लड़ायौई करै, सब ही सहज सुभाव ॥२३॥

———

[२०] भर=(पानी-आँसू-का) भराव ।

नाममाधुरी

चौपाई

बृंदाबन - रानी श्रीराधा । मोहन - मनमानी श्रीराधा ॥१॥
जय नित्यबिहारिनि श्रीराधा । ब्रजसुख - बिस्तारिनि श्रीराधा ॥२॥
कीरति की कन्या श्रीराधा । सब ही बिधि धन्या श्रीराधा ॥३॥
जय रासबिलासिनि श्रीराधा । नित कुंज - निवासिनि श्रीराधा ॥४॥
हरि - उर - बनमाला श्रीराधा । गुन - रूप - रसाला श्रीराधा ॥५॥
श्रीदामा - अनुजा श्रीराधा । बृषदिनमनि - तनुजा श्रीराधा ॥६॥
रसिकिनि की स्वामिनि श्रीराधा । करुनानिधि - नामिनि श्रीराधा ॥७॥
बंसीबट - बासिनि श्रीराधा । संगीत - प्रकासिनि श्रीराधा ॥८॥
श्रीकृस्न - सिरोमनि श्रीराधा । जय स्याम - सजीवनि श्रीराधा ॥९॥
आनंद - रसायनि श्रीराधा । प्रीतम - सुखदायनि श्रीराधा ॥१०॥
अनुराग - सुबेली श्रीराधा । सौभाग्य - नवेली श्रीराधा ॥११॥
सरसीरुह लोचनि श्रीराधा । हरि-बिरह-बिमोचनि श्रीराधा ॥१२॥
गोपाल - उपासिनि श्रीराधा । बृंदाबन - बासिनि श्रीराधा ॥१३॥
श्रीगान - सुधानिधि श्रीराधा । प्रेमावधि सब बिधि श्रीराधा ॥१४॥
जय नख - चंद्रावलि श्रीराधा । प्रीतम - प्रेमावलि श्रीराधा ॥१५॥
ललितादिक - प्यारी श्रीराधा । अति रूप - उज्यारी श्रीराधा ॥१६॥
मंगल की मूरति श्रीराधा । ब्रजवन - सुख पूरति श्रीराधा ॥१७॥
ब्रजचंद - कमोदिनि श्रीराधा । भांडीर - बिनोदिनि श्रीराधा ॥१८॥
लीला - रसरंगिनि श्रीराधा । अनुराग - अनंगिनि श्रीराधा ॥१९॥
त्रिभुवन - ठकुरायनि श्रीराधा । गोबिंद - गुसाँयनि श्रीराधा ॥२०॥
गोपीजन - मंडिनि श्रीराधा । रसरासि - अखंडिनि श्रीराधा ॥२१॥
नटनागर - भामा श्रीराधा । परिपूरन - कामा श्रीराधा ॥२२॥
तरुनीमनि - दच्छनि श्रीराधा । सब भाँति सुलच्छनि श्रीराधा ॥२३॥

१३—गोपाल—श्रीकृस्न (लंदन)। १७—पूरति—पूरनि (वही)। १९—अनंगिनि—अभंगिनि— (बृंदा०)।

कल केलितरंगिनि श्रीराधा। लावन्य - बिभंगिनि श्रीराधा ॥२४॥
कात्यायनि - बदिनि श्रीराधा। अभिलाष्-अमंदिनि श्रीराधा ॥२५॥
गोपी - चूडामनि श्रीराधा। सुषमा-महिमामान श्रीराधा ॥२६॥
रामा अभिरामा श्रीराधा। स्यामा सुखधामा श्रीराधा ॥२७॥
रसरासि - रचावनि श्रीराधा। नटराज - नचावनि श्रीराधा ॥२८॥
ब्रजजीवन - जीवनि श्रीराधा। निरवधि-रसपीवनि श्रीराधा ॥२९॥
जमुनाजल - बिहरिनि श्रीराधा। लीलामृत - लहरिनि श्रीराधा ॥३०॥
निगमादि - अगम्या श्रीराधा। प्रेमावधि - रम्या श्रीराधा ॥३१॥
जगबंदन - बंदित श्रीराधा। नँदनदन - नंदित श्रीराधा ॥३२॥
निस - जागर-साजित श्रीराधा। सुखसेज - बिराजित श्रीराधा ॥३३॥
ब्रजचंद - चकोरी श्रीराधा। बृषभान - किसोरी श्रीराधा ॥३४॥
ब्रजमोहन - मोहिनि श्रीराधा। अभिलाषनि-दोहिनि श्रीराधा ॥३५॥
बृंदाबन - सोभा श्रीराधा। क्रीड़ा - तरु - गोभा श्रीराधा ॥३६॥
अतिसय-रति-रूपिनि श्रीराधा। माधुर्य - अनूपिनि श्रीराधा ॥३७॥
कमनीय कुमारी श्रीराधा। हरिबल्लभ - प्यारी श्रीराधा ॥३८॥
श्रीकृस्नाकर्षिनि श्रीराधा। आनँदघन - बर्षिनि श्रीराधा ॥३९॥
दिव्यांसुक - बेसी श्रीराधा। अति मंजुल केसी श्रीराधा ॥४०॥
अभिसार - प्रपन्ना श्रीराधा। अत्यंत प्रसन्ना श्रीराधा ॥४१॥
कल - केलि-परावधि श्रीराधा। रसरीति - रहःसिधि श्रीराधा ॥४२॥

२४—लंदन की प्रति के पुट्ठे पर ये पंक्तियाँ और हैं—नित गढ भगिनि श्रीराधा। गोपीसर्बोमनि श्रीराधा। २६—सुषमा—सुख की। मनि—धनि (लंदन)। लदन की प्रति में एक पंक्ति और है—निधिबन घन छावनि श्रीराधा। २७—रामा—राधा (बृंदा०)। ४२—रहः०—रही सधि (लंदन)।

गिरिपूजन

चौपाई

गिरि गोधन-पूजन दिन आयौ। ब्रजबासिन को अति मनभायौ ॥१॥
घर घरनी सुत बित कुसरात। गोधन पूजि लहत सुख सात ॥२॥
याको चाव बरस दिन रहै। गोधन पै माँगत सुख यहै ॥३॥
गिरि गोधन पूजिबैं उछाह। हाँसनि घर घर चढ़े कराह ॥४॥
होन लगे बहु बिधि पकवान। तिनको कब लौं करौं बखान ॥५॥
भरि भरि डला सकट अरु काँवरि। हिय जिय गोधन-पूजनि भाँवरि ॥६॥
या बिधि सजि ब्रजपति के साथ। सकल घोष धावत गिरिनाथ ॥७॥
ता छिन की छबि कहियै कहा। देत दाँहनो भरि मुद महा ॥८॥
गावत गीत टोल ब्रजतिय के। को बरनै उछाह हिय जिय के ॥९॥
स्याम राम की जोट सुहाई। सबके मन - नैननि सुखदाई ॥१०॥
रंगनि करत ग्वालगन संग। ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥११॥
दीपदान औसर की दीपति। सब दिसि कौं दीपति सौं लीपति ॥१२॥
मावस पै पूनो ह्वै रही। यह दुति कैसैं आवति कही ॥१३॥
ब्रज को चंद उजागर स्याम। अँखियनि तारो प्यारो नाम ॥१४॥
गिरि गिरिधर दीपति के धाम। मनिभूषन - भूषित अभिराम ॥१५॥
सुकटि करे मेखला सुदेस। मन जानै या सुख को देस ॥१६॥
गोपी - गोप - भीर अति भारी। परिकरमा की हौं बलिहारी ॥१७॥
इक अपनो साथिनि कौं टेरति। और कोऊ बिछुरे कौं हेरति ॥१८॥
महा कुलाहल की धुनि होति। भाजत जग स्रवननि की छोति ॥१९॥
रोहिनि जसुमति को समाज जहँ। दौरि जात है कान्ह कुवँर तहँ ॥२०॥

[२] कुसरात=कुशल। सुख०=सातो स्वर्गों का सुख। [६] डला=डाला, दौरा। सकट=शकट, गाड़ी। काँवरि=बहँगी। [१०] जोट=जोड़ा। [१६] सुदेस=सुंदर। [१९] छोति=स्पर्श। भाजत०=ध्वनि जब कानों को स्पर्श करती है तो जग भागता है। जग की आसक्ति हट जाती है।

गोद भराय फिरत कछु बाँटत। मधुमंगल लै लै फिरि नाँटत ॥२१॥
या बिधि हठि परिकरमा देत। कबहुँ नंद कनियाँ करि लेत ॥२२॥
गिरिधर पायन पायन पायन। उतरि चलत भरि गोधन भायन ॥२३॥
पायनि गायनि सुरनि बिराजनि। नखजगमगनि दुरत ससि लाजनि॥२४॥
यह छबि मन जानै कै नैन। अरु कैसैँ हूँ कहत बनै न ॥२५॥
जसु मैया सिहाति सुख देखति। सब बिधि भाग-सफलता लेखति ॥२६॥
सबके जीवन सबके प्रान। गिरिधर सबही कौँ सुखदान ॥२७॥
गैयनि रखवारो बलवान। खेलत हरथौ अमरपति - मान ॥२८॥
गोबिंद लाल रँगीलो नाँव। कहि कहि जीवत सब ही गाँव ॥२९॥
गोधन पूजि नंद घर आए। घर घर घोष बधाए गाए ॥३०॥
बल मोहन चिर जियौ सुहाए। तिनपै सुख - संजोग दिखाए ॥३१॥
नित नित नए नए सुख सरसौ। ब्रजबन गिरि आनँदघन बरसौ ॥३२॥
नीके रहौ लहौ सुख सदा। बिलसौ अपनी ब्रज - सपदा ॥३३॥
कुलमंडन ब्रजराज - दुलारो। ब्रजजीवन ब्रजलोचन - तारो ॥४४॥

---

[२१] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा। [२२] कनियाँ=गोद। [२३] पायन=पैरों से। भाय=भाव, प्रेम। [२४] गायनि = गाना। [२८] अमरपति=इंद्र। [३०] घोष= अहीरों का गाँव।

विचारसार

चौपाई

कृस्न - कृपा हौं सदा मनाऊँ। कृस्न - कृपा तैं कृस्नहि गाऊँ ॥१॥
कृस्न-कथा - रुचि अंतर बाढी। मोहन - मूरति आगैं ठाढी ॥२॥
रसना कृस्न-गुननि गुन-गसी। सब बातनि ढीली करि कसी ॥३॥
कृस्न - गुननि को यहै सुभाव। चित चढि बढत चौगुनो चाव ॥४॥
कृस्न - गुनानुबाद ही भावै। अब कछु और न मन मैं आवै ॥५॥
बानी कृस्न-कथा - रुचि रची। रसना सुजस बखानत नची ॥६॥
कृस्न-ललित-लीला - रस - पगी। सोवतहूँ गुन - गनना जगी ॥७॥
कृस्न - मधुर-रस रसना भाग। पायौ परम - प्रेम - पन - पाग ॥८॥
बचन मौन मैं कृस्नहि बोलै। रसना कृस्न - चरित्र कलोलै ॥९॥
कृस्न-नॉव-सुख-स्वाद अगाध। समझत कृस्न - सनेही साध ॥१०॥
कृस्न कृस्न ही सर्बस मेरो। कृस्न कहै ताकौं हौं चेरो ॥११॥
कृस्नकथा - प्रेमामृत - धार। कृस्न नाम सब स्रुति को सार ॥१२॥
कृस्नकथा अघओघनि हरै। मो से नीचहि उत्तम करै ॥१३॥
कृस्नकथा अगतिन कौं गति है। धनि धनि ते जिनके यह रति है ॥१४॥
कृस्नकथा महोषधी आहि। संसै-रोग मिटहि सुनि याहि ॥१५॥
कृस्न नाम रसना जब भाखै। बिषै-महाबिष फिर क्यौं चाखै ॥१६॥
कृस्न कहत ही सब दुख जाहिँ। तनकौ संसै यामैं नाहिँ ॥१७॥
कृस्नकथा जे बरनि सुनावैं। तेई सुजन मोहि अति भावैं ॥१८॥
कृस्ननाम - हित आसा राखौं। जान्यौं कृस्न कृस्न ही भाखौं ॥१९॥
कृस्न नाम अभिलाष पुजावै। तबही कृस्न कृस्न कहि आवै ॥२०॥
कृस्न कहे तैं परम पुनीत। स्रवननि मंगल हरिगुन-गीत ॥२१॥
एक बार जो कृस्न कहैगो। आनँदघन-रस भीजि रहैगो ॥२२॥
कृस्न परम रस को निरजास। कृस्न - कृपा तैं यह बिसवास ॥२३॥

[३] गुन=रस्सी। गसी=बँधी। बात=वार्ता, विषय। [१०] साध=उत्कट इच्छा। [२३] निरजास=(निर्यास) निचोड़।

कृस्न नाम गुरु दियौ बताय। रह्यौ महा आनँद्घन छाय ॥२४॥
केवल कृस्न कहौं अरु सुनौं। कृस्न - गुनानुबाद ही गुनौं ॥२५॥
कृस्नकथा सौं सरस्यौ भाव। रसन स्रवन यह सहज सुभाव ॥२६॥
कृस्नकथा को परस्यौ स्वाद। समझि तज्यौं सबही बकबाद ॥२७॥
कृस्नकथा को जु कछु मिठास। अनुभव रसना कौं अनयास ॥२८॥
कृस्नकथा परमानद - सोत। कृस्नकथा अनुराग - उदोत ॥२९॥
कृस्नकथा परमारथ - वेलि। उर झालरी मधुर ब्रजकेलि ॥३०॥
कृस्न कृस्न बानी को भूषन। या बिन बावदूकता दूषन ॥३१॥
कृस्नकथा-सुख सनक बखानैं। ईस गिरीस सेष सुख जानैं ॥३२॥
कृस्नकथा - रस नारद पियैं। उनमद फिरत जिवावत जियैं ॥३३॥
कृस्नरसासव निरवधि छाक। ब्रह्मादिकनि रंक जिमि ताक ॥३४॥
कृस्नकथा - मादक जो छकै। गहै अगम गति ऐसो थकै ॥३५॥
कृस्न कहै अरु कृस्न कहावै। कृस्न बिना न और कछु भावै ॥३६॥
निगम-सार है कृस्न - कहानी। नितलीला - बिनोद-रस सानी ॥३७॥
कृस्न नाम उर-अजिर-प्रकासक। ताप अनेक एक दुखनासक ॥३८॥
कृस्नकथा आनद - रसायन। गावत अनिस ब्यास द्वैपायन ॥३९॥
बरनत स्रुति भागवत पुरान। छक्यौ रहत ताही रसपान ॥४०॥
कृस्नकथा बरनै सो रसना। या बिन बृथा बाद मैं रस ना ॥४१॥
कृस्नकथा संतन को धन है। कृस्नकथा ही सौं हित - पन है ॥४२॥
कृस्नकथा - रस निसदिन पियै। कृस्नहि गाय गाय नित जियै ॥४३॥
कृस्न मूलमंत्र है हमारो। जपि जपि जियरा होत सुखारो ॥४४॥
कृस्न कहत सब दुख दुरि गए। उदय भए नित मंगल नए ॥४५॥
कृस्न सुनत सुख बाढत हियैं। जीवत प्रान कृस्नरस पियैं ॥४६॥
कृस्नकथा - फल कृस्नकथा है। और कछू समझिबो बृथा है। ४७॥

[३०] झालरी=हर्राभरी । [३१] बावदूकता=वाग्मिता, वक्तृता । [३२] सनक=प्रसिद्ध मुनि, निंबार्क-संप्रदाय के आदि-प्रवर्तक । [३४] छाक=तुष्टि । ताक=खोज । [३८] अजिर=आँगन । [३९] अनिस=अहर्निश, प्रतिदिन, निरंतर । ब्यास०=कृष्ण द्वैपायन व्यास, पुराणों के कर्ता ।

कृस्न नाम ही कृस्न - मिलाप । कृस्न कहन को यहै प्रताप ॥४८॥
कृस्न कृस्न रसना - रट लागी । कृस्नकथा-रति अंतर जागी ॥४९॥
कृस्नकथा तेँ मन न अघाय । भावत यहै न और सुहाय ॥५०॥
कृस्नकथा - मधुरिमा अपार । कृस्नकथा सब स्रुति को सार ॥५१॥
कृस्नकथा-सुख सदा अखंडित । कृस्न कहै अरु गहै सु पंडित ॥५२॥
कृस्नचरित चिंतामनि - दाम । हेरत फेरत पूरनकाम ॥५३॥
कृस्न नाम-लावन्य भरयौ है । मधुरिम-सार सकेलि धरयौ है ॥५४॥
कृस्ननाम - गुन कहियै कहा । कहत मौन सुख लहियै महा ॥५५॥
कृस्न अपूरब सुख को सिंधु । कृस्न कहैं तेई जन बंधु ॥५६॥
बुधि सोई जो कृस्न-सुधि साधै । सब दिस तेँ मन कौं अवरोधै ॥५७॥
एक कृस्न उर - अंतर फुरैँ । अन्य भाव नीके करि दुरैँ ॥५८॥
कृस्न कृस्न देखत ही फिरे । निसरत साँस कृस्न - गुन-घिरे ॥५९॥
बैठत उठत कृस्न ही सूझै । सोएँ जगैँ कृस्न - गति बूझै ॥६०॥
कृस्न सुमिरि भूलै सब बातैँ । कृस्नकथा - रति कृस्नकथा तैँ ॥६१॥
कृस्नकथा बिन कथा न दूजी । कृस्न कहत सब आसा पूजी ॥६२॥
कृस्न स्यामसुंदर बनमाली । मधुर किसोर परमसुखसाली ॥६३॥
कृस्न कलपतरु आनँदमूल । लसत कलिंदनंदिनी - कूल ॥६४॥
श्रीबृंदाबन कृस्न - सुधाम । बसत निरंतर अति अभिराम ॥६५॥
लीला-मगन कृस्नरस - सागर । गुननिधि गोपीनाथ उजागर ॥६६॥
कृस्न-सरूप कहत नहिं आवै । मोहन मनमथ - जूथ लजावै ॥६७॥
मुरली धरेँ त्रिभंग बिराजै । मोहन सुधुनि अखंडित बाजै ॥६८॥
ब्रजबन ब्यापि रहति धुनि भाई । बिस्वबिमोहन कृस्न कन्हाई । ६९॥
अमित कृस्नमहिमा क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ॥७०॥
यहै कृस्न को सुभग सरूप । अद्भुत अमल अखंड अनूप ॥७१॥
या सरूप को मोहन ध्यान । हिय जिय बसौ बिलासनिधान ॥७२॥
गोपभेष ब्रजराजकुमार । यहै कृस्न मो प्रान - अधार ॥७३॥

[४९] अंतर=हृदय में । [५३] दाम=माला । [५८] फुरैँ=स्फुरित हों जगेँ, प्रकट हों । दुरैँ=छिप जाते हैं ।

कृस्न कृपाकर पूरन चद। अमल अपूरब परमानंद ॥७४॥
सदा सनमुखो सब दिन दरसै। मद हसनि आनँदघन बरसै ॥७५॥
दृग-चकोर चित - चातक पोषै। अगनित कला बढ़ावत तोषै ॥७६॥
ऐसे कृस्नचंद की हौं बलि। रूपसुधा सौं प्रान रहौ पलि ॥७७॥
कृस्नचंद आनंद - उदोत। ब्रज मैं जगमग जगमग होत ॥७८॥
सब जग - तारो कृस्न उज्यारो। ब्रजमोहन ब्रजजीवन प्यारो ॥७९॥
अमल कृस्न - कीरति - चंदिनी। खिलि खुलि रही जगत-बंदिनी ॥८०॥
सबको सब ठाँ सुजस प्रकासै। जग-चकोर-चिंता - तम नासै ॥८१॥
पूरन गोकुलचद सदाई। रुचिर केलि - किरनावलि छाई ॥८२॥
सुख सीतलता अमल अमंद। जै जै जै श्रीगोकुलचंद ॥८३॥
आनँद-अमी स्रवत सब ही कौं। मोद-बिनोद बढावत जी कौं ॥८४॥
असुर अनीस उलूक न देखैं। सखा चकोरनि चौंप - परेखैं ॥८५॥
रसिकवृंद आनंद बढ़ावै। गुन सुछंद बिरुदावलि गावै ॥८६॥

दोहा

सब बिचार को सार है, या निबंध को गान।
श्रीगोपी - पद - रेनु - बल, बानी कियौ बखान ॥८७॥
निरवधि बस्तु अगम्य अति, सब बिचार तैं दूरि।
रसिकसिरोमनि - कृपा तैं, लही सजीवन - मूरि ॥८८॥

---

[८०] चंदिनी=चाँदनी। [८४] अमी= अमृत। [८५] चौंप०= (देखने पर) उत्साह, (न देखने पर) अनुत्साह।

दानघटा

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरल भए हौ ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन - तए हौ ।
लाज अँचै बिन काज खगौ तिनही सौं पगौ जिन रंग रए हौ ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥१॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड अमैंड अयानी ।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यौं इती इतरानी ।
दान दियें बिन जान न पाइहै आइहै जो चलि खोरि बिरानी ।
आगैं अछूनी गईं सो गईं घनआनँद आज भई मनमानी ॥२॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ बढ़ाय बढाय किये इतने जिन ।
भीति की दौरनि खौरनि है सठता हठ औरनि सौं समझे बिन ।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे कौं कौनैं दयौ सु लयौ किन ।
टौड़िक ह्वै घनआनँद डाटत काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ॥३॥

श्रीकृष्ण—

देहिगी दान जौ ऐहै इतैं नहीं पैहै अबै सु किये को सबै फल ।
बाबा दुहाई सुहाई कहौ जिय जानि कै मानि छुटै न कियें छल ।

२–अयानी–अमानी (कवित्त)। इती–इते (वृंदा०)। ३–बढाय०–पढाय पढ़ाय (वृंदा०)। कौनैं–कौन (कवित्त)।

[१] अरैल=अड़नेवाले। मैन०=कामतप्त, मदनपीड़ित। अँचै=पीकर। खगौ=लगते हो। रए=अनुरक्त। [२] उघटै०=ताना मारती है। अमैंड=मर्यादा न माननेवाली। दान=कर। खोरि=गली। बिरानी=पराई। अछूती=कोरी, बिना कर दिए। [३] भीति०=गली में छेंकना भीत से भिड़ना है। टौड़िक=पेटू।

एक ही ओल दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि बात परै सल ।
नावँ परयौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ॥४॥

गोपी—

जीभ सम्हारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेरैं ।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैं ।
खाय कहा फल माय जने जिय देखौ बिचारि पिता-तन हेरैं ।
कज-कनेरहि फेर बडो घनआनँद न्यारे रहौ कहाँ टेरैं ॥५॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित ।
जैसे सों तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित ।
एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै जौ बिधना घर बैठें दयौ बित ॥६॥

गोपी—

गोद भरै बित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सौं माय के आगै ।
पेट परे को लखै फल ज्यौं निपजे हौ सपूत सु भागनि जागै ।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातें महा पति पागै ।
बास दिये को यहै गुन है घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ॥७॥

४—देहिगी—दैहैगी । ओल—बोल (कबित्त) । ५—चाहत—चालत (वृंदा०) । मूड़—मूढ (वहीं) । हेरैं—तेरैं (कबित्त) । ६—भया—भैया (वृंदा०) । ७—गुन—फल (कबित्त) । जौ—और (वृंदा०) ।

[४] सुहाई=रुचनेवाली । जानि०=जान मानकर । ओल=जमानत । बात०=बात में परत पड़े, बात समाप्त हो । ऐंठति०=टेढ़ी मेढ़ी होती है । [५] कानि०=मर्यादा और एहसान का विचार । नेरैं=निकट । फेर=अंतर । न्यारे=पृथक्, दूर । [६] भया=भैया । कानि=प्रतिष्ठा । एकहि०=एक के साथ एक भिड़ जाओ । सकेरियै=संचित करो । [७] पेट०=गर्भ में तुम्हें धारण करने का । निपजे हौ=उत्पन्न हुए हो । पति=प्रतिष्ठा ।

राजदुलार - भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन-कोरनि छोरनि छ्वै मुसिकानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को ॥१२॥

रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
फैलि परयौ रस को झगरो अति ही अगरो निबटै न चुकाएँ।
काहूँ सम्हार रही न भटू तनकौ तन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेमपगे रिझवारन की तहँ रीझ कै रीझ ही लेत बलाएँ ॥१३॥

दोहा

दानघटा मिलि छबिछटा, रसधारनि सरसाय।
जियत पियत और न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥१४॥

दानघटा - रसपान के, चातक रसिक सुजान।
चखनि लखत चसके चखत, रखत तृषित ह्री कान ॥१५॥

दानघटा सींचत सदा, मधुर केलि नव बेलि।
आलबाल पचि रचि सुमन, लेत रसिक रस झेलि ॥१६॥

१२-राज०-राजदुलारी (वृंदा०)। सुभाय-सुहाय (वही)। १३-फैलि-केलि (कबित्त)।

[१२] इकसार = समान ढंग से। ह्री=हृदय। [१३] अगरो=अधिक, बढ़कर। निबरै०=समाप्त करने पर भी समाप्त नहीं होती। रीझ०=स्वयम् रीझ ही रीझकर।

भावनाप्रकाश

चौपाई

राधा - मोहन - जोट अनूप । अमल अमंद अपूरब रूप ॥१॥
इनकी लीला अचरज - खानि । कौन सकै या मरमहि जानि ॥२॥
निरवधि प्रेम-अवधि अति मोहन । मंगल-मुकट सनातन सोहन ॥३॥
निगम-हृदय सिव को धन यहै । गवरी सौं कबहूँ जो कहै ॥४॥
ताहि गूढ को गाढ जताय । कृपादृष्टि कछु दियौ बताय ॥५॥
सो ब्रज बृंदाबन मैं बसै । गुपत प्रगट सुछंदता लसै ॥६॥
दरसै परसै अपने ढारनि । बरसै कृपाकंद रुचि - धारनि ॥७॥
नदीसुर बरसानो गाँव । जगमनि मोहन - राधा - नाँव ॥८॥
बरन स्याम अरु गौर सुबेष । अतुल माधुरी अमित असेष ॥९॥
परिकर-निकर कहाँ लौं कहियै । इनकैं सुख सबको सुख चहियै ॥१०॥
नित त्यौहार दुहूँ घर रहै । घर घर ब्रज ब्यापक सुख यहै ॥११॥
नित ही चौंप चाव टेहलै । सबकौं सब बिधि लागत भलै ॥१२॥
सबके लोचन सबके प्रान । हरि-राधा-अनुराग - निधान ॥१३॥
नव नव भाँति नवल रुचि लियैं । बिहरत सबकौं सब सुख दियैं ॥१४॥
लीला ललित भेद बहु भाव । जब जैसो तब सबै बनाव ॥१५॥
ठौर ठौर की रचना नई । आनँदमूरति अचरजमई ॥१६॥
ब्रजबन के प्रदेस अति उत्तम । बिसद बिहार उदार सदा सम ॥१७॥
अति कमनीय अलौकिक रचना । कहा कहौं कछु बची न बचना ॥१८॥
रमन - भूमि कालिंदी - कूल । बृंदाबन बिहार - अनुकूल ॥१९॥
सुषमा - सदन सदा सर्बोपर । अति अद्भुत यातैं दरसत धर ॥२०॥

२०–दरसत–दरसै (बृंदा०) ।

[४] गवरी=गौरी, पार्वती । [५] गूढ=रहस्य । गाढ़=कठिन । [६] सुछंदता=स्वच्छंदता । [७] ढार=शैली । [८] नदीसुर=नंद-यशोदा का गाँव । [२०] धर=धरा पर ।

मनहि अगम्य सहज बन-रूप । जयति जयति बनराज अनूप ॥२१॥
राधा-मोहन-बर-बिनोद - थल । दरसत सरसत बरसत मगल ॥२२॥
ब्रजनायक निसंक जहँ खेलत । मनबछित सुखपुंज सकेलत ॥२३॥
रमनीमनि श्रीराधा प्यारी । ऐसी जोरी की बलिहारी ॥२४॥
मधुर बैस नव जोबन जगी । दुहुँनि ठगौरी दुहुँवनि लगी ॥२५॥
रहत डीठि सौं डीठि समोएँ । आरति डारति मनहि बिलोएँ ॥२६॥
निपट सुतंत्र महा परबस ये । भीजे कौन भाँति के रस ये ॥२७॥
इनकी गति सु कौन मति धरै । बिछुरन मिलन कछु न सुधि परै ॥२८॥
अमित ओज क्यौं बरनि बतैयै । खोय खोय अचिरज ही पैये ॥२९॥
परसि न सकियै इनहीं धैयै । इनही तें इनकी बलि जैयै ॥३०॥
ब्रजबन बसत जुगल अनुरागी । भरे सँजोग महा बैरागी ॥३१॥
सहज लगन अति अलग लगी है । महामोद की नींद जगी है ॥३२॥
कौन लहै इनके मन की गति । इनहीं कौं इनके पन की पति ॥३३॥
इनको नाम लेत ही बानी । होति महारसनिधि - ठकुरानी ॥३४॥
लेत लेत नामैं गुन फुरैं । तेई तब बानी त्यौं दुरैं ॥३५॥
उघरि कृपा उर - अतर दुरै । निपट दूरिहूँ आवत उरै ॥३६॥
यौं कछु कही परै तौ परै । रिझवारन की रुचि अनुसरै ॥३७॥
राधा - मोहन अति बड़भागी । गौर स्याम मूरति रस-पागी ॥३८॥
कहियै कहा सरूप - निकाई । इनकी मति इन माँझ बिकाई ॥३९॥
भीजे रहत रीझ - रस नागर । सब-गुन-आगर गुपत उजागर ॥४०॥
महामधुर कमनीय जुगल बर । इनही कौं दीजै इग पटतर ॥४१॥
प्रेमबिबस न गनत निसि भोर । दोउ दुहुँन के चद - चकोर ॥४२॥
केलि - कला-पडित रसमडित । नितनव-नवरुचि-रचे अखंडित ॥४३॥
हित सहेट के सुखनि समेटत । अति अभिलाष-भरे भरि भेटत ॥४४॥

२५–नव–भए । ३५–तब–बत (लंदन) । ३६–हूँ–है (बृदा०) ।

[२५] ठगौरी=ठगविद्या । [२६] समोएँ=लीन किए हुए । आरति=लालसा । बिलोएँ डारति=मथे डालती है । [३३] पति=प्रतिष्ठा का ध्यान । [४१] पटतर=समता ।

तके रहत मिलिबे की घातनि। समुझत नन-सैन की बातनि ॥४५॥
निपट नवेलो नेह निबाहत। मगन मनोरथ - सागर गाहत ॥४६॥
महाधीर अरु अधिक अधीर। परम सुखी परिपूरन - पीर ॥४७॥
इनको प्रेम पूरि ब्रज रह्यौ। सब लीलनि मैं रसिकनि लह्यौ ॥४८॥
सबके हितहि साधि सुख साजत। चतुरसिरोमनि भए बिराजत ॥४९॥
नन - हियैं रंगनि भरि देत। या बिध सौं समीप-सुख लेत ॥५०॥
औरै दिन इनकैं निस औरै। इनकी गति ब्यौरति मति बौरै ॥५१॥
ब्रजबन के सुख सदा मनावत। भाँति भाँति मन मैन सिरावत ॥५२॥
निकसत बन बिहरत अधिरतियनि। हितबतियनि कहि मिलवत छतियनि॥
ललक लालसा उमग बढनि सौं। उरझति आधी अधर कढनि सौं ॥५४॥
अतुल प्रेम - रस ओज-उफानै। निरवधि उझिल-झेल सुख-सानै ॥५५॥
मोदमेघ दामिनि मिलि बरसै। कहा कहौं जैसी रुचि दरसै ॥५६॥
केलि-रसिक अघानि क्यौं आवै। मिलें अनमिलें केल्यै भावै ॥५७॥
केलि - कुसलता कहौं कहा लौं। पहुँचनि पहुँचति नाहिं जहाँ लौं ॥५८॥
अचिरज - दाव उपावन भरे। ब्रज बसि बन-रस-चसकैं परे ॥५९॥
चरनि घात खरिकनि की हेट। नित ब्यौहार ह्वै रहै भेंट ॥६०॥
जमुना-घाटनि गहबर-बाटनि। पटुता - पाज पैजपन - पाटनि ॥६१॥
इनकी गह इनही पै फबै। सब जानत पै लहत न कबै ॥६२॥
बैठत उठत मिलत बतरात। औरै साँझ और परभात ॥६३॥

४६—मनोरथ—मनोहर (बृदा०)। ५१—इनकैं—इनको (वृदा०)। ५२—मैन—नैन (लदन)। ५५—उफानै—उफानौ (लदन)। ५७—केल्यै—केल्यौ (बृदा०) ६२—गह—गुह (लंदन)।

[५१] ब्यौरति=विचार करती हुई। [५२] मैन०=कामशांति करते हैं। [५६] रुचि=शोभा। [५८] पहुँचनि०=जहाँ पहुँच की भी पहुँच नहीं है। [५९] चसकैं=बान, टेव, चषक। [६०] खरिक=पशुओं के चरने का स्थान। हेट=सहेट, सकेतस्थल। [६१] गहबर=गुप्त स्थान। पटुता=चातुर्य। पाज=बाँध। पैज=प्रतिज्ञा। पाटनि=पूर्ण करना, निबाह करना। [६२] गह=टेक।

इनके रँगनि समै हूँ रचै। बड़भागिन सब कोऊ लचै ॥६४॥
रसिकराय चूड़ामनि सबके। साँवल गौर ढुरि मिले ढब के ॥६५॥
प्रेमसरोवर - ढिग सकेत। बट-बढ़वारि दुहुँन के हेत ॥६६॥
बरसाने तेँ लाड - गहेली। ग्वैंड़ैं निकसति सहित सहेली ॥६७॥
सहज बनक ब्रजमोहन - भाग। उमगत रोम रोम अनुराग ॥६८॥
खेलत खेलत रुचि के खेलनि। निरखि सिहाति तरु-लता-मेलनि ॥६९॥
पुहुप - पुज बीनत रँगभीनी। माला रचति गास गहि झीनी ॥७०॥
सुहृद सखी सिंगारनि सजै। अधिक प्रान तेँ राधैं भजै ॥७१॥
राधा को हित रहति बिचारै। रीझि अपुनपौ वारि निहारै ॥७२॥
नंदीसुर के कान्ह अवगरै। बरहैं रहत ग्वार गुन-अगरै ॥७३॥
बिहवल सरहि सरकि नियरात। जित मिलि रही मिलन की घात ॥७४॥
निपट गहन गहबरु तरु-छाँही। पर्नसालिका जहाँ तहाँ ही ॥७५॥
सहज भाव की भेंट अचानक। बिधना सदा बनावत बानक ॥७६॥
हिलनि मिलनि बिहवलता की गति। देखैं बनै अलौकिक अति रति ॥७७॥
ये रसनायक लायक धुर के। पढ़े पढाए पूरन गुर के ॥७८॥
जानत मनै सनेह - निकाई। सबतेँ न्यारी प्रेम - सगाई ॥७९॥
सबै बात मनभाई पाई। जु कछु रची रचना बनि-आई ॥८०॥
ब्रजबन ये ही कौतुक देखौ। राधा - मोहन - प्रेम बिसेखौ ॥८१॥
खग मृग द्रुम बेली जित तित ही। या रस बीच पगि रहे नित ही ॥८२॥
सब ब्रज रँग्यौ अपूरब हित ही। सुन्यौ न कित ही देख्यौ इत ही ॥८३॥
दान केलिरस रास - बिलास। सुखद सनातन ब्रजबन-बास ॥८४॥
लीला ललित रसामृत सरसै। गौर स्याम आनँदघन बरसै ॥८५॥
मुरली-गरज ब्यापि अति रही। चित हित-काँप परति नहिं कही ॥८६॥
गाँव गाँव ब्रज प्रेम घमड। परिपूरन रस अमल अखंड ॥८७॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार। छके रहत लीला - रस-सार ॥८८॥

[६४] लचै=दबता है। [७०] झीनी=पतली। [७३] अवगरै=सूझबूझ-वाले या अचगरै=नटखट। [७५] पर्नसालिका=कुटिया, पत्तों से बना घर। [७६] बानक=संयोग। [७८] धुर के=चोटी के, चरम कोटि के।

नवरँग नवल नवेली सैल। नव राधा नट गिरधर गैल ।।८९।।
सबके हिय जिय इनको हित है। इनके हित सबको सुख नित है ।।९०।।
यह समाज देखे हीँ जीजै। अद्भुत चरित अमीरस पीजै ।।९१।।
ब्रजबन उपबन रस - आगार। भीजौ आनँदघन - आसार ।।९२।।
दृगनि देखि मन प्रेम कलोलै। सुख - समाज आगे ही डोलै ।।९३।।
जित जैयै तित प्रेममई है। प्रीति पुरातन रीति नई है ।।९४।।
या रस को सवाद जौ आवै। रसना फिर न और कछु गावै ।।९५।।
जुगल कुँवर कौँ लडकि लडावै। परम प्रेमरस - पारस पावै ।।९६।।
ब्रजबन सहज माधुरी हेरै। मन फिर गएँ बहुरि को फेरै ।।९७।।
श्रीगुरबर - प्रसाद के लेस। हियँ बढै आबेस असेस ।।९८।।
रमन-भूमि-रज - अंजन परसै। तब लीला - सुरूप कौँ दरसै ।।९९।।
दिस दिस तन मैँ चकित निहारै। ब्रजसपति दंपति उर धारै ।।१००।।
ब्रजरस परस प्रसादहि पाय। रहै महा आनँदघन छाय ।।१०१।।
अंतर बाहिर ब्रजरस भरै। माद - बिनोद - सिधु बिस्तरै ।।१०२।।
भावतरगनि करि बढवारि। बेसम्हार ह्वै रहे सम्हारि ।।१०३।।
गौर स्याम छबि प्रगट निहारै। ब्रजजन मति गति रति उर धारै ।।१०४।।
बिसरै सुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आव्रत मन घिरै ।।१०५।।
बिन रजपरस सरसता कित है। रज मिलि रहै पाइ पति इत है ।।१०६।।
हिय मैँ बास करौ ब्रजभूमि। तनहूँ रहौ तहाँ हीं भूमि ।।१०७।।
यह ब्रजरज ही मेरो धन है। आँखिन ब्रजरज ही सौँपन है ।।१०८।।
डीठि जोति या रज सौँ लहै। चाह्यौ करै सदा सुख यहै ।।१०९।।
यह रज चाहि माहि जो सूझै। मेरोई मन सो सुख बूझै ।।११०।।
मोहन-चरन - धरनि दिखरावै। यातैँ मोकूँ यह रज भावै ।।१११।।
मोहन-दरस हियो अभिलाखै। रज कौँ परस दृग निरज राखै ।।११२।।

८९-नट-नव (वही)। ९०-सबको-सबके (वृंदा०)। ९१-ही-है।
९३-कलोलै-किलोलै। १०५-आव्रत-आवृत (वृंदा०)।

[९२] आसार=वृष्टि। [९६] लड़कि=ललककर। [१०५] निधि=समुद्र।
आव्रत=आवर्त, भँवर।

या रज की हौं बलि बलि जाऊँ। या रज ही रज ह्वै रलि जाऊँ ॥११३॥
लै या रजहि कहा धौं करौं। प्रानन के सपुट लै धरौं ॥११४॥
यह रज जैसी लागति प्यारी। ब्रजजीवनि जानत जिय-ज्यारी॥११५॥
अब तौ ब्रजरज लै सिर धरिहौं। रज की सरन चरन अनुसरिहौं॥११६॥
जब गुपाल आवत गोचारैं। गोपी याही रजहि निहारैं ॥११७॥
या रज मैं या ब्रज को चद। उदै होत आनंद अमंद ॥११८॥
या रज रजित स्याम उज्यारे। नीके लगत दृगन के तारे ॥११९॥
रज - रगमगे जगमगे मोहन। बिहसत गोपबधुन के गोहन ॥१२०॥
यह रज देखि जियत ब्रजबाला। पहले रज पाछे नँदलाला। १२१॥
या रज सौं अब आन बनी है। मति गति रति या रज हिसनी है॥१२२॥
यह ब्रजरज ब्रजमोहन-मुख सौं। जसु पौंछति ओचरु लै सुख सौं॥१२३॥
या रज की पदवी अति दूरि। यह रज रसिकनि जीवनिमूरि ॥१२४॥
यह ब्रजरज ब्रह्मादिक जाचत। या रज सौं बड़भागी राचत ॥१२५॥
या रज मैं रसपुंज समोयौ। या रज मैं परमारथ मोयौ ॥१२६॥
यह ब्रजरज तब आछी लागै। जब समझै ब्रज के अनुरागै ॥१२७॥
यह रज परसि जगै अनुराग। यह रज दरसि जगै बड़भाग ॥१२८॥
यह ब्रजरज प्राननि रस पोषै। यह रज लागि छुड़ावत दोषै ॥१२९॥
यह ब्रजरज भजन को मंजन। यह रज परमांजन को अंजन ॥१३०॥
बस्तु-बूझ बिन सूझ न रज की। यह रज सिरभूषन सिव अज की ॥१३१॥
या ब्रजरज की महिमा बाँकी। रज सींची गोपीजन - पाँ की ॥१३२॥
या रज रँगे चरन - अभिसार। दृगनि लगावत रसिक उदार ॥१३३॥
यह रज पीत बसन सौं पौंछत। सीस छुवाय फिर उरसि अँगोछत॥१३४॥
ब्रजरज कथा कहाँ लौं कहियै। या रज की उपमा कौं यहियै ॥१३५॥

११५–ज्यारी–आरी (वृंदा०)। १२०–गोहन–जोहन (वृंदा०)। १२५–बड़भागी–दइभीगी (लदन)। १३२–रज–रस (लंदन)।

[११२] निरज=रजोहीन, निर्मल, रजोगुण से रहित। [११३] रलि०=मिल जाऊँ। [११५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१२०] रगमगे=रंजित, युक्त। गोहन=साथ। [१२३] जसु=यशोदा। [१३२] पाँ=पैर। [१३४] उरसि=उर में।

आसबास या रज मैं राखौं । या रज तैं रज ही अभिलाषौं ॥१३६॥
रज ही सेऊँ रजहि अराधौं । ब्रजरज ही नित साधन साधौं ॥१३७॥
सिद्ध भएं रज मिलौं मिलै जौ । सुख परसौं ब्रजरजधानी कौ ॥१३८॥
ब्रजरज कृस्नकृपा करि पूरन । ब्रजरज बिरहबिथा हित-चूरन ॥१३९॥
ब्रजरज परसि मिटै भ्रम ब्याधि । ब्रजरज हरै हिये की आधि ॥१४०॥
को समझै ब्रजरज - अधिकारै । सीस वहै जो रज यह धारै ॥१४१॥
ब्रजरज निज सुरूप दरसावै । तौ रज की गति कछु कहि आवै ॥१४२॥
रज दरसै तौ सब कछु दरसै । रज परसे बिन प्रेम न परसै ॥१४३॥
ब्रजरज को आसरो लीजियै । लोकलाज सिर धूरि दीजियै ॥१४४॥
रजपन बंधि जगफद छूटियै । रजहि पाय रसरासि लूटियै ॥१४५॥
यह ब्रजरज दुर्लभ है महा । या रज कौं पाएँ ही लहा ॥१४६॥
रज ह्वै रहै मिलै तब रज सो । निरखै निज समाज सुख सज सो ॥१४७॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज एक । रज ही सौं साँची पन - टेक ॥१४८॥
ब्रजरज जीवन ब्रजरज आन । ब्रजरज ही सोभा सनमान ॥१४९॥
ब्रजरज बिन जाँचौं नहिं आन । ब्रजमोहन ! ब्रजरज दै दान ॥१५०॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज दरसै । ब्रजरज बिन चित और न परसै ॥१५१॥
ब्रजरज परसन कौं मन तरसै । ब्रजरज-रस-प्रसाद ज्यौं सरसै ॥१५२॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज भजियै । ब्रजरज सैंति सबै कछु तजियै ॥१५३॥
ब्रजरज अगम अगोचर अति है । देखत भूली सी रज - रति है ॥१५४॥
ब्रजरज राजस मन मैं आएँ । ब्रजरस - परस सवादहि पाएँ ॥१५५॥
एक परमपद होत जहाँ लौं । फीके परत मिठास तहाँ लौं ॥१५६॥
ब्रजरज हो मेरी उपासना । ब्रजरज बसौं सदा सुबासना ॥१५७॥
ब्रजरज बिन कछु और आस ना । रज-सेवन स्रुतिसार सासना ॥१५८॥

१४६-इसके बाद लंदन की प्रति में ये पंक्तियाँ हैं—यह ब्रजरज यह ब्रजरस अहा । या ब्रजरज की कहियै कहा ।

[१३६] आस०=आशा का निवास । [१४०] आधि=मानसिक क्लेश । [१४६] लहा=लाभ । [१४७] सज=सजावट । [१५२] ज्यौं=जी । [१५३] सैंति=संचित करके । [१५८] सासना=आदेश

ब्रजरज - महिमा रसना बकौं। जदपि बरनि कछुवै नहिँ सकौं ॥१५९॥
तदपि रेनु-मादक गुन छकै। बकि बकि जकि जकि तनक न थकै ॥१६०॥
ब्रजरज कौँ अभिलाष बढ़्यौ है। रसना ब्रजरज-सुजस पढ्यौ है ॥१६१॥
ब्रजरज मैं रसपुंज धर्यो है। श्रीहरि हू को हियो हर्यौ है ॥१६२॥
यह ब्रजभूमि सदा रँगभोई। महा अपूरब रसनि समोई ॥१६३॥
या ब्रजरज मैं निधि लै गोई। या अंजन बिन लखै न कोई ॥१६४॥
श्रीललिता तप साधति याकौं। ललचि ललचि आराधति याकौं ॥१६५॥
नंदसून - पद - लालन - लोभै। रमा रसिकिनी पावति छोभै ॥१६६॥
यह रज यह रस याही सोहै। या रज की उपमा कौं को है ॥१६७॥
यह रज गंधवती सब ऊपर। क्रीड़त रसिकराय या भूपर ॥१६८॥
या ब्रजलीला बिधि हू मोह्यौ। कछु अद्भुत प्रभाव जब जोह्यौ ॥१६९॥
हरि-सुरूपमय सब ब्रज देख्यौ। रज उतकरष बिचारि बिसेख्यौ ॥१७०॥
श्रीरसना-अंकित लखि भूमि। रह्यौ माधुरी महिमा घूमि ॥१७१॥
जाचत नंदलाल पद छ्वै कै। या रज कौं इत कौं कछु ह्वै कै ॥१७२॥
पै रज अज कौं मिलै अजौं न। और कहौ धौं पावै कौन ॥१७३॥
श्रीगोपीपद - कमल - पराग। यह रज रसिकजननि को भाग ॥१७४॥
दुर्लभ या रज को अधिकार। जानत एकै नदकुमार ॥१७५॥
गोपी-पद - प्रसाद रज लहियै। निगमागम मैं प्रगट सु कहियै ॥१७६॥
या रज को साधन इह एकै। मिलै न किये उपाय अनेकै ॥१७७॥
अति रति बिना न परसै धूरि। यह ब्रजरज सबकौं अति दूरि ॥१७८॥
प्रबल प्रेम गति ब्रजजन लही। सो रति पूरि रही ब्रजमही ॥१७९॥
इनकी अनुग भावना गहै। काहू बिधि इनको ह्वै रहै ॥१८०॥
सहज होय या रज-पहिचानि। परै सहज ब्रजजन की बानि ॥१८१॥
या रज बिना न भावै आन। जगै हियँ ब्रजरज-अभिमान ॥१८२॥

१६५—श्रीललिता—श्रीललना (लंदन)। १६८—रज-ब्रज। १७७—एकै—एक (वही)। १७८—रति—रज (वृ दा०) यह—या (लदन)। १८०—काहू—काऊ (वृ दा०)।

[१४६] निधि=खजाना। गोई=छिपाई हुई। [१६६] सून=पुत्र। छोभै=उद्वेग। [१७१] श्रीरसना=राधिका की करधनी।

सहज करै रज अंगीकार। यह रज तब पावै निरधार ॥१८३॥
या रज सौँ नातो जिय जोरै। और सबन सौँ सब बिधि तोरै ॥१८४॥
या रज को प्रसाद जब पावै। तब सब कछू सहज नहिं भावै ॥१८५॥
ब्रजमोहन को यह ब्रज धाम। निपटै दुरथौ परम अभिराम ॥१८६॥
श्रीब्रजराज - बास जौ बसै। ब्रजजन-भाव-लोभ मन गसै ॥१८७॥
तौ या सुख-सवाद कौँ पावै। निधरक ललना - लाल लडावै ॥१८८॥
आनँदघन - रस भीज्यौ रहै। ब्रजबन-लीला-निधि अवगहै ॥१८९॥
छिनछिन भावतरंग बिसेषै। देखि देखि छबि थकै निमेषै ॥१९०॥
महामधुर रसपान छकै मन। बिबस दसा अति रोमांचित तन ॥१९१॥
घूमि झूमि बन - बीथिनि डोलै। मौन धरैँ मन ही मन बोलै ॥१९२॥
औरै दसा दिपै रँगभीनो। नेह-गाँस कसकै अति झीनो ॥१९३॥
होय सिथिल गति सबै ओर तैँ। न्यौरि सकै नहिँ साँझ भोर तैँ ॥१९४॥
मुरली-धुनि स्रवननि मैँ रमै। चकित थकित मति की गति गमै ॥१९५॥
बिबस दसा-गति कही न परई। दरस-प्यास नैननि जल भरई ॥१९६॥
चटक चौँप चेटक चित चढई। नाम रूप गुन अनुछिनु बढई ॥१९७॥
हा राधा हा कृस्न पुकारै। बेसम्हार ह्वै तिन्हैँ सम्हारै ॥१९८॥
ब्रजबन ठौर ठौर लखि माहैं। तरु-बेलिनि हरि-राधा जोहैं ॥१९९॥
दंपति - रस - संपति हिय भरै। पूरन पन की टेक न टरै ॥२००॥
फुरै सदा ब्रजमोहन केलि। उझिलै हियो महारस झेलि ॥२०१॥
बिहरै बिबस सदा ब्रजबन मैँ। दरस-परस-रस-आरति मन मैँ ॥२०२॥
जीवन एक जुगल - रस जाकैँ। मन मैँ और ठौर नहिँ ताकैँ ॥२०३॥
जमुना-तीर बैठि मुख धोवै। हँसि हँसि परै बिकल चित रोवै ॥२०४॥
उनमद भयौ फिरै मदमातो। कबहुँ न होय लगन तैँ हातो ॥२०५॥
बैठैँ चलैँ एक जक जागै। मति गति सुरति भावरस पागै ॥२०६॥

१८५–जब–तब (वही)। २०५–हातो–आतो (वही)।

[१८८] ललना०=राधा-कृष्ण। [१८९] निधि=समुद्र। अवगहै=थहाए। [१९२] गाँस=किसी हथियार की नोक। झीनी=पतली, महीन, सूक्ष्म। [२०२] आरति=लालसा। [२०५] हातो=दूर। [२०६] जक=धुन।

कब ह्वैहै ऐसी गति हाहा। जीवन-जनम-सफलता-लाहा ॥२०७॥
या रस बिन छिन रह्यौ न परिहै। नैननि नीर एकरस ढरिहै ॥२०८॥
बूझैँ मुख बोलौ न आइहै। रोम रोम अभिलाष छाइहै ॥२०९॥
निसिदिन याही बिधि बिताइहौँ। चित नितलीला-रस हिताइहौँ ॥२१०॥
गुननि गाय आँखिन जल ढरिहै। तन ब्रजभूमि घूमि गिरि परिहै ॥२११॥
ब्रजरज लोटि बिकल ह्वै जैहौँ। बड़ी बेर तन की सुधि पैहौँ ॥२१२॥
रजहि पाय मिलि रजहि रहौँ जब। सो सवाद सुख कहै कौन तब ॥२१३॥
श्रीगुरु-पद - प्रसाद रज पाई। रज-महिमा रज-परसैँ गाई ॥२१४॥
रोम रोम रमि रही रजै है। प्राननि पैठि रह्यौ जु ब्रजै है ॥२१५॥
ब्रजरज-टेक टरति क्यौँ मन तैँ। प्रान पकि रहे पूरन पन तैँ ॥२१६॥
निबहै टेक एक रज - बल तैँ। दृग आगैँ ब्रज बैठैँ चलतैँ ॥२१७॥
सोवत जागत ब्रज ही देखौँ। ब्रजमोहन - लीला अवरेखौँ ॥२१८॥
ब्रज ही लागि परयौ मनमोहन। बिसरत नाहिँ रसिक ब्रजमोहन ॥२१९॥
राधा के मन मैँ मन रहै। ब्रजमोहन यौँ गोहन गहै ॥२२०॥

२०७–कप०–कबहुँ इहै (वृदा०)।

[२०८] ढरिहै=टपकेगा। [२१०] हिताइहौँ=रुचि उत्पन्न करूँगा। [२१८] अवरेखौँ=विचार करूँ।

कृष्णकौमुदी

दोहा

स्याम - रूप आनंदघन, अभिनव मधुर किसोर ।
परम रसिक गोपी-रमन, राधा - बदन - चकोर ॥ १ ॥
मुरली - नाद - बिनोद - रत, सुघरराय रसलीन ।
मोहन महा कहा कहौं, अनुछिनु निपट नवीन ॥ २ ॥
गोपराज - कुल को कलस, पूरन परम रसाल ।
ब्रजलोचन - रोचन रुचिर, गोपबेष गोपाल ॥ ३ ॥
मोरचंद्रिका सिर धरैं, गरैं गुंज की माल ।
धातु - चित्र कटि पीतपट, मोहन - मदन गुपाल ॥ ४ ॥
प्रेम-अवधि लीला - मगन, नटवर नित नवरंग ।
केलिकला - पूरन - कुसल, अद्भुत अतुल अनंग ॥ ५ ॥
दिन दूलह लोनो ललित, सब गुन रूपनिधान ।
सुहृद सुमिल नागर नवल, अनुपम सुखद सुजान ॥ ६ ॥
ब्रजनायक ब्रज - प्रेमनिधि, ब्रजभूषन ब्रजप्रान ।
ब्रजमंडन ब्रजहितकरन, गिरिधर ब्रजबलवान ॥ ७ ॥
ब्रजमंगल ब्रजकौतुक, ब्रजबासी ब्रजचंद ।
ब्रजबिनोद ब्रजराजसुत, ब्रजजन - आनँदकंद ॥ ८ ॥
अति कमनीय किसोर बपु, गोपीनाथ उदार ।
कमलनैन क्रीडानिपुन, कान्हर गोपकुमार ॥ ९ ॥
कुंजबिहारी कृस्न कबि, कोबिद कृपानिकेत ।
मधुर मनोहर मेघदुति, महामुदित सुखहेत ॥ १० ॥
कामकेलि क्रीडा कुसल, कलानाथ रसवंत ।
गोबरधनवासी सदा, गोप - कामिनी - कंत ॥ ११ ॥

[२] सुघर=चतुर । [३] रोचन=रुचनेवाले । [४] धातु०=मिट्टी से अंगों पर छापा लगाए । [१०] हेत=हेतु, कारण ।

चतुरसिरोमनि अति चपल. परम धीर गंभीर ।
सदासुखी सोभासदन, कोमल अमल सरीर ॥ १२ ॥

जगत - उजागर साँवरो, अचरज-लीला-खानि ।
दान - केलि - कोलाहली, रसलोभी रसदानि ॥ १३ ॥

महालील मायी महा, महापुरुष मतिमान ।
महारसिक महिमा महा, मानी परम प्रधान ॥ १४ ॥

बृंदावनबासी सदा, अभिरुचि - धीरसमीर ।
कुंजरमन कंदर्पजित, बिहरत जमुनातीर ॥ १५ ॥

गोचारी गोरज - धरन, ब्रजजन - उत्सव - रूप ।
गोपीबल्लभ गोपधन. गोपकिसोर अनूप ॥ १६ ॥

रासबिलासी रसिकबर, चितामनि चैतन्य ।
चटुल चतुर चुंबक चपल, उद्धत अद्भुत धन्य ॥ १७ ॥

मानसरोवर - बास - बस, केलिकला - कलहंस ।
बट - भंडीर - निवास नित, राधारसिक प्रसंस ॥ १८ ॥

राधारंगी रस - अवधि, सरल त्रिभंगी स्याम ।
रतिबर्धन रतिपति - जयी, रामानुज अभिराम ॥ १९ ॥

राधाजीवन विपुल धन, राधा - सखा - सुरूप ।
राधा - रसलंपट सदा, राधारसिक अनूप ॥ २० ॥

राधा जीवन स्याम कें, राधा - जीवन स्याम ।
गौर स्याम एकत सदा, बसत बिदित ब्रजधाम ॥ २१ ॥

राधा - जागर - जग्य-रत, पूरन परम सनेह ।
कुंजकुटीर कदबं - तर, कृतीमान कृतगेह ॥ २२ ॥

२२-कृती०—कृतमानी (लदन) ।

[१४] महालील=महान् लीला करनेवाले । मायी=मायावी । [१५] धीर०=एक कुंज । [१८] भडीर=भांडीर वन, बरगद का वन । [१९] रति०=कामदेव के जेता । रामानुज=बलराम के छोटे भाई । [२२] जागर=जागरण ।

सदा गोपसीमतनो, सेवित नायकराज ।
खरिक खोरि गिरबर गहन, अमित अभंग समाज ॥ २३ ॥
नित नवीन सिंगाररुचि, रसिक छैल ब्रजचंद ।
सनमुख ही सोभित सदा लहियत लाभ अमंद ॥ २४ ॥
आनँदघन उनयौ रहै ब्रजजन - जीवनमूल ।
दच्छिन सुभ लच्छिन भर्यौ, सबकौं हित-अनुकूल ॥ २५ ॥
कुस्नचंद आनंदघन, अद्भुत अमल अमंद ।
जसुदा - प्राचीदिस - उदै, भाग अपूरब नंद ॥ २६ ॥
अति सुगंध अभिराम तन, पहिरैं नव बनमाल ।
ब्रजमोहन गोहन लगे, मन - दृग मधुकर - जाल ॥ २७ ॥
अति चटकीलो लटक सौं, मुकट छबीलो माथ ।
आनँदघन मुख - माधुरी, रस बरसै इक साथ ॥ २८ ॥
भाल-भाग बड़भाग-निधि, रुचिर सु कुंकम खौरि ।
दृगबिलास मृदु हास लखि, डग पहार-ढिग पौरि ॥ २९ ॥
भाल भौंह दृग नासिका, मृदुल कपोल सुठौन ।
साँवल छबि मधुमै अधर, देखि रहि सकै कौन ॥ ३० ॥
स्याम सरूप अनूप अति, सकै कौन अवगाहि ।
चाहि ब्रजबधू चकि रहैं, राधा - भाग सराहि ॥ ३१ ॥
लहलहानि - जोबन उदै, ब्रजमोहन अँगअंग ।
महा रूपसागर उमगि, उठति अमोघ तरंग ॥ ३२ ॥
मनिकुंडल अति भा-खुलनि, डुलनि सुललित कपोल ।
रूप - गहर - लहरानि मैं, मनमथ - मीन कलोल ॥ ३३ ॥
मुरली फबि अधरानि मैं, अति मादक धुनि पूरि ।
तान - बान संधानहीं, धरम मरम भे चूरि ॥ ३४ ॥

३४—मरम—परम (वृदा०) ।

[२३] सीमतनी=स्त्री । [३१] अवगाहना=थहाना । [३३] भा=चमक ।

छुटत छबीली चद्रिका, हँसनि लसनि बहु भाँति ।
कौंध चौंध अँखियनि भरै, दसन रँगीली पाँति ॥ ३५ ॥

सहज चीकनी घूँघरी, छलनि छलति गुर ग्यान ।
अजौं करति उरझनि मनौ, लगी कनौंती कान ॥ ३६ ॥

स्रवन - सुभगता हेरि कै, टरत न लोभी नैन ।
कहत लगी सुखदैन सौं, बिन बानी हित - बैन ॥ ३७ ॥

रुचिर चिबुक लोनी ललित, मृदुल मनोहर गोल ।
क्यौं निकसत मन गाड परि, उकतिन कसत अडोल ॥ ३८ ॥

स्याम - रूप अजन सरस, राधा नैन - सिँगार ।
बदन-कमल-मधुपान-अलि, उरमंडन-हिति हार ॥ ३९ ॥

रसिक पपीहापन गहैं, राधा आनँदकंद ।
चाँपत चौंप चकोर कौ, बदन देखि ब्रजचद ॥ ४० ॥

ब्रज - बनिता आनंदघन, मुरली - गरज रसाल ।
रस-ताननि झर लायकै, रीझनि करत निहाल ॥ ४१ ॥

अति सुकठ कौस्तुभ धरैं, गरैं सीपसुत - दाम ।
स्वच्छ बच्छ - सोभा लखैं, बिबस होत ब्रजबाम ॥ ४२ ॥

सुढर अंस पीवर रुचिर, परम ललित भुज-बेलि ।
अंगद रसरंगद धरैं, बलित कलित रसकेलि ॥ ४३ ॥

पानि प्रेमपल्लव रुचिर, कर तरु अरुन रसाल ।
सरस परस - सुख लेति हैं, भागभरी ब्रजबाल ॥ ४४ ॥

३५–हेमनि–दसनि (लंदन)। ३६–मनौ०–मतौ लागि (लदन)। ३८–उकति–उकसि (लदन)। ३९–मंडन०–मडन हिनिहार (वृंदा०)। ४२–धरैं–परें। बाम–धाम (लदन)। ४३–कलित–फलित (वृंदा०)। ४४–बाल–भाल (वृंदा०)।

[३६] कनौंती=बाली। [३८] गाड़=गड्ढा। उकति=उक्ति, वाणी। [४२] सीप०=मोती की माला। [४३] अंस=कंधा। पीवर=पुष्ट। अंगद=बाहु पर का एक गहना, बिजायट।

उदर-मधुरिमा क्यौं कहौं, दृगनि बिलोकनि भूष ।
नाभि रोमराजी रुचिर, पूरित प्रेमपियूष ॥ ४५ ॥
कटिप्रदेस बरनौं कहा, कहिबे कौं कछु नाँहि ।
रतिबिलास बरसै सदा, मन भिजवै रस माँहि ॥ ४६ ॥
रूप-सलोने स्याम को, क्यौं करि सकौं बखान ।
महा मधुर रसस्वाद-सुख, नहिं समात अनुमान ॥ ४७ ॥

चौपाई

जानु जंघ रसढरे सुभायनि । चायनि दृग न्यौछावर पायनि ॥४८॥
चरन-माधुरी अति रससार । राधा के मन को ब्यौहार ॥४९॥
इनके उनके मन की बात । ये जानैं ज्यौं इन्हैं बिहात ॥५०॥
सबनि जिवावत हिलि मिलि जीवत । ब्रजबन बसि लीलारस पीवत ॥५१॥
गाहत गहन गैल अधरात । कछु बसि रहत चलत उठि प्रात ॥५२॥
लोकलाज ब्रजरीति निबाहत । मन मतवारे बन बन गाहत ॥५३॥
परम प्रेम - परिपूरन दंपति । राधा - मोहन रसना - सपति ॥५४॥
ब्रज इकरंग स्याम-रँग रच्यौ । सब नचाय या आगैं नच्यौ ॥५५॥
रसिया रसिकराय रसस्वामी । रसिकसिरोमनि नायक नामी ॥५६॥

दोहा

नटवर स्यामकिसोर तन, चरचित नव पाटीर ।
महा मनोहर मधुरिमा, गुनगरिमा गभीर ॥ ५७ ॥
सदा ललित लीला-मगन, गिरधर गोपीनाथ ।
बृंदाबन आनंदघन, प्रिय समाज लै साथ ॥ ५८ ॥
बेनुनाद - सुखस्वादमय, अद्भुत परमानंद ।
पूरन प्रेम कुतूहली, कृस्नचंद रसकंद ॥ ५९ ॥
सरस गीत कल-पद-भरी, मुरली अधर रसाल ।
गोपबधू - मन - बसकरन, मधुर त्रिभंगी लाल ॥ ६० ॥

६०—पद्-मद (बृंदा०) ।

[४५] भूष=भूषित करती है । राजी=पंक्ति । [५७] पाटीर=चंदन ।

मोहन मादक रूप लखि, छके रहत ब्रज लोग ।
अपने अपने भाव सौं, चहत भावतो भोग ॥ ६१ ॥
जमुना-तीर बिसद पुलिन, बिहरत नित नव रंग ।
निरखत नख-ससि-कौमुदी, मोहित अमित अनंग ॥ ६२ ॥
रमनीरमन महारसिक, मदमाते दृग लोल ।
रसलपट लावन्यनिधि, अतुलित अतन कलोल ॥ ६३ ॥
अचरजमूरति अमितदुति, चकचौंधी लखि होति ।
ब्रजबन ब्यापि रही सदा, बदन-अपूरब-ज्योति ॥ ६४ ॥
पगु होति मन - नैन-गति, देखति सहज सिंगार ।
ब्रजजन-प्रान-अधार नित, सुख - सुंदरता - सार ॥ ६५ ॥
नई चौंप नित हो रहै, सरस चाह रसरीति ।
निपट चटपटी सौं भरी, ब्रजमंडल की प्रीति ॥ ६६ ॥
स्याम - रूप आनदघन, बरसत सुरस अमोघ ।
पीवत जीवत एकरस, ब्रजजन चातक-ओघ ॥ ६७ ॥
सघन कलपतरबर-तरैं, सोभित स्याम त्रिभंग ।
उर उदार बनदाम लखि, उरझत लोचन - भृंग ॥ ६८ ॥
सजल स्याम अभिराम अति, आनँदघन रस-ऐन ।
भिजवत रिझवत हँसि चितै, गोपीजन-मन-नैन ॥ ६९ ॥
निसदिन देखत हूँ बढ़ै, सबके हिय अभिलाष ।
मोहन मधुर किसोर पै, मदन वारियै लाख ॥ ७० ॥
नहिं अघात अचवत अमी, ब्रजजन जीवन-रूप ।
गोपी-नैन - चकोर की, पूरन प्यास अनूप ॥ ७१ ॥
बढ्यौ रहत ब्रजनाथ सौं, ब्रजबासिनि को भाव ।
मोहन हिय हू चौगुनो, मिलि खेलन को चाव ॥ ७२ ॥

६१—लहत—लहैं (वही) । ७०—बढ़ै—चढ़ै (लदन) ।

[६३] अतन=काम । [६७] ओघ=समूह । [६८] बनदाम=बनमाला ।

सुख-समाज चुहलैं रहैं, ब्रजबन गिरि चहुँ ओर ।
नव किसोर आनंदघन, ब्रजजन माते मोर ॥ ७३ ॥
मधुर केलि - कादंबरी - छके साँवरे छैल ।
सर - सरिता-पनघटनि मैं, घूमत घेरत गैल ॥ ७४ ॥
अटक भटक चोखनि करत, अरत ढरत तक लाय ।
नवल सनेही साँवरो, हिय हरि लेत सुभाय ॥ ७५ ॥
आनँदघन घमड्यौ रहत, ब्रजबन गैल मँझार ।
सबको जीवन साँवरो, रसनिधि नंदकुमार ॥ ७६ ॥
दिन - दूलह ब्रजचंद के चरन सुमंगल - मूल ।
जमुनातट बृंदाबिपिन, बिहरत रुचि - अनुकूल ॥ ७७ ॥
नखचंद्रावलि - चंद्रिका, दृग - चकोर - सुखदैन ।
चरन-कमल अद्भुत अमल, प्रफुलित आनँद-ऐन ॥ ७८ ॥
कुंज - धरनि - मंडन मृदुल मंजुल चिह्न-समेत ।
रसिकसिरोमनि-पद-कमल, बिरह-ताप हरि लेत ॥ ७९ ॥
चरन चारु ब्रजचंद के, बृंदाबिपिन - बिहार ।
बंदन करि जासौं सदा गोपीपद - रज - सार ॥ ८० ॥
एक प्रान मन एक ही, एक बैस इक सार
रसचूडामनि गाइयै, राधा - नंदकुमार ॥ ८१ ॥
ब्रज - बृंदाबन - रस सदा, रसना करौ बखान ।
गोपी अरु गोपाल को, लीला - आसव पान ॥ ८२ ॥
ब्रजनटबर गोपाल - गुन, गनत गनत न अघाति ।
अति सुछंद रसना-नटी, सुख बिलसति दिनराति ॥ ८३ ॥
कृस्नकौमुदी नाम यह, मोहन मधुर प्रबंध ।
सरस भाव - कुंदावली प्रफुलित परम सुगंध ॥ ८४ ॥

---

[७४] कादंबरी=शराब ।

धामचमत्कार

चौपाई

ब्रजबन पूरि रह्यौ सुख सदा। कृस्न-ललित-लीला-संपदा ॥१॥
ब्रजबन को समीप है ऐसैं। बनवारी बिहरन हित जैसैं ॥२॥
रमन-भूमि को रूप अनूप। राजत रसिकमुकटमनि भूप ॥३॥
लीला-कलित स्याम गंभीर। मधुर किसोर महारस-धीर ॥४॥
अमित ओज मधुरिम-भर बढै। ब्रजबन बिहरत चौंगनि चढै ॥५॥
अति अगाध रससागर ब्रजबन। नित बरसत प्यासनि आनँदघन ॥६॥
अचरजमय ब्रजबन की ठौरैं। बुधि बिचार हेरत ही बौरैं ॥७॥
ब्रजबन देखन के दृग औरैं। रचना रुचिर ठौर ही ठौरैं ॥८॥
परमानंद-रूप ब्रजबन है। जहाँ प्रबेस करत नहिं मन है ॥९॥
परम तत्व को सार समोय। ब्रजबन-रज लै राख्यौ मोय ॥१०॥
ब्रजबन थिर चर को आभास। निरवधि-रसनिरजास-बिलास ॥११॥
सिव बिरंचि सनकादिक सेस। जाचत ब्रजबन-रज को लेस ॥१२॥
महिमा अमित बिचारत चकैं। समझि सुमिरि मन ही मैं छकैं ॥१३॥
हरि-परिकर ब्रजजन को भाग। समझि सराहत भरि अनुराग ॥१४॥
गोपवेस ब्रजराजकुमार। जिन सँग मिलि नित करत बिहार ॥१५॥
यह समाज ब्रजबन मैं लसै। नित्य किसोर-केलि रसमसै ॥१६॥
बस्तुग्यान बिन ध्यान न आवै। ब्रजस्वरूप को धौं लखि पावै ॥१७॥
सब तें अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस ॥१८॥
ब्रज सुदेस ब्रजराजा नंद। जसुदानंदन गोकुलचंद ॥१९॥
महामोद ब्रज सरस बिनोद। परिपूरन बिलास चहुँ कोद ॥२०॥
आनँद-उदय एक सो जहाँ। नित्यानंद बिराजत तहाँ ॥२१॥
धाम-माधुरी अतुल अभूत। जानत है संकर अवधूत ॥२२॥

२—बिहरन०—बिहरत नहिं (वृंदा०)। ७—बौरैं—औरैं (वही)।
१६—बन—जन (लदन)।

[५] भर=भराव। [११] निरजास=निचोड़। [१४] पीरकर=बिकट के लोग, पार्षद। [२०] कोद=ओर

गोपेसुर है निरखत सोई। कृपा करै तौ समझै कोई ॥२३॥
अगम पदारथ कैसें लहियै। ब्रजबन को सुरूप क्यौं कहियै ॥२४॥
लीला ललित सु क्यौं मन आवै। अधिकारिनहूँ अधिक घुमावै ॥२५॥
ब्रजबन बिहरत मदन गुपाल। सँग सोहत निज परिकर जाल ॥२६॥
ब्रजबन के प्रदेस बहुरंग। नित नित लीला ललित अभंग ॥२७॥
गाँव गाँव के नाँव अनेक। बरनत है बाराह जु एक ॥२८॥
यातें यह ठिक जान्यौ परै। अपनो बिभौ आप बिस्तरै ॥२९॥
ब्रज की मही मनोहर महा। याकी महिमा कहियै कहा ॥३०॥
सोभा को कछु ओर न पैये। अति अद्भुत जित ही जित जैये ॥३१॥
ब्रज को बनक न बरनत बनै। दरसि परै तौ जानत मनै ॥३२॥
अचिरज अति गति कहियै कैसें। निगम नेति कहि बरनत ऐसें ॥३३॥
तरवर सरबर गिरिबर नदी। सोभानिधि ब्रज की चौहदी ॥३४॥
देखत सहज स्याम दरसावै। ब्रज की सोभा ब्रज ही पावै ॥३५॥
सब रितु सुखद सुहायो लागत। ब्रज बसि ब्रजमोहन-हित पागत ॥३६॥
ब्रज बिहरत गिरधर कौतकी। निरखत फिरत लगाएँ टकी ॥३७॥
अपने ब्रज मैं ब्रज को नायक। बिलसै सुख सबकौं सुखदायक ॥३८॥
ब्रज मैं सुखसमूह नित रहै। ब्रजजीवन को जीवन यहै ॥३९॥
यह ब्रज क्यौं न बिराजै ऐसो। नितनायक ब्रजमोहन-जैसो ॥४०॥
ब्रजबन निज दरपन है कियौ। निरखत स्याम सिरावत हियौ ॥४१॥
कृस्नचद को यह ब्रज देखौ। मेरे नैन भाग अब लेखौ ॥४२॥
ब्रजबासी गोपाल गोपसुत। ब्रज सुधाम अद्भुत लीलाजुत ॥४३॥
ब्रजसुरूप कछु मन मैं आयो। सो हठ कै ब्रजनाथ कहायौ ॥४४॥
नातरु कहाँ कहै कोउ कहा। या ब्रज अचरज-बानक महा ॥४५॥
ब्रज को चेटक रूप अपारै। मेरी डीठि निहारि न हारै। ४६॥
या ब्रजबन के गैल-गरथारे। देखत लागत खरे पियारे ॥४७।

२३—तौ-जो (वृ दा०)। ३६—लागत-लागौ (लंदन)। ४६—न हारे-निहारै (लदन)।

[२५] घुमावै=चक्कर में डालती है। [२९] ठिक=निश्चय। [३७] टकी=टकटकी। [४७] खरे=अत्यत।

ब्रजमोहनहि दिखावत देखौ। ऐसे ब्रज सौं मेरो लेखौ ॥४८॥
धन्य धन्य या ब्रज के बासी। मंगलनिधि गोपाल-उपासी ॥४९॥
या ब्रज मैं नित मंगलचार। धन्य धन्य ब्रज को ब्यौहार ॥५०॥
कहा कहौं या ब्रज को चैन। देखत फूलत भूलत नैन ॥५१॥
ब्रजबिनोद गहमह नित रहै। देखत बनै कहा कोउ कहै ॥५२॥
ब्रज मैं प्रेमपुंज नित छायौ। यह सरूप ब्रज को दरसायौ ॥५३॥
ब्रजबल्लभ ब्रजमोहन स्याम। ब्रजजीवन अभिराम सुनाम ॥५४॥
ब्रज की संपति परति न बरनी। निरखत कान्हकुँवर-हिय-हरनी ॥५५॥
ब्रजनरेस ब्रजराज बिराजै। जस-निसान निसिबासर बाजै ॥५६॥
मोकौं यह ब्रज लागत प्यारो। दीसत दीसै स्याम उज्यारो ॥५७॥
दिपत स्यामदुति या ब्रज अहा। ब्रजदरसन ही लोचन-लहा ॥५८॥
या ब्रज की सब सौंज अनूप। पूरन सदा अपूरब रूप ॥५९॥
को समझै ब्रजरस को भेद। जानै पै न बखानै बेद ॥६०॥
हियैं रह्यौ धरि भरि ब्रजहेत। नेति नेति कहि कछु कहि देत ॥६१॥
ब्रज-छबि-छटा कहूँ जौ दरसौ। हियैं परम आनँदघन बरसै ॥६२॥
ब्रजचरित्र है अति ही चित्र। बरनत बानी परम पवित्र ॥६३॥
रसकदंब - चूडामनि स्याम। जिनको मोहन यह ब्रजधाम ॥६४॥
या ब्रज सौं यह ब्रज ही आहि। ब्रज की पटतर दीजै काहि ॥६५॥
ब्रजमंडन के यह ब्रज एक। बसत सदा गहि ब्रज की टेक ॥६६॥
सुभग सीवँ ब्रज चरन-कमल की। कहा कहौं गति सुजस अमल की ॥६७॥
ब्रज - बृंदाबन की बलि जैयै। ब्रज - बृंदाबन - लीला गैयै ॥६८॥
ब्रजदेबिन की कृपा मनैयै। यानी तैं यह ब्रजरज पैयै ॥६९॥
ब्रज-बृंदाबन सौं हित-पन है। नित ही बरसत आनँदघन है ॥७०॥

६६—गहि—ही (बृंदा०)।

[५२] गहमह=आनद की धूम। [५६] निसान=नगाड़ा। [५९] सौंज=सामग्री। [६३] चित्र=विचित्र। ६४] कदब=समूह। [६५] पटतर=उपमा।

प्रियाप्रसाद

चौपाई

राधा राधा राधा कहौं। कहि कहि राधा राधा लहौं॥ १ ॥
राधा जानौं राधा मानौं। मन राधा-रस ही मैं सानौं॥ २ ॥
राधा जीवन राधा प्रान। राधा ही राधा गुनगान॥ ३ ॥
राधा बृंदाबन की रानी। राधा ही मेरी ठकुरानी॥ ४ ॥
राधा ब्रजजीवन की ज्यारी। राधा प्राननाथ की प्यारी॥ ५ ॥
राधा राधा राधा एक। सर्बोपर राधा-हित-टेक॥ ६ ॥
राधा अतुल रूप-गुन-भरी। ब्रजबनिता-कदंब-मजरी॥ ७ ॥
राधा मदन गुपालहि भावै। मुरली मैं राधा-गुन गावै॥ ८ ॥
राधा-रस-प्रसाद की साधा। रसिकराय के राधा राधा॥ ९ ॥
या राधा कौं हौं आराधौं। राधा ही राधा रट साधौं॥१०॥
राधा बचन मौन हू राधा। राधा राधा राधा राधा॥११॥
सोएँ राधा जागें राधा। रातिद्यौस राधा ही राधा॥१२॥
राधा हेरौं राधा सुनौं। राधा समझौं राधा गुनौं॥१३॥
राधा मेरी स्वामिनि साँची। थिर चित ह्वै राधा-हित नाँची॥१४॥
राधा जु कछु कहै सो करौं। महल-टहल टकोर अनुसरौं॥१५॥
राध राधा गीत सुनाऊँ। राधा-आगे राग जमाऊँ॥१६॥
राधा कौं वहु भाँति रिझाऊँ। तीखी बातनि चोख हँसाऊँ॥१७॥
राधा की चटकीली चेरी। चित ही चढी रहति नित नेरी॥१८॥
राधा रुचिहि लियेई रहौं। बिहरत गृहबन गोहन गहौं॥१९॥
रूप-उज्यारी राधा देखौं। भागन को सुख कहा बिसेखौं॥२०॥
राधा सब ही भाँति लडाऊँ। राधा रीझैं राधा पाऊँ॥२१॥
राधा सौं कछु कहौं कहानी। परम रसीली अति मनमानी॥२२॥

१५—टकोर—को रस (वृ दा०)। १६—सुनाऊँ—न गाऊँ (वही)।

[५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१] टकोर=डके की चोट अथवा बुलाहट। [१७] चोख=अत्यत। [१८] नेरी=निकट।

बाँपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा के पाऊँ ॥२३॥
वरन इन्नाय जगाए जगौं। बहुरि औंघि नित पाँयनि लगौं ॥२४॥
ाधा धरयौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ ॥२५॥
ाधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं ॥२६॥
ाधा को सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दै हौं हूँ सुख पाऊँ ॥२७॥
ाधा-ढिग जब स्याम निहारौं। समय-उचित सुख-टहल बिचारौं ॥२८॥
ाधा-पिय पै बिजना ढोरौं। स्रमजल सुखऊँ मन रस बोरौं ॥२९॥
पेयमै ह्वै प्यारी-हित पालौं। ललना-लाल परस्पर लालौं ॥३०॥
ाधा - मोहन एकै दोऊ। नैन प्रान मन प्रेम-समोऊ ॥३१॥
ाधा-हिलग कहत नहिं आवै। मोहन ही राधा रुचि पावै ॥३२॥
ाधा-मोहन मोहन-राधा। हिलनि मिलनि बिहरनि बिन बाधा ॥३३॥
ाधा प्रेम-रसामृत-सरसी। केलि-कमल-कुल-सुषमा दरसी ॥३४॥
ाधा-मन मैं मन दै रहौं। राधा के मन की सब लहौं ॥३५॥
ाधा को स्वभाव पहचानौं। राधा की रुचि रचना ठानौं ॥३६॥
ाधा मन को मोसौं बोलै। गुपत गाँस अपनी रुचि खोलै ॥३७॥
राधा की राधा मेरी। कीरति की घरजाई चेरी ॥३८॥
धा की मनभावति लौंडी। राधा के आनंदनि औंडी ॥३९॥
धा-चीर उतारन पाऊँ। भाग-बडाई कहा जनाऊँ ॥४०॥
धा मो कर पाय झवावै। भागभरी महावरौ द्यावै ॥४१॥
धा कौं हौंसनि हौं प्यारी। जातैं तनकौ करति न न्यारी ॥४२॥
लबिहारी हूँ सौं ऐंडनि। राधा के गुमान को पैंडनि ॥४३॥
रि भरौं हित ढरौं अंग सौं। करौं टहल रसमसी रग सौं ॥४४॥
दाय को काम परै जब। बिन बहुगुनी सँवारै को तब ॥४५॥
सुख हौं ही भर देखौं। राधा को सुख अंतर लेखौं ॥४६॥
ौं सुख जब जब मुख देखौं। राधा को सुख कहा बिसेखौं ॥४७॥

३२-रुचि-गति (लदन)। ३४-कुल-डुलि। ४०-जनाऊँ-गनाऊँ (लदन)।

[२४] औंघि=ऊँघकर। [२९] बिजना=व्यजन, पंखा। ढोरौं=झलूँ। स्रमजल=
रा। [३८] घरजाई=घर में उत्पन्न। पारंपरिक। [३९] औंड़ी=बढ़ी, उमड़ी।

राधा को सुख मेरैं सुख है। मदन गुपाल निहारै मुख है ॥४८॥
चेरी पै अभिमान-भरी हौं। ठकुरायनि या भाँति करी हौं ॥४९॥
राधा की बलिहार भई हौं। राधा यौं अपनाय लई हौं ॥५०॥
राधा बिन कछु और न सूझौं। सुरझि सुरझि अभिलाष उरूझौं ॥५१॥
राधा आँखिन आगैं रहै। राधा मन को मारग गहै ॥५२॥
रोम रोम राधा की व्यापनि। रसिकजीवनी राधा-जापनि ॥५३॥
राधा रटि सोई ह्वै जाऊँ। तब पाऊँ राधा को गाऊँ ॥५४॥
राधा बरसाने की जाई। ह्वै सँकेत नदीसुर आई ॥५५॥
राधा की हौं कहौं कहा लौं। ब्रजबन राधामई जहाँ लौं ॥५६॥
राधा के हित बंसी बाजै। राधा रागभरे सुर साजै ॥५७॥
राधा बंसी की ठकुरायनि। सुर-पाँवड़े बिछावति चायनि ॥५८॥
नाँम गाँम सब राधा मेरैं। राधा ही के बसौं बसेरैं ॥५९॥
सो राधा न स्याम बिन रहै। मेरे मन मैं राधा यहै ॥६०॥
या राधा की महा अगम गति। प्रेमपुंज मतिवर्ती परम रति ॥६१॥
या राधा को प्रेम कहै को। या राधा को नेम गहै को ॥६२॥
राधा रमन रमन हू राधा। एकमेक ह्वै रहे अबाधा ॥६३॥
मिलन बिछोह कछु न सुधि परैं। अचिरज-रीति राधिका धरैं ॥६४॥
या राधा को रस अपरस है। रसमूरति को परम परस है ॥६५॥

दोहा

कहिबो सुनिबो समझिबो, राधा ही को होय।
राधा के हित की कथा, भूलि सुमरिहै सोय ॥ ६६ ॥

राधा अकथ कथा कहौं, यह कहिबे की नाहिं।
राधा के जिय को दसा प्रीतम के हिय माहिं ॥ ६७ ॥

५५–नदीसुर–नंदी बन (वृंदा०)। ५७–सुर–सुख (लंदन)। ६४–परैं–परे (वृंदा०)। ६५–परम–मरम (लदन)।

[६३] अबाधा=निरवधि, बेरोकटोक। [६५] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।

ब्रजमोहन आनंदघन, बृंदाबन रसधाम।
अभिलाषनि बरसत रहै, राधा-हित अभिराम ॥ ६८ ॥
मधुर केलिरस-झेलि सौं, रसना स्वाद-सुरूप।
सुफल सुबानी बेलि को, राधा नाम अनूप ॥ ६९ ॥
मेरे मन दृग रीझि की, राधा ही कौं बूझि।
राधा के मन रीझि की, मोहि बूझि अरु सूझि ॥ ७० ॥
राधा मेरे प्रान है, राधा-प्रान गुपाल।
साँस-कंठ धारे रहौं, राधा-मोहन-माल ॥ ७१ ॥
आनँदघन बरसत सदा, राधा-जीवन स्याम।
उज्वल रसमै गौरता, प्रेम-अवधि अभिराम ॥ ७२ ॥
दोऊ मिलि एकै भए, ललित रँगीली जोट।
जमुना-तट निरखौं सदा, तरु बेलिनि की ओट ॥ ७३ ॥
निपट लटपटे अटपटे, भरँ चटपटी चौंप।
राधा मोद-पयोद-रस, प्रगट केलि-कुल-कौंप ॥ ७४ ॥
ब्रजमोहन-उर-अवनि मैं, राधा-सुपद-बिहार।
रोम रोम आनंदघन, भीजे रसिक उदार ॥ ७५ ॥
राधाहित आनंदघन, मुरली गरज रसाल।
राधा ही के रसभरे, मोहन मदन गुपाल ॥ ७६ ॥
राधा के आनंद को, मनमोहन-मन साखि।
राधा को अभिलाष जो, राधा-पिय अभिलाषि ॥ ७७ ॥
राधा रसिक-सँजीवनी, राधाजीवन लाल।
राधामोहनमै सबै, ब्रजबन बेलि तमाल ॥ ७८ ॥
राधा मेरी संपदा, जिय की जीवन-मूल।
राधा राधा रट सदा, रोम-रोम-अनुकूल ॥ ७९ ॥
राधा-मोहन-मुख लगी, मुरली ह्वै दिनराति।
राधा ही राधा बजै, अति मोहन धुनि जाति ॥ ८० ॥

७२-मै-मिलि (लंदन)। ७८-बेलि-केलि (वृंदा०)।

[७१] साँस०=श्वास के कंठ में। [७४] कौंप=कोंपल।

राधा रास - सिरोमनी, राधा केलि - कुलीन।
राधा सकल कला - भरी रसमूरति हितलीन ॥ ८१ ॥
जो कछु है सो राधिका, मो कछु और न चाह।
राधा - पद - पन - पैज को, राधा - हाथ निबाह ॥ ८२ ॥
राधा सब ठाँ सब समै, रहति बहुगुनी संग।
तान रमन - गुनगान की लै बरसावति रंग ॥ ८३ ॥
राधा अचल सुहाग के, ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी, रिझवति राधा - मीत ॥ ८४ ॥
राधा चाहनि चाह सौं, राधा चाहनि चाह।
राधा ही रससिंधु मैं, राधा राधा थाहि ॥ ८५ ॥
राधा मो दृग पूतरी, भई स्याम लखि स्याम।
राधा राधारमन को, अनुपम रूप ललाम ॥ ८६ ॥
राधा पिय-प्यासनि भरी, आनँदघन रसरासि।
स्याम - रँगमगी संगमगी, राधा रही प्रकासि ॥ ८७ ॥
राधा राधा नाम को, रसनैं महा सवाद।
या प्रबंध को नाम हूँ, पायौ प्रियाप्रसाद ॥ ८८ ॥
प्रियाप्रसाद प्रबंध कौं, पाय सबादहि लेत।
नित हित सहित सनेह च्वै, रसना इह सुख देत ॥ ८९ ॥
राधा मंगल - मालती, सरस मधुव्रत स्याम।
जमुना - तट राजत सदा, रसिक-सँजीवनि - धाम ॥ ९० ॥

८८-हूँ-हौं (वृंदा०)। ८९-च्वै-ह्वै (लंदन)।

[८३] बहुगुनी=कवि का सखी नाम [८५] चाहनि०=देखने की इच्छा।
[८७] रँगमगी=अनुरक्त। संगमगी=मिली।

वृंदावनमुद्रा

चौपाई

राधा को बृंदाबन गाऊँ। गाय गाय बृंदाबन पाऊँ ॥ १ ॥
बृंदाबन-छबि कहत न आवै। सो कैसैं कहि कोऊ गावै ॥ २ ॥
कैसी राधा कैसो बन है। जामैं ब्रजमोहन को मन है ॥ ३ ॥
हरि-राधा बन मिलि रस सने। तन मन बन एकै रस बने ॥ ४ ॥
बनबिहार-महिमा क्यौं फुरै। बिना फुरैं बन देखत दुरै ॥ ५ ॥
देखत भूली को यह रूप। क्यौं बन देखत बनै अनूप ॥ ६ ॥
जिन मोहन सब ही जग मोह्यौ। ताको मन राधा-गुन पोह्यौ ॥ ७ ॥
दुहुँनि एक बृंदाबन ऐन। राखत पुतरिनि लौं धरि नैन ॥ ८ ॥
नित ही दंपति-हित लहलह्यौ। रोम रोम तिनके रमि रह्यौ ॥ ९ ॥
अब सोई जौ दरस्यौ चाहै। तौ रसना फिरि क्यौं न उमाहै ॥१०॥
गुन अनंत लै बानी दरसै। बृंदाबन आनँदघन बरसै ॥११॥
रसना पन-चातकी भई है। बृंदाबन-गुन-गोभ-छई है ॥१२॥
जमुना तरल तरगनि सरसै। हित-बतरानि प्रीति-रस परसै ॥१३॥
जमुना ही मिलि कथा सुनाऊँ। याही के प्रसाद गुन गाऊँ ॥१४॥
मिली तरगनि बातैं करै। यातैं रसना गुन बिस्तरै ॥१५॥
तीरभूमि बनि रह्यौ सदा बन। जै जमुना जै जै बृंदाबन ॥१६॥
बृंदाबन-छबि जमुना जानै। रसना जमुना परसि बखानै ॥१७॥
कृपा-तरगनि सौं रससानी। या बिधि सरस भई है बानी ॥१८॥
श्रीबृंदाबन जमुना-कूल। मो अनुकूल कृपाधन-मूल ॥१९॥
राधा-हरि बृंदाबन भाँति। हिलि मिलि भई एक ही काँति ॥२०॥
अद्भुत छबि सौं ओपित लसै। गौर-स्याम-संगम रसमसै ॥२१॥

दोहा

गौर स्याम बन ह्वै रह्यौ, गौर स्याम कैं रूप।
गौर स्याम बानी भई, बरनत बनक अनूप ॥ २२ ॥

[७] गुन=गुण, सूत। [१२] गोभ=अकुर। [२१] रसमसै=सरस होती है। [२२] बनक=सजधज।

चौपाई

लता ललित रसबलित सुतरबर । महा मधुर पूरन सुख सरबर ॥२३॥
रोमांचित श्रीबपु लौं रहै । पवन-गवन परिमल महमहै ॥२४॥
केलि - सदन बन - केलि-सरूप । सुख-सिंघासन सब सुख - भूप ॥२५॥
जुगल - अंग जे रग बिराजैं । ते बन दल फल फूलनि आँजैं ॥२६॥
बर बिनोद पगि जगमग दिपै । उघरि उघरि आभा मैं छिपै ॥२७॥
रसमय सुखमय धामी धाम । निपट अलौकिक जग अभिराम ॥२८॥
रचना रुचिर सुठौर ठौर की । राधा पिय गुन रूप मौर की ॥२९॥
प्रेम-रँगमगी अवनि चहौं चख । महा अलख अभिलाष लहौं लख ॥३०॥
बृंदाबन बृंदाबन रटौं । रसना हित - चिंतामनि जटौं ॥३१॥
केलि - संपदा रसहि बखानौं । मौन धरैं अनूप गुन गानौं ॥३२॥
यह बृंदावन यह जमुना - तट । सदा रहत सोभा को सघट ॥३३॥
ये द्रुम ये बेली अलबेली । हरि-राधा - रसरंगनि झेली ॥३४॥
यह कुसुमावलि यह फल-झूमनि । ये बिहंग यह अलिगन घूमनि ॥३५॥
यह पराग-घमडनि सुख सरसै । नव मकरंद सु आनँद बरसै ॥३६॥
महकि मोद चहुँ कोद रह्यौ है । महा मधुरिमा-निधि उमह्यौ है ॥३७॥
यह दिन यह रजनी कछु औरै । लीला ललित ठौर ही ठौरै ॥३८॥
छिन ही छिन बन-महिमा मौरै । समझि समझि मति की मति बौरै ॥३९॥
आनँद अमित सघन बन छायौ । पूरन प्रेम - बितान तनायौ ॥४०॥
नित नवीन रसकेलि-सदन है । बन गुन बरनत जुगल बदन है ॥४१॥
रास-बिलास बिबिध रंगमंडित । सोभित श्री बनराज अखंडित ॥४२॥
जब जैसो चहियै तब तैसो । बन्यौ रहत बृंदाबन ऐसो ॥४३॥
नित राधा-पिय को हित पोषै । सुचि रुचि सहज सकल बिधि तोषै ४४
गुपत प्रगट गति कही न परई । अति अगाध महिमा बन धरई ॥४५॥
परिकर पुंज कुंज परिपूरन । पुलिन मंजु चिंतामनि चूरन ॥४६॥

३२—रसहि-दरसि (लंदन) ।

[२६] आँजैं=(नेत्रों में) अंजन की भाँति लगाते हैं। वे रंग बन के दल आदि में छाए रहते हैं। [३१] जटौं=जटित करूँ ।

अगम्य अलौकिक सोहै। को है जो बन दूखनि जोहै ॥४७॥
रसना बन-रस-जस-लायक। दैहै बन उदार सुखदायक ॥४८॥
लखि या रसहि भाखिहै। चाखि चाखि अभिलाषि राखिहै ॥४९॥
सदा सरन यह बन है। राधाजीवन - जीवन - धन है ॥५०॥
निरंतर आँखिन आगै। पल पल जोति अपूरब जागै ॥५१॥
मेरो हौं बृंदाबन को। बन - रखवारो है मन-पन को ॥५२॥
बृंदाबन बसै। महामधुर रसधारा रसै ॥५३॥

कबित्त

बृंदाबन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम - नैन पहचानहीं।
राधिका - दरस को सुदेस आदरस यही,
चाहौई करत जब जब जैसो जानहीं।
ऐसे रंगमूरति बसे हैं एक सग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं।
जमुना कै तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैंई बखानहीं ॥ ५४ ॥

स्याम यामैं बसे यह बसै स्याम-हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै।
यही बृंदाबन देखौ प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन की डीठि ईठि भए ही चिन्हारियै।
नैन बैन मन सौं समोय राख्यौ बड़भागी,
तिन ही की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरजधाम मोहि ऐसैं दीसि परयौ,
दीसत न काहू बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥ ५५ ॥

३—बसै–बसौ (वही)। ५४-यही—याहि (वृंदा०)। हैं–हौं (लदन)। न०—मन साँवरे को मोहि।

५४] गोभा=अंकुर। दरस=दर्शन। सुदेस=सुदर। आदरस=दर्पण। ईठि=इष्ट, प्रिय।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदाबन कहौ कैसैं करि दीसई ।
दीसत दुरथौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरथौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई ।
परैं तैं परैं है भयौ हाय यहै बृंदाबन,
राचैं रज जाँचैं ईसहू से बकसीसई ।
ताहि दौरैं जात पाय लियौ है सबनि सूधौ,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ।। ५६ ।।

बृंदाबन-माधुरी अचंभे सौं भरी है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै ।
अंग रंग - संग - एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधा रानी अवरेखियै ।
सुबन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदी-कूल,
आनँद को घन रसमूरति बिसेखियै ।
देखत दुरथौ सो अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा ही पै परस - गुन पेखियै ।। ५७ ।।

बृंदाबन पाइबे को गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहूँ गए तैं रस - पारस क्यौं पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकैं,
सुभर भरथौ लै तौ लौं उर न बसाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा - चरन - रज आँखिनि अँजाइयै ।
निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ।। ५८ ।।

५७-है-है (वृंदा०) । ५८-लौं-है (वहीं) ।

[५६] हरथौ=हराभरा । बिसे०=बीसो बिस्वा, पूर्णतया । बकसीस=प्रसाद । परीसई=स्पर्श करे । [५८] भानुजा=राधिका ।

ब्रजस्वरूप

चौपाई

ब्रज को सुख-सुरूप कछु कहौं। कहि कहि परमानंदहि लहौं ॥१॥
बसत स्याम अभिराम जहाँ हैं। सब सुख सेवक सदा तहाँ हैं ॥२॥
परम प्रेमपूरन ब्रजदेस। ब्रजरज बंदत सेस महेस ॥३॥
ब्रज के लोग महा बड़भागी। सुंदर स्याम सहज लौ लागी ॥४॥
जीवन को फल ब्रजजन देखैं। देखैं कान्हैं मानत लेखैं ॥५॥
कँवलनैन ब्रजलोचन-तारो। नंद - जसोदा - बारो प्यारो ॥६॥
थिर चर रह्यौ कृस्न उजियारो। गिरिधर या ब्रज को रखवारो ॥७॥
धनि यह ब्रज धनि ये ब्रजबासी। कृस्नचंद्र - चंद्रिका - प्रकासी ॥८॥
या ब्रज नित हित - उत्सव रहै। याकी उपमा कौं कछु न है ॥९॥
कहौं कहा धौं ब्रज को मोद। बरसत नित आनंद - पयोद ॥१०॥
मुरली - नाद मोहि सब राखै। पुरवत सुख-सवाद अभिलाषै ॥११॥
गोपी गोप गाय रस - पगे। मन अरु प्रान कान्ह सौं लगे ॥१२॥
ब्रज-मोहन देखेई जियैं। नैननि रूप-सुधा भरि पियैं ॥१३॥
यह सुरूप सुख समझत येई। इनहि स्याम सुंदर सुख देई ॥१४॥
स्याम - संग के रंग निहारैं। रीझि रीझि सर्बसु लै वारैं ॥१५॥
ब्रजसमाज देखें बनि आवै। कहि कोऊ किहि भाँति बतावै ॥१६॥
जो सुख सबनि अगोचर आहि। कैसें बरनि बतैयै ताहि ॥१७॥
ब्रजछबि देखन के दृग औरैं। परमानंद ठौर हीं ठौरैं ॥१८॥
जिनको ब्रज जो ये दिखरावैं। तौ ये नैन दृस्टि-बल पावैं ॥१९॥
निरवधि आनँदमय ब्रजधाम। निबसत सदा स्याम अभिराम ॥२०॥
परिकर प्रेमपुंज सँग सदा। बिलसत लीला-सुख - संपदा ॥२१॥
ब्रज बिनोद - सागर रससार। अति अगाध अति अगम अपार ॥२२॥
कहियै कहा महारुचि रवनी। कवनी निपट नंद-ब्रज-अवनी ॥२३॥

३–बंदत–बंदित (वृं दा०) । ११–पुरवत–पुरवन (वही) । १८–कै–कौं (वही) । २२–रससार–संसार (लंदन) ।

[२३] कवनी=(कमनीय) सुंदर ।

दृगनि देखि अद्भुत दुति दीसै । ब्रज - बसुमती रती ब्रजईसै ॥२४॥
नँद नंदीसुर नीकैं बसैं । गाँव गाँव गोपनि गन लसैं ॥२५॥
सब ही सौं सब ही हित नातैं । मन मिलि बंधुन तन कै हातैं ॥२६॥
प्रेम-तंत करि जंत्रित अंतर । अंतर - रहित सुतंत्र निरंतर ॥२७॥
गोधन ठाट कहाँ लौं कहियै । धन अरु धान अलेखैं लहियै ॥२८॥
बास-निकट ही खरिक सुहाए । बिसद बिलास परम छबि छाए ॥२९॥
बगर गरथारैं गली पुनीत । घर घर मंगल - मंडित गीत ॥३०॥
देखत बनै बनै बरनै न । ब्रज दरसैं तेई वर नैन ॥३१॥
ब्रजमोहन जीवन सब जा के । पूरन करत मनोरथ ही के ॥३२॥
ग्वालबाल-कोलाहल जित तित । नित उतमन्न मोहन-जोहन-हित ॥३३॥
सबै ओर सोभा सुखसाज । जय ब्रजमंडन जय ब्रजराज ॥३४॥
जित जैयै तित नित सुख पैयै । देखत देखत मन न अघैयै ॥३५॥
अति उतंग ओपित चौपारैं । ललित चौहटे बनत निहारैं ॥३६॥
ब्रजमोहन बिहरत रहठान । खँडे निकसि चुहल चौगान ॥३७॥
चहूँ ओर सुभ सुंदर तरवर । ढिंग ही लसत साँवरे सरवर ॥३८॥
अमल अपूरब दरपन कहा । ब्रजमोहन - छबि जोहन महा ॥३९॥
घाट पनघटनि खेलनि खोरनि । पैरनि दृगनि रूपरस - बोरनि ॥४०॥
रितुरितु सुखनि सहज ही बिलसत । सदा एकरस लसत सु हुलसत ॥४१॥
जसुदानंदन - जस ब्रज छायौ । तातैं लागत परम सुहायौ ॥४२॥
जब लखियै तब तब मन भायौ । ब्रज भीजन चौमासो आयौ ॥४३॥
आनँदनिधि ब्रजमोहन - धाम । बन्यौ रहत ज्यौं चाहत स्याम ॥४४॥
बारस मास जहाँ चौमासौ । हित-किसान कैं कहूँ न साँसौ ॥४५॥

२६-कै-कौ (लंदन)। २८-धान-धाम (वृंदा०)। ३२-करत०-करन मनोहर (वृंदा०)। ३७-बिहरत-बिहरन (लंदन)। ४०-रस-सर (लंदन)। ४४-आनँद०-आनँद ब्रजमय (लंदन)।

[२४] रती=अनुरक्त । [२५] नंदीसुर=नंदगाँव । [२६] हातैं=दूर । [२७] तंत=तंत्र । [३६] चौपार=चौपाल, गाँवों में घर के बाहर की बैठक । [४५] बारस=(द्वादश) बारह ।

उघरि उघरि बरसै आनँदघन । या रस भीजे राजत ब्रजजन ॥४६॥
घमडि स्याम घन झरहि लगावै । ब्रज की छबि देखेँ बनि आवै ॥४७॥
हरियारा नित ही हरि-प्यारो । ब्रज-उजियारो ब्रज उजियारो ॥४८॥
बरहे हरे भरे सर जित तित । हित-फुहार की झमक रहति नित ॥४९॥
जुहीँ सुहीँ सुख गुहीँ खिली हैँ । लता ललित तरु उमगि मिली हैँ ॥५०॥
झूमि अँध्यारी दै घन घोरनि । ब्रज बोलै बन बारी मोरनि ॥५१॥
ब्यापि रहति झाईँ झिंकार । जित तित माचति प्रेम - पुकार ॥५२॥
दिन अधराति परत नहिं पायौ । ब्रज आनँदघन भीज भिजायौ ॥५३॥
निपट कौँवरी काँवरि खोही । ब्रज - उजियारे पै अति सोही ॥५४॥
सिथिल कसूँभी पाग छबीली । अलबेले की बनक रँगीली ॥५५॥
सखा संग अलबेल अनेक । हरि-हित धरि धरि अपनी टेक ॥५६॥
टरत न कहूँ कान्ह तजि पलकौ । कही न परति हिये की ललकौ ॥५७॥
बन मैँ मन मैँ बिहरत डोलै । हित के चायनि गायनि बोलै ॥५८॥
सघन कदम-तर बूँद बरावत । छतना छबि पावत कछु गावत ॥५९॥
बन ब्यापक मुरली की टेर । आवति ब्रजबासिनि औसेर ॥६०॥
कान रमैँ ब्रज सोभित सदा । ब्रज बरसत सब सुख सपदा ॥६१॥
गिरि गोधन हरियारो रहै । चौमासो नित बासो गहै ॥६२॥
झूमे रहत गिरि - सिखर बादर । बोलत मोर पाँति भरि आदर ॥६३॥
नव घनस्याम चंद्रिका धरैँ । अपनो भाग निहारयौ करैँ ॥६४॥
गुंजमाल तन धातु बिचित्र । तैसेइ बने ठने सब मित्र ॥६५॥
निकसि जात जिनकौँ चित चाहत । ब्रजमोहन ब्रजबन अवगाहत ॥६६॥

४६—जन–बन (कबित्त) । ५०—सुख–हित (लदन) । ५४—काँवरी–कामरि (वही) । ६०–अ वति–थाँभति (लंदन) । ६१—हरिय.रो–हरि यारो । नित–जित (लदन) ।

[४९] बरहे=नाले । [५४] काँवरी=कमली । खोही=घोघी । [५५] कसूँभी=पीली । पाग=पगड़ी । [५८] बोलै=बुलाते हैं । [५९] छतना=पत्तों का बना छाता । [६०] औसेर=व्यग्रता । [६२] नित०=नित्यवास सदा चौमासा ही रहता हे । [६५] धातु=मिट्टी ।

ठौर ठौर की सोभा नई। ब्रज की बानिक अचरजमई ॥६७॥
बकुल सकुल कदंब मिलि फूले। सौरभ-बिबस पलट अलि भूले ॥६८॥
स्याम - सुअंग सुगध समोई। ब्रजबन-बासित नित हित-भोई ॥६९॥
महकत ब्रजबन सोह जु महा। ब्रजबन को सुख कहियत कहा ॥७०॥
नित ही चौंपभरे बनवारी। ब्रजजीवन बनराजबिहारी ॥७१॥
जमुना - कूल कदबनि मूल। निर्जन ठौर केलि - अनुकूल ॥७२॥
सुथरी ठौर फून - दल फैल। जहँ रुचि सौं बैठत ब्रज छैल ॥७३॥
सुकृत-पुज-फल बैठि निहारत। राधारमन नाम - गुन धारत ॥७४॥
कही परति क्यौं इनकी आरति। बृंदाबन बन मौन पुकारति ॥७५॥
चनक मूँद खग मृग सब चकैं। मदन गुपाल केलि-रस छकैं ॥७६॥
ब्रजस्वरूप देखत ब्रजलोचन। ब्रजबन रुचिरोचन दुखमोचन ॥७७॥
नित ब्रज बसत लसत ब्रजनागर। यह ब्रज अद्भुत रस को सागर ॥७८॥
कृस्नचंद - हित बाढ्यौ रहै। ब्रजमोहन जू को ब्रज यहै ॥७९॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज मोहि। सूझ परयौ ब्रज की रज टोहि ॥८०॥
ब्रजबन स्यामस्वरूपहि सूझै। बिन रज लहै न कोऊ बूझै ॥८१॥
ब्रजस्वरूप अति निगम-अगम है। रजहि मिले तें मिलत सुगम है ॥८२॥
अंजन यहै सूझ हू यहै। ब्रजरज - सरन गहै रज रहै ॥८३॥
ब्रजरज - सरन गहैं रज रही। ब्रजमोहन-लीला - निधि लही ॥८४॥
मगन रहौं लीला - सुख चहौं। ब्रजरस ब्रजमोहन सौं कहौं ॥८५॥
नित नित चौंप नई चित मेरें। या ब्रज की सुख - संपति हेरें ॥८६॥
लीला ललित नित नयो चाव। अब कछु ऐसा सहज सुभाव ॥८७॥
नित ब्रजमोहन-केलि निहारौं। पाय पाय प्रानन हौं वारौं ॥८८॥
नित गोचरन नित गोदोहन। नित नव रंग रसिक ब्रजमोहन ॥८९॥

६८—सकुल—सकल (वही)। बिबस०—लपट बिबस अति (वही)। ६९—समोई—समोय। ७०—कहियत—कहिये (वही)। ७२—निर्जन—निझनक (वही)। ७७—रोचन-रोचत। ८१—स्वरूप-रूप ही (वही)।

[७६] चनक०=खुलना और बद होना। [८३] रज=राजत्व, महत्त्व।

दान-केलि नित आदित-पूजन। नित कोलाहल नित ब्रज ऊजन ॥९०॥
नित त्यौहार बार ब्रजजन कैँ। नित रस भीजैँ सुंदर घन कैँ ॥९१॥
खरिक खोरि ब्रज बाग गरथारे। कहा कहौँ लागत अति प्यारे ॥९२॥
निकसत लसत साँवरो छैल। रोकत मन-नैननि की गैल ॥९३॥
अटक-भटक की भैँट अटपटी। हितकनौड़ चित चाह-चटपटी ॥९४॥
ब्रज घर घर गोपिन के गीत। मधुर खरे रसढरे पुनीत ॥९५॥
कान्ह-कथा सोवत अरु जागत। सोवनि जागनि अचिरज पागत ॥९६॥
ब्रज गोपालमई ह्वै रह्यौ। ब्रजसरूप कछु परत न कह्यौ ॥९७॥
सो जानै जो यह ब्रज निरखै। करै पान आनँदघन तिरखै ॥९८॥
कछु ब्रज कछु रस कछु ब्रजरूप। जु कछु सु सब कछु परम अनूप ॥९९॥
ब्रजरस पियत पियत ही जियौँ। जियत जियत ब्रजरस ही पियौँ ॥१००॥
मोकौँ यह ब्रज सदा सहाय। मन दृग बंछित लियौ दुहाय ॥१०१॥
ब्रजरस पियत पियत न अघाऊँ। बहकि एक ब्रजरस बरराऊँ ॥१०२॥
रात द्यौस एकै ब्रज दीसै। ब्रजरस परसि नवाऊँ सीसै ॥१०३॥
ब्रजगोरिन की हिलग हिय बसी। मतिगति अति ब्रजरति गुनगसी ॥१०४॥
ब्रजस्वरूप बरनै ब्रजबानी। और कौन की बुद्धि अयानी ॥१०५॥
ब्रजभाषा रसनै अपनावै। तौ ब्रजकथा तथा कहि आवै ॥१०६॥
ब्रजरस उफनि बढ़ै हिय-सोत। रसना ह्वै ह्वै प्रगटित होत ॥१०७॥
चढ़ै रंग ब्रजरस को बातहि। तब पावै ब्रजरस की घातहि।१०८।
चित चढ़ि रहै चुहल ब्रजजन की। ह्वै जु रही ऐसी गति मन की ॥१०९॥
या ब्रज ही सौँ बान बन्यौ है। ब्रजजीवन रसरीति-सन्यौ है ॥११०॥
ब्रजमोहन ब्रजबधू-बिलास। नितपूजवत ब्रजबसि मो आस ॥१११॥

९०–ऊजन–ऊतन (वृंदा०)। ९१–बार–हम (लंदन)। ९५–ढेर–करे (वही)। ९७–मई०–नई है (लंदन)। ९८–तरखै–बरखै (वृंदा०)। १००–दुहाय–सुहाई (वृंदा०)। १०५–ब्रजबानी–बरबानी (वृंदा०)। १०८–ब्रजरस–या रस (लंदन)। १०९–चढ़ि–बढ़ि (वही)।

[९०] ऊजन=धूम। [१०२] बरराऊँ=बकूँ (सोते समय स्वप्न देखकर बकना बराना है)। [११०] बान=सजधज।

ब्रज बसि ब्रजबासिन की आस। सुफल भयौ मेरो ब्रजबास ॥११२॥
हौँ या ब्रज अरु यह ब्रज मेरो। सुबस लह्यौ ब्रजबास बसेरो ॥११३॥
आनँदघन ब्रजरस-पन पक्यौ। ब्रजमोहन मादक-गुन छक्यौ ॥११४॥
नित ही ब्रजरस की रट लागी। रसना आनँदघन-पन पागी ॥११५॥
ब्रजरस अमल खरे तेँ खरौ। मो बिन और गरेँ जिन परौ ॥११६॥
ब्रजरस अब तौ गरेँ परयौ है। रस ही लै रसरूप ढरयौ है ॥११७॥
ब्रजरस ही हिय-बीच भरयौ है। रसना ह्वै अपढार ढरयौ है ॥११८॥
ब्रजमोहन ब्रज की ये बातैँ। को समझै अरु कहियै कातैँ ॥११९॥
कहै कहावै आपै सुनै। अपने गुन मो रसना गुनै ॥१२०॥
ब्रजमोहन ब्रजरस की बात। कहत सुनत रसिया न अघात ॥१२१॥
ब्रजरस ब्रजरस ही सब रस है। ब्रजरस आनँदघन-सरबस है ॥१२२॥



११२–सुफल–सफल (वही)। ११४–मादक–रस ही मैं (वही)।

[११८] अपढार=आपसे आप ढलना।

गोकुलचरित्र

चौपाई

गोकुल मैं रस रमड़्यौ रहै। आनँदघन जहँ घमड़्यौ रहै ॥ १ ॥
गोकुल की छबि कबि क्यौं कहै। गो जब लौं गोकुल नहिं गहै ॥ २ ॥
महा मधुर रस रसना पगै। गोकुल के गुन गुन मैं खगै ॥ ३ ॥
जगै जोति गोकुल को मन मैं। डीठि घिरि फबै रूपरमन मैं ॥ ४ ॥
गोकुल को सुरूप तब दरसै। रोम रोम बानी रस बरसै ॥ ५ ॥
सो गोकुल गोकुल को मूल। नंद-जसोमति-हित-अनुकूल ॥ ६ ॥
जगमगात गोपिन के ऐन। गोकुल को सुख बरनि बनै न ॥ ७ ॥
घर घर कृस्न बिराजत सदा। लियैं ललित अपना संपदा ॥ ८ ॥
हित-बितान घर घर पर तने। गोपी गोप लसैं सुख-सने ॥ ९ ॥
कान्हरूप-रस निसिदिन पियैं। प्यासे रहैं महा रुचि हियैं ॥१०॥
या गोकुल के स[illegible] गरथारे। बिहरैं गोकुलचंद पियारे ॥११॥
चहल पहल चौंपनि सौं डोलनि। चोखभरी बोलनि सुकलोलनि ॥१२॥
रस की रमड़ कछु न कहि आवै। गोकुल-सुख देख्यौई भावै ॥१३॥
नवल बधू गोकुल की मुनी। परखै लाल खिलारी गुनी ॥१४॥
पनघट खरिक ताकरस छाकै। अद्भुत-फल सवाद फल पाकै ॥१५॥
डीठि प्रान राखे जु समोय। बरनै को जु मिलैं सुख होय ॥१६॥
बन सहेट गोचारन-समैं। बानक रचि सु कहूँ तित गमैं ॥१७॥
बनबिलास द्रुम-बेली घनी। ललित बलित रसमय सुखसनी ॥१८॥
या बिधि की अनेक बिधि हेटैं। छली छैल को पैठै पेटैं ॥१९॥
सबसौं सबकी साध पुजावै पूरन गोकुलचद कहावै ॥२०॥
बन तें गाइनि पालै आवनि। एक डीठिऊ तनरस प्यावनि ॥२ ॥
दोहन-समै कामना दुहै। जैसी जासौं चित की जु है ॥२२॥

[२] गो=वाणी। [३] खगै=लीन होती है। [१४] मुनी=राय-मुनी, लाल पची की मादा। [१७] कहूँ=कदाचित्। तित=वहाँ। [१९] हेटैं=सहेट-स्थान।

प्रेमपहेली

चौपाई

मोहन इत ह्वै निकसे आय । हौं ठाढी अपने जु सुभाय ॥ १ ॥
डीठि डीठि मिलि भयौ मिलाप । ढुरि घुरि मिली आप ही आप ॥ २ ॥
फूलि भूलि वेऊ अरु हौं हूँ । रहे लोभ लगि डर अरु गौं हूँ ॥ ३ ॥
उनकी वे जानैं क्यौं कहियै । पै अपनो मन कहूँ न लहियै ॥ ४ ॥
बहुत पची अपनो सो एँचि । हँसि चितवनि लै गई सु खैंचि ॥ ५ ॥
दुरी रहति क्यौं हित की गोभा । देखै स्याम - सुधानिधि सोभा ॥ ६ ॥
उघरि परैगी गैल गरथारै । बात नेह की साँझ सबारै ॥ ७ ॥
दैया चंद लिये तैं कैसैं । जियरा जानत बाँध्यौ जैसैं ॥ ८ ॥
उत उतहूँ कछु गही गहनि है । कहि कैसैं रहि सकै रहनि है ॥ ९ ॥
भोर साँझ इत ही ह्वै आवै । गायनि लै चायनि सरसावै ॥१०॥
टेरत सखै सुनावत मोही । कहा करौं तब बूझति तोही ॥११॥

---

[३] गौं = घात । [५] पची = परेशान हुई । [६] गोभा = अंकुर, प्राकट्य, अभिव्यक्ति ।

रसनायश

चौपाई

रसना तेरी बलि बलि जाऊँ। सुमिरै स्याम-सुधानिधि-नाऊँ ॥ १ ॥
रसना रस की अवधि सुजान। निसदिन करै कृस्न-गुनगान ॥ २ ॥
रसना तेरो भलो सुभाव। जानै हरिचरितन को चाव ॥ ३ ॥
रसना है तू ही बड़भागी। मधुसूदन-गुन सौं अनुरागी ॥ ४ ॥
रसना तु ही सकल रसरानी। हरि भजि सफल करी तैं बानी ॥ ५ ॥
रसना तु ही सवादहि जानै। ब्रजमोहन के चरित बखानै ॥ ६ ॥
रसना तो सी तु ही न दूजी। नित ब्रजजीवन-रस पी तू जी ॥ ७ ॥
रसना को तेरो जस भाखै। नित ब्रजबधू-रसासब चाखै ॥ ८ ॥
रसना तैं ही सौभग पायौ। नाँकैं जसुमति-लाल लड़ायौ ॥ ९ ॥
रसना तो सी तु ही सभागी। नित राधा राधा रट लागी ॥१०॥
रसना तू मोकौं अति भावै। दंपति-बिसद-बिहारहि गावै ॥११॥
रसना तू ही रसवति पूरी। ब्रजबन-कथा सजीवन-मूरी ॥१२॥
रसना तु ही मनोरथ-बेली। हरि-राधा-रसरंगनि मेली ॥१३॥
रसना तू रस-रतन-मंजूषा। खुली लसै बिलसै निसि ऊषा ॥१४॥
रसना तु ही रसामृत-सरसी। हरिगुन-अमल-कमल-रुचि दरसी ॥१५॥
रसना हित-चिंतामनि-माला। हरिगुन-गूँथित परम रसाला ॥१६॥
रसना तू सब सुख की स्वामिनि। रची रहति हरि सौं दिनजामिनि ॥१७॥
रसना तू सुखदायनि मेरो। नित हित-हरि-नामावलि फेरी ॥१८॥
रसना सोवत जागत जागी। कृस्न कृस्न रटना रुचि पागी ॥१९॥
रसना प्रेमनेम-हित-जन्या। राधाधवहिँ सुमिरि भई धन्या ॥२०॥
रसना बदन-सदन की सोभा। कृस्न-मयंक-चंद्रिकनि लोभा ॥२१॥
रसना रसिकराय सौं बीधी। भली भाँति गुनगन गसि गीधी ॥२२॥

[१४] ऊषा = प्रभात, दिन। [२२] गसि = बँधकर। गीधी = परच गई है।

रसना मेरो जनम सुधारयौ । ब्रजपतितनय-नाम-पन धारयौ ॥२३॥
रसना हरि-बिनोद - हित-मैना । पन - पिंजर बोलति रस-बैना ॥२४॥
रसना तू अनुरागनि पाछी । गोबिंद-गुनगन गरिमा साछी ॥२५॥
रसना सदा रसमसी राजै । रसनिधान सौं अति रति साजै ॥२६॥
रसना तू नित ही हित सरसै । मधुर किसोर-नाम सुख परसै ॥२७॥
रसना यह रस पियत न अरसै । चातक-रुचि आनँदघन बरसै ॥२८॥

---

[२५] पाछी = पीछे या पक्षी । [२८] अरसै = आलस्य करे ।

गोकुलविनोद

नंद - गोकुल बरनि बानी बिसद जोति - निवास।
जहाँ नित्यानंदघन अद्भुत अखंड बिलास ॥ १ ॥
स्याम रुचि सुचि सरस सीतल तरनितनया-कूल।
डहडहे तरु सघन सुंदर लसत सुषमा - मूल ॥ २ ॥
ललित कुसुमित फलित बलित बिसाल बेलि तमाल।
परसि नीर समीर बिलुलित भ्रमित मधुकरजाल ॥ ३ ॥
अति सुदेस सुगंधमय दीपित सुपेसल भूमि।
पुहप-पुंजनि हरषि बरखत रहत तरु घन भूमि ॥ ४ ॥
मुदित केकी कुल कुलाहल करत रहत अनूप।
सकल रितु सुख सब समय जहँ अमित उत्सव-रूप ॥ ५ ॥
जगमगत मंगलनिकर - ओपित अमल आवास।
चैन चरितनि चुहल चहुँदिस परम प्रेम - हुलास ॥ ६ ॥
मलय-द्रुम-छबि फबि रही सुभ सुखद द्वारहि द्वार।
अगरबासित बगर नित ही मोद-सौरभ - सार ॥ ७ ॥
नंद - मंदिर कांत कौतुक बनि रह्यौ भरि भाव।
मनहु मधिनायक बिराजत अति अभूत जराव ॥ ८ ॥
रुचिर बंदनमाल राजति मनि जलजदल नूत।
सदा मंगलचार नूतन बर बिनोद अभूत ॥ ९ ॥
लसत बिलसत रहत नित गोपाल लाल अनूप।
नंद-जसुमति - प्रान ब्रजजन - नैन - उत्सव-रूप ॥१०॥
गोप - गोपी - बृंद गोधन महा गहमह मोद।
परम रसमय गान धुनि नित कृस्नचरित-बिनोद ॥११॥

६—हुलास—उलास (बृंदा०)।

[४ पेसल = मनोहर। [७] मलय = चंदन। बगर = घर। मोद = गंध, हर्ष। [८] नायक = माला में बीचोंबीच का बड़ा गहना पदिक। [९] बंदन० = बंदनवार। नूत = नवीन।

खरिक बिसद बिसाल अगनित रुचिर-रचना-ऐन।
कलपतरु बिचबिच बिराजत धैन - हित सुखदैन ॥१२॥
सरस गोदोहन तहाँ गोबिंदलीला - धाम।
प्रात संध्या केलि-कोलाहल परम अभिराम ॥१३॥
नित्य गोचारन मनोहर सुभग जमुना - तीर।
बेनुबादन - माधुरी आभीरनंदन - भीर ॥१४॥
अखिल-सुख-सुषमा - सदन बिहरत सदा बलबीर।
परम कौतुकरूप स्यामसरीर गुनगभीर ॥१५॥
पुलिन बन गिरिकुंज क्रीड़ा अतुल आनँदरासि।
मदनमोहन परम सोहन अंगरंगनि भासि ॥१६॥
सुहृद सखिनि समाज को सुख देखि बिथकित नैन।
बनबिहार अनेक बिधि के अमित अचरज-ऐन ॥१७॥
बिधि-सिवादिक भूलि सुमिरत सम्हरि मतिगति साधि।
पचत नित चित रचत हित तित अमित रस आराधि ॥१८॥
सो सहज ब्रजजननि की जीवनि निरखि निसिभोर।
भूमि-भागनि बरनि बंदत निरखि नंदकिसोर ॥१९॥
नित नई लीला ललित बिधि करत नंदकुमार।
नर अमर खग मृग बिमोहन अति रसामृतसार ॥२०॥
रसिक नटवर भेस परम सुदेस रूप अपार।
ब्रजबधू आनदघन - लीला-सरस - आसार ॥२१॥
मंजु मुरली - गुज अति सुखपुंज गरज रसाल।
चातकी गोपी - स्रवन - पुट पूरि होति निहाल ॥२२॥
परम रम्य अनूप बृंदारन्य सुखद प्रदेस।
रास-रससागर तरगित लखि सरद राकेस ॥२३॥

१३—केलि०—कल कुलाहल परम अति (वृंदा०)। १४-वादन—मादन (लंदन)। १८-भूलि-भूमि (वृंदा०)। १९-भूमि-भूरि (लदन)।

[१२] धैन=धेनु। [२१] आसार=वृष्टि। [२३] राकेस= पूर्णिमा का चन्द्रमा।

ललित अति रसबलित तरुन तमाल कंचन-बेलि।
राधिका-हरि-भाव भरि सूचत सदा नव केलि ॥२४॥
फूल फल दल मूल रस-अनुकूल सम सब काल।
कृस्नमय आदरस बन घन दिपत जोतिनि जाल ॥२५॥
तहँ निरंतर नंदनंदन करत बिबिध बिनोद।
ब्रजतरुनि-रसतृषित-हित नित बरसि प्रेम-पयोद ॥२६॥
गान अद्भुत तान बर बधान निर्त सुदेस।
सरस अभिनय-निपुनतामय भरि अतुल आबेस ।२७॥
इहि बिहार बिनोद प्रमुदित सदा गोपीनाथ।
रसिक राधारवन लीनैं जुवतिजूथनि साथ ॥२८॥
परम गहवर रुचिर सुचि रुचि-पुंज मंजुल कुंज।
नव - प्रसून - पराग - मंडित सरस मधुकर-गुंज ॥२९॥
माधवीदल - रचित पेसल बिसद अद्भुत सैन।
तहँ निबेसित स्याम स्यामा परसपर सुखदैन ॥३०॥
अमित आनँद उमग की गति कहि सकै मति कौन।
तिन कृपा तैं होत अनुभव गहति बानी मौन ।३१॥
स्रमित अंगनि ओप अनुपम महारूप - प्रकास।
करौ नित हित-सहित ह्वै मो नैन-मन मैं बास ॥३२॥
सहचिरिन के बृंद सँग लै लसत जमुना - तीर।
अति सुखद जलकेलि-हित तिहि उचित सजि सजि चीर ॥३३॥
चीकने मेचक रुचिर मुंचित सुकुंचित केस।
निसि रसाल सु छबि रही फबि पीक अंजन-लेस ॥३४॥
घूमरे लोचननि की गति अति सिथिल मद छाकि।
जलकनी बरुनी-अनी पर लखि रहत चित चाकि ॥३५॥

[२६] निर्त = नृत्य। सुदेस = सुंदर। [२९] गहवर = गुप्त स्थान। [३०] निबेसित = स्थित। [३४] मेचक = काले। मुंचित = मुक्त, खुले। कुंचित = टेढ़े। [३५] घूमरे = मतवाले।

अधर निसि बीरी-रचनि की खुलि रही रुचि-रेख।
दसन-छत अनुरागसूचक उरसि नख-उल्लेख ॥३६॥
गंड रद-मुद्रावली कर मुकरमुद्रा देखि।
लाज लालस भरनि दृग हिय सुख-समय अवरेखि ॥३७॥
सरस परिमल लपट झपटनि भृंग तजत न पास।
सुहृद अति ढिग ह्वै निवारति मानि मन मैं त्रास ॥३८॥
लाल को लंपट-दसा देखत लसति भ्रुव भंग।
मंद मुसकनि-संग उपजति चाह अमृत-तरंग ॥३९॥
प्रानसम सहचरि बिसाखा नरम बचननि बोलि।
भावना नवबधू-मुख तैं देति घूँघट खोलि ॥४०॥
मंजु मंजुल कुंज ढिग ही तरनितनया-घाट।
पुरट मनि मरकतनि की तति तहाँ मंजन-ठाट ॥४१॥
बहुत बिधि जलकेलि के सुख लेत देत सुजान।
रूप-जोबन-मद-छके मिलि करत मादक-पान ॥४२॥
मानसर सुभ थान तिहिं ढिग नव तमालनि पाँति।
चढ़ि सतेसनि बढ़ि महा रुचि करत सुख बहु भाँति ॥४३॥
कमल-कुल-मंडलनि मधि मधि साधि राखत नाव।
माधुरी के धाम दंपति रचत रुचिर बनाव ॥४४॥
सलिल सींचनि दृगबिमोचनि मुख मरोचनि फैलि।
झीन पट तन लपट अनुपम निरखि छाकत छैल ॥४५॥
कबहुँ पैरत चुभक लै लै दूरि लौं दुरि जात।
अति तृषित रस प्यास रसनिधि नैकहू न अघात ॥४६॥

३७–मुकुर–मुकर (लंदन)। ४०–देति–देखि (वृंदा०)। ४१–ठाट–बाट (वृंदा०)। ४६–रसनिधि–सरनिधि (वृंदा०)।

[३६] दसन० = दंतक्षत। उरसि=छाती पर। [३७] गंड०=कनपटी। रद० = दाँतों की गोल छाप। मुकर = दर्पण। [४०] सहचरि = सखी। नरम = (नर्म) परिहास। [४१] पुरट = सोना। तति = पंक्ति। मंजन = मार्जन, स्नान। [४३] सतेस = फुरती, शीघ्रता। [४६] चुभक=डुबकी।

तीर मनि-चौकान पै छबिभौर लीने साथ।
आनि ठाढ़े होत सब मिलि बसन टपकत पाथ ॥४७॥
नख-चरन-मदअंतिका-रुचिरचनि जानत नैन।
रचति मति नति ठनति मनसा लेति चुबन चैन ॥४८॥
पलटि पट सजमत केसनि मृदुल अग अगोछ।
बागियै मनिमुकर-आभा-ओघ पट पद पाछि ॥४९॥
चद्रमल्ली-पुज की नव कुज बिहरत आय।
जहाँ बृंदा अति भली बिधि रची बनक बनाय ॥५०॥
पदकमय मडल मनोहर मृदुल आसन आजि।
रूपरासि किसोर दोऊ दिपत बैठ बिराजि ॥५१॥
बरन बरन दुकूल अति सुखमूल सजत सवारि।
जलज-भूषन भावते जगमगे अंगनि धारि ॥५२॥
सरस सोधे बहुत बिधि के रचत बेलिन चोंप।
पहिरि पहिरावत परस्पर उपजि मनसिज कोंप ॥५३॥
बिबिध मेवा मधुर लोने धरे उर अभिलाषि।
कुदबेली हितनवेली प्रति सराहत चाखि ॥५४॥
बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल।
बदन बिच बिच बचन रसमै लसत जोतिनि जाल ॥५५॥
ललित रागिनि तान की धुनि राच रहे रिझवार।
स्रवनपुट सहचरिनि के पूरत महा रसधार ॥५६॥
बीनबादन-स्वाद परम प्रबीन ललिता सग।
उपज मन की लेति मनु है सरस बरसति रंग ॥५७॥

४७-चौकान-चौकीन (लदन)। ४९-ओघ-ओप (वही)। ५३-परस्पर-परापर (लंदन)। ५५-बारा-बीरी (वही)। ५७-है-दै (वही)।

[४७] चौका=वर्गाकार चौकोर पत्थर। पाथ=जल। [४८] मदअंतिका=मदयतिका, मल्लिका, बेला। नति=विनय। [४९] सजमत=एकत्र करते, बटोरते हुए। ओघ=समूह, बाढ़। [५०] मल्ली=बेला। बृंदा=राधा। [५१] पदक=पैर के चिह्न। आजि=बिछाकर। [५५] अदन=खाना।

मुरलिका मधि स्यामसुंदर रचत सुर - बिस्तार।
नादरस - सागर तरगित होत बारंबार ॥५८॥
रीझहू रीझति बिबस ह्वै लखि रसिक रिझवार।
द्रुमलता अरु बर बिहगम लहत पुलक अपार ॥५९॥
पवन गवन थकै सरित जल महा मोहन नाद।
सरसुती भूली अपुनपौ कहै कौन सवाद ॥६०॥
समय बिथकित चकित चेतन रही नाहि सम्हार।
धन्य बृंदारन्य रम्य अगम्य बिसद बिहार ॥६१॥
एकरस दपति मुदित नवकेलि कँ आधार।
घमड़ि सुर-रस रमड़ि नित आनदघन - आसार ॥६२॥
काहि सुधि निसि भोर की इहिँ केलि- आसव-पान।
आपनेँ गुनरूप को नित करत हैं मिलि गान ॥६३॥
ये कलाधर प्रेम के तजि नैन अतुल अखंड।
बनबिनोद - प्रसाद सौँ पावन अखिल ब्रह्मड ॥६४॥

———

५८—तरगित—नरगनि (वृंदा०)। ६४—बन—घन (वृंदा०)।

[६२] रमडि = बरसकर। आसार = वृष्टि।

व्रजप्रसाद

चौपाई

नंदगाँव बरसानैं बसौं । सोभा निरखौं हरषौं लसौं ॥ १ ॥
दुहूँ घरनि की चारयौं ओर । गावत फिरौं साँझ अरु भोर ॥ २ ॥
मोहन - राधा - मगल - गीत । अति मनभावन परम पुनीत ॥ ३ ॥
सुख सोहिले मनाऊँ सदा । या ब्रज यह आनद संपदा ॥ ४ ॥
जसुमति नंद कीर्ति वृषभान । ब्रज पालत लालत निज प्रान ॥ ५ ॥
इनके घरनि सदा त्यौहार । नित नित ब्रज मैं हित-ब्यौहार ॥ ६ ॥
यह सुख देखि जियैं हँसि खेलि । बरनौं ब्रजमडन की केलि ॥ ७ ॥
धन्य धन्य मेरो बड़भाग । या ब्रज सौं सरस्यौ अनुराग ॥ ८ ॥
या ब्रज को सुख हौं हीं जानौं । या ब्रज बसि जस-रसहि बखानौं ॥ ९ ॥
हौं ब्रज को ब्रज मेरो नित ही । पाल्यौ पोख्यौ इनके हित ही ॥१०॥
ब्रज के खरिक खोरि नित देखौं । भागनिकाई लेखैं लेखौं ॥११॥
ब्रजबासिन को निज परिवार । मन-आँखिन सुख देत अपार ॥१२॥
ब्रज की साँज महा सुखदाई । सहज माधुरी कही न जाई ॥१३॥
गोधन खरिक खेत अरु क्यार । गोरस दहल नाज अरु न्यार ॥१४॥
सुखो सदा ब्रजपति कैं राज । सिद्ध करत मनचीते काज ॥१५॥
रसभीज्यौ ब्रज रंग स्याम कैं । मंगल गहमह धाम धाम कैं ॥१६॥
ब्रजसंपति मो नैननि दांसै । या ब्रज कौं नित देत असीसै ॥१७॥
यह ब्रज सुबस बसौं ऐसैं ही । या ब्रज बसौं रसौं जैसैं ही ॥१८॥
बन बरहे ब्रज के नित हरे । ग्वारनि गायनि के हित भरे ॥१९॥
बिहरत मोहन मदन गुपाल । कदम पसेहू ताल रसाल ॥२०॥

१५–चीते–चित (वृंदा०) ।

[४] सोहिले = मंगल । [१४] खरिक = गोचरभूमि । क्यार = केदार, क्यारी दहल = कुंड । नाज = अनाज, धान्य । न्यार = नियार) भुस आदि । [१९] बरहे = नाले । [२०] पसेहू = कोई पेड़ । रसाल = आम ।

छाँह छाँह चायनि भरि बैठति । बन के सघन सदन मैं पैठति ॥२१॥
बहुत भाँति के सुखनि सकेलति । किलकति मुलकति बिहरति खेलति ॥२२॥
नैनन के तारे ब्रजमोहन । सदा बिराजौ सोहन जोहन ॥२३॥
सरस सरोवर जमुना - तीर । बिहरत सदा कान्ह बलबीर ॥२४॥
जित तित ही नित सुखनि समाज । धन्य धन्य ब्रजपति को राज ॥२५॥
मोद बिनोद गाँव गाँवनि है । नित नित ब्रजमोहन आवनि है ॥२६॥
गोधन - सिखर खरई रहैं । फूलि फैलि गोधन को चहैं ॥२७॥
ऐसे ब्रज कौं देखत रहौं । ब्रज की सोभा कैसैं कहौं ॥२८॥
यह ब्रज दरसै जगत - उज्यारो । अति प्यारो ब्रजलोचन-तारो ॥२९॥
रोम रोम सींचे ब्रजरस मैं । ब्रज बसि बिबस फिरौं ब्रज बसि मैं ॥३०॥
ब्रजबीथिन ब्रजबागनि फिरौं । छकौं थकौं ब्रज हेरौं हिरौं ॥३१॥
यह ब्रज मोकौं अति ही भावै । जित तित मोहन मोहि दिखावै ॥३२॥
ब्रज की भेट सहेट सुहाई । रह्यौ सदा आनँदघन छाई ॥३३॥
भजिभजि रहत कान्ह ब्रजबासा । मो मन आँखिन के सुखरासी ॥३४॥
सबै ठौर ब्रज स्याममई है । मन नैननि यह सहज भई है ॥३५॥
ब्रज मैं मोहन माद नयौ है । ब्रज मो कौं सुखदैन भयौ है ॥३६॥
यह ब्रज भरै भाव सौं मोहि । ब्रजमोहन की मूरति जोहि ॥३७॥
ब्रज-जीवन - ब्रज जीवन मेरो । रस-प्यावन रस - पोवन मेरो ॥३८॥
बसिबे को सुख ब्रज मैं बसै । यह ब्रज मेरी आँखिनि लसै ॥३९॥
जा कछु चैन होत ब्रज हेरैं । लहत सु मोहन बसि मन मेरैं ॥४०॥
ब्रजके चरित कहत नहिं आवैं । मो मन लोचन चाहि सिरावैं ॥४१॥
भूरि भाग मेरे ब्रज बसि कै । सरस्यौ हित ब्रजरूप दरसि कै ॥४२॥
ब्रजनायक ब्रजराज - दुलारो । रूपरासि ब्रज को उजियारो ॥४३॥
लीलामगन मोहिं ब्रज दरसै । नेह - मेह मोही पै बरसै ॥४४॥

३२–मोहिँ–मोह (लदन) ।

[२१] छाँह० = छाया भी छाया में चाव से बैठती है । मुलकति=प्रसन्न होती है । [२७] गोधन=गोवर्धन पर्वत । गोधन=गायों का झुंड । [३१] हिरौं=खो जाऊँ ।

ब्रजरस मैं भीज्यौ ब्रजनायक । ब्रज मैं मोहि महा सुखदायक ॥४५॥
जित जैयै तित मोहन पैयै । ब्रज बसि ब्रज को उदौ मनैयै ॥४६॥
ब्रज को भाग भावतो मोहन । सफल करत नित नित मो जोहन ॥४७॥
स्यामरूप आनंदनि भरथौ । मोहि दीसि या ब्रज मैं परथौ ॥४८॥
यह ब्रज मोहन यह ब्रजमोहन । दुहूँ एक से लागत सोहन ॥४९॥
ब्रज को बिभौ देखि मन फूलै । यह ब्रज मोकौं हित-अनुकूलै ॥५०॥
मो मन भीज्यौ ब्रजबिनोद है । चहूँ कोद आनँदपयोद है ॥५१॥
यह ब्रज नित सुखसिंधु कलोलै । ब्रज को चंद सदा ब्रज डोलै ॥५२॥
आँखिन को सुख ब्रज-दरसन है । आनँदघन बरसन सरसन है ॥५३॥
अहोभाग या ब्रज कौं लखौं । ब्रज की सींव न कबहूँ नखौं ॥५४॥
ब्रज को बास बस्यौ मन-नैननि । याको रस बरसत है बैननि ॥५५॥
कहा कहौं या ब्रज की बात । ब्रजमोहन लखि बैन सिरात ॥५६॥
ठौर ठौर ब्रजमोहन लखियै । महा रूपमाधुरी परखियै ॥५७॥
या ब्रज सौं हित-चित को नातो । ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस-माँतो ॥५८॥
सजल स्यामघन ब्रज ब्रजमोहन । मन अरु नैन भावतो दोहन ॥५९॥
ब्रज को बास कछु लागत प्यारो । लखि ब्रजमोहन होत न न्यारो ॥६०॥
ब्रज दरसै दरसै ब्रजमोहन । लग्यौ रहत मन-लोचन गोहन ॥६१॥
बिहरौं ब्रज की गलियनि गलियनि । मानत मनमोहन की रलियनि ॥६२॥
ब्रज बसि भोर साँझ यौं बितऊँ । ब्रजमोहन के कौतुक चितऊँ ॥६३॥
ब्रज को सुख-सवाद मन पोषै । ब्रज मोकौं सब ही बिधि तोषै ॥६४॥
यह ब्रज मेरो मंगल - ऐन । ब्रज मंगल - स्वरूप मन-नैन ॥६५॥
ब्रज मैं दिपै स्याम की जोति । मो दृग जगमग जगमग होति ॥६६॥
ब्रज के सुखै कहि सकै कोन । देखत रहौं कहौं गहि मौन ॥६७॥
ब्रज अपनो रस उफनि बहावै । नानरू कहूँ कहत क्यौं आवै ॥६८॥
कहा कहौं ब्रजसुख की कहियै । देखत देखत देखत रहियै ॥६९॥
ब्रज को नाम लेत हिय हेत । ब्रज है चाहि चित चेत अचेत ॥७०॥
कछु कहि परै कहा ब्रजरीति । ब्रज पूरन ब्रजमोहन - प्रीति ॥७१॥

[५४] सींवँ=सीमा । नखौं=लाँघूँ । [६२] रलियनि=क्रीड़ा ।

ब्रजमोहन - सनेह ब्रज भोयौ । ब्रजमोहन ब्रज-मोह - समोयौ ॥७२॥
निपट लटपटे ब्रज अरु मोहन । निरखत ब्रजहि अटपटे जोहन ॥७३॥
जैसो यह ब्रज लागत नीको । तैसो ही सरूप ब्रज ही को ॥७४॥
अहो अहो ब्रज अरु ब्रजनायक । ललित किसोर परम सुखदायक ॥७५॥
ब्रज मैं मोहन - मुरली बजै । ब्रजगोरिनि - समाज सुख सजै ॥७६॥
गैल घाट ब्रज के रसमसे । ब्रजमोहन की लीला लसे ॥७७॥
ब्रजसनेह सौं सानि कर्‌यौ है । यह ब्रज लै ब्रज माहिं धर्‌यौ है ॥७८॥
या ब्रज सो यह ब्रज ही आहि । यह ब्रज चाहि और सुधि काहि ॥७९॥
ब्रजकिसोर ब्रजमोहन स्याम । ब्रजजीवन ब्रजनायक नाम ॥८०॥
ब्रज मैं करत खेल मनभाए । ठौर ठौर आनँदघन छाए ॥८१॥
यह ब्रज आँखिन आगैं रहै । सूझै बूझै यह ब्रज यहै ॥८२॥
यह ब्रज एक गहि रह्यौ मन कौं । ब्रज ही पालै पूरन पन कौं । ८३॥
अति उदार ब्रजराजकुमार । नित या ब्रज सरसत सुखसार ॥८४॥
चलत भोर गायनि लै बन कौं । पालत ब्रजवन के हित-पन कौं । ८५॥
ब्रजबन बरसि आपने रसै । ब्रजमोहन आनँदघन लसै ॥८६॥
या ब्रज की हौं बलि बलि जावँ । धनि ब्रज धनि ब्रज मोहन नावँ ॥८७॥
यह ब्रज देखि नैन - मन मोहै । या ब्रज की पटतर ब्रज सोहै ॥८८॥
ब्रज अनूप ब्रजमोहन - रूप । आँखिन बस्यौ सरूप अनूप ॥८९॥
देखि जियौं ब्रज - सुंदरताई । स्यामरूप - सुषमा ब्रज छाई ॥९०॥
यह ब्रज मोहिं मोहनै दरसै । दरसि दरसि हौंसनि हिय सरसै । ९१॥
यह ब्रज अचिरज-रस सौं भर्‌यौ । चखि भरि मैं प्यासनि ही धर्‌यौ ॥९२॥
मोहन ब्रज को मोहन रूप । देखत बनै सरूप अनूप ॥९३॥
सींचे दृगनि सुरस के सोतन । उझलि पर्‌यौ ब्रज को रस मो तन ॥९४॥
ब्रजसरूप नैननि मैं छायौ । ब्रजमोहन मोहन ब्रज पायौ ॥९५॥
ब्रज को ब्रज मो नैननि जोहै । मोहन ब्रज मोही को मोहै ॥९६॥

७३—जोहन—लोहन (वृंदा०) । ७७—घाट—घटा (वही) । ७८—कर्‌यौ—कह्यौ (वृंदा०) । ८०—जीवन—मोहन (लदन) । ८६— ब्रज—बन (वृंदा०) ।

[७३] लटपटे = एक में लिपटे । [९४] सोत = स्रोत । तन = ओर ।

ब्रज को सुख ब्रजमोहन सजै । ब्रज मैं सुजस - दुंदुभी बजै ॥९७॥
ब्रज-जुवराज सदा सुख भोगै । को समझै ब्रज-बिरह - संजोगै ॥९८॥
बिछुरि मिलन मिलि बिछुरन ब्रजरस । या ब्रज मैं पूरन अचिरज-रस॥९९॥
ब्रजानंद ब्रज पूरन महा । या ब्रज को सुख कहियै कहा ॥१००॥
यह ब्रज देखि देखि ही रहियै । मौन कहावै तौ कछु कहियै ॥१०१॥
अकथ कथा है या ब्रजरस की । बिबस करत ब्रजरस पाबस की ॥१०२॥
ब्रज के बसै बसै ब्रज हियैं । बढ़त प्यास ब्रजरस ही पियैं ॥१०३॥
यह ब्रज परम प्रेम - फुलवारि । ब्रज बसि नवरंग स्याम निहारि ॥१०४॥
भए नैन ब्रजचंद - चकोर । निरखत रहत साँझ अरु भोर ॥१०५॥
यह ब्रज महामोद को मूल । या ब्रज भरी भावती फूल ॥१०६॥
लग्यौ रहत ब्रजरस को चसका । ऐसो है चसको ब्रजरस का ॥१०७॥
रससरूप ब्रजमोहन स्याम । आँखिनि बसे रहत ब्रजधाम ॥१०८॥
सोवत जागत ही ब्रज दरसै । ब्रजमोहन आनँदघन बरसै ॥१०९॥
ब्रज ब्रजमोहन अति रससने । दोऊ आहिं एक ही बने ॥११०॥
मोहिं सदा देखन ही भावै । ब्रजमोहन ब्रज सुनि दरसावै ॥१११॥
अहो अहो ब्रजरस की रीति । अहो अहो ब्रजबास-प्रतीति ॥११२॥
अहो अहो ब्रज को अनुराग । अहो अहो ब्रज को सोभाग ॥११३॥
अहो अहो ब्रज को सब लोग । नित नित मोहन-रस को भोग ॥११४॥
अहो अहो ब्रज को व्यौहार । नित ही ब्रज मोहन त्यौहार ॥११५॥
अहो अहो ब्रज अहो अहो है । ब्रजमोहनहि मोहि अति सोहै ॥११६॥
यह ब्रज देखि सिराने लोचन । यह ब्रज निरखि थिराने लोचन । ११७॥
ब्रजसरूप मों डीठि खची है । महामोद की रचनि मची है ॥११८॥
जैसो यह ब्रज लागत प्यारो । जानत ब्रजलोचन को तारो ॥११९॥
ब्रजमोहन ब्रज है मेरे धन । ब्रजमोहन ब्रज सौं मेरो मन ॥१२०॥
ब्रज-सुख-लाभ मन-दृग बसै । ब्रजमोहन-सुरूप-बिधि लसै ॥१२१॥
ब्रज को दास निरंतर रहै । ब्रजमोहन - लीलारस बहै ॥१२२॥

११४—मोहन—मोहन (लंदन) । १२०—ब्रज सौं—मन को (वृ दा०) । १२२—बहै—यहै (लंदन) ।

[१०६] फूल = प्रसन्नता । [१२२] बहै=प्रवाहित हो ।

ब्रज आनँदघन उनयौ दरसै। झूमि झूमि मोहन रस बरसै ॥१२३॥
भरयौ पपीहा चौंपनि सोहै। ब्रजरस ब्रजमोहन-मन मोहै ॥१२४॥
रसप्यासनि बरसै या ब्रज मैं। ब्रज समोय राख्यौ अचरज मैं ॥१२५॥
जै जै ब्रज जै जै ब्रजनायक। जै जै ब्रजसमाज-सुखदायक ॥१२६॥
ब्रज ह्वै बस्यौ बैन अरु मौनैं। मन ब्रज बसौ थम्यौ तजि गौनैं ॥१२७॥
इकरस इक जस ब्रज को गह्यौ। ब्रजजीवन-रस-ब्रज बसि लह्यौ। १२८।
रसना ब्रजरस नीकैं चाख्यौ। सोधि साधि हियरा भरि राख्यौ ॥१२९॥
ब्रज बसि ब्रजरस बढ़्यौ हुलास। सफल भयौ मेरो ब्रजबास ॥१३०॥
यह ब्रजबास न कबहूँ छूटै। ब्रजसरबसु दै दै मन लूटै ॥१३१।
अब तौ ब्रज मन-मोहन लग्यौ। ब्रजमोहन - लीलारस-पग्यौ ॥१३२॥
मन तन ब्रज ह्वै व्यापक भयौ। अंतर सबै दूरि भजि गयौ ॥१३३॥
ब्रजप्रसाद तन मन कौं मिल्यौ। उझिलि उझिलि ब्रजरस मैं झिल्यौ॥१३४॥
मन तन मिलि ब्रजरस के बसै। याही तें नित ही ब्रज बसै ॥१३५॥
जितहि रहै तित ब्रज मैं रहै। याको मरम न कोऊ लहै ॥१३६॥
ब्रजमोहन अंतर मैं पैठि। निज ब्रजसहित बसे तन पैठि ॥१३७॥
तन मन एकमेक ब्रज - रंग। ब्रजमोहन ब्रज एकै संग ॥१३८॥
ब्रज को बास निरंतर आहि। यह ब्रजबास मिलै धौं काहि ॥१३९॥
ब्रजप्रसाद ब्रजबासहि पायौ। ब्रजरस यौं तन मनहि समायौ ॥१४०॥
या तन मन मैं ब्रज ही बसै। कौन लहै या तन - मन-दसै ॥१४१॥
तन-अभिमानी मरम न पावै। ब्रजानंद-रस मनहि न भावै ॥१४२॥
ब्रजप्रसाद-रस मन तन-न्यारौ। ब्रजरसमय तन मनहि बिचारौ ॥१४३॥
ब्रजप्रसाद - रस रसना भिदै। पावै भेद भरम सब छिदै ॥१४४॥
ब्रजप्रसाद - रस स्वादहि लहै। रस ही परस-सवादहि कहै ॥१४५॥
ब्रजप्रसाद - रस-महिमा भूरि। निगमागमनि बताई दूरि ॥१४६॥
ब्रजप्रसाद - रस चेटक महा। जो पावै सो गावै अहा ॥१४७॥
धन्य धन्य यह ब्रजप्रसाद-रस। रसिक-मुकुटमनि सरस कृपाबस ॥१४८॥

१३१–सरबसु–रसबसु (वृंदा०)। १३७–पैठि–बैठि (लदन)।

[१३५] बसै=वश में । बसै=बसता है।

प्रान पलैं या ब्रजप्रसाद तैं। गिरा रसवती या सवाद तैं ॥१४९॥
ब्रजप्रसाद रसस्वाद प्रबंध। महा मनोहर मधुर सुगंध ॥१५०॥
ब्रजप्रसाद रस-रसिकनि सगति। पैयै परम प्रेम - पन-पगति ॥१५१॥
ब्रजप्रसाद ब्रज रसिया दियौ। रोम रोम रसमै इन कियौ ॥१५२॥
ब्रजप्रसाद ब्रजरस - उद्गार। रसिक-सजीवन प्रान-अधार ॥१५३॥
ब्रजप्रसाद को पायौ पारस। नित ही गुन गाऊँ तजि आरस ॥१५४॥
ब्रजप्रसाद को पूरन भाग। लह्यौ कह्यौ उर भरि अनुराग ॥१५५॥
भजी भूख पै तृपति न तनकौ। कहा कहौं जाँचत सुक सनकौ ॥१५६॥
ब्रजप्रसाद-महिमा मन दीजै। पाय पाय जीजै रस पीजै ॥१५७॥
ब्रजप्रसाद पायौ अनयास। पाय पाय बाढ्यौ बिसवास ॥१५८॥
ब्रजप्रसाद तैं सब दुख टरे। तन मन परमानँद-रस-भरे ॥१५९॥
ब्रजप्रसाद को पूरन पोष। रसबस लह्यौ प्रान-परितोष ॥१६०॥

———

१५१–रस–सुख (लदन)। १५३–रस को ब्रजरस (वृ दा०)।

मुरलिका-मोद

चौपाई

मोहन की मुरली बन बाजी। मादक अधरनि आय बिराजी ॥१॥
धुनि सुनि छाकनि छाय रही है। प्राननि मिलि मँडराय रही है ॥२॥
सुर की भरनि धीर कौं रितवै। बिषम पीर हियरा पै बितवै ॥३॥
सुंदर मुसकौहैं मुख सोहैं। तान-कटाछन मरमहि पोहैं ॥४॥
पूरनि मैं मुख-सुषमा पूरै। चेटक चटक चौंप चित चूरै ॥५॥
रुचिर अग्ररुचि दसन अधर दबि। सो जानै जिन जोही यह छबि ॥६॥
भौंह भाल नासिका निकाई। अँगुरिनि नचन संग अधिकाई ॥७॥
नाद रूप के रूप रयौ है। एकमेक ह्वै प्रगट भयौ है ॥८॥
सुघरसिरोमनि राग रच्यौ है। मुरली सौं अनुराग मच्यौ है ॥९॥
बन-बेलिनि धुनि पूरि रही है। जमुना-गति क्यौं परति कही है ॥१०॥
दुहुँ तट सुरनि पाटि यौं राख्यौ। थकी छकी सु कौन रस चाख्यौ ॥११॥
पुहप-पुंज कुंजनि झर लाग्यौ। धुनि-बस द्रवीभूत गुन जाग्यौ ॥१२॥
टग लगाय खग-रूप निहारैं। स्रवन-नैन-फल सग विचारैं ॥१३॥
थिर चर कैं अंतर धुनि व्यापी। बिषम रागिनी कान्ह अलापी ॥१४॥
सब सुख भाग निकट ह्वै पावैं। हम घर घिरी उदेगनि छावैं ॥१५॥
अब ऐसी गति आनि बनी है। कानन सालति सुरनि अनी है ॥१६॥
बिन बाजेहूँ बजति रातदिन। कौन भाँति की गहनि गही इन ॥१७॥
घायल प्रान घूमि घुरि मूझैं। सुर सामुही घरनि घिरि जूझैं ॥१८॥
बिष की लहरि सुरनि सँग सरसै। तीखी ताननि सरसै बरसै ॥१९॥
मुरली कित को बैर बिसाह्यौ। कियौ बिधाता याकौ चाह्यौ ॥२०॥
जगै आप अरु हमैं जगावै। तातौ धुनि उर आग लगावै ॥२१॥
क्यौं ब्रज बसै कौन बिधि जीवै। बिष सो नाद अमृत लौं पीवै ॥२२॥
बिसवासी कान्हौ बस याकैं। कछु न बिचारत या रस छाकैं ॥२३॥
याही सौं अनुराग बढ्यौ है। को जानै इन कहा पढ्यौ है ॥२४॥
जगमोहनहूँ मोहि लियौ है। रुकै बहुरि कौन को हियौ है ॥२५॥

११–यौं–पै (लदन)।

[१३] टग=टकटकी। [१८] मूझैं=मूर्छित होता है।

अधरनि तेँन होति छिन न्यारी। ब्रजजीवनहीँ जिय की प्यारी ॥२६॥
पूरन प्रेम प्रगट पन पालै। घरघाली औरनि घर घालै ॥२७॥
जु कछु करै सु याहि सब छाजै। निधरक भई रैनदिन गाजै ॥२८॥
धनि सुबंस जिहिँ प्रगट भई है। सब सुखरासि सकेलि लई है ॥२९॥
याके पाय पूजिबे लायक। रच्यौ रहत जान्यौँ ब्रजनायक ॥३०॥
कौन काज गुनरूप हमारो। जौ परसै नहिँ प्राननि प्यारो ॥३१॥
परस रह्यौ दरसहू न पैयै। कौन भाँति यह जीव जिवैयै ॥३२॥
निकसि न सकत रहत घर घेरी। जरि किनि जाहु लाज की बेरी ॥३३॥
अब सब त्यागि लागिहैँ गोहन। अक भरैँ निसक ब्रजमोहन ॥३४॥
कोऊ कहा हमारा करिहै। उर मैँ अर्थो भावतो हरि है ॥३५॥
जिन बजाय बुधि सुधि सब हरी। प्रेम परनि ताही सौँ परी ॥३६॥
सब कछु जाहु रहौ पन पिय को। मुरलीधर जीवन या जिय को ॥३७॥
अब तो सुरसवाद - सोहिली। जान्हरूप ब्रजचदहि मिली ॥३८॥
कोन सकै करि न्यारी हमैँ। अपने रमन रग मिलि रमैँ ॥३९॥
एक सग सुख लहि लहि जियैँ। आँखिन भरि सुरूप-रस पियैँ ॥४०॥
वसी सखी मिलाप रचावै। नाचै मिलि जो नाच नचावै ॥४१॥
सरस रास बृंदावन माँही। जमुना - तीर कलपतरु - छाँही ॥४२॥
आछी भाँति लेहि रस अपनो। धुनि सुनि जगी टर्यौ डर सपनो ॥४३॥
मुर..धर चिर जियौ प्रानधन। नित सरसैँ बरसैँ आनँदघन ॥४४॥
मुरली - सुर धुरवा-रस भरे। काननि छ्वै प्राननि पर ढरे ॥४५॥
हित-झर लग्यौ निरतर ऐसैँ। अतर सह्यौ परत अब कैसैँ ॥४६॥
पिय सुजान बसी सुर - जान। चढि बढि मिली करैँ रसपान ॥४७॥
डिग तेँ टरैँ न पूरन पन की। भई चातकी आनँदघन की ॥४८॥
श्रीबृंदावन श्रीजमुना - तट। जुगल घाट सब बिधि सुख-संघट ॥४९॥
गोप मास श्रीकृस्न पच्छ सुचि। सबत्सर अठानबै अति रुचि ॥५०॥
मुरली-सुर-सुख कहत न आवै। सो जानै जो सुनि गुनि गावै ॥५१॥

३६—परनि०—परमता तिहि सोँ (वृं दा०)। ४५—छ्वै—ह्वै (लंदन)।

[३३] बेरी=बेड़ी, बंधन। [३८] सोहिली=शोभित।

मनोरथमंजरी

राग बिहागरो] [इकताल मूलताल

राधामदन गुपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध - फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ॥ १ ॥
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सो तिन पर बगराऊँ ॥ २ ॥
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झबा मुकतान को झालरैं झुलाऊँ ॥ ३ ॥
सूची - गुन गस गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ॥ ४ ॥
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधौ साधि कै सुख-बिबस बसाऊँ ॥ ५ ॥
मनि - चौकी ढिग राखि कै हित-सौंज सजाऊँ ।
रुचित उचित मधुपान के भाजननि भराऊँ ॥ ६ ॥
मनि-चषकनि रचि राखि कै रुचि - रंग बढाऊँ ।
महल-टहल बहु भाँति की हित-सहित सधाऊँ ॥ ७ ॥
लाल बिहारिनि कौं तहाँ रसरीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाष पुजाऊँ ॥ ८ ॥
उमग लाज-छबि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या बिधि निज करतूति को नीकैं फल पाऊँ ॥ ९ ॥
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसें कहौं उठि बाहिर आऊँ ॥१०॥

२—भाय—भाव (लदन) । ७—'लदन' में नहीं है ।

[३] पाट=रेशम । झबा=झब्बा, गुच्छा । [४] सूची=सूई । [६] सौंज=सामग्री । रुचित=रुचिकर [८] तलप=सेज ।

द्वार-झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।
टेरि लेहिं तब लाडिलो-हित हुलसि सिहाऊँ ॥११॥
कछू कहैं लगि कान सो सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की सपत्ति सखो मनमाँझ दुराऊँ ॥१२॥
नैन - सैन जोबन - छको लखि भाग मनाऊँ ।
पान - पात्र मादक-रसैं रुचतो भरि प्याऊँ ॥१३॥
आपुस की रसमसनि कौं क्यौं बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ॥१४॥
जुगल बदन मद - मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल झेल अनुराग की मतिछकनि छकाऊँ ॥१५॥
बीरी सरस सुगधमै रुचि जानि खवाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौं सकुचनि पहिराऊँ ॥१६॥
औसर उसरि चल्यौ चहौं कछु उकति उठाऊँ ।
आँचरु ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ ॥१७॥
मोहिं भुज भरैं छकनि सौं जिय समझि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसबाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ॥१८॥
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ ।
महामोद मानैं भटू ज्यौं ज्यौं अनखाऊँ ॥१९॥
अकथ कथा हित - रीति की हौं कहा चलाऊँ ।
हौं जानौं कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ॥२०॥

१२–कछू–कछु जु (वृंदा०) । १५–मद–मन (वृंदा०) । १६–खवाऊँ–पचाऊँ (लंदन) । १७–उसरि–ऊसर (लंदन) । छुटाऊँ–छुदाऊँ (वही) ।

[११] जवनिका=परदा । छुटकाऊँ=डाल दूँ, खोल दूँ, खींच दूँ । [१३] रुचतो=रुचनेवाला । [१४] रसमसनि=प्रेमपूर्वक मिलना । [१७] उसरि०=उठकर चलना चाहूँ । उकति=उक्ति, बात ।

भाजि इकौसी ह्वै रहौँ कनसुवौ लगाऊँ।
सुनि सुनि सींचनि प्रान की नाहीँ अरु हाँऊँ ।।२१।।
मानि बधाई चाव सौँ मंगल गुन गाऊँ।
बैठि आपनी ठौर हौँ मृदु बीन बजाऊँ ।।२२।।
केलि - रसमसे मिथुन कौँ सुख - नींद अनाऊँ।
या बिधि मनभायो करौँ जगि रैनि बिताऊँ ।।२३।।
बड़े भोर अनुराग सौँ भैरवी जमाऊँ।
अति रति - मतवारेनि कौँ नव प्रात जताऊँ ।।२४।।
फिरि फिरि पट-तानैं तऊ बहुरथौं अहुराऊँ।
निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ ।।२५।।
आरस - भरी जभानि पै चुटकीनि चिताऊँ।
अलक - तिलक - सेवा - समै आरसी दिखाऊँ ।।२६।।
बनैं ठनैं लाडिलेनि कौँ आँगन पधराऊँ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरी चटकाऊँ ।।२७।।
निरखि डगमगी डगनि कौँ भुज गहि सम्हराऊँ।
नित नूतन रसरीति की चित चौंप बढाऊँ ।।२८।।
तिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रसाऊँ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौँ कहा मिलाऊँ ।।२९।।
सहज रँगीलो जोट कौँ जिय - बीच बसाऊँ।
चित - चातक आनँदघनै रस - परस रमाऊँ ।।३०।।

२१—इकौसी—भुकौसी (वृं दा०)। २४—प्रात—बात (वही)। ३०—सहज—सरस (वृं दा०)।

[२१] इकौसी=ओट और एकांत मैं। कनसुवौ०=टोह लूँ, छिपकर बातैं सुनूँ। हाँऊँ=हाँ भी। [२३] अनाऊँ=बुलाऊँ, लाऊँ। [२५] अहुराऊँ=हटा दूँ, खींच दूँ। [२६] चिताऊँ=चैतन्य करूँ। अलक०=केश सँवारने और तिलक लगाने के समय। आरसी=दर्पण। [२७] बनैं०=सँवारकर, सजाकर। अँगुरी०=उँगली चटकाऊँ। [२९] रसाऊँ=आनंदित करूँ।

ब्रजव्यवहार

चौपाई

नंदराय को ब्रज अति सोहै। नित नित ब्रजमोहन-मन मोहै ॥ १ ॥
प्रेमपग्यो जगमग्यो बिराजै। सुख-समाज साजत ब्रजराजै ॥ २ ॥
मोद-बिनोदनि भर्‌यो महा है। यासौं यही समान कहा है ॥ ३ ॥
घरघर चुहल चैन की रहई। जित नित गोधन की गहमहई ॥ ४ ॥
नगर नगरधारिन की छबि देखैं। जीवन जनम मानियत लेखैं ॥ ५ ॥
खेल्यो करत कान्ह जिन गलियनि। जसुमति-ललन आपनी रलियनि ॥६॥
सबको जीवन सब दृग-तारो। जसुमति-बारो जगत-उजारो ॥ ७ ॥
मैया को सुख कहत न आवै। कमलनयन लखि नैन सिरावै ॥ ८ ॥
बहुत खेल खेलत रुचि-रगनि। निरखि सिहाति समाति न अंगनि ॥९॥
सरस सपूती भागभरी है। सबसु खनिधि सु लिलार धरी है ॥१०॥
गोपकुवाँर स्याम के संगी। घुमड़े रहत नेह-नवरंगी ॥११॥
ललित लला लौं सब लडावति। जसुमति-हित-गति कहति न आवति ॥
सबकी बाखरि सब मिलि खेलत। ठौर ठौर सुखरासि सकेलत ॥१३॥
नंदराय के घर सुख जैसो। ब्रज की बाखरि बाखरि तैसो ॥१४॥
पूरन परमनेह सौं भोयौ। ब्रजजीवनि ब्रज सुखनि समोयौ ॥१५॥
गैयन लै बन चलत भोर जब। महाप्रेम की चुहल मचत तब ॥१६॥
जित की ओर चलत ब्रजमोहन। मन-दृग तित उठि लागत गोहन ॥१७॥
प्रेम सरक सबके उर सलै। ब्रजमोहन बन कौं जब चलै ॥१८॥
ग्वैंड़ै घेरि करत इकठौरी। बहुरँग धेन धूमरी धौरी ॥१९॥
जित तित ग्वार छबीले निकसत। मोहन त्यौं निहारि हँसि बिकसत ॥२०॥
हिलनि मिलनि मोहन सखान की। लखत बनै नाहिन बखान की ॥२१॥
या बिधि सकिलि होत इकठौरैं। गोचारन बन बिहरनि बौरैं ॥२२॥
मिलवति गाय आय नभ वाला। निरखति मनहिं मिलै नँदलाला ॥२३॥

[४] गहमहई = धूमधड़क्का। [६] रलियनि=क्रीड़ा। [९] सिहाति = प्रशंसा करती है। [१३] बाखरि = घर। [१८] सरक=वेदना।

बन घन ओट चोट हिय माँहीं। फिरि घर जैबे कौं मन माहीं ॥२४॥
मिस ही बिरमि करति लगि बातनि। गोरी भोरी भरी सुभाँतिनि ॥२५॥
सौंपति गायनि चौकसि कियैं। छिन छिन चितै चितै मुख जियैं ॥२६॥
सोचति हियैं द्यौस की बितवनि। कहत न बनत चलै फिरि चितवनि ॥२७॥
टहलन गाय टहलि चित जात। कहा कहौं ब्रज-हित की बात ॥२८॥

दोहा

ब्रजमोहनमै ह्वै रह्यौ, ब्रजबन जेतिक आहि।
सबकी मति गति साँवरो, और कछू सुधि काहि ॥२९॥

चौपाई

बन पैठत गैयन सँग मोहन। सखा साथ सब ही बिधि सोहन ॥३०॥
बरहे सघन सदा सुखदायक। हरे सजल हरि-गोधन-लायक ॥३१॥
बन बिनोद बिहरत बनवासी। बन घन मचत कोलाहल भारी ॥३२॥
अप अपनी रुचि सौं रुचि सानत। कान्ह कहत सोई मिलि मानत ॥३३॥
इक मन इक तन बनबन डोलत। गावत रीझत किलकत बोलत ॥३४॥
ब्रज के लोग महा बडभागी। सदा स्यामघन सौं लौ लागी ॥३५॥
ब्रज मैं बसत सुरति बन बन मैं। सबको भाव सबन के मन मैं ॥३६॥

दोहा

उरझ अनोखी प्रेम की, ब्रजमोहन कैं चाव।
सब ब्रज मैं उफनात हैं, ब्रजमोहन के भाव ॥३७॥

चौपाई

बन कौं चलत कलेऊ करिकै। कछुक पिछौरिनि छींकनि धरिकै ॥३८॥
पहरक बीति गएँ बन गएँ। छाक चलौ बन मैं मन दएँ ॥३९॥
ब्रजजननी को हित क्यौं कहियै। सब ब्रज ब्यापि रह्यौ नित वहियै ॥४०॥
पठवति छाक कोवँरी बार। उत तैं चलति दूध की धार ॥४१॥

[३१] बरहे=नाले। [३८] पिछौरिनि=दुपट्टों मैं। छींकनि=छींकों मैं लटकाकर। [३९] छाक=कलेवा। [४१] पठवति बार=भेजते समय। छाक०=कोमल कलेवा। उर=छाती।

बिजन बिबिध सजोए छाकनि । कही न परति मोह की छाकनि ॥४२॥
जसुमति रोहिनि को हिय-हेत । स्याम राम ब्रज-सिसुनि समेत ॥४३॥
घरघर ब्रजप्रेम को एक रस । अपने अपने भाव-चाव - बस ॥४४॥
जित तित छकिहारी जुरि चलीं । लगति रवाँनी ब्रज की गली ॥४५॥
सीसनि धरैं छाक की डरियनि । तकति गुपाल-भूख की बरियनि ॥४६॥
चोंपनि जरी चमक सौं चलैं । ललन-दरस कौं दृग कलमलैं ॥४७॥
कानन कै मुरली-धुनि सोधति । ठीक पारि तित ही कौं ओधति ॥४८॥
यकहि गुपालहि गैल पुकारति । उमगी परति प्रेम की आरति ॥४९॥
उत तें सुनि गुपाल की टेरनि । द्रुम चढि हेरि पीत पट फेरनि ॥५०॥
मधुमगलहि पठावैं न सोहैं । जाकैं छाक ताकहीं गोहैं ॥५१॥
लेत दौरि सिरन तें उतारि । भाग-साँज हित रहत निहारि ॥५२॥
गिरि की सिलनि ढाक के पातन । बिजन बिबिध सवाद अघात न ॥५३॥
मैयनि को हित छैयनि पालै । बन की केलि रुचन नंदलालै ॥५४॥
छकिहारी धावति लै छाकनि । वदन देखि डारति दृग-थाकनि ॥५५॥
बहुरि बहुरि छकिहारिनि आवति । जेंवन-सुख जननीनि जतावति ॥५६॥
भोजन-सुख सुनि महा सिहानि । सहज मोह मैयन की बानि ॥५७॥
यह नित ब्रजहित को ब्योहार । ब्रज मगल बिनोद त्योहार ॥५८॥
कछु दिन रहैं बगदि ब्रज-आवनि । ब्रज पर आनँदघन-बरसावनि ॥५९॥
नट गोपाल-भेष सब सजैं । बैन सृग दल आछैं बजैं ॥६०॥
गोधन धूरि धूँधरी महा । आवनि को सुख कहियै कहा ॥६१॥
चढि ओबरिनि बिलोकति गोपी । वासर-बिरह - चटक सौं ओपी ॥६२॥

[४२] बिजन=व्यजन छाकनि=कलेवा। छाकनि=तृप्ति । राम=बलराम । [४५] छकिहारी=छाक ले जानेवाली । रवाँनी=सुदर । [४६] डरियनि= डाली । बरियनि=समय, बेला । [४८] कानन० = कानों से मुरली की ध्वनि की आहट लेती हैं ठीक०=निश्चय कर लेने पर कि इधर से ही ध्वनि आ रही है उधर ही को चल पड़ती है । [५४] छैयनि=बच्चों को । [५७] सिहानि= लालसा । बानि=टेव, आदत । [५९] दिन०=दिन रहते । बगदि=पलटकर लौटकर । [६२] ओबरी=छोटा घर ।

रज-रँगमगे छबीले मोहन। आवत गावत गोधन गोहन ॥६३॥
उमँगि प्रेमनिधि-गोधन-ठाट। सोहत पूरन है ब्रज-बाट ॥६४॥
मंद मद गति सौं ब्रजचंद। दृगनि सिरावत आनँदकद ॥६५॥
दृग मिलि भेंट भावती होति। रज तें बढति दीठि हित-जोति ॥६६॥
खुलि खुलि मिलि घूँघट-पट टारि। चौंपनि भरति पलक अँकवारि ॥६७॥
हिय भरि नेहदसा-पन-पगी। आरति जोति चहूं दिसि जगी ॥६८॥
पैठत पौरि दौरि जसु माय: रोम रोम की लेति बलाय ॥६९॥
मोदभरो आरती उतारति। पानी वारि पियति जिय पारति ॥७०॥
बदन चूमि आँचर रज पोंछति। तपत नार पग धोय अँगोछति ॥७१॥
हँसि बैठति लै ललहिं गोद मैं। फूली अँग न समाति मोद मैं ॥७२॥
मधुर कौर कछु सुकर खवावति। ब्रजजीवनहिं ज्याय ज्यों ज्यावति॥७३॥
गोदोहन-सुख कहत न बनै। मन की खरक खरिक-रस सनै ॥७४॥
दुहनि दुहावनि जो रस दुहे। इन ब्रज-खरिकनि ही मैं सु है ॥७५॥
मधुर किसोर कमलदल-लोचन। सब ही बिधि सबकी रुचि रोचन ॥७६॥

दोहा

अतुल रूप-गुन-माधुरी, क्यौं मन नैन अघात।
लगे रहत दिनरात यौं, ब्रज बसि याहि घात ॥७७॥
प्रेम-बनिज-ब्यौहार की, लगी रहत ब्रज पैंठ।
निपट सुधाई मैं दुरी, ब्रजबासिन की ऐंठ ॥७८॥
आनँदघन ब्रज की कथा कहियै कहा बखानि।
मगन होत मन बचन हूं, परम प्रेम पहचानि ॥७९॥

चौपाई

निस के सुख-समाज की बातैं। कहिबे मैं नहिं आवति घातैं ॥८०॥
नवरंगी गिरिधर सुखदाई। ब्रज बसि ब्यापी प्रेम-लगाई ॥८१॥

[७३] सुकर=स्वकर, अपने हाथ से। [७४] खरक=खटक, चिंता। खरिक=पशुओं के बाँधने का स्थान। [७८]. बनिज=वाणिज्य। पैंठ=हाट। सुधाई=सीधापन; अमृत ही। ऐंठ=वक्रता, बाँकपन।

सो ब्रज प्रेम चहूँ बिधि देखौ। ब्रजबासिन ही सौं यह लेखौ ॥८२॥
ब्रज को ईस नंद बड़भागी। जाको सुजस-जोति जग जागी ॥८३॥
जसुदा-कूँख भागनिधि-खानि। प्रगट्यौ कृस्न-रतन सुखदानि ॥८४॥
ब्रज-जगाव मधि नायक सोहै। लीला ललित भाँति मन मोहै ॥८५॥
कबहुँक रसनिधान गिरधारी। गिरि-घटिया की सैल बिचारी ॥८६॥
ब्रज गोपिनि की आवनि गैल। ताकी रसिक साँवरे छैल ॥८७॥
मतु करि सखनि साँझ समझायौ। बड़े भोर को ठिकु ठहरायौ ॥८८॥
मुरली-धुनि संकेत सुनाय। जित तित तें सब लए बुलाय ॥८९॥
निकरो लै गोधन गिरि-घाँई। बन सबै मनमोहन दाँई ॥९०॥
खेलत चले भले यौं त्यागे। ब्रजजन-छबि निहारि अनुरागे ॥९१॥
महा कौतुकी कान्ह किसोर। हेरत हँसत जात सब ओर ॥९२॥
भागनि भरी हरी ब्रजभूमि। देखत फिरत स्याम घन झूमि ॥९३॥
बिहरत बिहरत गिरितट आए। दान लैन अभिलाषनि छाए ॥९४॥
गैयाँ बगरि चरन बन लागीं। मोहन-मुरली-धुनि अनुरागीं ॥९५॥
सुरति स्यामसुंदर मैं जिनकी। तिनहिं चरन हूँ यह गति इनकी ॥९६॥
कौन कौन की हितगनि कहियै। ब्रज की लगनि देखि चकि रहियै ॥९७॥
गिरि चढि कान्ह निहारत गायनि। भरे दानलीला-रस-चायनि ॥९८॥
सुबल सुबाहु तोष मधुमंगल। सुदर सुखद चतुर हित-उज्जल ॥९९॥
इनहिं आदि सहचर बहुतेरे। रहत नंदनंदन नित नेरे ॥१००॥
ब्रजमोहन तन मन सँग डोलत। प्रीति-कथानि परसपर बोलत ॥१०१॥
ब्रजदेबी देबी-पूजन-हित। गिरि-घटियाँ ह्वै निकसति हैं नित ॥१०२॥
दानीराय कान्ह की सैननि। समझि समझि हिय पावति चैननि १०३
पैंछर पाय आय गिरि छेंडी। धरि रहे ललित लकुटियनि बैंडी ॥१०४॥
घटिया घेरि जगाति लगाई। नंदलाल की अज्ञा पाई ॥१०५॥
बचन-चोख रसबाद बढावत। गाल बजावत गावत भावत ॥१०६॥
कान्ह किसोर एक ढिग ठाढ़े। महारूप गुन जोवन बाढ़े ॥१०७॥

[८४] भाग०=भाग्य के खजाने की खान। [८५] नायक=पदिक। [९०] घाँई=ओर। दाँई=दाहिनी ओर। [१०४] पैंछर०=पीछे पीछे। बैंडी=छेड़छाड़ की। [१०५] जगाति०=कर लेने का ठाट ठट लिया।

चपल चखन ब्रज-तरुनी ताकत। दान-केलि-कौतुक-रस छाकत ॥१०८॥
झटकत झगरत गोरस मिस कौ। बोलत प्रखर बचन हँसि रिस कौ॥ १०९॥
छली छैल की घात अनेक। ब्रजनायक सब लायक एक ॥११०॥
कुंज - पुंज गह्वर गिरि-कंदर। बिहरत सुंदर रसिक-पुरंदर ॥१११॥
दान केलि कोलाहल माचत। लूटत दह्यौ ग्वाल मिलि नाचत ॥११२॥
फैलि परत गोरस-रस-झगरो। निबरत नाहिं नेह नित अगरो। ११३॥
अनमिल बचन-रचन मन मिले। खिले बदन आनँद-रस-झिले ॥११४॥
बहुत भाँति बिलसत ब्रजमोहन। सफल करत ब्रजजन-मन जोहन ॥११५॥
ब्रजरस - भेद न कोई पावै। बेदौ नेति नेति करि गावै ॥११६॥
प्रबल प्रेम निज ब्रज बिस्तर्‌यौ। दीसत दृगनि दूरि लै धर्‌यौ ॥११७॥
सरस केलि को सकै निहारि। बड़भागिनि गोकुल की नारि ॥११८॥
सब तजि भजति एक नँदनंदन। रसिकसिरोमनि सब जगबंदन ॥११९॥
सिव-अज लीला देखत मोहन। रस-उतकरस चरन-रज दोहन ॥१२०॥
सबको अगम सुगम सो इत है। जातैं प्रबल प्रेम ब्रज नित है ॥१२१॥
तातैं ब्रजजन - कृपा मनैयै। चरन-रैन बल इनके पैयै ॥१२२॥

दोहा

ब्रज को प्रेम प्रचंड अति, अमल अखंड अपार।
सुरनर मुनि बरनत सदा, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२३॥
ब्रजबासिन की अमल गति, समझि सकै नहिं कोइ।
नंदराय कैं बास बसि, जो ब्रजबासी होइ ॥१२४॥
यह लीला निरखै तबै, अचरज प्रेम बिकार।
जा-रस बस बिह्वल सदा, रसिया नंदकुमार ॥१२५॥
सर्वोपर ब्रज की कथा, महा मधुर स्रुतिसार।
कृस्नचंद के हित भर्‌यौ, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२ ॥
अजित जीत अपबस किये, प्रबल प्रेम कैं फंद।
ब्रज ब्यापक लखियत सदा, पूरन परमानंद ॥१२७॥
ब्रजजन जीवन स्याम कैं, ब्रजमोहन ब्रजप्रान।
निसिदिन ब्रजलीला - मगन, पूरन प्रेमनिधान ॥१२८॥

जहाँ तहाँ मचियै रहै, सुख-समाज की भीर ।
मुरलीनाद - सवाद - बस, रसिक छैल बलबीर ॥१२९॥
धनि धनि रसना रसवती, बरनति ब्रज-रसरीति ।
मोहन ही के गुनहिं तैं, किये आपबस जीति ॥१३०॥

चौपाई

अपने गुननि बँधे रिझवार । पूरन प्रेमी नंदकुमार ॥१३१॥
लीला-रस लै रसना सानत । मो मुख ह्वै निज गुननि बखानत ॥१३२॥
सुनि सुनि रीझत रसिक उदार । ब्रजब्यौहार रसामृत - सार ॥१३३॥
ऐसो कौन कहि सकै यह रस । ब्रजमोहन की एक कृपा-बस ॥१३४॥
मन अरु बचन कृपावस होय । मतिगति ब्रज-रति रहै समोय ॥१३५॥
तब कछु उमगि उघरि यौं परै । रसहीँ कैं बस रस बिस्तरै ॥१३६॥
महा मनोहर ब्रजब्यौहार । ब्रजजीवन की कृपा-अधार ॥१३७॥
मोहन ब्रजब्यौहार बखान्यौ । हियैं पैठि रसना पै आन्यौ ॥१३८॥
अपनो रससवाद - सुख लेत । या विधि मोहिं महासुख देत ॥१३९॥
नातरु अकथ कथा को कहै । मन अरु भेद-बचन क्यौं लहै ॥१४०॥
ब्रजरस कहत सुनत अधिकार । दियौ कृपा करि नदकुमार ॥१४१॥
तातैं कछु वरन्यौ ब्रजप्रेम । रसना गह्यौ रसकथा - नेम ॥१४२॥
ब्रजमोहन बहु ब्रजब्यौहार । कहा कहौं रसरासि अपार ॥१४३॥
ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस गाऊँ । ब्रजमोहनहिं सुनाय रिझाऊँ ॥१४४॥
ब्रजब्यौहार - मगन हो रहौं । ब्रजजन ही की गति मति लहौं ॥१४५॥

दोहा

जीवन ब्रजब्यौहार है, ब्रजजीवन ही प्रान ।
कहौं सुनौं समझौं सदा, ब्रजब्यौहार प्रधान ॥१४६॥
जो सुख ब्रजब्यौहार को, सो कछु कहत बनै न ।
अरु रसना की यह कथा, बिना कहैं नहिं चैन ॥१४७॥

चौपाई

कहि कहि थकित होति फिरि कहै । या रस रसना को जस यहै ॥१४८॥
ब्रजब्यौहार भाग है मेरो । ब्रजै आस ब्रजबास बसेरो ॥१४९॥

ब्रज मैं सोऊँ ब्रज मैं जागौं। निसि दिन ब्रज ही के रस पागौं ॥१५०॥
ब्रजब्यौहार देखि ही जियौं। ब्रजजीवन-लीला - रस पियौं ॥१५१॥
ब्रजरस थकि ब्रजबीथिन डोलौं। मौन धरैं मनहीं मन बोलौं ॥१५२॥
ब्रजबन-सोभा चकित निहारौं। ब्रजरस-पान प्रान - पन पारौं ॥१५३॥
ब्रजब्यौहार परम धन लह्यौ। ब्रजरस पूरि नैन है रह्यौ ॥१५४॥
परम प्रेमनिधि ब्रजब्यौहार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥१५५॥
ब्रजमंडल आनँदघन बरसै। लीला ललित प्रेम-रस सरसै ॥१५६॥
लहलहात ब्रज तरु बनबेलि। महामधुर लीला - रसकेलि ॥१५७॥
मुरली - गरज रंग - रस-भरी। ब्रजबन ब्यापि लगावति झरी ॥१५८॥
ब्रजतिय - हिय - सरबर रसभरे। लाज-पाज तजि उमगनि ढरे ॥१५९॥
प्रबल प्रेमद्रव उझिलि बह्यौ है। ब्रजबन यह रस पूरि रह्यौ है ॥१६०॥
चातक-ब्रतहिं धरैं सँग डोलैं। महाभाव रुचि आनि कलोलैं ॥१६१॥
त्रिभुवनमई मुकुटमनि गोपी। लोकलाज - मरजादा लोपी ॥१६२॥
पदवी परम प्रेमनिधि पाई। इनकी महिमा बेदनि गाई ॥१६३॥
रसिक-मुकुटमनि सीस चढाई। आनँदघन पूरन पन छाई ॥१६४॥
गोपिनि की गति कहति न आवै। गोपीनाथ - सनाथ कहावै ॥१६५॥
जाकी माया जगत नचावै। सो नटनायक इन्हैं रिझावै ॥१६६॥
तनमय भई रहति निसिबासर। प्रेम-प्रिया को धौं इनकी सर ॥१६७॥
सरबोपरि गोपिन को प्रेम। जिनसौं नंदसूनु को नेम ॥१६८॥
निरिनि रहत ब्रजमंडन जिनके। हरि-हित-सहित मनोरथ इनके ॥१६९॥
परमानंद - कंद की प्यारी। कबहूँ कहूँ होति नहिं न्यारी ॥१७०॥
निरवधि प्रेम - परस नहिं सकैं। उद्धवादि चरननि रज तकैं ॥१७१॥
इनके गुन मुरलीधर गावत। परम प्रेम रसपुंज बढ़ावत ॥१७२॥
रसिकराय चूड़ामनि स्वामी। गोपीबल्लभ नायक नामी ॥१७३॥
ब्रजबन सरस बिनोद मगन मन। निपट किसोर स्यामसुंदर घन ॥१७४॥
सुखनिधान के सुखहिं सम्हारति। जीतति अजित अपनपौ हारति ॥१७५॥
इनकी प्रेम-सगाई जैसी। देखी सुनी न कितहीं ऐसी ॥१७६॥

[१५९] पाज=बाँध। [१६०] द्रव=रस। [१६९] निरिनि=निकट।

तन मन बचन कृस्नहीं सौं रति। कृस्न परमपति ही जिनकी गति ॥१७७॥
जो रसराज प्रगट इन कियौ। सो जानत हरि ही को हियौ ॥१७८॥
ब्रज को महज प्रेम रससागर। नित नित मगन रहत ब्रजनागर ॥१७९॥
ब्रजबन-केलि सदा अवगाहत। परम प्रेम-पन-पैज निबाहत ॥१८०॥
नित नवरंग रसिक नँदलाल। · ·· ··· ॥१८१॥
नित बिलास नित रास रचावैं परम प्रेम की चुहल मचावैं ॥१८२॥
हरिमुख - चंद - चकोरी गोपी। अतुल प्रेम की सीवाँ गोपी ॥१८३॥
या ब्रज की लीला अचिरजनिधि। बिधिहू लखी नहीं याकी बिधि ॥१८४॥
मोहन महा परम रसमूली। सब काहू कौं देखत भूली ॥१८५॥
ब्रज नित प्रेम-महोदधि गाजै। पूरन गोकुलचंद बिराजै ॥१८६॥
अद्भुत अमित अखंड कलाधर। गोपी - मनरंजन सुंदर बर ॥१८७॥
दुख-तमहरन अपूरब नै को। निसिदिन उदित भावतो जी को ॥१८८॥
दृग - तारन कौं जोति बढ़ावै। प्रेम-गगन उडुगु बिरुदावै ॥१८९॥
सुजस-चद्रिका फैलि रही है। सुख-सोभा क्यौं परति कही है ॥१९०॥
लीला-अमी-किरिनि हित पोखै। मेटत बिरहताप - दुख-दोखै ॥१९१॥
मित्र-मंडली - मध्य उजागर। मंद दिखि उदै करत गुन-आगर ॥१९२॥
निहक्लंक आनंद - स्वरूप। जै जै जै ब्रजचंद अनूप ॥१९३॥
याहि देखि ब्रजजन सब जियैं। महामधुर मूरति मधु पियैं ॥१९४॥
महाभाग या ब्रज के लोग। करत कृस्नलीला - रस - भोग ॥१९५॥
यह ब्रज सदा प्रेमरस - मंडित। बिहरत नित्यानंद अखंडित ॥१९६॥
रसना सो जो यह रस चाखै। छिनछिन नवसवाद अभिलाषै ॥१९७॥
या ब्रज को अमोघ अनुराग। जे बरनैं तेई बड़भाग ॥१९८॥
ब्रजरस परम परैं तैं परैं। अनुरागी याको ब्रत धरैं ॥१९९॥
तेई दृग जे ब्रजरज आँजैं। ब्रजरस परसि परसि मन माँजैं ॥२००॥
ब्रजब्यौहार सहज रँग राँचै। यह सुख पाय पाय फिरि जाँचै ॥२०१॥
ब्रजब्यौहार बिचारैं बनै। कहत न आवत जानत मनै ॥२०२॥
यह नित नित ब्रज को ब्यौहार। ब्रजमोहन-हित नित त्यौहार ॥२०३॥
भई चोप नित ही चित बढ़ै। छिन छिन रंग चौगुनो चढ़ै ॥२०४॥

नित बिहार नित नवल सिँगार। नित सँकेत नित नित अभिसार ॥२०५॥
नित सँदेस नित मिलन-उपाव। नित नित चाव नित नयो दाव ॥२०६॥
नित सँजोग नित मिलन-चटपटी। परम प्रीति की रीति अटपटी ॥२०७॥
नित प्यासे नित ही रस पीवत। नित ब्रजजीवन देखेँ जीवत ॥२०८॥
ब्रजब्यौहार ब्रज बसेँ दरसै। नित नित नयो नयो सुख सरसै ॥२०९॥
नित नित चित हित की गति परसै। नित ब्रजजीवन इनहीँ बरसै ॥२१०॥
ब्रजरस पियेँ लगै सब सीठो। या ब्रज महामधुर रस मीठो ॥२११॥
ब्रजब्यौहार मोहिँ अति भायौ। रुचि रचि रसना ब्रजरस गायौ ॥२१२॥
ब्रजरस को सवाद अति आहि। ज्यौँ ही रीझत कहियै काहि ॥२१३॥
को है या रस को अधिकारी। अपरस प्रीति-रीति गति न्यारी ॥२१४॥
औरै दृग जे ब्रजहिँ निहारैँ। औरै मन ब्रज को ब्रत धारैँ ॥२१५॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज एक। मोँ हिय ब्रजरस ही की टेक ॥२१६॥
कहौँ सुनौँ ब्रज ही की बात। ब्रज बसि लखौँ साँझ परभात ॥२१७॥
ब्रज ही सोँ प्रानन्नि को नातो। ब्रज बिहरौँ मोहनरस-मातो ॥२१८॥
ब्रज के टूक माँगि ज्यौं ज्याऊँ। ब्रज-सरवर-जल प्राननि प्याऊँ ॥२१९॥
ब्रज के द्रुम बेली लखि रहौँ। जड़ता गहि तिनसोँ गति कहौँ ॥२२०॥
ब्रजमोहन - लीलारस लहौँ। गोपकुँवर के कौतुक चहौँ ॥२२१॥

दोहा

ब्रजनायक नेही नवल, बिलसत ब्रज निज धाम।
प्रेम-अवधि नव ब्रजबधू, मधुर केलि अभिराम ॥२२२॥
यह ब्रजरस - सपति सदा, मेरैँ सरबस मूल।
बृंदाबन आनंदघन, राजत जमुना - कूल ॥२२३॥
ठौर ठौर ब्रज बिपिन की, नैननि रही समाय।
नित दरसत बरसत लसत, आनँद-अबुद छाय ॥२२४॥
प्रेमसरोवर अमल बर, ढिग कदंब - तरु - पाँति।
भानुकुँवरि - बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥२२५॥
सोभा-झर लाग्यौ रहै, झूमि सघन तरु बेलि।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥२२६॥

सब रितु-हित सोभित, सरस करियै कहा बखान ।
कीरनिलली अलीनि मिलि, खेलनि की रहठान ॥२२७॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखें बनै बनाव ॥२२८॥
बरन बरन नव पाट के, झूला झुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥२२९॥
जूथ-जूथ-सँग झूलई राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचरज-रूप निहारि ॥२३०॥
मचि झुरमट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप-झकानि की बदन भरे अति फूल ॥२३१॥
भूषन बसन सरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
मोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥२३२॥

चौपाई

भीतर बाहिर तुमहीँ तुमहीँ । अँखियाँ देखन कौं अति कमहीँ ॥२३३॥
खुलैं मुँदैं व्रजलोचन-तारे । मोहन मधुर स्याम उजियारे ॥२३४॥
दुरौ कहा अब उघरि परे हौ । ढके रहौ बहु गुननि भरे हौ ॥२३५॥
चेटक चटक रूप चित चोरत । देखत देखत ही मन भोरत ॥२३६॥
कौन भाँति की खगनि खगे हौ । जित तित लोचन संग लगे हौ ॥२३७॥

२३१–मचि–बिच (वृंदा०) । २३२–सरूप–सुरूप । सोहन–मोहन (वही) ।
मिलाइए पृष्ठ २१५ पर के 'प्रेमसरोवर' से ।

गिरिगाथा

दोहा

श्रीकरतल - रस - परस सब, भीज्यौ दरस अनूप ।
गिरिनायक बंदन करों, सेवा उत्सव - रूप ॥ १ ॥
ललक पुलकमय बिपुल बपु, हरिमंदिर हिय जास ।
जगमगात जगमनि सदा, लीला बिसद बिकास ॥ २ ॥

चौपाई

गिरि गोबरधन-छबि कछु बरनौं । पाऊँ नाम अरथ गुन सरनौं ॥ ३ ॥
मन पाऊँ तब रसना आनौं । गोबरधन बर लहि गुन गानौं ॥ ४ ॥
नगमनिमयी सिखर सुचि सोहैं । चकित नैन लीला-सुख जोहैं ॥ ५ ॥
सोहैं जोहैं हरिहिय मोहैं । को है अब याकी सर को है ॥ ६ ॥
निर्झर-निचय अचय रस सरसै । गोबरधन आनँदरस बरसै ॥ ७ ॥
द्रुम-प्रकार-रचना क्यौं कहियै । चहत चेतना जड़ ह्वै रहियै ॥ ८ ॥
केलि थकी अति भली अनूठी । निपट इकौंसी प्रेम अँगूठी ॥ ९ ॥
बिबिधि समय सुख साँज भरी हैं । गिरिधर-हित गिरिराज भरी हैं ॥१०॥
लियैँ रहै मोहन - मन हाथ । हरि कर धरैं न्याय गिरिनाथ ॥११॥
प्रेमसिंहासन परम उतंग । ब्रज-जुवराज करत जहँ रंग ॥१२॥
बिबिधि अपूरब केलि-रसमसे । लसैं स्याम अभिराम नित बसे ॥१३॥
रूप भूप वैभव जगमग अति । चँवर सिंगार-सार बरही-तति ॥१४॥
बरन बरन बिहग रँग-भोए । बचन-रचन-सुख-स्वाद-समोए ॥१५॥
पुहुप - बृस्टि बाटिका सुहाई । बिटप बेलि अभिलाषनि छाई ॥१६॥
निज पद-बिहरन परस-प्रसाद । लहत सदा गिरिराज सवाद ॥१७॥
इहि प्रसाद हरिदास-निकर बर । धनि धनि गिरिवर धनि गिरिबरधर ॥

[२] जास=जिसका । [४] बर=वरदान । गानौं=गाऊँ । [५] जोहैं=देखता है । [६] को है=कौन है । सर=समानता । को=के लिए । [७] निचय=समूह । अचय=पीकर । [९] इकौंसी=एकांत । [१४] बरही=मोर । तति=पंक्ति ।

गिरि को हृदय मृदुल अति देख्यौ। पघिलति सिल पद-परस बिसेख्यौ ॥१९॥
कठिन बात गिरिप्रेम-नेम की। मूरति ब्रजजन-कुसल-छेम की ॥२०॥
दान-केलि-रस - भाजन हियौ। भानुकुँवरि-हित मारग कियौ ॥२१॥
दानिराय को अति रसदायक। गोरस ह्वै सो रस गिरिनायक ॥२२॥
प्रिय सख-सखी-समाजहि साजै। सर्वोपरि गिरिराज बिराजै ॥२३॥
निरवधि रस को पारस पावै। गिरि की गरिमा गनत न आवै ॥२४॥
दल फल जल हरि परिकर पोषै। सब रितु सुखनि साजि परितोषै ॥२५॥
कदर मंदिर [अति] रुचि राखै। रसिक-पुरंदर हित अभिलाखै ॥२६॥
दीपजाल मनिमाल जगावै। नेहप्रकास - दसाहिं दिखावै ॥२७॥
हरिराधा-हित हरष-भर्यौ है। केलि-कलानि सकेलि कर्यौ है ॥२८॥
हरि को हितू न ऐसो दूजौ। यातैं या गिरि के पद पूजौ ॥२९॥
पूजै याहि मनोरथ पूजै। गिरिबर चरन-दृगनि कछु कूजै ॥३०॥
गोपकुमारनि को अति प्यारो। गायनि देत चाय सौं चारो ॥३१॥
तटी-भूमि गोधन की माला। सिखर खरौ ब्रजपति को लाला ॥३२॥
सुकृत-पुंज-फल गिरि ही पायौ। दीसत यौं निज सीस चढायौ ॥३३॥
अति उन्नत गिरि-भाग-निकाई। गिरिधर वेनु बजाय दिखाई ॥३४॥
मुरली - टेर व्यापि गिरि रहै। धुनि सुनि सरस रूप-सुख लहै ॥३५॥
द्रवीभूत गुन प्रगटै जबहीँ। जड़ता होति सहायक तबहीँ ॥३६॥
गिरिबर - प्रेम गिरिधरै जानैं। गिरा बखानौं निज अनुमानैं ॥३७॥
महालील गोपाल गोपसुत। गोधन बसत ग्वार-गोधन-जुत ॥३८॥
गिरि को गुपत मतो को पावै। हरि-राधादिन हृदय दुरावै ॥३९॥
पुजवत साध सबै बिधि साधै। हित अराधि रिझवै हरि-राधै ॥४०॥
सेवारीति - महंत महामुनि। गिरि-महिमा कबि कौन सकै गुनि ॥४१॥
गिरा-बेलि गिरिगाथा फल है। परम मधुर रस भर्यो अमल है ॥४२॥
सीस धराधर - ईसहिं नाऊँ। जुगल - केलि-चिंतामनि पाऊँ ॥४३॥

[२४] पारस=उत्तम पदार्थ। [२६] कदर=कदरा। [३०] पूजै=पूजने से। पूजै=पूर्ण होती है। [३८] महालील=महल्लील, महालीला करनेवाले। गोधन=गोवर्धन। गोधन=गायों का झुंड। [४३] धराधर=पवत।

पदावली

भैरव] (१) [मूलताल

मंगलनिधि ब्रजराजकिसोर, मंगल ब्रज मैँ चार्यौं ओर ।
मंगल घर अरु बाहिर मंगल सुख निरखत मंगल निसि भोर ।
मंगल अरसाने दृग राजत अधर मंगल रुचि रच्यौ तँमोर ।
आनँदघन सबही विधि मंगल स्रवननि मंगल मुरली-घोर ॥

भैरव] (२) [चौताल

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारे है हो हरि हाथ ।
तुमही कौँ तुमतैँ जाँचत हौँ देहु दया करि नाथ सब सुख साथ ।
गाय गाय ज्यौँ त्यौँ जीवत हौँ रावरे बिसद बिरुद गुन-गाथ ।
प्रान - पपीहन के आनँदघन मीन - दीन - पन पाथ ॥

तथा] (३)

अपार गुनग्राम हौ कहा गाऊँ ।
तीरहि गएँ थकित मतिगति होति, तुमलौँ कहौ धौँ हौँ क्यौँ करि आऊँ ।
अमित चरित की तरल तरंगनि बिसमय बूड़ि न ठिक ठहराऊँ ।
है उपाव आनँदघन मो हित बोहित सुदृढ़ कृपा जौ पाऊँ ॥

भैरव] (४) [इकताल

गोपाल तुम्हरेई गुन गाऊँ ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ ।
टरत न मोहन मूरति हिय तैँ देखि देखि सुख पाऊँ ।
आनँदघन हौ बरसौ सरसौ प्रान - पपीहा ज्याऊँ ॥

भैरव] (५) [चलती इकताल

तुम्हारी सौँ मोहिं तुम बिना कछू न भावै ।
सोचनहीँ निसि तारे गनति हौँ ए सपनौहूँ न आवै ।

२–दीन०–दीपन (सतना)। ४–तुम्हरेई–तेरेई (सतना)। बरसौ०–बरसि सरैयै (वही)। ज्याऊँ–जिवाऊँ (लंदन)।

[१] तँमोर=तांबूल। घोर=ध्वनि। [२] पाथ=जल।

हियरे बीच रहौ न लहौ गति कोऊ कहा जनावै ।
प्रान - पपीहनि आनँदघन दैया कौन जिवावै ॥

तथा] (६)

अनु रे मेरी प्रीति लगी हो ।
कल न परति है घरि पल छिन बिन देखैं प्यारे ।
काठन कठिन बीतत दिन गिनत रैनि तारे ।
कब ह्वैहौ समुख मनमोहन उजियारे ।
कहा कहियै पिय तुमसों बसत हिय मँझारे ।
आनँदघन चातक - जन क्यौंऽब यौं बिसारे ॥

भैरव] (७) [चौताला

मुरलिया तिहारी आछी ताननि रचना करै ।
बाँके बाँके भेदनि भँजाइ मन हरै, को धीरज धरै ।
मुखविलास देख्यौई भावै बहुभाँति अभिलाष भरै ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन लाएँइ रहति झरै ॥

बिभास] (८) [चौताला

अब यह पीरी परनि लागी हो, लाल किनि जानि जान देहु घर अपनै ।
तुम्हहि कहा सोच धुर को यहै ढग मौंहि परै जिय कपनै ।
आनँदघन उघरै न भरम जो तौ देई देवा जपनै पुजापे थपनै ॥

तथा] (९)

जागौ जागौ हो निसि के मतवारे,
भोर भयौ लागे बोलन सुक - सारौ है चहचारौ ।
गुरुजन-सोच नहीं तनकौ जिय कौन सुभाव तिहारौ ।

६–अनु–आनु (सतना)। हो–है (वही)। क्यौं०–क्यौं बक्यौं (वही)।
९-चहचारौ–चहचारे (सतना)। मोहि०–मो जिय है (वही)।

[८] धुर को=अधिक। भरम=भेद। देई=देवी। पुजापे=पूजा की सामग्री।
[९] सारौ=सारिका, मैना। चहचारौ=चहल-पहल। भरम=भेद।

एमनि] (१४) [मूलताल

मेरी आली री मोँहि सुनत बँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनकौ तेरी सौँ ।
चकित होति सुख जोति जगमगत मनु तौ रहत जाइ बन उन पै
घर मैं परी रहति गुरुजन-घेराघेरी सौँ ।
कैसेँ करियै भरियै कौ लौँ कुल की कानि जँजर जेरी सौँ ।
आनँदघन रसपियन जियन कौं प्रान-पपीहा तरफरात है उर-भेरी सौँ ॥

टोड़ी] (१५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन बिराजैं ।
सिथिल भए रस भोइ रसमसे निरखि कोकनद लाजैं ।
झपकि परति पलकैं आरस-बस बस कै खुलति खिलति मो काजैं ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन उनए अति सुख साजैं ॥

रामकली] (१६) [चौताल

बरजि री बरजि दै अनोखे छैल कौं मेरे द्वार मुरली न आनि बजावै ।
हौं सुनि सिथिल इत घर मैं उत बाहिर सब लोग चवाव चलावै ।
जिय की हिलग जीव जौ जानै तौ इन बातनि कहि कहा पावै ।
चातुर है आतुर आनँदघन छाइ पराए प्रान-पपीहा तावै ॥

केदारो] (१७) [एकताल

रासमंडल मैं नाचत दोऊ तकट धिकट धिधिकट
धिलांग थेई थेई ततथेई ।
होड़ाहोडी भेद भँजावत तत धुक धुक कत कथुगातक
थुंगाधिधि लकट थेई ।

१४–जँजर–जेजर (वृंदा०)। रस०–रसपान करन (सतना)। १६–इत–होत (सतना, वृंदा०)। चवाव–चवाइ (लंदन)।

[१४] जँजर०=(जर्जर) पुरानी, शक्तिहीन। जेरी=रस्सी। उरझेरी=हृदय की व्याकुलता। [१६] छाइ०=अन्यत्र छाकर। तावै = सतप्त करता है। [१७] तकटधि०=बोल हैं।

हाव भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पियहि परम सुख देई ।
आनँदघन रस रंग पपीहा रीझ रीझ आँकौ भरि लेई ॥

मलार] (१८) [इकताल

तान-सुर तार सोँ जमाई है मोहन मुरली मैँ मलार ।
प्यारी के गावत अद्भुत रंग उपजत भेदनि तरंग बाढत
अंग अंग अनंग - सुख - समुद्र अपार ।
दृग-बिलास सुख - बिकारा भौँहनि मधुर हास भास
पाननि रंजित अधर दसन बिथुरे बार सिंगार-सार ।
आनँदघन रस आसार भीजत रीझत उदार
आपुस मैँ होत मालती-माल मरकत-हार ॥

कल्यान सुद्ध] (१९) [मूलताल

पहिरी चुनि चोँपनि सोँ सोँधेँ सँवारी सारी सूही ।
भाग सुहाग अनुराग रंग की ओप बढ़ी जु कछू ही ।
गोरे बदन पर अलक झलक आछी उर बर माला जाही जूही ।
आनँदघन पिय के रस भीजी रीझनि भरत भटू-ही ॥

हमीर] (२०) [मूलताल

ब्रजमोहन की प्यारी तेरो भाग बड़ौ ।
मुरली मैँ तेरे गुन गावत जाकी धुनि मोहे जंगम जड़ौ ।
तेरे लाड की कहा कहियै जाहि लाड़त लालन अलकलड़ौ ।
आनँदघन पै तो हित चातक सौतिन केँ यह साल गड़ौ ॥

१८–जमाई–बजाई (सतना), रचाई (वृंदा०)। मैँ–ने (लदन)।
२०–लालन–लाड़न (सतना, वृंदा०)। यह–हियैँ (वही)।

आँकौ=गोद, अँकवार। [१८] तार=ऊँचे स्वर मेँ। भास=भासित होता है। मालती अर्थात् राधा। मरकत=पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण। [१९] सूही=लाल। ही=थी। जाही=जाती, चमेली। जूही=यूथिका। ही=हृदय। [२०] अलकलड़ौ=दुलारा।

भैरो] (२१) [एकताला चलतौ

आए जु आए भोर, भलैं ही।
रसिक रँगीले छबीले मया करि सब निसि जागे
दृग अनुरागे पागे - रंग - तँबोर।
बैठी बलि हौं बिजन डुलावत स्रमित भए नए कुसल किसोर।
आनँदघन रस बरसे कित हूँ छाए हौ इहि ओर॥

कर्नाटकी कनरी ख्याल] (२२) [मूलताल

अब मेरी तुमसौं पुकार है हो,
ब्रजमोहन प्रान - अधार पुकार है हो।
कान खोलि किनि सुनियै हा हा सुंदर सुखद सुजान उदार।
दरस दुखारे नैन बिचारे तरसत बरसत साँझ सवार।
दीन पपीहन के आनँदघन आनि लीजियै वेगि सम्हार॥

सोरठि] (२३) [इकताला

राज म्हानै औलू आवै।
ऊभी ऊभी थारी बाट उडीकाँ थाँ बिन बिरहा अधिक सतावै।
म्हाँसी थाँके घड़ीं टहलनी भँवर कमल - फुल-बास लुभावै।
प्रान - पपीहाँ रा आनँदघन थे निरमोही क्यूँ न बसावै॥

परज] (२४) [इकताला

बैरनि म्हाँरी बाँसली हे बीरा घडाँ दिन पाड़ै छै।
भला घराँ रा माँनसाँ नै काँनाँ लागि बिगाड़ै छै।

२१–कुसल–जुगुल (सतना)। २३–औलू–औल (बृंदा०)। फुल–रं (सतना, बृंदा०)। क्यूँ–स्यौं (सतना)।

[२१] तँबोर=तांबूल। बिजन=(व्यजन) पंखा। [२३] राज=प्रिय। औलू=विरह की स्मृति। ऊभी०=खड़ी खड़ी। उडीकाँ=प्रतीक्षा करती हूँ। थाँ०=आपके बिना। म्हाँसी०=मेरे ऐसी आपके बहुत सी सेविकाएँ हैं। क्यूँ०=किसी प्रकार वश नहीं चलता। [२४] दिन०=दिन पारती है, बुरे दिन कर देती है। माँनसाँ=मनुष्यों को।

काँई करॉ न क्यौँ बस चालै घर बेढ्यॉ नैं ताडै छै ।
केड़े पडी रहै आनॅदघन छाँनी बात उघाड़ै छै ॥

अडाना] (२५) [मूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-बसहि जू परे जू कान पियारे ।
अनमिलता लै मिलौ सुमिल से ये रॅग ढॅग नित नित जु निहारे ।
माहमढी बतियान गढत हौ सुघर साँच कै साँचै ढारे ।
आनॅदघन अचरज-झर लावौ उनएहूँ पै निपट उघारे ॥

ललित] (२६) [मूलताल

सब जग कान कान ह्वै दीसै अब मेरी स्याम-रॅग-रॅगी दीठि ।
रूप-उब्यारो मनमुख डोलै लाज दै रही पीठि ।
कैसो घूँघट कहति कौन सौं करौं क्यौंऽब सुनि सुघर बसीठि ।
उघरि परी आनॅदघन घमॅडनि ऊतर दीजै नीठि ॥

केदारो] (२७) [मूलताल

लालन लीजै जु फिरि लीजै वहै तान केदारे की मुरली मैं हाहा ।
ललिता लेति बीन मैं चौंपनि हौं हूँ कछु मुख लै दिखराऊँ
कौन सरबरै आहा ।
या करि यौं गुन गाइ लेत हौं छकनि छबीली धुनि को लाहा ।
रीझ लाज आनॅदघन घमॅडनि कियौ रास तैं रस-चौमासो
लियो हियौ भरि नाहा ॥

बिहागरो] (२८) [झपताल

आज प्यारी पिय के मिलन की राति है ।
खुलि खिलि सुभ सरस समय संजोगिनी रग भरि अग न समाति है ।

२७—या करि—पाकरि (वृंदा०), याकरि (लदन) । २८—खुलि—कली (वृदा०) । सरस—सरद (सतना, वृंदा०) । अग न—अनंग (वृदा०) ।

काँई=क्या । बेढ्यॉनै=घिरे हुए को । केड़े०=पीछे पड़ी रहती है । छाँनी०=ढकी बात प्रकट कर देती है । [२५] मैन=मदन, काम । कान=कान्ह, कृष्ण । झर=वृष्टि । उनए०=छाए रहने पर भी अत्यंत उद्घाटित । [२६] सुघर=चतुर । बसीठि=दूती । नीठि=कठिनाई से । [२७] सरबरै=उपमा ।

बहु बिधि बिलास रस रास-सुख स्रम-पगे-जगमगे
जुगल बर संगम हिताति है।
आनँदघन घमँड केलि-संपति रमँड प्रीति रसमसनि सरसाति है॥

रामकली] (२९) [मूलताल

रास करि करि सब घर आईं।
भाईं साँवरे प्रीतम लाड़ लड़ाईं, अनेक भाँति अभिलाष पुजाईं।
मनहीं मन मैं करति बधाईं, लीला ललित जहाँ की तहाँ पाईं।
कौन सकै कहि भाग बड़ाईं, सुक सनकादिक बेदनि गाईं।
अतुल प्रेम की रास रचाईं, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाईं।
रसिक-मकुटमनि सीस चढाईं, आनँदघन रसरगनि छाईं॥

रामकली] (३०) [चपक

हौं झूठो तुम साँचे अहो हरि मोहूँ करौ किनि साँचौ।
तिहारी सुदृस्टि सदा चाहत हौं जौ न पड़ै भ्रम खाँचौ।
जग जजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहु नाचौ।
अब आनँदघन सुरस सीँचियै लगै नहीं दुःख-आँचौ॥

गधार] (३१)

आसा तुम्हैं जौ लागि रहै।
कृपापियूष-पोप सौं तोषित अति लहलहनि लहै।
हौ जिहि तुम अवलंब कलपतरु सौभग-बेलि बहै।
चढ़ि गुन बिटपनि लवढि बढ़ै नित कितहूँ सिथिल न है।
मन-थाँवरे बिराजौ थिर ह्वै तिहिं रस रासि यहै।
फूलै फलै निरंतर माधव सोभा कौन कहै।
बिसद बिसाल बितान आन तें सिमिटनि फैलि गहै।
झूमि झूमि झालरैं छबीली सीतल सौरभ है।
चरन-मूल अनुकूल रोपियै या बिधि चित्त चहै।
निहचै बारि दीजियै चहुँ दिस चिंता-झर न दहै।

[२८] स्रम=स्वेद। हिताति०=प्रेम करती है। रसमसनि=लगन, सरसता। [३०] खाँचौ=रेखा, बाधा। [३१] बितान=चँदोवा। आन=टेक।

जिय की ताप हरौ आनँदघन करुन जानि उमहै ।
जीवन-धाम पाइ कै तुमसे क्यौं दुख - घाम सहै ॥

बिहागरो] (३२)

रावलि मैं आनंद महा है ।
कीरति कन्या जनी जसवती निज भागनि को लह्यौ लहा है ।
जसुमति करति बधाई चायनि मन ही मन हित कह्यौ कहा है ।
आनँदघन अभिलाष - लता पर रस-बरसनि की उमह अहा है ॥

रामकली] (३३)

आँखिनि गही अति अनखानि ।
पीठि दै मो तन तरकि तोरी तिनक लौं कानि ।
ह्वै गई औरै किधौं ह्वै चचलनि वह बानि ।
मनै सपनैहू कहूँ तनकौ नहीं पहचानि ।
निरखि स्यामसुजान - छबि जाके थकि छरीं मुसकानि ।
ललक-बस ताज पलक रस अँचवनि बिसारि अघानि ।
तब न कछु समुझीं सहज रुचि रीझ की अरगानि ।
अब दुसह घाता महा बिरहा बिच परयौ आनि ।
कौन सौं कहियै दसा सहियै सबै सुखदानि ।
मौन ह्वै रहियै हियैं दहियै दहकि अकुलानि ।
प्रान मन गति मति सुरति सौंपे सबै पर-पानि ।
दैन कौं दुःख ये निगाडी लै रहीं रहठानि ।
बसति ब्रज औरौ अँख्यारी रूप-जोबन-खानि ।
द्वैज ससि हौं हां करी बिन काज इन दुखियानि ।
जरति पुनि जल ढरति धरति न धीर पीर पिरानि ।
दरस - अंजन लखि लहैं आनदघन सियरानि ॥

[३२] रावलि=राधा का ममाना । कीरति=राधा की माता । [३३] तिनक = तिनका । कानि=मर्यादा । अघानि=तृप्ति । अरगानि=टूट पड़ना । पानि=हाथ मैं । रहठानि=वासस्थल । अँख्यारी=आँखोंवाली । द्वैज०= द्वितीया का चन्द्रमा जिसे सब देखते हैं ।

हमीर] (३४) [चलती चरचरी

ये आनंदकंद बंदि लै हरिचरन ।
परम सुख की सींव दुख - समूह - दरन ।
सिव बिधि मुनि नारदादि रहत सदा सरन ।
मोद - पयोद रस - निवास प्यास - हरन ॥

नट] (३५) [चपक

ऐसैं ही ऐसैं जात दिन बीते ।
स्यामसुंदर देखैं बिन भटकत डोलत लोचन रीते ।
बिरहा प्रबल हराइ हाइ हो नेम-धरम सब ही इन जीते ।
आनँदघन कब बरसैं दरसैं जु होहिं चित-चातक चीते ॥

नट] (३६) [चपक

अवधि टरी न आए ब्रजनाथ ।
कौन हमारो सुरति करावै मनहूँ रह्यौ रमि साथ ।
पंथ निहारत डीठि मंद परी रसना थकी गुन - गाथ ।
आनँदघन अब यह जिय आवति मारि फेरियै माथ ॥

तथा] (३७)

हमारी सुरति कब धौं तुम लैहौ ।
अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ ।
आनंदघन पिय चातक कूक - थकैं पछितायोई पैहौ ॥

सारंग] (३८) [मूलताल

अब मेरो तुमसौं लग्यौ है सनेहरा ।
ब्रजमोहन प्राननि प्यारे दृग - तारे रूप - उज्यारे ।
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा ।

३८–अब-अति (सतना, वृंदा०) ।

[३५] रीते=खाली । चीते=चैतन्य । [३६] मारि० =मारपीट कर इस सिर को उधर से फेर लूँ । [३७] कहा०=क्या करोगे । पछितायोई० = पछताना ही हाथ लगेगा । [३८] छेहरा=विरह । मेहरा = वृष्टि ।

उघरि उघरि अब बरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा ।
आनँदघन दिन दूलह तुमहूँ बाँधौ जू पन - सेहरा ॥

ऐमनि] (३९) [मूलताल

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय ।
बिषम बियोग जरावै जियरा सह्यौ न जाय ।
निपट अधीर पीर-बस हियरा गह्यौ न जाय ।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख कह्यौ जाय ॥

गौरी तिरवन] (४०) [चंपकताल

कब ह्वैहो हो नैननि के पाहुने मो हिय है लौं लागी ।
अँसुवनि जल सौं पखारि पायँ हौंहूँ ह्वैहौंगी सुभागी ।
मन मेरो मँडरात रात दिन बनि अभिलाष बिकल बैरागी ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन है पुकार पन - पागी ॥

गौरी] (४१) [मूलताल

मेरो तुम्हरी लगनि अनसह न सहि सकैं बाम ।
राई लौन भरौं तिन आँखिनि जिनहिं न देख्यौ भावै यह धन-धाम ।
मोहिं तुम्हैं धुर को सँजोग - सुख थिर चिर रहौ अस्ट जाम ।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित तेई दुहेली दहौ दुख-घाम ॥

बिभास] (४२) [चौताला

निपट निपुन लाल उज्यारे आए हौ इत उत झाँकत ।
दुरत न क्यौं हूँ रँगरैनि उघारत अपने सो बहुतै ढाँकत ।
चोरो करि चपरावत सौंहनि काहे कौं इतनो फाँफट फाँकत ।
आनँदघन पिय नागर आगर और गँवेली जु सबनि एक लग हाँकत ॥

पूरबी] (४३) [चरचरीताल

निपट निठुर तिहारी बानि दैया तुम यौं ही करी पहिचानि ।
ब्रजमोहन पै मोहे कहूँ न कहा जानौ अकुलानि ।

४१–दुहेली–दही लौं (लदन) ।

दिन०=प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा । पन०=पन का मुकुट । [४१] अनसह=असह्य । धुर को=अत्यंत । दुहेली=अभागिन । [४२] चपरावत=बहकाते हो । फाँफट०=कूड़ा-करकट फाँकते हो, झूठी बातें करते हो ।

हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची बिधिना यह आनि ।
आनँदघन ह्वै प्यासनि मारत प्रान - पपोहनि जानि ॥

परज कलिंगरा] (४४) [चरचरी

असाँनूँ चेटक लाइ गया की करॉ कुछ होर न सुझदा ।
साँवला सोहन मोहन गभरू इत बल आइ गया ।
चम्मड पई बलाइ बिरह दी कित्थे हाइ गया ।
मुरली - तान सुनाइ आनँदघन बाण चलाइ गया ॥

सारंग] (४५) [चौताला

चंचल नैननि री मन मोह्यौ ।
मोहन मो तन जब हँसि हँसि जोह्यौ ।
अनियारी कजरारी कोरनि ह्वै छ्वै जियरा पोह्यौ ।
अब तनकौ धीरज न लगत हाथ अपनो सो मैं बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन चितवनि मिलाय चित - चातक हित हाइ
कित बिछोह-दुख दोह्यौ ॥

मालव] (४६) [मूलताल

दैया कैसैं भरिहौंगी, पिय को इक गावँ बिछोह दुख ।
सासु ननँद की डाटनि तनकौ मनहिं न धरिहौंगी
अपनो भायौ करिहौंगी ।
बीथिनि बगर चवाइ चलि चूके कातैं डरिहौंगी ।
अति ब्याकुल कौ लौं तरफरि तरफरिहौंगी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहा अब तौ गोहन परिहौंगी ॥

ललित ख्याल] (४७) [मूलताल

मैं अपनो प्यारो अंजन करिहौं ।
साँवरो रूप अनूप उज्यारो पलकनि आँखौं भरिहौं ।
कैसैं देखन दैहौं काहू अपनियाँ डोठि इकौसैं धरिहौं ।
आनँदघन मिलि जीव जिवैहौं अति रसरगनि ररिहौं ॥

[४४] होर=और, मार्ग । गभरू=प्रिय । बल=ओर । चम्मड०=शरीर में विरह की बला लगाकर । [४७] इकौसैं=एकांत में, अलग ।

मालव] (४८) [मूलताल

बन तैं ब्रजमोहन आवन की बेर भई है ।
गोधन-धूरि धूँधरी देखैं आँखिन जोति नई है ।
मुरली-धुनि सुनि प्रान जगे हैं बिरह-व्यथा टरि दूरि गई है ।
आनँदघन पिय आगम उलही उर अभिलाष-जई है ॥

बिभास ख्याल] (४९) [चरचरीताल

आई है उनींदी तू सुनि राधे पिय के सँग सब निसि की जागी ।
झपि झपि आवत नैना तेरे ढुरि ढुरि आनँदघन-गर लागी रस-पागी ।
आगैं आव बलैया लैहौं अंगनि रंगनि की रुचि रागी ।
धुकि रहि री हौं बिजन डुलावौं जिय की जीवनि प्रान-सभागी ॥

सारँग] (५०) [चौताला

गोकुल घर घर कान्ह-कहानी ।
कहि कहि सुनि बितवत निसि दिन प्रीति न परत बखानी ।
मोहन रस पीवतहीं जीवत चाह त्रिषा छिन छिन सरसानी ।
ब्रजजन - पन - पूरन आनँदघन जीवन - धन सुखदानी ॥

पूर्वी] (५१) [चरचरीताल

मेरो मन मेरैं हाथ नहीं कहा करौं री बीर ।
ब्रजमोहन के बिछुरन की निपट अनोखी पीर ।
कैसैं दुराऊँ हे सखी नैननि भरि आवत नीर ।
आनँदघन पिय के दरसे बिन प्रान-पपीहा अधीर ॥

जेत कल्यान] (५२) [मूलताल

मोसौं अनबोलैं क्यौं बन पिय के प्राननि की
प्यारी हाहा किन बेग मनै ।

४८—गोधन—गोपन (लंदन) । सुनि०—सुनियत अति नियरे (सतना) । टरि—दुरि (वही) । ४९—झपि०-घुरि घुरि (सतना) । धुकि—झपि । प्रान—जान (वही) । ५१—सखी०-धीरज धरिहौं (सग्रह) । देखैं०—ब्रजमोहन जानी (वही) ।

[४८] गोधन=गाय । जई=अंकुर । [५१] बीर=हे सखी । [५२] मनै= मान जा, रूठना त्याग दे ।

मेरी सीख समझ री राधे सोच हियँ अपनै ।
मेरो चातक ह्वै जाचत रस दै आनंदघनै ॥

सारग] (५३)

हाइ हाइ दिन बीति चले ।
अब ब्रजनाथ साथ बिन सजनी दाँ हराइयै जीति चलैं ।
उनहूँ कौं समझाइ सुनावै छाँडि प्रीति की नीति चले ।
उघरि बिसास कियौ आनँदघन तब क्यौं दै परितीति चले ॥

राग बिहागरो] (५४) [इकताला

राधा - मदन गोपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ।
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सौं तिन पर बगराऊँ ।
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झबा मुकतान की झालरैं झुलाऊँ ।
सूची - गुन गस गाँस कौ रचना सरसाऊँ ।
संगम - ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ।
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधो साधि कै सुख-बिबस बसाऊँ ।
मनि-चौकी ढिग राखि कै हित-सौंज सजाऊँ ।
रुचित उचित मधु - पान के भाजननि भराऊँ ।
लालबिहारिनि कौं तहाँ रस - रीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाष पुजाऊँ ।
उमँग लाज - छबि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या बिधि निज करतूति को नीकै फल पाऊँ ।
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसैं कहौं उठि बाहिर आऊँ ।
द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।

[५४] मिलाइए पृष्ठ ३१२ पर की 'मनोरथमजरी' से ।

टेरि लेहिँ तब लाडिलो - हित हुलसि सिहाऊँ ।
कछू कहैं लगि कान सौं सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपत्ति सखी मन माँझ दुराऊँ ।
नैन - सैन जोबन - छको लखि भाग मनाऊँ ।
पान - पात्र मादक - रसैं रुचतो भरि प्याऊँ ।
आपुस को रसमसनि कौं क्यौं बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ।
जुगल वदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल झेल अनुराग की मति छकनि छकाऊँ ।
बीरी सरस सुगंधमै रुचि जानि पचाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौं सकुचनि पहिराऊँ ।
औसर उसरि चल्यौ चहौं कछु उकति उठाऊँ ।
आँचरु ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ ।
मोहिं भुज भरैं छकनि सौं जिय समझि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसबाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ।
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ ।
महा मोद मानैं भटू ज्यौं ज्यौं अनखाऊँ ।
अकथ कथा हित-रीति की हौं कहा चलाऊँ ।
हौं जानौं कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ।
भाजि इकौसी ह्वै रहौं कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सींचनि प्रान की नाहीं अरु हाँऊँ ।
मानि बधाई चाव सौं मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपना ठौर हौं मृदु बीन बजाऊँ ।
केलि - रसमसे मिथुन कौं सुख-नींद अनाऊँ ।
या बिधि मनभायो करौं जागि रैनि बिताऊँ ।
बड़े भोर अनुराग सौं भैरवी जमाऊँ ।
अति रति-मतवारेनि कौं नव प्रात जताऊँ ।
फिरि फिरि पट तानैं तऊ बहुरयौ अहुराऊँ ।

निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ।
आरस-भरी जँभानि पै चुटकीनि चिताऊँ।
अलक-तिलक-सेवा-समय आरसी दिखाऊँ।
बनै ठनै लाड़िलेनि कौं आँगन पधराऊँ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरी चटकाऊँ।
निरखि डगमगी डगनि कौं भुज गहि सम्हराऊँ।
नित नूतन रसरीति की चित चाँप बढाऊँ।
तिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रसाऊँ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौं कहा मिलाऊँ।
सहज रँगीली जोट कौं जिय-बीच बसाऊँ।
चित-चातक-आनँदघनै रस-परस रमाऊँ॥

बिलावल] (५५)

मन मैलो न होइ सो कीजै।
हा सुरसरि हरि-सुरस-रूपिनी गुन-गरिमा महिमा सुनि जीजै।
सरनागतहि परमगति-दायिनि दीन-मलीन-हीन-सुधि लीजै।
आनँदघन-हित बरस दरस पद-परस प्रबोध-प्रसादहि दीजै॥

ख्याल भैरो] (५६) [मूलताल

जियरा मैं क्यौं समझाऊँ।
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाहा।
ठौर न पावै उठि उठि धावै गहि गहि ल्याऊँ।
फिरि मुरझावै दैया री यह पीर निगोडी निपट सतावै कहाँ दुराऊँ।
मेरे मन की कोई न जानै जैसैं हौं दिन रैनि बिनाऊँ।
प्रान-पपीहनि की यह बेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ॥

ललित ख्याल] (५७) [मूलताल

अब तौ परि गयौ नैननि चसकौ, अरी ब्रजमोहन-दरस-तरस कौ।
मनहूँ सँग लह्यौ उठि उनके रह्यौ नहीँ मो बस कौ।
मति गति सिथिल भई देखतहीँ हियरौँ धरधर धसकौ।
आनँदघन पिय कान धरैँ जौ प्रान-पपीहनि ससकौ॥

[५७] तरस=तरसना। धसकौ=धड़कन। ससकौ=सिसक।

सारंग] (५८) [चौताल

नीके रहौ जू प्रानपति तुम तिहारी लागौं हमहिं बलाइ ।
कोटि कोटि जुग रोम रोम सुख अगनित फलहु फलाइ ।
बिधिना की सुद्दस्टि नित नितहीं रिपुदल डारौ दलमलाइ ।
आनँदघन बरसत हितु बनिकै कुसल-कथाहि चलाइ ॥

गौरी] (५९) [मूलताल

कान्ह कान्ह रट लागी मेरी रसना कं ।
जब तें बन गवनें बनवारी तब तें ये अँखियाँ औसेरनि
इक टक उतही झाँकैं ।
मुरली-धुनि सुनिबे की साधनि प्रान बसेरो काननि घाँकैं ।
वे आनँदघन इत चित-चातक को जानें कित कौं छावैं
अरु कित ह्वै आवैं मारग सूधै बाँकैं ॥

गौरी] (६०) [चपकताल

तनक सी मुरलिया पै बड़ो अचरज नाद ।
जाहि सुनत सीठे लागत मीठे सब स्वाद ।
ये गुन क्यौं न होहिं री सजनी लहति सदा हरिमुख-प्रसाद ।
आनँदघन सब ब्रज रस बरसति सरसति प्रेम-प्रमाद ॥

सुद्ध कल्यान] (६१) [चौताला

चटक कठतारनि की अनि नीकी लटक सौं नाचै
मटक-भरयौ मोँहन ।
कर-चरन-न्यास अभिनय-प्रकास सुख सुख-बिलास
मन उरझै घुघरारी भौँहन ।
प्यारी उघटति कंठ किलक आछी दसन-चिलक
आछी पिय के जौँहन ।
आनँदघन रस रग-घमँड सौं ललिता मृदंग बजावति
परन भरनि सी परति आवै गौँहन ॥

६१—भौँहन—सोहन (सतना)। किलक—तिलक (लदन)।

[५९] औसेर=व्यग्रता । घाँ=ओर ।

कानरो] (६२) [चौताला

कौन हठ परी है हौं न जानौं प्रानप्यारो कब को हा हा करत ।
तेरो ज्यौ तनकौ कठोर कबहूँ न पायौ दैया अब किनि ढरत ।
हौं हूँ फिरि तोसौं न बोलिहौं मो बिन कहा धौं काज न सरत ।
आनँदघन अरु तोसो निठुर सौं पपीहा प्यासनि मरत
यह दुख क्यौं हूँ सह्यौ न परत ॥

अड़ान] (६३) [मूलताल

कान्ह तिहारी मुरली मैं कछु टौना है हो ।
खग मृग मोहित होत वहै गति हमहीं कौं ना है हो ।
तानिनि बाननि भिदै न कैसैं जाको जीव रिझौना है हो ।
आनँदघन रस - प्यासनि बरसति बस यासौं ना है हो ॥

हमीर] (६४) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन मृदु मूरति गढ़ी ।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति जागि जड़ी ।
जौ लौं दुराय सकी तौ लौं निबही अब न दुरति बनी कठिन बड़ी ।
आनँदघन घमँडन उघरति तू हितू नातैं तोसौं कहति यह निपट अड़ी ॥

एमनि बिहाग ख्याल] (६५) [चलती ताल

सुहागिनि राधा रानी ।
स्यामसुंदर ब्रजराज - दुलारो जाकैं बस अभिमानी ।
सोभा को सिर छत्र बिराजै बृंदाबन रजधानी ।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी ॥

६२—अब०—अबकैं न (सतना), अब क्यौं न (वृंदा०) । काज—काम (लदन) ।
६३—होत—होय (लदन) । ६५—दुलारो—लाड़िलो (सतना, वृंदा०) ।

[६१] कठतार=करताल, एक बाजा । न्यास=रखना । अभिनय=नाट्य । किलक=ध्वनि । चिलक = चमक । परन=मृदंग आदि बाजों के बोल के खंड । [६२] हा हा=दीनता-सूचक अव्यय । [६३] रिझौना=रीझनेवाला । [६४] पावै=समझे । जागि=जागरण अर्थात् अधिक । रति०=प्रेमाधिक्य से युक्त ।

नट] (६६) [मूलताल

मोहि लियौ मन मेरो मोहन बनवारी कहा करौं मोहिं कछू न सुहाइ।
सोचति हौं दिन-रजनी सजनी हा हा बताइ कहा धौं करौं उपाइ ।
सास-ननद की त्रासनि साँसनि भरि न सकौं जिय कलमलाइ ।
आनँदघन बिन प्रान-पपीहा तरफत हैं कहा बनी है हाइ ॥

धनासिरी] (६७) [मूलताल

तुम तन मोरी लगनि लगी है तुम बिन रहिल न जाइ रे ।
घरी पल महिंकौं जुग से बीतैं बेगि सम्हारौ आइ रे ।
बिरहा महिंकौं अधिक सतावै कछु न बसावै हाइ रे ।
प्रान - पपीहा तरफत हैं आनँदघन होहु सहाइ रे ॥

सारंग] (६८) [चंपक ताल

मोहन मुरलिया बजी है, हौं कहा करिहौं मोरी दैया ।
मनहिं घुमावै मति बौरावै री वैरहि लेन सजी है ।
लाज-लपेटी कहाँ लौं रहियै धुनि धीरज की करति धजी है ।
आनँदघन रस त्रासनि प्यासनि अब कोऊ अबला न जीहै ॥

सारंग] (६९) [चौताला

वंसी बजै ब्रजमोहन की बन महियाँ ।
स्यामसुंदर जमुना-तट बिहरत सघन कदम की छहियाँ ।
मादक नाद सवाद महा छकि घूमत खग मृग नग जहँ तहियाँ ।
आनँदघनहिं निरखि सुरबनिता अभिलाषनि भीजी
भूलि पतिनि गरबहियाँ ॥

बिहागरो] (७०) [मूलताल

जहाँ जहाँ री हरि पिय पै जैहौं मोहिं भिदी है मुरली-तान ।
रोकी रहति कौन का अब हौं कहति पुकारि खोलि कान ।
घूमत मन अपने बस नाहीं लग्यौ है बिषम अति बिरह-बान ।
प्रान-पपोहा पलैं तबहीं जब आनँदघन को करैं रस पान ॥

६७-रहिल-रहथौ (सतना वृंदा०) । ६८-मति-तन (सतना, वृंदा०) । अब-अकि (सतना) ।

[६७] महिंकौं=मुझको । धजी=धज्जी, टुकड़ा । [६९] खग०=पशु-पक्षी और पर्वत ।

बिभास] (७१) [चौताला

बरनि मेरी रसना ब्रजमोहन की रसकेलि ।
अद्भुत सुख-सवाद को सार धरै किनि सौंति सकेलि ।
मधुर बिनोद सदा फल जामैं फलित ललित अभिलाष-बेलि ।
आनँदघन - गुन-रूप - चातकी गसि नीकैं खुलि खेलि ॥

आसावरी] (७२) [चौताला

सुनहु कान्ह ब्रजबासी तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी ।
तुमहीं सौं मन लागि रह्यौ अब सब तैं भयौ है उदासी ।
ऐसी भाँति मरियत भरियत नित एक गाँव बसि भए प्रबासी ।
प्रान - पपीहनि के आनँदघन दैया निपट बिसासी ॥

टोड़ी] (७३) [चौताला

हरिचरननि की रज आँखिनि आँजौं मोहि यहै
अभिलाष रहै नित ।
कहा धौं पाऊँ कहा जतन बनाऊँ पाँख बिना तरफौं इत ।
को पावै यह पीर अटपटी चाह चटपटी चूर करै चित ।
पवन बीर तेरे पाय परति हौं आनँदघन पिय तन न
ढरकि जाहु हा हा करि हित ॥

रामकली] (७४) [चंपकताल

तिहारे कौन कौन गुन गाऊँ ।
इन अपने अनेक औगुन पै तुमहिं दयाल पाऊँ ।
सबही बिधि सुधि लेत देत सुख हौं अचेत बिसराऊँ ।
आनँदघन उदार मृदु मूरति कृपा भरोसे छाऊँ ॥

सारग] (७५) [मूलताल

मनमोहन की बँसुरिया, बँसुरिया बाजै बिरह-भरी ।
सुनि व्याकुल प्रान होत हमारे रह्यौ न परत घर एक घरी ।

७१–किनि०–कित सबै (सतना) । गुन–रस (वही) । ७३–बिसासी–बिसवासी (लंदन) ।

[७१] सौंति=संचित करके । गसि=कसकर । [७३] भरियत=दिन काटती हूँ । बिसासी=विश्वासघाती ।

कैसैं कैसैं कुल-लाजनि बहियै कान्ह कुवँर सौं बसाति न री।
आनँदघन नित उमड़ि घुमडि कै हम ही पै लाएँ रहत झरी॥

तथा] (७६)

तुमहि निरखि जौ प्राननि वारौं।
तौ पुनि उनहूँ पै वारनि कौं कहौ कृपानिधि कहा बिचारौं।
सफल होइ सँतनि सब दिन की एकै बेर बिरह दुख टारौं।
सकृतै सुकृति-जनम-जस जीतौ तिनके कृनहि समझि हरि हारौं।
इहिं अभिलाष लाख लाखनि बिधि प्राननाथ गहि मौन पुकारौं।
सुचित उचित आवै सो कीजै आनँदघन चातक-व्रत धारौं॥

तथा] (७७)

भरोसैं जीवौ आनि रह्यौ।
बनिहै कृपा कियैं हीं हो हरि मैं निरधार कह्यौ।
जिहिं तिहिं भाँति रूप-गुन-धामहिं कथत जनम निबह्यौ।
त्यौं अब तिनके मरम-परस कौं सूछम समय लह्यौ।
प्रान तनक सनमुख ह्वै यह पन दृगनि गह्यौ।
हा हा हा फिरि हा हा सुखनिधि बिरम न जात सह्यौ।
नंदकुमार उदार चतुरमनि बिषम वियोग दह्यौ।
आनँदघन ढरि सुरस सींचियै चित-चातक उमह्यौ॥

तथा] (७८)

इते ढके अरु उघरे केते।
कैसैं कै कहि सकौं रावरे मनमोहन अगनित गुन जेते।
निकट दूरि लहि परत नहीं कछु आनँदघन रस-मगन सचेते।
हाइ हाइ बिसवासी बालम कबहूँ तौ आँखिन सुख देते॥

सारग] (७९) [चौताला

बंदौं तिहारे चरन-सरसीरुह।
सिव-बिधि-हृदय-सिघासन-मडन चिंताहरन कामदुह।

[७७] सँतनि=सचय। सकृतै=एक बार मैं हो। [७८] बिरम=बिलंब। [७९] कामदुह=कामधेनु।

कालिंदी कैं कूल केलिबस बिहरत बृंदाबिपिन कुंज-कुह ।
आनँदघन मन नैन प्रान मधि बसहु कृपा-गुन गन-गुह ॥

रामकली]　　(८०)　　[चौताला

सुमिरि मन हरिपद साँचौ रे ।
झूठैं राचि बृथा कित धावै डगमग खाँचौ रे ।
सुथरो सुथिर जहाँ नहिं पहुँचत माया नाँचौ रे ।
कृपा-गुनहिं गहि क्यौं न, ज्यौं न लागै भ्रम लाँचौ रे ।
अति अखंड आनँदघन दरसैं फुरति न आँचौ रे ।
तिहि रस सरसि होत किन कबहूँ जड़ रोमाँचौ रे ॥

सारंग]　　(८१)　　[चौताला

सब कछु पहिलैं ई दान कियौ हरि अब हौं अनचाहनिहौं चाहौं ।
एक तुम्हैं तुमहीं तैं जाचौं हौं इहिं जोग कहा हौं ।
कृपानाथ कोमल उदार नित बिसद बिरुद अवगाहौं ।
सुरस पपीहा ह्वै आनँदघन तिहिं बल पनहिं निबाहौं ॥

राग भैरव]　　(८२)

राधा हरि करत ललित केलि बेलि-कुंज मैं ।
आनँद - उन्मद रँगे अनंग - रंग - पुंज मैं ।
अंग अंग लपटि निपट रसबस लटपटत री ।
सुरत-समर-बीर-धीर रुपि न तनक हटत री ।
चौंपनि सौं लुभि चुभि तन बिबिध घात सहत हैं ।
अति सुमार मार - सार वारपार बहत हैं ।
कवचनि तैं उमगि निकसि निकसि भिरत हैं ।
कलित दलित बिगलित कच गिरि उठि उठि गिरत हैं ।
आनँदघन अद्भुत छबि दंपति - नखसिख फबी ।
रुचिरन रँगमगी धरनि जै - जुत बृंदाटबी ॥

कुह = अँधेरे में । गुह=गुहे, गुंफित । [८०] खाँचौ=बोझ । लाँचौ=दोष, विकार । [८२] मार०=काम के शस्त्र । वार०=आरपार हो जाते हैं ।

भैरव] (८३) [चौताला

कब सरस करिहौ या नीरस मन कौं, धौं ।
दरसैहौ निज रूप अनूपम बरसि कटाछ सघन कौं ।
तचनि रचनि अरु नचनि बहुत विधि तिनतैं बचि
खचिहै तुम तन कौं ।
जीवन-धन उदार आनँदघन जाचत चातक-पन कौं ।।

सारग] (८४) [चौताला

कौन जानैं री या मुरलिया मैं कहा भेद बजै ।
तनक भनक स्रवननि मैं परतहीं मनु न रहत ठौर
लोक-बेद-कुल-कानि तजै ।
तन की सब सुधि भूलि जाइ कोऊ कैसैं लाज के साज सजै ।
हा हा करि पायनि परि को आनँदघन पियहिं नैंक बरजै ।।

गौरी] (८५) [इकताला

हमारी सुरति करौ व्रजनाथ ।
तुम बिन हम अब निपट दुखारी जैसैं मीन बिन पाथ ।
निसि दिन गाइ गाइ जीवति हैं सबरेई गुन - गाथ ।
आनँदघन रस बरसि पोषियै प्रानपपीहा साथ ।।

रामकली] (८६) [मूलताल

अब कछु बाधा नाहिं रही ।
मदन गुपाल मिले सुखदायक साधा सबै लही ।
रोम रोम अति हरष भयौ है जीवन सफल सही ।
आनँदघन या रस की संपति कैसैं परति कही ।।

रामकली] (८७) [चलती इकताल

मैं स्याम दरस पायौ, भयौ अब सब बिधि मनभायौ ।
बहुत दिन तैं लगी हुती आसा जिय गाढी ।
.. .. ।
सुंदर बदन सुखसदन की उपमा नहिं दूजी ।

[८३] तन=ओर । [८५] पाथ=जल ।

प्यासे नैन प्राननि की साधा सब पूजी ।
महा मोहन मधुर मूरति सुख-समूह सरसै ।
मुसकि चाहनि मो पर अनुराग-रंग बरसै ;
दृस्टि-मिलनि अंतर-खिलनि अंग अग छाई ।
देखि सखी मो तन आनँदघन - सरसाई ॥

रामकली] (८८) [झपताल

नंदनंदन - चरन बंदन करौं हौं ।
राधिका-नव-उरज-राग-रंजित ललित अति
रस - बलित क्यौं कमल सरबरौं हौं ।
रुचिर दच्छिन सुअँगुठा - मूल कूल क्रम
जौ चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं ।
अरध पद लौं सुभग तरजनी - संधि तैं
सूछम सुरेख कुंचित चित धरौं हौं ।
मध्यमा - तर मंजु कंज सपताक धुज
दृग-अलि तहीँ हिय कहत फरहरौं हौं ।
छिगुनी-तरैं चारु अकुस कुलिस लसत
मन-गज गरब-गिरि थकनि अनुसरौं हौं ।
मंगल सदन चारि साथिये इन तरैं
जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं ।
तिन मधि बन्यौ अस्टकोन सब सिधि-भौन
दाहिने बल बाम करि भव तरौं हौं ।
बाम अभिराम अँगुठा-मूल सख सुभ
मध्यमा - तरैं नभ निहारि न टरौं हौं ।
तिन द्वै तरैं धनुष-पनिच चित चढ़ि रह्यौ
तातर सु गोपदन नैक बिसरौं हौं ।

८८—सदन–कलस (वृंदा०) घट०—घट चँवर सुधासर (सतना) ।

[८८] सरबरौं=उपमा दूँ । कूल=पास । क्रम=क्रमशः । कुंचित=टेढ़ी ।

तिहिँ तर त्रिकोन घट चारि सब रसधाम
अरध बिधु मीन दुति किहिँ पटतरौं हौं।
कहन कौं बाम पै दाहिनो मोहिं नित
हित चित लगाइ रुचि पानि पकरौं हौं।
उदित ससि सरद के कोटि नख-पाँति पर
वारि भुवन - चकोरनि दुख दरौं हौं।
सुढर गुलफनि पीठि तकि डीठि थकि रही
मनसा रढति पूतरिनिहीँ अरौं हौं।
बृंदा बिपिन अवनि सीस - आभरन जुग
गति कलाधर रास - रसिक उचरौं हौं।
बिहरत सुजान प्यारी - सहित जमुन-तट
प्रानपट आनँदघन बिस्तरौं हौं॥

तथा]

(८९)

राधिका - चरन वदन करि बखानौं।
पाइ जिन बल नदनदनहिं हाथ करि
चैन भरि नैन मधि देहुँ थिर थानौं।
बाम अँगुठा मूल जव चक्र जगमगत
हिय हरित-करन दल - दुख-दलन जानौं।
अरध पद लौं ललित तरजनी - सधि तैँ
सूछम सुरेख अनिमेष उर आनौं।
मध्यमातर - कमल धुज अमल दुति जमल
मन - मधुप सुखसदन प्रान - धन मानौं।
तिन तर पुहपलता लहलहति महमहति
हित फलित ललित चित-थावरैँ ठानौं।
छबि-घनी छिगुनी निकट करी - बसकरन
इतर मदमत्त मन करखन प्रमानौं।

थकनि=रुकना। साथिये=स्वस्तिक। बल = सहारे। बाम०=संसार को बाँयाँ करके, संसार से विमुख होकर। पनिच=प्रत्यंचा, धनुष की डोर। [८९] जमल=दोनों (कमल और ध्वज)। थावरैँ=थाले में। करी०=हाथी को वश

पुनि चक्रतर रुचिर बलय अरु छत्र - छबि
कबि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं ।
अरुन एडी उदित अरध बिधु मुदित लखि
पिय चख - चकोर जुग चौंप चित सानौं ।
यौं सुमिरि बाम पद केलि - लीला - रसद
अति बिसद मति तिहिं प्रसाद पहिचानौं ।
दुतिय एडी मकर कामधुज स्याम तन
रति - समर - समय फरहरनि गुन गानौं ।
तापर मनोरथ सुरथ अरु बिलास गिरि
तिनि इतै उतै गदा सकति करि ध्यानौं ।
अँगुठा सुमूल सुभ सख सोभित महा
सारदा - ओज-हित चित-बिधि बिधानौं ।
पिय - जिय - निवास बँदी छिगुनियाँ तरैं
तातर सुकुंडल निरखि लजत भानौं ।
रासमंडल - रसिक बरदान देव बिमान
निधि - पोत चित चाहत लुभानौं ।
मनसा - सिंघासन सुदेस आनंदघन
तापर बिराजि सुचि रुचि बनक बानौं ॥

(६०)

रसिक राधारमन रमत रसरास रचि ।
सरद - रजनी उदित चंद लखि मुदित मन
अगनित आभोर-बनिता-संग रंग सचि ।
रूप - लावन्य गुन - माधुरी अमित अति
मति तोम-रोम-रचना कहि न सकति पचि ।
जोरि कर मजु मंडल मनोहर गतिन
नव जतिन जव-सहित लसत सब सुमिल नचि ।

में करनेवाला अकुश । रसद=रसदायक । सकति=शक्ति, बरछी । बँदी=बिंदु॰। सुदेस=सुंदर। [९०] आभीर=गोप। तोम=समूह। जति=यति,

गान कल तान परिमान बंधान जुत
हरत हिय कहत सुर सुद्ध संक्रमन जचि।
मानत न तृपति पुनि पुनि स्रवन - पुट पूरि भूरि
जीवनमूरि घुरि तृपित प्रान अचि।
मुखिर आनदघन जंत्र सचरित रव-संकुलित
सुर चकित थकित चित तुमुल मचि।
तरुनि तिनकी तिहिं अतन-तमक-चमक-बस
द्रवित हिय होति अभिलाष आगनि नित नचि।
आनँद-पयोद सु बिनोद-आसार-बल मधुर
रसनिधि तरंगनि बिराजत उगचि।
ह्वै मकर-मीन मन-नैन या मधि परगहु लगहु
उखिल अखिल एक इहिं परचि॥

कानरो] (९१)

हरि भजि लै मन मेरे भाई।
हरि भजि निरमल भए बिकारी अब तेरी हू बारी आई।
बाद-सवाद-बस पच्यौ तच्यौ तू तहाँ न तनकौ तृपा सिराई।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि लहि असेष सुख-सीतलताई॥

केदारो] (९२) [झपताल

कृस्न-गुन गाइ लै रे मन गाइ लै, ऐसैं रसना लडाइ लै।
सकल स्रुति - सार अबिकारकारी महा मंगल सुधाहि अँचाइ लै।
जीवन-अधार धारन करि सुधरि भलैं अंतर निरंतर बसाइ लै।
चातक-निचय - चाँप-बिबस ह्वै एकरस आनँदघनहिं बरसाइ लै॥

तथा] (९३) [चपक

हरि नाम लै रे लै रे लै मन हा हा।
जीवन जनम सफल ताको यह लाहा।

बिराम। जव=तीव्रता। पुट=दोना। घुरि=लीन होकर। अचि=आचमन करके। मुखिर=खोल। अतन०=काम का आवेश। आसार=वृष्टि। उगचि=बढ़कर। उखिल=अजनबी, अपरिचित।

सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदनि गाहा ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहनि प्यावैगो कब आहा ॥

बिलावल] (९४)

गृह-सुख साध्यौ नव-बिधि सेयौ देखौ हरि मो जोग नयौ ।
इत तैं गयौ न उत लौं पहुँच्यौ बीच बीच हीं भरमि छयौ ।
लखियौ जू रिझवार रसिकमनि अब तौ तुम हित भाँड भयौ ।
हँसौ लसौ बरसौ आनँदघन जीवन जस है उनयौ ॥

(९५)

अब तुम तब तुम जब तब तुमहीं तुम बिन कब हौं हौ तुम हौं ।
यह दुरि उघरनि कहौ कहाँ तैं सीखे तुम्हैं तुम्हरी सौं ।
आपु बीच परि नाँव और धरि करत अटपटी बातनि कौं ।
आनँदघन सुजान दृग-तारे लखी न परति अनोखी गौं ॥

सारंग] (९६) [चौताला

पुरान पुरुष परमेसुर, ग्याँन दाता बिग्याँन बिधाता
मोहू पै ढरियै परम गुर ।
अपार हौ अति दीन हौं बिचारि लेहु उर ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन होत आए हौ धुराधुर ॥

तथा] (९७)

एक गाँव कैं बास बसियत है हो पै और सब लेखैं बिदेस ।
कौन कौन भाँति जिय समझाऊँ पाऊँ नहिं धीरज को लेस ।
आनँदघन सुजान ह्व सुरति बिसारि दई दैया मरियत याहो अँदेस ॥

तथा] (९८)

अहो प्यारे कितै गई तिहारी वह ढरकौंहीं बानि ।
पहली चौंप चाड़ सुधि करि देखौ परेखौ यहै अबै सब छाँडी पहिचानि ।
मृग पारधी की गति कहा कीनी नाद-रस प्याइ बान मारयौ तानि ।
आनँदघन पन राखि प्रान तजि सनमुखहीं रह्यौ बडोई लाभ बड़ी हानि ॥

[९४] भाँड०=अप्रतिष्ठा हुई । [९५] हौ तुम०=तुम हो तो मैं हूँ । सौं=शपथ । गौं=घात । [९६] धुराधुर=आधार । [९८] पारधी=व्याध ।

तथा] (९९)

बालम गँवन कियौ सो भलैंई कियौ पै क्यौं गए दै अनकही ।
मरति जरति निसिद्यौस परेखैं जु मन की मन ही मैं रही ।
ऐसी तुम्हैं जौ बनी हो बिसारी तौ बस कौन हम मौन गही ।
भूलैं भाइ सुधि लीजौ कबहूँ कहूँ आनँदघन बिनती यही ॥

तथा] (१००)

डोलति घर आँगन बिलखी सु न बोलति पिय कैं बिरह भई पीरी ।
पल पल तपत उसासनि आँसनि जाति गात परि सीरी ।
इत उत चितवति निसिदिन आँधि - आस - टग लगि रही री ।
आनँदघन पिय कैं मिलन आतुर यातैं चाहति होन भँभीरी ॥

तथा] (१०१)

तुमसौं बिनती करियै हो किहि भाँति जाहि तुम मानौ सो
मोहि देहु गुपाल बताइ ।
ढरनि छबीली अपनी ओर ताही त्यौं तकत दिन राति बिहाइ ।
चित चातक की प्यास भरें सुदरस रस-बरसौ आइ महा
आनँदघन छाइ ॥

तथा] (१०२)

अब तू दै री दृग अंजन ।
कब की हौं आई हित बिनती करि पठाई अरबरान हैं हैं मनरजन ।
अलप ततो गुन तलप रचल पीत पट सौं पोंछि पोंछि नवदल कजन ।
आनँदघन सुजान रसनायक कोटि - मदन - मद - गंजन ॥

(१०३)

लगौंहैं मनहीं औरैं होत ।
हैं जलचर बिचरत अनेक पै अमिल मीन-गति-गोत ।
जत अनत उलूक आदि दै देखत चद - उदोत ।
कलुक चोर की चाँप न्यारियै अनल सुधा को सोत ।

[९९] अनकही=मौन । परेखैं=पछतावे में । [१००] भँभीरी=एक पतिंगा, जुलाहा । [१०२] अरबरान=व्यग्रता । तलप=सेज । [१०३] जत=जंतु ।

जहाँ जगमगत प्रेम - दिवाकर तहाँ नेम खद्योत।
आनँदघन रस तृषित पपीहनि कहूँ अमी तेँ ओत॥

(१०४)

मोँहि भरोसो है हरि - हित को।
जाहि सुमिरि बिसरै चित-चिंता सुभदायक नित नित को।
ता कर सौँपि लोक-परलोकहि तज्यौँ सोच उत इत को।
बिधि निषेध जजार निबेरयौ अब धौँ साँसौ कित को।
तित को जगनि जानि सुख सोऊँ बढौ आखरो जित को।
बृथा नीँद उखनीँद मचाऊँ सो रखवारो बित को।
सदा दयाल सुभाव सँभारौ सागर कृपा अमित को।
आनँदघन चातक-मन पूरन भयौ भावतो चित को॥

पूरिया] (१०५) [मूलताल

तूँ नेक दरसन दै रे दै निरमोही नैन तपत हैँ आज।
कहा करौँ कछु बस न चलत मेरो बैरिनि भई यह लाज।
तन मन की सुधि भूलि जाति सब तनक सुनत बन बसी-बाज।
आनँदघन इन प्रान-पपीहनि रटना हीँ सौँ काज॥

हमीर] (१०६) [चंपक

तेरी सूरति देखिबे कौँ मेरे लालची नैन भए।
तरसत बरसत रहत रैन दिन ऐसी चाह छए।
एहो कान्ह तैँ कहा कीनी जु दिखाइयौ न दीनी अए।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा भरोसे ही रटए॥

बिहागरो] (१०७) [चपक

हरि-मुख देखन की सु माई मेरी अँखियनि बानि परी
लोकलाज सौँ काज कहा रह्यौ अब यह जानि परी।
गुरजन-सिख सुनि सुनिबे की उर अरसानि परी।
आनँदघन इनसौँ प्रान-पपीहनि हिलगनि आनि परी॥

अमी=अमृत। ओत=चैन, आराम। [१०४] साँसौ=सशय, सदेह। उख-नीँद=उखड़ी नीँद, उचटी नीँद। बित=धन।

एमन] (१०८) [चौताला

सकुचनि सौंहैं निहारि न सकियै।
लालन सनमुख न बड़भागिनि गुरुजन-डाँट निसकियै।
ओट भएँ मुरझानि होत सब अंग सिथिल ह्वै थकियै।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहनि लगियै रहति टक जकियै॥

बिभास] (१०९) [चंपक ताल

तुम देखौ री मुरलिया नाननि रंग करै।
मुनी अनमुनी कैसैं कीजियै सुधि बुधि तुरत हरै।
श्रवननि पैठि पैठि निकसनि ऐसो को जो धीर धरै।
बिरह-ताप मेटनि आनँदघन बन करि रसहि ढरै॥

तथा] (११०)

मोहि जगाइ जगाइ जागै री वाके जिय की न जानियै बात।
इक टक नैन लगाइ लखैं ज्यौं ललचाइ रहै नकवानो भई इहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिनि निसि जु होत प्रभात।
अनि गति कहि न परनि आनँदघन इत आवत उत जात॥

बिभास] (१११) [मूलताल

चितवनि अरसीली बोलनि सुरसीली डोलनि ढीली ढीली।
पिय समीप निसि-सुख की झलक मुख बिथुरी अलक अरु लगी
लसनि कपोलनि पीक-लीक छबीली।
अँग अँगरानि जँभानि जगनि झुकि मरगजी सारी अति सु बसीली।
मुकुर देखि अवरेखि मनहि मन आनँदघन कछु सौंहनि होति हसीली॥

तथा] (११२)

मन उरझे सुरझन नहिं क्यों हू चलन भवन पग पड़त पिछौंडे।
इक आरस-सिथलानि और अकुलानि बढ़ी यातें ठठुकि
ठठुकि फिरि फिरि चितवत हित-बानि-कनौंडे।

[१०८] डाँट०=फटकार से नहीं डरती। जकियै=धुन ही। [१११] मरगजी=मैली, सलवट पड़ी। बसीली=सुगंधित। अवरेखि=विचार कर।

पुनि ढिग आइ अंग भरि भेंटत मगन होत अति रति-रस औंडे।
बिछुरत रहत न बनति आनँदघन सुधि आवत जब गुरजन भौंडे॥

बिभास] (११३) [चौताला

तेरी बलाय लीजै बार बार तोहि कीजै आँखिनि पुतरी।
कान ह्वै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी।
वारौं सिंगार आज की छबि पै हा हा न जाहि कहूँ इत उत री।
आनँदघन हौं ही देखौं न देखौं पै रहि न सकौं अदभुत री॥

तथा] (११४)

सब रैनि जगाई री प्रानेसुर यातें दृगनि ललाई छाई।
अंगनि आरसताई लेत जँभाई लागत मोँहि सुहाई।
अंतर को रस-सरसाई नीकैं देति दिखाई काच-घटी की रँगहाई।
रोमरोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरखि सु उलही है हरख-हरयाई॥

तथा] (११५)

ए तेरी आँखिनि मैं अनखानि भरी अरु बोलनि हूँ लै ओखौ।
मेरेइ नैन स्रवनन ह्वै ह्वै उपजावति प्रानंनि पोखौ।
मोहि तऊ नीकी लागति ज्यौं ज्यौं होति रूखी रचि रोषौ।
आनँदघन सनेह-चिकनाहट पैं दुरत नहीं अति चोखौ॥

तथा] (११६)

रस की बतियाँ करिकरि रैन बिताई री प्यारी दृगनि अरुनई भई आछी।
अति सुख लूट मची पिय सों मिलि काहे कौं मोतें दुराव करति
तेरे अंग अंग देखियत साछी।
आनन ओप अनूप बढी त्रिभुवन तरुनीनि करति पाछी।
आनँदघन जान रसिक रसबस ह्वै तू नखसिख अति नीकी बिधि काछी॥

तथा] (११७)

तैं रस-बस करि लीनौं री प्रानप्यारो न्यारो नेकौ होन न चाहत।
तोही सौं हिय जिय हिलगनि घरीघरी पलपल छिनछिन जु उमाहत।

[११२] औंडे=गंभीर, गहरा। भौंडे=भद्दे। [११४] रँग०=रंगीनी। हरयाई=हरियाली। [११५] ओखौ=टेढ़ापन। चोख=तीखापन। [११६] साछी=साखी। पाछी=पीछे। काछी= ठाट ठटा।

घर आँगन बन बीथिनि जित तित तेरोइ रूप दृगनि अवगाहत।
धनि धनि भाग सुहाग राग आनँदघन सब ब्रज सु सराहत॥

बिभास] (११८) [इकताल

साँवरे संग रंग रैनि-रस बिलसी कहति नैन बैननि बनाइ।
अधर अरुनई नई भई कछु मुख सुख-ओप बढ़ी सुभाइ।
अँग अँगरान जँभानि जाति झुकि लड़कि लड़कि बोलति लजाइ।
आनँदघन प्राननि प्यारी या छबि की मोहिं लागौ बलाइ॥

बिभास] (११९) [झपताल

रसमसे नैन अरसौंहैं ललौंहैं सिथलौंहैं।
झपकौंहैं मृदु हँसौंहैं सौंहैं जौंहैं कछु लजौंहैं
मन मौंहैं घूँघट मैं तिरछौंहैं लसौंहैं।
सुभाव चपलौंहैं कौंहैं उमगौंहैं सनेह चिकनौंहैं
अनखौंहैं लड़ौंहैं।
कटाछ दरसौंहैं सुसील दरसौंहैं आनँदघन प्राननि बसौंहैं॥

बिभास] (१२०) [चौताला

मैं तुमसौं केतियौ बार कही पै तुम तनकौ नाहिं गही।
ब्रज का लोग सहज ही चवाई इत उत ढुके लेन हैं सोध यही।
तुमहिं न सोच कछू काहू को लाज निदरि नित ही निबही।
आनँदघन जिय सौं जिय मिल्यौं तो अब कहा कसरि रही॥

(१२१)

जिनके मन सुबिचार परे।
गुरपद - परम - पुनीत - प्रसादहि पाइ प्रेम आनंद भरे।
जग तें बिरल बिबेक-देस बसि देखन कौं तित रहत ररे।
खान पान परिधान आन विधि अनासकत ह्वै करम करे।
साधारन सुभ असुभ न जानत नित निहचय रचि सोच टरे।
सावधान अति बिरह - बावरे मिलि सुरूप इहि ढार ढरे।
अमल अनूप बिदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति बिचरे।

[१२१] ररे=रटते रहते हैं।

तिनके पद पावन की रज मैं अखिल लोक - उपकार धरे ।
कृस्न-रसासव अनिस पान तें घूरन पूरन काम खरे ।
तत्वबोध की बलक छलक बस ढकी गाँस ब्यौरनि उघरे ।
कब धौं मिलैं हाइ हमहूँ वे संत - कलपतरु कृपा - फरे ।
सोभामूल फूल - सुख बरसत सरसत छाया हरे हरे ।
सुभ सीतल सुदृस्टि धारावलि सींचैंगे उरदाह - बरे ।
आनँदघन अमोघ रस-दायक प्रान रहत अभिलाष-अरे ॥

(१२२)

अब तौ वह गह मोहि बतैयै ।
जिहिं गह गहे परौ पुरुषोत्तम हाहा कब लौं छलनि सतैयै ।
दुरि कित रहे उघरि नाचे पै या बिधि दीनहिं कहा दतैयै ।
करि किन लेहु आपनो सगी बहुरगी लखि लजहु ततैयै ।
अवसर गएँ कौन जन स्वामी ढीठ्यौ दै जदुनाथ जतैयै ।
आनँदघन जग सुजस छाइ कै पतित पपीहैं निपट न तैयै ॥

सारंग] (१२३) [चौताला

कैसी नीकी सीरी सरूप पन जमुना तीन तन वारी ।
तहाँ बैठि मधु पियत जियत अधरनि सौं मिलै रसिक राधा छके बनवारी।
अति रसमगन उहट नहिं मानत कबहुँ होति हाहा मनवारी ।
दंपति चोंप केलि आनँदघन भाँतिनि अन अन वारी ॥

तथा] (१२४)

अनखनि सूधियौ न बोलै ।
ढीलियै डगनि डराति जोबन - छटा कढि पै टेढी डोलै ।
मेरोई सुख मोहूँ सौं दुरावति ऐसी प्रकृति कित पाई अहो लै ।
आनँदघन की रमँडनि घमँडनि उघरति सब अगनि
पानिप ओप अतोलै ॥

घूरन=घूर्णित, मत्त । गाँस=द्वेष । ब्यौरनि=विवेचन । उघरे=प्रकट होने पर । [१२२] गह=पकड़ । दतैयै=डटे रहने को विवश करते हो । ततैयै=चालाक को । न तैयै=तपाओ मत । [१२३] उहट=उचाट । अन=अन्य या अनु=बारंबार ।

तथा] (१२५)

ये नीके नीके सगुन भए ।
लालन नियरे सुनि हियरे तेँ सब दुख दूरि गए ।
उरज उमँगि सरकत बँद तरकत फरकत आगम अंग अए ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन सब रस लै उनए ॥

[चलती
बिभास ख्याल] (१२६)

प्यारे तिहारे मिलिबे की औसेर, लागियै रहति सो जिय मैं ।
तरसत नैन रैनि दिन बरसत दरसत जग अँधेर ।
कीजै कृपा लीजै जिवाइ दीजै दरसन इक बेर ।
व्याकुल महा कहा करौं क्यौं भरौं परी बिरह के घेर ।
प्रान-जीवनघन आनँदघन पिय सुनहु कान दै टेर ॥

तथा] (१२७)

निमाँनियाँ तुभ बिना असी हुइयाँ ।
दरस दिखावीँ आनि जिवावीँ नातर एवी मुइयाँ ॥

[झप
भैरों] (१२८)

बिरुदै सुमिरि बेसम्हारनि सम्हारौ ।
अकारन करुना, कहा करनी निहारौ ।
सुकृती-कुल ह्वै मिलौं तुमहि तौ कहौ या बिधि कृपानिधि पलै पन तिहारौ ।
संकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रबल मतवारौ ।
ताप आतप तलफि बिलखि मुरझात जननास आनँदघन कौन हित धारौ ॥

[चौताला
राग बिभास] (१२९)

डगमगे चरन धरत हैँ दोऊ आरस-बस निसि जागे ।
कुंज भवन तेँ उठे भोर ही परम सुरति-रस-पागे ।
बिथुरे चिहुर जगमगे आनन गरबहियाँ दियेँ अति नीके लागे ।
तन मन आनँदघन घमँडनि लखि लोचन भए हैँ सभागे ॥

१२७—हुइयाँ—कुइयाँ (सतना) ।

[१२७] निमाँनियाँ=अमानी । [१२९] चिहुर=केश ।

बिभास] (१३०) [चौताला

कछू रह्यौ अंजन फैल्यौ ती कौ कहूँ कहूँ लगी है कपोलनि पीकौ।
हौं वारी फिरि वारी राधे या बानक पै सुखदायक मो जी कौ।
छूटे चिकुर कंचुकि-बँद टूटे अधर दसन छत है अबही कौ।
भाग सुहाग घमँड आनँदघन बरसत सरसत पोष पपीहा पी कौ॥

राग देशकार] (१३१) [चौताला

बलिहारी हो कान्ह न पाई परति अटपटी बानि।
मन और मुख और ठौर ठौर ठानत डोलत पहिचानि।
ब्रजराजा के कुलमंडन हौ तुमहि कौन की है हो लाज कानि।
आनँदघन पिय रस-प्यासनि हमहूँ सौं करत आनि सरसानि॥

कानरी बिलावल ख्याल] (१३२ [मूलताल

सालूवाली मुरलीवाला तैंडा यार है।
घरी घरी आवंदा घुम्मर पावँदा बिसर गया घर-बार है।
तुझ बल तकदा रहि नहीं सकदा लग्ग नवेला प्यार है।
मिहिर नजर मुडि वेखनी से ये आनँदघन दिलदार है॥

सोरठ] (१३३) [चौताल

मेरी बानो मैं बनवारी बसौ, एक मुखी करि गुन गसौ।
असद अलाप अलपौ ना होइ सिथलताई तजि नीकैं कसौ।
मुरली-सुर सौं समोइ लीजियै ज्यौं गावै रसिका-सुरस-जसौ।
आनँदघन हित सरसौ बरसौ रोइ कहत हौं कहा धौं हसौ॥

पूरिया कल्यान] (१३४) [चपक

गोबरधन धरिबौ खेल कियौ हो।
नंद महर के कुँवर कन्हैया कठिन बात कैसे कहि आवै
बहुबिधि रस लै दियौ हो।
इंद्र बापुरो खरौ खिसायौ निज ब्रज नीकैं राखि लियौ हो।
बरस सरसि अचरज आनँदघन सींच्यौ हितनि हियौ हो॥

[१३०] ती=स्त्री, राधा। अबही०=टटका। [१३२] सालू=लाल कपड़ा। तैंडा=तेरा। घुम्मर०=चक्कर काटता है। बार=द्वार। बल=ओर। मिहिर=कृपा। मुडि०=मुड़कर देखना।

रामकली] (१३५) [चपकताल

गाइ लै री रसना गुन गुपाल के।
गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।
राधारमन रसिक रससागर नागर नवल सुनयन बिसाल के।
आनँदघन ब्रजजन - जीवनधन परम - प्रीति - पन - पाल के॥

गौरी ख्याल] (१३६) [मूलताल

तुमहीँ हो हरि गति मेरी।
सबै ठौर सब भाँति सब समय पति मेरी।
तुमहीँ मैँ तुमतेँ निहचल रहौ मति मेरी।
आनदघन चातक लौं राखौ रति मेरी॥

कनरी ख्याल] (१३७) [मूलताल

सलोने स्याम सौँ मन लाग्यौ री।
गनत नहीँ कुलकानि ननकहूँ अब ऐसो अनुराग्यौ री।
छिन पल कल न धरत बिन देखेँ उनहीँ के पन पाग्यौ री।
आनँदघन हित भयो है पपीहा और सबै कछु त्यागौ री॥

कानरी दरबारी (१३८) [चौताला

जमुना सरस सिंगार हिये मैँ बाढ़त तेरो रूप निहारि।
तरल तरंगनि अति रति रंगनि भेँटत स्यामहि सहस भुजानि पसारि।
मंजन करत कान्ह मनरंजन पै परत परम प्रीति पन पारि।
नवघनमै आनँदघन घमँडनि अदभुत रस - बढवारि॥

राग हमीर] (१३९) [चपकताल

मोरचंद्रिका मोहि चाहि रहै हौं हूँ वाहि निहारौं।
चकित डीठि करि लेत मेरियौ घूँघट कैसैँ सुधारौँ।
ब्रजमोहन की नई तरुनई रंग भरी छबि पै कहा वारौँ।
रीझ रमँड आनँदघन घमँडनि प्रान - पपीहनि पारौँ॥

१३७—पन—रस (सतना)। भयौ है—प्रान (वृंदा०)।

राग बिभास] (१४०) [इकताला

लाग्यौ जी अब तौ मन तुमसौँ कैसैँ हू करि होत न हातौ ।
सुनहु कान्ह अँखियनि के तारे निपट कठिन है नेह को नातौ ।
मोहन मूरति देखि लुभानौ उमहत नहीँ और की घाँ तौ ।
आनँदघन कुलकानि - सखला डारी तोरि महा मदमातौ ॥

गधार] (१४१)

जसुमति लालहि लेहु लडाइ ।
करौ क्यौँ न यौँ सफल भली बिधि जीवन सो धन पाइ ।
यह सुख सोभा अरु यह औसर भल्यौ बन्यौ है आइ ।
गोपराज के बास बसौ मन जौ लौँ कछू बसाइ ।
स्याम सजीवन ब्रजजन - जीवन रहत एकरस छाइ ।
हिलनि मिलनि बोलनि डोलनि खेलनि अप अपनै भाइ ।
यह जमुना यह रमन भूमि छबि देखन को है दाइ ।
रची बिधाता अति रसरैनी रग चढ़ै तो चाइ ।
रस-चसकौ जौ परै जीव कौँ जियै ज्याइ गुन गाइ ।
प्रान - पपीहनि पोषि पालियै आनँदघन बरसाइ ॥

राग बिभास] (१४२) [चौताला

अरी चलिचलि उठि चलियै घर कौँ चली निसि ये तौ मचलि परे हैँ ।
इन बातनि कबहूँ न अघाने ये धुर के रसलोभी रसिक छैल
अति छल-बलनि भरे हैँ ।
चोरी मैँ चौचँद सठताई चतुर कहाइ निसंक खरे हैँ ।
फूँकि फूँकि पाय धरि ब्रज बसियत ये आनँदघन छाइ छाइ उघरे हैँ ॥

ऐमनि बिहा] (१४३) [चलती इकताला

अरी मैँ कैसैँ भरौँ कहा करौँ प्यारे ब्रजचंद बिना ।
रैनि अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीँ एकौ छिना ।
क्यौँ हूँ क्यौँ हूँ होत सबारो बाट निहारौँ सबै दिना ।
आनँदघन पिय भूलेहूँ लई प्रान-पपीहनि की सुधि ना ॥

[१४०] सखला=(श्रृंखला) कड़ी । [१४२] धुर के = अत्यंत ।

बिलावल] (१४४) [इकताला

प्रान सनेही साँवरे सुधि लीजै हाहा ।
एक तिहारे आसरे लगि जीजै हाहा ।
जो जिय भावै भावते सो कीजै हाहा ।
रैनि दिना अँसुवानि सौं उर भीजै हाहा ।
बिरह तचें सियरो परें तन छीजै हाहा ।
मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हाहा ।
जित तित हित अनहित भजैं क्यौं धीजै हाहा ।
ज्यों तरसत प्यासनि मरयौ रस पीजै हाहा ।
आनँदघन छाए कहाँ वे बीजै हाहा ॥

बिभास] (१४५) [मूलताल

ऐसें और कौन दुलरावै, राधा मोहन कों जैसें जैसें हौं गाऊँ ।
हिय उमग अनुराग रग रागनि तरग सौं रीझनि भीजि भिजाऊँ ।
एक बरन मैं जुगल - बरन बर बरनि बरनि बानी बर पाऊँ ।
रोम रोम सुख सपति लहि आनँदघन बरसाऊँ ॥

पचम ख्याल] (१४६) [मूल

मेरो कह्यौ सुनि लै री राधे हाहा मान न कै री राधे ।
ब्रजमोहन अँखिया को तारो तो बिन व्याकुल है री राधे ।
बिनती करि करि मोहिं पठायो बहुत भाँति सौं नै री राधे ।
आनँदघन पिय तृषित पपीहा रिस तजि कै रस दै री राधे ॥

(१४७)

आरति करत बियोगी नैन ।
मोहन मूरति देखेंहूँ बिन देखत हैं दिन रैन ।
हिय-जिय-दीपा सनेह-सँजोई जगमगाति जागि मैन ।
आनँदघन पन-पले पपीहा लें वारत सुख-चैन ॥

[१४४] नहिं थीजै=स्थिर नहीं होता । धीजै=धैर्य धरे । बीजै=(विद्युत्) बिजली ।

अड़ानो] (१४८) [मूलताल

क्यौं जू कान्ह कहौ तिहारी चितवनि मैं कौन ठगोरी ।
चाहतहीं चित जात बिबस ह्वै लागि रहति हित-ढौरी ।
कैसैं अपुनपौ साधि राखियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी ।
लाजौ रीझ भीजि आनँदघन मिल्यौ चहति भरि कौरी ।

भैरव ख्याल] (१४९) [चलती इकताल

मेरी अँखियनि के आगैं रहियै प्यारे ।
सहि न सकैं अंतर करि राखैंगी तारे ।
हित की गति को बूझै तुम बिन और न सूझै रूप-उज्यारे
ब्रजमोहन मतवारे ।
आनँदघन जीवनधन तुमहीं सौं लाग्यौ मन बिन
देखे छिन छिन रहैं प्रान दुखारे ।
तनक दया गहौ हाहा तुम्हीं कहौ कैसैं कै जितवैं ये बिरही बिचारे ।

दोहा] (१५०)

पनघट जौ जैयै न तौ, करै ननदिया सोर ।
घट पट सुधि भूलै तबै, देखैं कान्ह किसोर ॥

रामकली] (१५१) [मूलताल

ए जू स्याम रसीले रंगनि रँगीले अनत जाइ रति मानी ।
अपनो सो बहुतै दुराव करि आए मोहन बात रहति क्यौं छानी ।
नैन बैन अति सिथिल लगे न चित चेन चाँप चितवनि पहिचानी ।
आनँदघन उनए गरजे बरसे सरसे हम जानी है जू जानी ॥

बिभास] (१५२) [कपोतताल

राग रागनी के नीके नीके भेद मोहन मुरली मैं बजावै ।
सुनि सुनि सजनी जिय तैं गुरजन की लाज भजावै ।

१४८–लाजौ–लाजौं (सतना, वृंदा०) ।

[१४८] ढौरी=धुन । कौरी=(क्रोड़) गोद । [१५१] छानी=ढकी, छिपी ।

तेरी निकाई पै मति बिकाई हँसनि जगति जोति जब कपोल-गाडनि।
आनँदघन पिय-हित नित झर करि छाड़ि दई छिन छाडनि ॥

हमीर] (१५९) [मूलताल

प्रिय मूरति देखन कौं नैन तरसत हैं।
मोहन-मुख-लालसा उनए उघरि उघरि बरसत हैं।
लोकलाज-त्यौं तनकौ न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन हित चातक चौंपनि पल पल सरसत हैं ॥

हमीर] (१६०) [चंपकताल

लाल उजियारे नैननि के तारे हमारे आइ क्यौं न सुधि लेत।
तब सब बिधि सुख दै दै बिसासी अब ऐसैं दुख देत।
मन तैं तनकौ न टरत परेखौ जु कहा भयौ वह हेत।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन सुरस भरौ पन-खेत ॥

(१६१)

हरि सब काज सुधारे मेरे।
दूरि दूरि लौं मन फिरि आयौ गहि पाए अति नेरे।
सोवत जगत चलत जितहीं तित लेत रहत हैं फेरे।
आनँदघन प्राननि के सगी मोहन मूरति हेरे ॥

(१६२)

प्रेम तौ गोपिनि ही को भाग।
जिनके नद-सूनु सौं साँचो रच्यौ राग अनुराग।
कहियै कहा निकाई मन की जो कछु लागी लाग।
सर्बसु बिसरि बिसरि सुधि साधी महामोह की जाग।
ब्रजमोहन की महा मोहनी अनुपम अचल सुहाग।
आनँदघन रस झेलि झालरीं नव बृंदाबन बाग ॥

एमनि] (१६३) [इकताला

मोहिं बिरहा करै नकवानी।
कैसैं रहौं कासौं कहौं जिय की बिथा न दुरै अँखियनि को पानी।

गाड़=गड्ढा।

नये नेह ाचे ब्रजमोहन हम सौं परी पहिचानि पुरानी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहनि अपनी पैज हठानी ॥

सारंग] (१६४)

गोपाल भरोसैं सोइयै ।
जागि जागि भ्रम भूलि सोच मैं क्यौं यह अवसर खोइयै ।
जो कछु उन्हैं सुहाइ सोई भई हानि है होइयै ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि परम प्रेम-रस भोइयै ॥

सारंग] (१६५) [चौताला

जमुना तरंगनि बाढी सुनि सुनि मोहन-मुरली-नाद ।
स्याम-रची हित-मचनि मची भाँवर भरति रहै पूरन प्रेम-सवाद ।
रसिकराय के अमित-रस-भरी केलि-सदन-बन की मरजाद ।
आनदघन घमँडनि जाकै तीर आभीर-तरुनि-भीर महामद उन्माद ॥

गांधार] (१६६) [चपक

जहाँ जहाँ गुन रूप के बिना न पाइयत तहाँ तहाँ तुम ही हौ सबादी ।
तिनहीं तिन सौं बाँधि बाँधि मन ऐंचि खचि लेत जानै महा रसबादी ।
मोहि कहा दोष आप गुन भरे अनबादी हौ अनादी ।
आनँदघन घमँडत गरजत बरसत सरसत रस मोहन मुर-
लिया के नित नादी ॥

राग बिहाग ख्याल] (१६७) [मूलताल

लई कन्हैया ने हौं घेरि ।
खोरि साँकरी माँझ सँझौखैं आइ गयौ कितहू तैं हेरि ।
कौरी भरि उर धरी औचकाँ अकली काहि सुनाऊँ टेरि ।
आनँदघन घुरि सराबोर करि पठई घर लौं निपट लथेरि ॥

१६७—हौं-हो (सनना) । उर-औ (सनना) और (वृंदा०) ।

[१६३] पैज०=प्रतिज्ञा का हठ हो रहा है प्रतिज्ञा पर डटे हैं । [१६५] मरजाद=(मर्यादा) सीमा । [१६७] सँझौखैं=सायम् होते ही । कौरी=(क्रोड) गोद ।

पूरिया] (१६८) [चपक

हिय तेँ न हाते होत पल एकौ ।
फिरि ताकी सुधि लेत क्यौँ न पिय बिलग न मानौ कहे कौ ।
हियौ कठिन कियौ ब्रजमोहन ह्वै टरत न गहि लाड़लो टेकौ ।
आनँदघन हौ एक हमारैँ चातक तुमहिँ अनेकौ ॥

एमनि] (१६९) [चौताला

वारी हौँ वारि डारी आछी बनक यै नंद के कुँवर कन्हैया ।
कोटि काम हूँ तेँ अभिराम मधुर सलौनी स्याम मूरति
आँखिनि जोति जगैया ।
स्रवननि सुधा पिवाय जिवावत मोहन मुरली-तान सुनैया ।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन नित ही रस - बरसैया ॥

नट] (१७०) [मूलताल

गई लगाय चटपटी पिय के चित कौँ ।
घूँघट मैँ मुसिकाँहीँ अँखियनि तेँ जु जतायौ हित कौँ ।
भाँवरि भरत रहत मनमोहन चाँपनि ही नित इत कौँ ।
आनँदघनहि पपीहा करि तब अब तरसावति कित कौँ ॥

केदारो] (१७१) [मूलताल

मितवा रे तुमी सन मोरा लागीलो नेह कैसैँ छूटै ।
आनँदघन पिय प्रानपपीहा आस लागि जीवत है यह तौ तोरैँऊ न टूटै ।

ख्याल केदारो] (१७२) [चलती चरचरी

कैसैँ भरौँ तुम बिना अब मोहि कठिन कठिन बीतत पल-छिनवाँ ।
तुमरे देखन की औसेर लगी रहै बलमाँ निसि-दिनवाँ ॥

ललित ख्याल] (१७३) [मूलताल

मोरा मनवाँ है तुमी सन लागीलौ,
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे प्राननि प्यारे ।
ब्रजमोहन पिय तुम्हरे कारनवाँ अरे बलि सगरो रैन जागीलौ ॥

१६९—मधुर—ललित (सतना) । मोहन—मधुर (वही) । १७१—लागी-लौ०—लागी लगन (सतना) । १७२—तुमरे—तिहारै (वही) । १७३—ब्रज०—स्यामसुदर (लंदन) ।

[१६८] हाते=दूर ।

रामकली ख्याल] (१७४) [चरचरी

तुम्हैं काहू को कछू कहा अजू भए कान्ह कठोर महा।
नेह कनावड नेंक नहीं कहूँ अपनी गौं के अहा।
बसि करि देत बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नये लहा।
आनदघन पिय प्रान-पपीहनि की गति कौन हहा॥

गधार ख्याल] (१७५) [मूलताल

आँवो साँवलरा मैंडी जान।
वेखण कारण अख्यीं तपदीं रत्त-दिहाड़े तैंडा ध्यान।
मुरली सुनाइ साँनूँ चेटक लाया सोहन सजन सुजान।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन वंदी हाँ कुरबान॥

एमन बिहाग ख्याल] (१७६) [चरचरी

साँवला दिलजान मैंडा है।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन सोहन सजन सुजान॥

एमन] (१७७) [मूलताल

सभना नाल तैंडा नेह नवेलरा।
साडरे प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन प्यारिया लग्गा इश्क अकेलरा॥

परज] (१७८) [मून

ढोलन वेखाँहीं जीवानी।
नैन-पियाले भरि भरि सेये रत्त-दिहाड़े मैं पीवानी॥

राग मारू] (१७९) [आड़ चौताला

आज हमारैं आवैंला घनस्याम आनँदबधावरौ मनाइस्याँ।
फूलाँ केस गुँदाइस्याँ काजलरी रेख बनाइस्याँ।
सौंधा भीनी काँचली कमाइस्याँ, मोत्याँरा हार ढुलाइस्याँ।
आँगनरौ चंदन लिपाइस्याँ गजमोत्याँ चौक पुराइस्याँ।
घीयाँ दीवला जगाइस्याँ चित्रसारी ढोलीयौ बिछाइस्याँ।
हँसि हँसि कंठ लगाइस्याँ आनँदघन झड बरसाइस्याँ॥

१७४—हहा—कहा (लदन)।

बिहागरो] (१८०)

क्यौं सुख दै दुख बहुरि देत हौ।
हरत हियो बस करत हँसनि मैं ब्रजमोहन फिरि सुधि न लेत हौ।
तुम्हैं कहा काहू को चिंता नित निधरक सब सुखसमेत हौ।
आनँदघन अचरज झर लावत अचै अचै चातकनि चेत हौ॥

मालकोस ख्याल] (१८१) [चरचरी

अरे हाँ रे तोरे दरसन काँ तरसै मोरा जियरा घरी पल।
आनँदघन पिय छाइ रहे कहूँ कासौं कहौं यह बिथा न परै
परेखवाँ निसिदिन कल॥

सारग] (१८२) [चौताला

लै अनबोली कब लौं रहैंगी मोसौं हितू सौं अचगरी।
रिस तौ उनसौं मोसौं कहा अर आजु करति अगरी।
जौ ऐसो जानती तौ डुलतो न बेकाज हित के भरोसे ह्याँ लौं डगरी।
आनँदघन अभिलाषनि उनए चाहत ह्वैहैं मग री॥

सारंग] (१८३) [इकताल

मैन-मद छाकी गुजरिया मतवारे मोहन के संग लागी डोलै।
मुरली-नाद-सवाद रीझि रही घूमनि झूमति उरझि उरझि मन खोलै।
बन - कुंजनि बिहरत गजगमनी अति कमनी रवाँनी को लै।
आनँदघन-रस रूप-चातकी चोंपनि बाढी उर अनुराग अतोलै॥

सारंग] (१८४) [चपक

मोहन मूरति बिसरै नहीँ, कैसैं मन बहरैयै।
जागि जागि लूटैं अँग भरै जोति जगमगे घूमि
झूमि रहै तहीँ तहीँ।
भूले से दिन रैनि बितैयै सुनियै समझियै न गुरजन की कहीँ।
आनँदघन मँडराति रहै मुरली-धुनि काननि प्राननि
भिजवै माँगति उमहि मुहाँचहीँ॥

[१८२] अचगरी=शरारत। अगरी=अधिक। [१८४] मुहाँचहीँ=दर्शन।

षटराग] (१८५) [मूलताल

श्री गोपाल गोकुलबिहारी वारी तिहारी आवनि निहारियै ।
चरन-धरनि मैं धरनि होति धनि कहा कहौं फिरि कहा वारियै ।
नखसिख ललित सलोनी मूरति नैन जुगल लालसा भारियै ।
आनँदघन झर लगे लगौं हैं प्रान - पपीहनि रुचि बिचारियै ॥

आसावरी] (१८६) [चंपक रूप भेद ताल

बँसुरिया मैं कहा विष लै भरयौ निपट बिसासी स्याम ।
जाकी तानन कानन परसत घूमत मन अस्ट जाम ।
आन हाथ आन पाइ हूजियत कैसो धाम अरु कैसो काम ।
आनँदघन रोम रोम छाइ होइ ब्यापत बिरहा-घाम ॥

सारग] (१८७) [मूलताल

सनमुख चाहन कौं चित चाहै लाज निगोड़ी रोकति आनि ।
मोहन - रूप माधुरी पान करन कौ नैननि बानि ।
घूँघट कानि करन त्यौं सजनी उपजी जिय मैं अति अरसानि ।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि ॥

लहचारी बिहाग राग] (१८८) [मूलताल

राधा माधौ बिहरैं बन मैं ।
हरी भरी कुंजनि जमुनातट फूले फूले मन मैं ।
मदन-केलि-सुख-पगे जगमगे जगी तरुनई तन मैं ।
अरस-परस तन बन परसत आनँदघन भीजे पन मैं ॥

भैरौ] (१८९) [इकताला

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन ।
इतने पै घरहू मैं जीवति ये अपराधी तजत न गोहन ।
सब बिधि तुम्हैं सुखी चाहति हौं स्याम सुजान सुभाय के सोहन ।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय बिरह-बिछोहन ॥

१८७–करन–करत (सतना) ।

सावंत] (१९०) [इकताला

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रसबाद ।
रंग रहै सो करियै लालन भलौ न अति अनबाद ।
ब्रजमोहन जू गोहन छाँडौ गीधे बीधे सरस सवाद ।
आनँदघन हठ घमँडनि ढुरि घुरि घेरी हौं बन बाद ॥

एमन बिहाग] (१९१) [चरचरी चलती

मुरली कौन रंग सौं बाजै ब्रजमोहन बनवारी की ।
जाकी धुनि सुनि बिकल होत हिय कुल की कानि लोकलाज लाजै ॥

केदारो] (१९२) [मूलताल

तुमसौं मेरी प्रीति लगी पै तिहारी कौन ढौर ।
साँची कहौ मनभावन हाहा कहा बनावत औेर ।
मोही से जौ औरनिहूँ सौं तौ मोहिय तिनहूँ की रौर ।
आनँदघन पिय अचरज-झूमनि रसिक-छैल-सिरमौर ॥

(१९३)

सबतेँ न्यारो है हरि भेँटि ।
रे मन मद-बिकार-भरयौ तू निखरि मैल कौं मैंटि ।
निज सरूप सौं सम्हारि छूटि लगि भूलनि भलैं भुलाव ।
औसर है हाहा जिनि हारै दाव दैन को दाव ।
चेतन तैं जड भयौ सग-बास अजहूँ तजत न संग ।
तन तैं निकसि बिदेह देह धरि रचि आनँदघन रंग ॥

सारंग] (१९४) [चंपक

कान्ह कितेक दिननि तैं याही डगर डोलिबो लयौ है ।
तुहूँ देखियति जब तब ठाढी ओट अटा की जाग्यौ नेह नयौ है
रूखी बतियनि दुरति कहाँ लौं मोहिं कछूक जनाव भयौ है ।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ आनँदघन उनयौ है ॥

[१९०] अनबाद = फालतू बात। गीधे = परच गए। [१९२] ढौर = ढंग। रौर=हलचल ।

नट] (१९५) [चंपक

ब्रजमोहन प्रानप्यारे मेरी अँखियनि हिलग परी ।
रोको रहति न घूँघट पट की चौंप चटपटी खरी ।
बिन देखैं कल पलकौ नहीं धरैं लाएँ रहति झरी ।
आनँदघन पिय कितहूँ छाए इत की सुधि बिसरी ॥

(१९६)

जयति जयनि नरसिंह प्रह्लाद आरतिहरन बत्सल बिपुल
बल बिनोदकारी ।
पूरन प्रताप अरितम-विहंडन खंड खंडनि प्रचंड जस तुंडचारी ।
सर्वथा सर्वदा सुहृद सम सर्वत्र सम्यक सुतंत्र सामर्थिधारी ।
सत्यसकल्प - संदोह संसर्ग संग्राम जूंभा असुरसंघहारी ।
अरुन अति तरुन ग्रीषम तरनि बरन वर सोचमोचन बिलोचन बिहारी ।
सुर सनक सुक स्वयभू संभु संस्तुत महामंगलकरन अभय भारी ।
बंदन करौं कृपाधाम अभिराम पद भूभार टारन अटल मुरारी ।
तृषित जन दुखित परितोष पोषन भरन आनंदघन अखडित खिलारी ॥

काफी राइसा] (१९७) [झपताल

गुन गाइ लै गोकुलानंद के ब्रजचद सुखकंद सुछंद के ।
सकल रससार स्रुतिसार मोहन महा आधार सनक सुक सद के ।
मगल मुकुटमनि मनोरथ-कलपतरु उदार अति अद्भुत अमंद के ।
ललित लीला-बलित संपदा-संकुलित अतुल जय अमल जगबंद के ।
क्रीड़त सदा सुहृद - संग जमुनातीर लडिले जसोमति नंद के ।
कृपाधन - मूल आनंदघन अनुकूल हरन दुख - बृंद भ्रम-फंद के ॥

सारंग] (१९८) [चौताला

श्रीराधा - चरन करि मन ! मेरे बंदन ।
मोहन मधुप भरयौ अभिलाषनि सहित लेत मकरंदन ।

१९७—बृद—द्वद्व (मतना) ।

[१९६] तुंड = मुख । संदोह = समूह । [१९७] संद=सनंदन ।
[१९८] रवनी०=राधा ।

बनअवनी रवनी-सिर-मंडन जगमगात दुति उदित अमंदन ।
बेद पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन, गति स्वच्छंदन ॥

तथा] (१९९)

जब जब सुधि आवै मोहन बनवारी की तब
तब तन निकसि जाइ ।
डरी रहति परबस ह्वौं घर मैं यासौं यौं न बसाइ ।
मुरली-भनक इतै पै सतावै आन हाथ होत आन पाइ ।
बिरह-घाम ब्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराइ ॥

होड़ी] (२००) [मूलताल

तूँ जब चाही री मुसिकौंहीं अँखियनि तब तैं उन मन मानी ।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानी ।
प्रीति बढ़ै चित चौंप-रंग चढ़ै सो कीजै सुनि सुघर सयानी ।
आनँदघन पै तोसौं हित गति चातक तैं अधिकानी ॥

अडान] (२०१) [चरचरीताल

सारी सुरँग सुही चुहचुही निपट पहिरैं राधा गोरी ।
साँवरे-बरन-कोर कपोलनि हिलि मिलि झिलमिली खिली
झूलै जोबन-उमग-बोरी ।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बेंदी मधुर
अधर बीरी-रचनि उघरि करति चित की चोरी ।
आनँदघन पिय को हियौ नीबी - कसनि गसनि बस्यौ
लंक लचक संक अंक भरति दृगनि ओ री ॥

राग मलार] (२०२) [चौताला

कान्ह की बँसुरिया रंगनि बरसै ।
राग अमृत की नवल घटा घमँडी अनुरागहि सरसै ।
संकीर तानैं तेई चपला की चमकैं धुनि-ब्यापनि धुरवा-गन दरसै ।

२०२—बँसुरिय'—मुरलिया (सतना) । राग—नाद । रसनै-रसमय (वही) ।

[१९९] डरी०=पड़ी रहती हूँ । [२०१] कोर=किनारा । [२०२] संकीर = संकीर्ण ।

मोहन मादक मधुर कहा रसनै आनँदघन पिय के अधरनि परसै
याहि सुनि सुनि क्यौँ न हियरा तरसै ॥

आसावरी] (२०३) [चंपकताल

सगरी रैनि जागे री ये बियोगी नैन हरिमग हेरि ।
ब्रजमोहन अवधि बदि लुभाने पायौ कबहुँ न यौं चैन ।
कहा करौँ मन क्यौँ हूँ न समझत तनहि दहत दुखदाई मैन ।
आनँदघन पिय चौंपनि छाए आए अजौं उत तैँ न ॥

राग केदारो] (२०४)

मुरली मेरेई गुन गावै ।
सुनि री सखी स्यामसुंदरि क्यौँ न महारस पावै ।
हौँ हीं भई बाँसुरी उनकी याही तेँ अति भावै ।
अतुल प्रेम के भेदभाव को यौँ कहि कौन सुनावै ।
याकी अकथ कथा है हेली ह्याँ मति गतिहि घुमावै ।
फिरि आनँदघन पिय त्यौँ मेरेई प्रानपपीहनि तावै ॥

राग धनासिरी] (२०५) [चपकताल

नँदनंद जिय मैँ बसैँ आखैं देख्यौंई चाहैँ ।
चौँप चटपटी की गति अतिहीँ अटपटी बिन बातों ये कराहैँ ।
दसा हौँ ही जानति जैसेँ बूड़ति उछरति प्रीति-परेखनि गहरे थाहैँ ।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि की सुधि भूले उनए कहूँ नए लाहैँ ॥

टोड़ी] (२०६) [चौताला

तेरी निकाई तोही दई है बिधाता राधे रूप रती भरिपूरि ।
रति रंभा सची रमा उमा आदि कनि के गरब टारे री चरननि चूरि ।
रसिक - मुकटमनि ब्रजमोहन मनमानी जानी बखानी
बेदनि महिमा भूरि पदवी परम दूरि ।
आनँदघन के प्रान-पपीहनि रस-सपति-दैनी जिय की जीवन मूरि ॥

२०६–दूरि–पूरि (सतना) ।

सारग] (२०७) [चौताला

तुम्हरे सुख सुखी कब ह्वैहै मन ।
सकल ठाँव तैं छूटि एक तुमहीं सौं ठहरिहै पन ।
ब्रजमोहन याहू किन मोहौ रँगीले रिझवार ब्रजजन के धन ।
अपनो पपीहा परितोषौ पोषौ रसमय आनँदघन ॥

देसी] (२०८) [मूलताल

मुरली मैं मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीलो छैल ।
ब्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ बरज्यौ न मानै अरैल ।
प्रेम-लहर तन मनहि घुमावै नाद निगोड़ो निपट बिसैल ।
रोम रोम आनँदघन घमँडनि बिरह-व्यथा की फैल ॥

बिहागरो] (२०९) [चपक

भावती बतियनि लगि लगि छतियनि लाग निपट रसबसे रसाल ।
जोवन रूप अनँग - रँग - राते मदमाते करत रँगीले ख्याल ।
छैल छबीले राधा मोहन प्रेमपगे जगमगे लाल ।
आनँदघन रस-भीजे रीझे बिलसत हुलसत बाढति चोंप बिसाल ॥

कालिंगड़ा ख्याल] (२१०) [पंचम चरचरी

कान्हा बाँसुरी बजाइ रह्यौ, सुनि सुनि कैसैं करि जाइ रह्यौ ।
मनमोहन मूरति आनि अरै, कुलकानि सखी तब कौन करै ।
बन बेलिन मैं धुनि छाइ रहै, मति गति उत ही उरझाय रहै ।
घनआनँद यौं उनयौ नित है, मेरे प्रान-पपीहनि सौं हित है ॥

दोहा] (२११)

सुधि आएँ पिय मिलि खिली, यौं याही बन माँझ ।
सरसौं सी फूलति सखो, देखत फूली साँझ ॥

ऐमन बिहाग ख्याल] (२१२) [चरचरी

अनी दिलजान ढोलन पाया, रब्बे कीता साडरे दिलदा भाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारा पपीहाँ दे घर आया ॥

२०८—मनहि०—उरझावै (सतना) ।

सारंग] (२१३)

क्यौं जमुना यौं कब लौं रहियै ।
तेरे तीर बिना या मन की पीर कहाँ निधरक ह्वै कहियै ।
ब्रजमोहन बिन यह तेरो तट औरै भयौ आय कै वहियै ।
तब तमाल-तर आनँदघन झर अब ऐसैं बियोग-झर दहियै ॥

रामकली ख्याल] (२१४) [चरचरी

निसदिन लागी है औसेर तुम्हरे दरस की ब्रजमोहन प्यारे ।
आनँदघन पिय कान करौ किनि प्रान-पपीहनि टेरे ॥

एमनि ख्याल] (२१५) [मूलताल

क्यौं मियाँ मैं तैंडी बँदी सानू भी निबाहि लैंवीं ।
दरस दिखावीं ना तरसावीं आनँदघन प्यारिआँ प्रान-
पपीहौं दी की आहि लैंवीं ॥

गौरी ख्याल] (२१६) [मूलताल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है ।
तुमहि लगे ब्रजमोहन कितहूँ अपनी अपनी गौं है ।
तुमहिँ बहुत तुम एक हमारैं गति चकोर ससि लौं है ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैयै हिये परेखनि दौं है ॥

गौरी] (२१७) [झपताल

हरि-सरन तकतहीं मरन-भय भाजै ।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख-संपदा संतत बिराजै ।
धाम धामी और दास-सेवा-समय एक रस निरद्वंद दुंदुभि बाजै ।
देस अद्भुत महाबिभव कहियै कहा आनँदघन घमँड
अमित छबि छाजै ॥

सारंग] (२१८) [चौताला

बंसी की धुनि सुनियत याही ओर आए नियरे कान्ह किसोर ।
नैना उतहीं लागि रहे गए गाय-चरावन भोर ।

२१६—तुमहिँ०—छिन-पल कल न परत बिन देखें (सतना) ।

मन उन संग सदाई डोलत गिरि बन कुंज खरिक अरु खोर ।
प्रान-पपीहा आनँदघन हित चौंपनि भए हैं चकोर ॥

परज] (२१९) [इकताला

ब्रजमोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही ।
सोवन देति न सोवति बैरिनि ऐसी टेक गही ।
ताननि बाननि प्राननि बेधै निरदय निपट चही ।
इतने पै धुनि सुनियै भावै गति नहिँ जाति कही ।
मेरी सी गति मेरियै किधौँ औरनि हू की यही ।
घर कै घेर परी तरसति हौँ आनि बनी सु सही ।
आनँदघन पिय बस करि राखे पूरन प्रीति - नही ।
गरब-भरी गरजै सौ लेखैँ रस को रासि लही ॥

राग धन्यासिरी] (२२०) [चौताला

ऐसैँ ऐसैँ मुरली बजैबो कान्ह कहौ कब तैँ नाँध्यौ है ।
तान किधौँ प्रान बेधि जिवावन बिषम बान साँध्यौ है ।
अबला बिचारिनि के मन हरन-करन कौँ पन बाँध्यौ है ।
आनँदघन उनए ही रहत तुमहूँ बस याकै अरु मदनौ मद आँध्यौ है ॥

सोरठ] (२२१) [चंपकताल

उनीँदी अँखियनि छबि फबी है ।
चौंपनि भई है जगार भावते संग संग मैँ झपकि झपकि
उघरति उघारो ही तचि तवनि आरस दबी है ।
अधरराग-अनुरागीँ पागीँ इनकी उपमा बनति नबी है ।
आनँदघन मिलि भामिनि दामिनि अति रस-ढरनि ढबी है ॥

बिभास] (२२२) [चौताला

तिहारी कौन टेव है प्यारे सदा तैँ ऐसैँ हीँ करि आए ।
जानत नाहिँ पराई कनावड गौँ हीँ गौँ ललचाए ।

[२१९] नही=नथ दी, गूँथ दी । सौ०=सौ प्रकार से । [२२१] जगार=जागरण । नबी=नवीन । ढबी०=ढली है ।

इन बातनि मोहि भले नहिं लागत अपनो मो बहुतै समुझाए ।
चोरी मैं बरजोरी कहत हौ आनँदघन पिय नई रसिकई छाए ॥

रागिनी देवगिरी] (२२३) [इकताला

राधा मोहन को यह नेह निपट नवेलो है नितहीं ।
बिछुरि मिलन मिलि बिछुरि परत हैं चाह-उमाह-गहे चितहीं ।
नीकी जोट अनूप रूप गुन सुनी न कनहूँ देखी इतहीं ।
आनँदघन रसरगनि बरसत उनै उनै ब्रजबन जित-तितहीं ॥

टोड़ी] (२२४) [मूलताल

आली री तेरे अधरनि अंजन-रेख खुली है ।
नवल केलि रस-झेलि ललित लट बिमल कपोल झुली है ।
बस करि राखे रसिक बिबस ह्वै अतुल अतन के तेह तुली है ।
आनँदघन पिय रीझनि भोजे उर लगि खगि न डुली है ॥

सुद्ध] (२२५) [मूल

ततथेई ततथेई थेई ततथेई तत तेथेई तेथेई ताथुंगा थुंगा ततथेई थेई ।
उघटत रसिकराय नटनागर नव नागरि सुघंग सौं लेई ।
तान गान बंधान मान संगीत रीति प्रमान अति जेई ।
आनँदघन पिय रीझ भाजि भुज भरि मनिमाल वारनै देई ॥

आसावरी] (२२६) [इकताला

मिहँदी राचनी लगि लली है नवेली के हाथ ।
छुटे बार मुख ओप डहडही अलि गावत गुनगाथ ।
ब्रजमोहन की नवल दुलहिया सोहनि ललित सहेली साथ ।
आनँदघन पिय उमगनि उनए भरत सुबल कौं बाथ ॥

पूरिया धन्यासिरी ख्याल] (२२७) [चनती चरचरी

हमैं न बिसारि दीजै हो हा हा हा हो सनेही स्याम ।
जिय धरिबे कों न ठौर कहूँ और तुम ब्रजमोहन हौ बहु-
नायक साँच यह आठौं जाम ।

[२२४] अतन=काम । तेह=वेग, उमग । खगि=धँसकर । [२२६] राचनी=रचनेवाली । सुबल=एक सखा । बाथ = अँकवार ।

मन बावरो न क्यौं हूँ समझै पावै नहीँ तनकौ बिसराम ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहा आस लागि जीवत हैँ
निसिदिन रटत तिहारो नाम ॥

अड़ानो] (२२८) [मूलताल

स्याम घन तेरियै घॉ घुरि बरसै ।
उघरि उघरि मुरली-गरजनि मैँ सुर के धुरवा सरसै ।
रमड़यौ रहत रैनिदिन राधे रसमूरति चातक लौँ तरसै ।
आनँदकद नंदनंदन त्यौँ कौँधि कहूँ दै दरसै ॥

सारग] (२२९) [चपक

घमॅडि रह्यौ री बन बेनुनाद कैधौँ मदन-दुहाई ।
सुनि बिथकित सरिता समीर पघिले पखान जड़ जगम गति पलटाई ।
अबला बिचारिन कौँ कहाँ धीरज ऐसैँ कैसैँ आवति रहाई ।
आनँदघन मकरद द्रवित द्रुम सारँग सरस बजाई ॥

सारग] (२३०) [चौताला

जो सुख होत है इन अँखियनि ब्रजमोहन को मोहन मुख चाहि ।
सो एई जानति कै ज्यौ कैसैँ कै कहियै ताहि ।
अंग अग की बनक ठनक लखि मैन मनहिँ डारत अवगाहि ।
इतने पै आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि कितहूँ की सुधि काहि ॥

अरगजाबचम] (२३१) [मूलताल

मैँ वारी मैँ वारी वारि जावाँ, वो वो वो ।
अरज असाडी सुनि ब्रजमोहन सोहन मुख विखलावीँ ।
तुझ बाजू असी खरी वो निमाँनी कीवाँ दिल परचावीँ ।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन रिमि झिमि रिमि झिमि आवीँ ॥

[२३१] असाडी=हमारी । विखलावीँ=दिखाइए । बाजू=पास । असी०=हम खड़ी हैँ । कीवाँ=कैसे । आवीँ=आइए ।

गंधार राग ख्याल] (२३२) [मूलताल

ब्रजमोहन सौं प्रीति लगी है अब तौ मेरी ।
कहा करैंगी सासु ननदिया रहति न इनकी घेरी,
आनँदघन रस चितवनि हेरी ॥

पचम ख्याल] (२३३) [मूलताल

अब तौ जानी है जू जानी ब्रजमोहन सुखदानी ।
मेरा तिहारी लाग ननदिया दुरि कितहूँ पहिचानी ।
चोकन भई रहति है बैरिनि जौऽब निकसियै पानी ।
वाकैं डर सूखति आनँदघन इन के झर नकवानी ॥

तथा राग] (२३४) [ताल

ए री रूप-अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
तेरे मिलिवे कौं ब्रजमोहन बहुत जतन हैं साधे ।
उनकैं निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे ।
आनँदघन पिय चातक चौंपनि हा राधे आराधे ॥

धनासिरी] (२३५) [चंपक

कौन पै गावत गनत बनै हो ।
गुन अनंत महिमा अनत नित निगमौ अगम भनै हो ।
जो जाको अनुमान जानमनि मानत मोद मनै हो ।
चातक चौंप चटक त्यौं चितैबो उचित आनँदघनै हो ॥

ललित] (२३६) [मूलताल

रमिया को रस लै आई है, तेरी आँखिनि मैं छक छाई है ।
अति रतिरँग-बढवार भए की मुख सुख-ओप सुहाई है ।
भूषन-बनक बनी कछु औरै अँग अँग नवल निकाई है ।
उघरि परी आनँदघन घमँडनि कैसैं दुरति दुराई है ॥

विभास] (२३७) [इकताला

सुनौ ब्रजमोहन छैल सुजान निबाह इन बातनि क्यौं होइ ।
जौ कबहूँ कछु मिस करि अइयै तुम न तजत सुख भोइ ।

२३३—झर—डर (सतना) ।

मोहि कहा मिलिबो नहि चहियै डारत हौ मन हठन घँघोइ ।
आनँदघन रसरासि बरसियै अति न भली है खोइ ॥

मलार] (२३८) [मूलताल

आयौ आयौ चौमासो आवन सीखे हैं घन स्याम ।
मेरो ज्यौ उनहीं सौं लाग्यौ जिनको है ब्रजजीवन नाम ।
अवधि-आस लगि बहुत बचे हैं तचे प्रबल अति बिरह-घाम ।
आनँदघन त्यौं प्रान - पपीहा तकत आठहू जाम ॥

रामकली] (२३९) [झपताल

हरिचरित - सुरसरित - मज्जित सुबानी ।
महामोहन मधुररस - बलित ललित अति सुखद सुछंद
सुचि काव्य - कुल-रानी ।
बदन सोभासदन दरस महिमा बरस परस सर्बार्थदायक महत मानी ।
ब्रजतरुनि - रमन आनंदघन चातकी बिसद अद्भुत
अखंडित जगत जानी ॥

गधार] (२४०) [मूलताल

ऐसें आरती करौ ।
सुथिर थार हिय बिसद बीच लै प्रेम-प्रदीप धरौ ।
उज्जल दसा सनेह - सँजोई जोति जगाइ ढरौ ।
भाव-पुहप प्रतीति सौं संजुत बारनि ओर अरौ ।
मोहन-मुख जगमगनि पानि पै निरखत हरष भरौ ।
आनँदघन उमाह आरति कौं हरिहि बढाइ हरौ ॥

बिलावल] (२४१)

तुम्हैं लियँ हौं कहाँ फिरौं ।
ललित धीर बलि बीर जानमनि छिमासील अनखाइ भिरौं ।
हौ जगदीस कोऊ पूजत माया की गति हेरि हिरौं ।
असुचि असाध कामना-किंकर घिनि आवै इन आस घिरौं ।

२३९–सोभा–सुषमा (सतना)। तरुनि–रमनि (वही)।

मन बुधि चित अहँकार एक तुम करहु कृपा कितहूँ न किरौं ।
आनँदघन पन पालि पोषियै पायनि पै गिरि धरनि गिरौं ॥

बिलावल] (२४२)

दुसह दुरासा दूरि करौ ।
अंतरजामी अजित कृपानिधि हारि पर्‌यौ हहरानि हरौ ।
अपनोई बिसवास दीजियै अधम-उधारन बिरुद भरौ ।
आनँदघन पन पालि पोषियै दीन पपीहा ओर ढरौ ॥

रागिनी रामकली] (२४३) [चपक

भुरहरैं ही कान्ह कहौ कित भूले ।
रैनि-रसमसे नैन बिराजत मनहुँ कोकनद फूले ।
रुचिर अधर मसिरेख रही लसि अति रतिरस अनकूले ।
आनँदघन घुरि घमँडि सजल भए अलकनि धुरवा झूले ॥

धनासिरी] (२४४) [चंपक

हमारी इतनी बिनती चित धरियै ।
अपने दासनि के दासनि कौं काहू बिधि कछु करियै ।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै ।
आनँदघन हौं प्रान-पपीहैं पोषि पालि लै भरियै ॥

कान्हरो] (२४५) [इकताल

अपनो ओर राखियै ऐसौ ।
यह मन मंद अमंद नंदसुत जानि बूझि जग भटकत जैसौ ।
सब दिसि तैं हरि हरथौ करौ हरि आसा लागि ढरि चलौ बैसौ ।
आनँदघन हौं प्रान-पपीहै पालि पोषि राख्यौ पालौ पन वैसौ ॥

रामकली] (२४६) [चपक

तिहारी आस लागि जग जीजै ।
अतिहीं अधम अनाथ कृपानिधि आप उचित सो कीजै ।
ऐसी कौन भेंट है माधव जो लै तुमकौं दीजै ।
दीन पपीहा तुम आनँदघन एक भरोसैं भीजै ॥

[२४१] न किरौं=कष्ट न सहूँ ।

बिलावल] (२४७)

माँगि मन ब्रजबासिन के टूक ।
तजि बिजन-सवाद इत उत के यहै बिचार अचूक ।
प्रान राखि अभिलाषि स्याम कौं लोकलाज दै लूक ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहा ह्वै बन मैं करि कूक ॥

नट] (२४८) [चपक

या मुरलिया कैसैं काम किये ।
हमारे हियरा काढ़ि लिये ताननि गुननि गाँस गस गसि
बिसवासी-हाथ दिये ।
निकसत नहीं भनक स्रवननि तैं नैन रहे भरि ये ।
आनँदघन रस - आसनि अब लौं चातक-प्रान जिये ॥

बिभास] (२४९) [चपक

हरि मेरी सम्हारि ही सैं रहैं ।
बिछुरि बिछुरि हौं जात मिले मैं पैठें भुज गहैं सु गहैं ।
कहा भयौ भूले से रहियत सो सचेत नित हैं ।
सोए जगैं जगैं ढिग बैठे मौनहू भेद कहैं ।
पूरन पन प्राननि के सगी सुख दै स्रम न लहैं ।
आनँदघन उदार जीवनधन अपनैं सील सहैं ॥

बिभास] (२५०) [इकताला

मेरी रसना लाड़िली भई, जसुदा के लालैं लड़ाइ लड़ाइ ।
लड़कि लड़कि बोलति सो लेखैं अति रसरंग-रई ।
कहि न सकति या सुख-सवाद कौं ऐसैं भोइ गई ।
आनँदघन हित चतुर चातकी नित चित चौंप नई ॥

२४७-रस०-दिसि त्रिषित (सतना)। २४९-सैं-मैं (सतना)। पैठैं-वहै । भेद-बात । पूरन०-प्रान अधार सदा के संगी । जीवन०-जगजीवन (वही)।

मालकोस] (२५१) [चौताला

अंतर मैं बैठे कहा दुख देत निकसि क्यौं न
आवत अँखियन आगैं ।
ये दुखहाई मुख देखन कौं जागि जागि अनुरागैं ।
इनकी दसा बनै गह नित देखैं ई गहैं पल पल जल त्यागैं ।
आनँदघन पिय चातक चौंपनि प्यासभरी पन पागैं ॥

पूरिया कल्यान] (२५२) [कपोतताल

पन-पूरन प्रेमी प्रवीन पुनीत पुरुषोत्तम परमानंद ।
चीरहरन चिंतामनि चतुर चमतकारी अचरज-चरित सुछंद ।
मोहन मुरलीधर मंगल मुकटमनि महामधुर मूरति मदन कहा मंद,
अद्भुत अखंडित आनंदघन रसकंद ॥

रामकली] (२५३) [भूलताल

हो जी हो जी आया जी मन भाया ।
ब्रजराजकुमार अमलाँ रा माता आया ।
म्हानै तौ थारी ओलू सतावै थे औठैं विलमाया ।
अधराँ अंजन माथै अलतौ लाग्या छै खरा सुहाया ।
सघली रैनि आनँदघन बरस्या पगड़ै म्हां पर छाया ॥

रामकली] (२५४) [चंपक

तिहारो रस कौन बखानि सकै ।
रस ही रस जो ढरै महा रस तौ मति छकनि छकै ।
रसबस ह्वै रसमसो गहै हिय रसना लागै सुजस-जकै ।
आनँदघन ब्रज-बधू-भाव की घमँड तिहारि थकै ॥

ललित] (२५५) [चरचरी ताल

नंदकुमार उदार सम्हार कीजे हो हमारी सम्हार ।
अंतरजामी सब सुख स्वामी तुमही लौं है पुकार ।

[२५३] अमलाँ=नशे में मत्त । ओलू=स्मृति । थे=आप । औठैं=वहाँ
अलतौ=महावर । सघली=सब । पगड़ै=प्रभात में ।

दीन हीन बलहीन जानि कै लागौ लाल गुहार ।
दीन - पपीहनि के आनँदघन जीवन - प्रान - अधार ॥

बिलावल] (२५६)

बँसुरिया सौति तेँ अधिक दहै ।
बन घन लियेँ फिरति मोहन काँ यह गति कौन कहै ।
देखन हूँ की चोर, कानि बस को ये सूल सहै ।
परी न रहन देति घर हू मैं साँसनि गनति रहै ।
चाहति कियौ कहा इतने पै कल पल एक न है ।
आनँदघन पिय बसौ किये पै बैठी बैर बहै ॥

सारंग] (२५७) [चौताला

लहकन लगी री बसंत-बयारि मन बनवारी त्यौँ लग्यौ बहकन ।
जानौँ न आगेँ कहा करिहै जब लग है पलास-बन दहकन ।
मदन मरक कबहूँ कि काढिहै औरौ पुहप लागे बरन बरन महकन ।
आनँदघन पिय छाए तितहा इत कुहकि कुहकि लागी कोकिला गहकन ॥

श्री बृंदाबनी सारग] (२५८) [मूलताल

सुनहु सयाने स्याम तुमसौँ कहति सरोतर ।
ऐसे ढीठ ढिग ढुकौ ताके होइ तिहारी गोतर ।
ये रसबाद भले न भावते करियै वहीं होइ जो होतर ।
आनँदघन पिय नई घमँड सौँ देत दरबरथो डोलत अजौँ अजोतर ॥

पूरबी] (२५९) [मूलताल

न जानौँ कब आवैंगे हिय उमग्यौ है औसेरनि ।
साँझ परी सुनियत न अजौँ वह कानन पिय टेरनि ।
मुरली बजाइ आइ मो द्वारैँ नेहभरी अँखियनि हँसि हेरनि ।
आनँदघन अभिलाष घमँड की बाढी घेरनि उरझै कहाँ धौँ उबेरनि ॥

२५६–बहै–चहै (सतना) ।

[२५७] मरक काढ़िहै=बदला लेगा । [२५८] सरोतर=साफ, स्पष्ट । गोतर=गोत्र की । होतर=होने योग्य । दरबरथो=त्रास । अजोतर=स्वच्छंद ।

हमीर] (२६०) [चपक

उन्हैं कहा मेरी सी चटपटी है, कान्ह सदा के निखरके ।
वे रसलोभी आहिं पाहुने को जानैं कै घर के ।
अपनी गौं उठि गौंहन लागत ब्रजछैल छबीले भरे अर के ।
आनँदघन कहूँ अवधिनि काँधत कितहूँ बायदे भर के ॥

कान्हरो] (२६१) [चपक

सुख तौ एक नँदनंदन दुलराएँ ।
कौन कहि सकै होत हिये जो मोहन-मूरति आएँ ।
भूलि जाति सुधि हू की सब सुधि रूप-छटा दरसाएँ ।
आनँदघन रस प्रानपपीहा प्यासनि पियत अघाएँ ॥

भैरो ख्याल] (२६२) [चरचरी ताल

अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी आव रे जियज्यावन प्यारे ।
हिय उमग्यौ है रहत न राख्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे उज्यारे ।
जब तैं सुनी है मोहन मुरलिया तरफरात से प्रान बिचारे ।
दीन पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन रसरासि सुखारे ॥

बसत] (२६३) [चौताला

बृंदाबन मधि मधु रितु आई अति छबि पाइ सुहाई ।
कुंज कुंज सुखपुंज मधुप - गुंज कोकिला - सुर की झाईं ।
बिलसत हैं अपनी रुचि संपति दंपति कैं बिनोद अधिकाई ।
आनँदघन रस-रमँड घमँड सौं मुरली - तान बजाई ॥

बसत] (२६४) [इकताला

प्रगटी है बसंत-गुन-गोभा आवौ री बन देखन जैयै ।
बरन बरन फूलनि के भूषन रचि रचि रुचि सौं राधा को सिंगार

२६०—छैल०—मोहन हैं भरे छरबर के (सतना)। बायदे—बात के (वही)।

[२६०] निखरके=बेखटके । अर=अड़, हठ । बायदे=वादा । [२६३] झाईं=प्रतिध्वनि । [२६४] गोभा=अकुर ।

गूँथि मालती-माल मनोहर ब्रजमोहन कौं लै पहिरैयै ।
आजु मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढैयै हिलमिलि आनँदघन बरसैयै ॥

हिंडोल] (२६५) [मूलताल

तू मन मानी है उनकैं तौ मन मान्यौ है मान ।
सो मन भायौ करति क्यौं न मिलि पिक-पुकार धरि कान,
रितुपति आयौ देत निसान ।
मदन सहायक सज्यौ सग ही लै कर तीखे तीखे बान ।
सैन रैन पराग धूँधरि लखि चलियै बेगि सुजान अकिले
आनँदघन पिय प्रान ॥

ख्याल हिंडोल] (२६६) [चलती

स्याम सौं रँगीली राधा खेलैं बसंत बरसि सरसि दरस परस राग रंग।
गावति तान तरंग उमगनि आनँदसदन बदन लसनि
भृकुटि लचनि मान भंग ॥

ललित] (२६७) [मूलताल

छतियाँ दलमलै गुलाल अनोखो खेल सीख्यौ नँदलाल ।
कैसें कै निकसियै गैल गरधारें अचकाँ उचकि करै बनमाल ।
घात लगाएँ फिरै रैनि दिन फागुन लाग्यौ किधौं जँजाल ।
मोही सौं कहि कहा बैरु है औरौ बसति बहुत ब्रजबाल ।
मेरेई नगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै कासौं कहौं सखी ये हाल ॥

देवगिरी] (२६८) [मूलताल

गोकुल गरधारैं होरी खेलै रंगभीनो ब्रजमोहन छैल ।
नवल बधुनि कौं तकि तकि भिजवै रोकि रहत पनघट की गैल ।
उघरि उघारीं गारीं गावै तारी दै दै हँमत हँसैल ।
आनँदघन अपबस करि छाँडै जोबन-मातो निपट अरैल ॥

२६५–देत–देख (लदन) । २६७–कैसे०–निकसि न सकियै (सतना) ।
सखी–भट्ट (वही) ।
मनोज०=बसंतपंचमी । उस दिन कामदेव की भी पूजा होती है ।

रागनी धनासिरी] (२६९) [मूलताल

हो हो होरी हो हो होरी खेलत नीको रंग रह्यौ है ।
राधा - मोहन हिलनि - मिलनि - रस कैसैं परत कह्यौ है ।
नित यह फाग सुहाग-भाग नित अवसर लाहु लह्यौ है ।
आनँदघन ब्रजबन जमुना-तट सुखसागर उमह्यौ है ॥

अड़ानो] (२७०) [चपक

झूलत फूल - डोल फूल - भरे दोऊ ।
राधा-मोहन गुन-रूप-रासि पटतर को नाहिन कोऊ ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन अति कुसुमित द्रुमलतामय सोऊ ।
चैत-चंद सुखकंद चंद्रिकनि जगमग जगमग होऊ ।
महामोद-परिमल विनोद-भर महकत मलय-समीर-समोऊ ।
मधुर गान कल तान आनँदघन थिर चर मनहि बिलोऊ ॥

एमन] (२७१) [मूलताल

ऐंसौ होरी ऐसैं खेलौं उघरि उघरि ब्रजमोहन सौं मनमानी ।
परु की कसरि काढ़ि सब नीकें लेउँ भावतो दाव चाव सौं
अब मैं यह जिय ठानी ।
कानि कनौड कौन की सजनी भई बहुत दिन यौं नकबानी ।
आनँदघनहिं भिजाऊँ तौ हौं वेऊ भए फिरत रसदानी उनहूँ परिहै जानी ॥

एमन] (२७२) [इकताला

गुजरिया तू रँगराची मोहन कैं अनुराग ।
होरी मैं उनहूँ की तोसौं नीको लागी लाग ।
छुटे बार मुख-ओप अनूठी जगमगि रह्यौ है सुहाग ।
आनँदघन चित चतुर चातकी पगी प्रेम-रस - पाग ॥

बिभास] (२७३) [इकताला

तिहारो कान्हर कौन सुभाव ।
मोही सौं जब तब खौरत हौ सब मिलि करैं चवाव ।

२७१—ऐंसौ—ऐसैं (सतना) । चाव-भयौ । हौं०—बृषभानुजा साँची (वही) ।

[२७१] ऐंसौ=इस वर्ष । परु=गत वर्ष ।

कहा भयौ जौ होरी आई तुम अटकरत अटपटो दाव ।
नयो खेल कितहूँ तैं सीखे हाँसी को सतिभाव ।
हँसी ठठोली छूठें छमाहैं तुम्हैं नित नयो बाढत चाव ।
आनँदघन कोऊ लखि पैहै हाहा टरि किनि जाव ॥

बिभास ख्याल] (२७४) [चरचरी

तुम उनहीं सौं होरी खेलौ जिनसौं खेलि रहे हौ लाल लगाँहैं ।
नैन गुलाल भराएँ आए रस की रैनि जगाँहैं ।
इतने पै मो तन मुसिकत हौ धुर तैं निपट लजौंहैं ।
घर आएँ को बरजै बैठियै कै धरौ पायँ अगौंहैं ।
आनँदघन अब उघरि नचे हौ अपनी गौं बरसौंहैं ॥

ललित] (२७५) [मूलताल

आए नैन गुलाल भराएँ, होत कहा है डीठि दुराएँ ।
सौंधो - चोर - चतुरई ठानत, और गँवारि तिहारे भाएँ ।
अंतर की उघरनि सब इन ह्वै काच-घटी-रँग उपमा पाएँ ।
आनँदघन रसमसी घुरनि की अब लीजै तिन तोरि बलाएँ ॥

मालव] (२७६) [मूलताल

सब रंग होरी खेलौं तुम संग ।
मोहिं तुम्हैं बनि आई अब तौ मन मान्यौ है यह ढंग ।
गुरजन दुरजन कहा करैं निधरक भरि लपटैहौं अँग अंग ।
आनँदघन पिय भीजि भिजैहौं बरसैहौं गहि गहिरो रंग ॥

ललित] (२७७) [इकताला चलती

मटकि मटकि गारि गावै लटकि लटकि डफ बजावै ।
मनमोहन के मन की मोहनी छबि छकी छकावै ।
कंठ किलक दसन - चिलक स्रवन दृग सिरावै ।
अधरनि की लाली ललित लालै ललचावै ।

२७४-बरसौंहैं-भरमौंहैं (सतना) ।

[२७३] खौरत=छेड़छाड़ करते हो । अटकरत=ताक लगा रहे हो । [२७४] धुर तैं=आरंभ से, पहले से । [२७५] सौंधो०=सुगंध चुरानेवाला चोर ।

छुटी अलक बदन - झलक रूप - छलक छावै ।
पानिप की ओप उमँड प्यासनि बरसावै ।
माल-डुलनि अँचरा - फुलनि अलबेली गति आवै ।
सौभग बर लक - लचक संकहि उपजावै ।
अग अग रस - तरंग रंगनि सरसावै ।
आभा-उदधि रसिक छैल के नैन - मीन जिवावै ।
भँवर-भीर सहज तीर अति अधीर धावै ।
रसिया पिय भावना मैं बिबस चौंर ढरावै ।
सखि - समाज सग लिये चाँचरि मचावै ।
कुमुदिनी के मडल ससि पटतर क्यौं पावै ।
भागभरी रागभरी फाग यौं मनावै ।
भीजि भाजि उमँगनि आनँदघनहि भिजावै ॥

सारग] (२७८) [मूलताल

गोकुल गलिनि मच्यौ है खेल, बाढी अति रँग-झुरमट झेल ।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोबन - छाक अलबेल ।
चौकस चपल चतुर ब्रजगोरीँ आईं सजि अपअपने मेल ।
गारीँ चोख ठठोलीँ बोलीँ रस की ठेलाठेल ।
चाँकनि चलनि भरनि अरु भाजनि उलटनि उसरि उमँग पगपेल ।
आनँदघन बरसत रुचि सरसत फैलि परी रस - रेल ॥

धनासिरी] (२७९) [इकताल

रसिक छैल नँदलाल खिलारी ओर के हम जाने ।
अब करि भए निपट ही टौँडिक आनत नहीँ आँखि तर
काहू फागुन - मद - उमदाने ।
भँवर-भाव रस लेत फिरत हौ बीथिनि बगर रहत मँडराने ।
मसि मजीठ रग रचे अधर दृग आनँदघन बरसाने,
तिहारे गुन नहिँ परत बखाने ॥

२७६—टौँडिक-ढीठक (सतना) ।

[२७९] टौँडिक=शरारती ।

अलहिया बगाली] (२८०) [मूलताल

नंदलला सौं खेलौं होरी ।
कैसैं दुरति सखी इहिं औसर उघरि परी हित-चोरी ।
रोकी रहति न सासु ननद की रस लैहौं बरजोरी ।
प्रान-जीवन आनँदघन पिय कौं गहि राखौं पन-डोरी ॥

बिहागरो] (२८१) [इकताला

साँवरो होरी खेलै अपनी गोरी-संग ।
जमुना कैं तट सघन कुंज मैं भीनौ प्रेम-उमंग ।
चोवा-चित्र रचत चोली पै परसत लोने अंग ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसात अति रति-रंग ॥

पूरिया धनासिरी] (२८२) [इकताला

होरी खेलि आए खेलन मेरैं रसिक छैल खिलवार ।
नैन रसमसे बैन रसमसे रूप-छके रिझवार ।
हिय खरकत गुलाल किनि काढौ कै कहूँ भई भावती जगार ।
आनँदघन भुरहरैं उनए बरसत रस-बढवार ॥

ललित] (१८२) [मूलताल

ए मेरी ननदी री कहि कहा करौं ।
तेरे बीरन परदेस रमि रहे फागुन के दिन कैसैं भरौं ।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौं ।
आनँदघन मोही पै घमँड्यौ रीझि लाज सौं कौ लौं अरौं ॥

पचम] (२८४) [इकताला

होरी खेलै छैल छबीलो मोहन साँवरो ।
रंग-रँगीलो रस-बरसीलो मोहि लियौ गोकुल गाँवरो ।
बरुनिनि सौं तरुनिनि हिय बेधत कँवलनैन नीको नाँवरो ।
आनँदघन घुरि भिजवै रिझवै सबही भाँतिन है जिय भाँवरो ॥

केदारो] (२८५) [इकताला

रंग-रँगीले सौं आज, होरी दाँव बन्यौ है ।
लाजौ उमँगि उमँगि खुलि खेली जग्यौ है मदन को राज ।

अंग अंग सुख रग सौंज सजि सकिल्यौ है अभिलाष-समाज ।
चौंप चाह रीझनि भीजी आनँदघन भिजवन - काज ।।

धनासिरी] (२८६) [इकताला

कहूँ किनि होरी खेलौ रंग रहै मो संग ।
तिहारैं गुलाल खटक मो अखियनि ब्रजमोहन नवरग ।
जौ मन फगुवा दै तुम आए मैं पाए अभिलाष अभग ।
सुघरि उघरि आनँदघन बरसे ढकत नहीं ये ढग ॥

सकरा] (२८७) [चरचरी

रस राखि होरी खेलो खिलार जाने हौ जू उदार ।
आनँदघन उनए नए छैल अजू हठि होत फिरौ गरहार ॥

सहानो] (२८८) [इकताला

गुलाल - भरी तूँ आई है ।
अँचरा है रसमसी महा दुलानि दुरि दुरि देत दिखाई है ।
ललित कपोलनि ओछैंऊँ पाछैं लाली लसति सुहाई है ।
आनँदघन रसकेलि - कलानिधि अँग अँग रँगनि भिजाई है ।।

धनासिरी] (२८९)

आनि बन्यौ होरी को दाव ।
बिधना रच्यौ रंगीलो अवसर बाढि रह्यौ हो चित मैं चाव ।
राधा-मोहन के हिय हिलगनि रचति हुती बहुरगनि भाव ।
सो सब सहज उघरि आई अब दबे चहूँघाँ चपरि चबाव ।
मचियै रहति चौंप की चाँचरि सरस खिलार सुदेस बनाव ।
बिलसौ लसौ हँसौ आनँदघन उनै उनै बरसौ रस-राव ॥

सावत] (२९०) [इकताला

होरी के खेल तोही पै बनि आवै यह छरबर पै छरई ।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चौंपनि मनभावन भरई नैंक न डरई ।

[२८६] फगुवा=फाग की भेंट, उपहार । [२८८] ओछैंऊँ=साफ कर देने पर, पोंछ देने पर भी । [२८९] राव=ध्वनि ।

पहिलेई कौंधन भरति चखनि मैं चौंपनि फिरि जो मन भावै सो करई।
आनँदघनहि पपीहा करि राख्यौ राधे ऐसैं सौतिनि दरमरई ॥

ऐमनि] (२९१) [इकताला

गोपी ग्वाल गुपाल संग रंग होरी माची है ।
झपट लपट कपट छोरि पट झटकनि गहि झकोरि लाज्यौ
सरस औसर लखि उघरि नाची है ।
अप अपनी रीझ बूझ सब तन तकत हीं सूझ अति रस
बढवारि सुख की सींव खाँची है ।
स्यामसुंदर आनँदघन राधा कैं रस भीजि रहे ब्रज बन
गिरि खोरि हित-सहेट साँची है ॥

अड़ानो] (२९२) [चौताला

गावै होरी छैल ब्रजमोहन नवरंगी गितार तार सुर तान सौं।
नटवा निपट निपुन रासमंडल मैं अभिनै - भेद बतावै,
गीत रीति परवान सौं ।
राधा नवेली कैं रँग भीनौ रँग मूरति रसिकमनि मन्मथ-
मान हनै नैन-बान सौं ।
सहचरि चुहल चौंप ही चहूँ ओर आनँदघन तत बितत
सुखिर घन आछी आछी ठान सौं बाँकी परन उठान सौं ॥

देसी बरारी] (२९३) [इकताला

मनभायौ त्यौहार मनायौ मान्यौ है भाग फागु लागैं हीं ।
उघरि उघरि खेलत रस झेलत रीझनि भीजि रहे आगैं हीं।
सब रँग साज-समाज लियैं ँग गावत रागनि अनुरागैं हीं ।
ब्रजजन जीवनधन आनँदघन राधा - मोहन - पन पागैं हीं ॥

हिंडोल] (२९४) [चौताला

आदि हिंडोल गायौ आदिनाथ हौं हूँ गावत पाछैं ।
भक्तराज गुनरहित-गुनीसुर गंगामौलि महोत्सव-मूरति काछैं ।

[२९२] गितार=एक बाजा । परवान=प्रमाण । तत०=नृत्य के भेद । परन = बोल ।

गिरिजापति गिरिबासी चंदचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साछैं।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-गुनगान गरज दै राखौ निरंतर आछैं॥

बिभास] (२९५) [मूलताल

निपट निडर खिलार हौ देखे होरी को खेल यह कौन।
आनँदघन पिय झूमेई आवत बहियाँ पकरि हठि गरैं
लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन।
कित कौं भोरहीं आई जमुना जल तुम घर तैं लै निकसे सौन।
चतुर छैल ह्वै देत गँवारथौ देहदसा लखि लरैंगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन॥

बिहागरो] (२९६) [इकताला

छैल साँवरिया खेलै रसहोरी अपनी गोरी राधा कैं साथ।
सहचरि - भीर तीर जमुना कैं पहिरैं नव रँग चीर।
केसू केसरि रग कमोरीं झोरीं गुलाल अबीर।
दाव चाव बहु भेद भाव सौं चाचरि चुहल मचाइ।
चलति कटाछ सहित पिचकारी तन मन लागति जाइ।
चित चकोर चौंगनि चितवत मुखचदहि पलक बिसारि।
भीजि रह्यौ अनुराग रग मैं रीझनि सरबस वारि।
कुज केलि कौतुक नित नितहीं रची रहति यह फाग।
गावत सरस कठ रसगारी झर लाग्यौ अनुराग।
फगुवा दैन लेन को जो सुख सो कहि सकत न बैन।
आनँदघन रस रमँड घमँड सुख लेत पपीहा नैन॥

ऐमन] (२९७) [मूलताल

ज्यौं मैं खोले किवार त्यौं ही आनि लवढि गौ गरैं।
घरवारे को भेष बनाय आयौ लंगर ताक लगाय छल सौं बोलि हरैं।
ऐसैं होरी दाव लियौ है जैसैं पासे पैज परैं।
आनँदघन ब्रजमोहन घुरि दुरि भिजई खरैं खरैं॥

[२९५] सौन=गुलाल। हौन=अपनापन। [२९७] लवढि०=लिपट गया। पैज=प्रतिज्ञा, शर्त।

ख्याल ऐमन] (२९८) [चर्चरी

सुघर खिलार याकी बहियाँ क्यौं मरोरो।
बहियाँ क्यौं मरोरी गिरिधर निधरक झकझोरी।
नीठि निहोरैं खेलन निकसो आनँदघन तुम उनए बरजोरो।
ए रहौ दैया कौन भाँति सौं खेलत होरी॥

सारंग] (२९९) [इकताला

सब रंग होरी को तैं राख्यो राधे सरस खिलार।
निपट रँगमगी चितवनि तेरी निपट नयो रस चाख्यौ।
मोहन पै मनमान्यौ फगुवा लियौ बहुत दिन को अभिलाख्यौ।
आनँदघनहिं भिजै तू आई यह सुख परत न भाख्यौ॥

बिभास] (३००) [इकताला

कन्हैया मोही सौं रसबाद रचै री, न्यौज लगो यह फाग।
अपनो सो हौं बहुत बचौं पै निपटै निडर वह कैसैं हू न बचै।
छाँह न छुवावत ही कबहूँ वह बहुत दिना को लागि पचै।
अब तो होरी को मिस पायो कानि कान की काहे न उघरि नचै।
ताक लगावै ढुक्यांई आवै डोलत है निज लाज अचै।
आवो मिलि गहि गाढ़ैं भिजैये आनँदघन कौं जैसैं नेक लचै॥

सारंग] (३०१) [झप

पहिरि निकसे कान्ह केसरी बागौ।
चारु चोवा-चित्र बाहुमूलनि खुले उमँगि भेंटनि प्रगट
करत जिय-लागौ।
सवँरई सौं गुराई मिलैं छबि फबति सुनि समझि
भामिनो प्रीतिपन पागौ।
आनँदघन घमंड आनि औसर बन्यौ दरस दीजै
सरस कीजियै फागौ॥

[२९८] सुघर=चतुर। नीठि०=कठिनाई से और विनय करने पर। [३००] न्यौज०=देवकार्य में लगे, समाप्त हो जाए। ही=थी। अचै=पीकर। लचै=दबे, नम्र हो। [३०१] बागौ=अंगा, जामा।

हिंडोला] (३०२) [चौताला

नीकौ खुल्यौ री तेरैं भाल ए नव बाल गुलाल-टीकौ ।
राग-रचावन रंग-बढावन प्यारे लालन के जी कौ ।
भई है इकौसी-फाग कहूँ तैं हूँ फगुवा लियौ है लगौंहौं ही कौ ।
आनँदघनहि सजल कियौ तैं दामिनि यह फाग
भाग है री रावे तो सी कौ ॥

हमीर] (३०३) [इकताला

आए बन तैं गोपाल जसोमति आरतौ उतारै ।
राई नौन वारि वारि तिनुका तोरि डारै ।
आँचर तैं उमगि उमगि चलति दूधधारै ।
मोदमगन मैया मन छैया - छबि निहारै ।
बदन चूमि हिय लगाइ मंदिर लै पधारै ।
ताते जल पाय पखारि गोद मैं बैठारै ।
मधुर मोदक जननी - कर कछुक मुख जु ढारै ।
आनँदघन हित घमँडनि कहाँ लौं बिचारै ॥

सारंग] (३०४) [इकताला

चतुर खिलार खेल की हौंसनि भए फिरत हौ
हो निपट मायक से ।
ते औरै जे तुम रँग राचीं तुमहूँ रचे तिन्हैं लायक से ।
मिस ही मिस ढिग ढूके आवत लै गुलाल कर जानि
परे हौ रसनायक से ।
आनँदघन अब उघरि रचे हौ नित ही रहत अब फागु नायक से ॥

धनासिरी] (३०५) [इकताला

होरी खेलिहौं उमग्यौ है मो चित चाव ।
लाजहिं सौंति कहा करिहौं अब खुलि खेलन को दाव ।
अपने मन की कसरि काढिहौं कौ लौं करौं दुराव ।

[३०२] इकौसी=एकांत में। [३०३] छैया=बच्चा, शिशु। [३०५] सौंति=

इन फागुन हौं आज जिवाई मारत हुते चवाव ।
तरसति ही दरस कौं परस कौं बिधना रच्यौ बनाव ।
आनँदघन अबीर-घमँडनि मैं करिहौं कौंधि मिलाव ॥

सारंग] (३०६) [इकताला

नई पाहुनी आई है तूँ अरु आई फागौ उफनाइ ।
काल्हि कान्ह की डीठि परी कहूँ आज भोर तैं इत मँडराइ ।
बरजति ही निकसै जिनि पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाइ ।
वा रसलोभी को हियरा हठि लै आई लावनिहि लगाइ ।
अजहूँ बैठि रहै किनि घर मैं कित डोलति बिछियानि बजाइ ।
मेरो ज्यौ सुनि चलत ठौर तैं रसिक छैल छकि घूमै न्याइ ।
भागनि बन्यौ आनि यह औसर जो कछु तेरैं हू चित चाइ ।
दै चुकि होरी कैं सिर यह जस नीके आनँदघनहि भिजाइ ॥

परज] (३०७) [चौताला

सुघरराइ ऐसैं कोऊ है गुलाल चलावत खेल
किधौं सति भाव ।
भली भई पाकी आँखिन परचो हो तौ बतबढाव
रह्यौ जू तकत गँवेलो दाव ।
रंग राखि रस राखि खेलियै जैसैं बढै चित चौगुनो चाव ।
आनँदघन घमँडनि मैं उघरे अपनो सो करति दुराव ॥

सारंग] (३०८) [चौताला

यह बृंदावन यह जमुना-तीर यह सारंग राग ।
यह भागभरी भूमि यह तरु-लता-झूमि यह बिहग-
बडभाग राधा मोहन को सुहाग बाग ।
याकी लहलहनि याही मैं पाइयति भीज्यौ आनँदघन अनुराग ।
नैननि को फल चाहिबो समझत स्यामा-स्याम सेवत हैं
करि नित ही जाग ॥

-संचित करके । ही=भी । [३०६] लावनि=लावण्य, सौंदर्य ।

सारग] (३०९) [चौताला

सारंग पूरयौ री बनवारी बंसी मैं कैधौं बैर बिसाह्यौ ।
धुनि की भिदनि हियौ पघरयौ जाइ हाइ बिसासी कहा करन है चाह्यौ ।
तीखी ताननि चपल करै मति जियराहू ढुरि मिलन उमाह्यौ ।
आनँदघन रीझनि भिजवै सोचनि सुखवै ऐसैं कौ लौं परिहै निबाह्यौ ॥

धनासिरी] (३१०) [चौताला

आँखिन सौं आँखि मिलाइ होरी खेलियै ।
मन की मरक काढि सब दिन की निधरक ह्वै रस झेलियै ।
अजन आँजि माँडि रोरी मुख हँसि गरबाहीँ मेलियै ।
गहरु करन को दाव न राघे तू धुर की अलबेलियै ।
मोहनलाल तमाल बाल बर तू सुहाग नवबेलियै ।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै ॥

धनासिरी] (३११) [मूलताल

हौं कहा करौं ही दैया फागुनवा आयौ ।
दिन चारिक तैं बिरह निगुडवाँ कैसो मूड उठायौ ।
ब्रजमोहन भए निपट बिसासी यौं इन अवसर पायौ ।
औसेरनि औसति आनँदघन नव रंगनि झर लायौ ॥

सारग] (३१२) [इकताला

मदमाती फागुन भोज की ।
छैल कान्ह कौं लाइ लगौंहीं गावत गारी चोज की ।
लोनो बदन रतौंहैं अधरनि फूलनि कहा सरोज की ।
मोहन भँवर भयौ सँग डोलत तकत गैल तिहिँ खोज की ।
चित्रित डफ बिचित्र कर सोहत गति मति हरन मनोज की ।
आनँदघन की घमँड होति लखि उकसनि लसनि उरोज की ॥

[३१०] मरक=हौसला । [३११] निगुड़वाँ=निगोड़े ने । औसेर=प्रतीक्षा-जन्य व्यग्रता । औसति=व्याकुल होती हूँ ।

(३१३)

धनासिरी]

लगै जौ चटक चौंप की चोट ।
तौ क्यौं सही परै प्राननि के प्राननि सौं पल ओट ।
पाथर तें पोढ़े जड़ मेरे मनहीं की कछु खोट ।
तौ लौं कहा होइ नहिं जौ लौं कसकें लोटकपोट ।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि चेतनहूँ की टोट ।
चरन-धूरि ब्रजगोरिन की जाचत है निलज निखोट ।
बृंदावन - रस भिदै न याके कपट कुटेव अगोट ।
द्रुम-बेलिन लिखि फुरै सु कैसैं ललित रँगीली जोट ।
भरि दै री जमुना करुना करि इहिं रस आसा-वोट ।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चारिक छींटनि छोट ॥

(३१४)

नट] [चौताला

उमहि उमहि रस बरसत राधा मोहन सोहन सबके जीवन-प्रान ।
नव घन दामिनि रीझनि भींजे पहिलेई पुनि रसभीज्यौ
फागुन पायौ नेही नवल समान ।
पैज-रुपनि दुहुँ ओर चौंप चुहल चाचरि सोर ढोल-ढनक
घोष मंगल सुनत सफल होत कान ।
आनँदघन सुखसमूह सुर भूले लखि कुतूहल छायौ केलि-बितान ॥

(३१५)

बिहागरो] [इकताला

होरी खेलै राधा गोरी साँवरे प्रीतम संग चाँचरि चौंप रचाइ ।
जोबन जगी जगमगी सखिन मैं अति लोनी मीठी गारी दै
लालहि लेति लुभाइ ।
पानभरैं मुख बिथुरी अलकैं दुति मुख को पानिप कछु कह्यौ न जाइ ।
रीझनि भरि भिजए आनँदघन पिचकाहीँ रंग रह्यौ छैल कैं
छबि देखन को दाइ ॥

३१३–पोढ़े–खोटे (सतना) । गोरिन–खोरिन (लंदन) ।

[३१३] लोटक० = लोटपोट । अगोट=आधार । आसा०=आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान । कादंबिनि = मेघमाला ।

सुहानो] (३१६) [इकताला

मोहन अब तौ रँगनि भरौंगी ।
मोसौं खौरि दौरि कित जैहौ देखौगे सु करौंगी ।
आजु रँगीलो दाव बन्यौ है काहू तें न डरौंगी ।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौं या अर तें न टरौंगी ॥

परज] (३१७) [इकताला

अटपटे पेचनि आए निपट लटपटे लाल ।
होरी को मिस पाइ दाइ रचि लीने फेंटि गुलाल ।
खेलति होइ री खेलियै तासौं लखे अनोखे ख्याल ।
आनँदघन बरजोरी उनए उरझि करत उरसाल ॥

ऐमन] (३१८) [इकताला

हौं उनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि मॉची रसहोरी है ।
भली भई फागु के दिननि मैं उघरि परी हितचोरी है ।
प्रीतिरीति गीतनि गावत ब्रज घरघर केसरि घोरी है ।
आनँदघन राधिका दामिनी जगत - उजागर जोरी है ॥

गधार] (३१९) [इकताला

हो होरी खेलै अलबेलो नंद महर को ।
चंदमुखीं लखि बढ़यौ रूपनिधि रंग अनग लहर को ।
बोरत लै मन नैन सबनि के पूरन प्रेम - गहर को ।
गुपत प्रगट भिजवत आनँदघन रसिया आठ पहर को ॥

बिभास] (३२०) [इकताला

आजु कान्ह कुँवर की बरसि-गाँठि है आवौ री
मंगल गावौ सब बर नारि ।
ब्रजमोहन-मुख सुख-सोभानिधि भागनि को फल लेहु निहारि ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ जापै सरबसु दीजै वारि ।
आनँदघन चिर जियै लड़ैतो बिधि पै माँगति गोद पसारि ॥

रामकली] (३२१) [चंपकताल

नंद को आनंद कह्यौ न परै हो ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन प्रगटे को इहि सुकृत फरै हो ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कैं सोभित सुभग घरै हो ।
जसुमति जाकैं घरनि सपूती दीपति भवन भरै हो ।
भई बधाई-भीर सुहाई हेरत हियो हरै हो ।
बहुत भाँति चातक-जन गन पै आनँद मेघ झरै हो ॥

बिभास] (३२२) [इकताला

चरन तिहारे सब सुफलदायक ।
रमन-भूमि ब्रजमडल मडन सुनहु साँवरे गोकुलनायक ।
रसबिलास-सपदा-स्वामी सुखनिधान सुमिरिबैं सु लायक ।
आनँदघन अमोघ रसमूरति सरनागत भयहरन सहायक ॥

राग अड़ानो] (३२३) [चरचरी चलती

सुहेलरा आजु नंद कैं आनंद ।
घर बाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेई बनै ब्रज बाढ़ी ओप अमद ।
जसुदा की कूख सिरानी भई है सबके मन मानी प्रगटे
सुखदानी कुलमंडन ब्रजचंद ।
आनँदघन-घमँड तहाँ अदभुत छबि फबी जहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद ॥

सारग] (३२४) [झपताल

मंदिलरा गहगहो गाजै बाजै बधाई ब्रजपति के घर ।
हरि जसुमति जन्यौ स्याम लोनो ललन अति मुदित नचत नारी नर ।
को कहि सकै भागनि को निकाई अदभुत मनोरथ-महीरुह लाग्यौ सुफर ।
पूरन करी आस-प्यास निज जननि की सबनि पर आनँदघन घन झर ॥

३२१—गन०—गाव (सतना) ।

रामकली ख्याल] (३२९) [मूलताल

आछी गति बाजै मंदिलरा स्यामसुदर के जनम-समै ब्रजपति-घर।
आनँदघन की घमँड घोर चहुँ दिसि लाग्यौ है रस-झर ॥

धनासिरी] (३३०) [मूल

बरजत बरजत अँखियनि ब्रजमोहन - मुख चाह्यौ ।
धीरज धन दै हाथ परायँ बिरहा - बिषहि बिसाह्यौ ।
उनहिँ कहा कहि दोष दीजियै इनहीँ उरझनि नेम निबाह्यौ ।
मन गौहन लगाय आनँदघन तनहूँ बन लै गाह्यौ ॥

भैरव] (३३१) [चरचरी

गिरिधर आनँदकंद ।
ब्रजजन-लोचननि चंद रसमय आभा अमंद मंडित-गोपाल-बृंद ।
नित नित लीला सुछंद गिरिबन तनया-कलिंद सुंदर बदना-
रबिंद मुरली-धुनि मंद मंद ।
जयजुत गोकुलानंद बंदित सुर - अरि - निकंद महा मधुर
बय किसोर गोपबधू - हृदय-कंद ।
आनँदघन अदभुत अभिराम स्याम प्रेमधाम नाम रूप
जीवनधन धनि जसुदा धन्य नंद ॥

बिभास] (३३२) [चंपकताल

स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारे मेरी अँखियनि के तारे हैँ ।
मोहन मुख देख्यौई भावै गुननिधि रूप-उज्यारे हैँ ।
बेनु बजावत लटकत आवत मदगज गति पर वारे हैँ ।
आनँदघन रस पीवत जीवत चातक - प्रान सुखारे हैँ ॥

भैरव] (३३३) [चौताला

जगतारन करुनासिंधु मुरारि दीन असम्हारनि लेत सम्हारि ।
अधम - उधारन बहुबिधि सुखबिस्तारन स्वामी दयाल पन-
पूरन पालन ब्रत धारि ।

[३३०] गाह्यौ = थहाया, खोजता फिरा ।

अघ - बारन - कंठीरव दारुन दुखदल - बिदारन गुन
अपारन को सकत बिचारि ।
आनँद्घन रसधारन सकल संतापनिवारन घमँडि बिराजत
प्रान - पपीहनि पारि ॥

बिलावल] (३३४) [मूलताल

संकर गिरिजापति नंदीसुर चंद्रचूड गंगाधर ।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय - हर ।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर ।
आनँद्घन सुरूप गोपेसुर, मंडित - बृंदाबन - थर ॥

आसावरी] (३३५) [इकताला

धनि ब्रज-आँगन जहाँ घुटुरुवनि ऐसो बालक डोलै हो ।
धनि धनि रती जसोमति की जासौं लडकि तोतरैं बोलै हो ।
मोहन स्याम सकल ब्रजजीवन बालबिनोद कलोलै हो ।
आनँदघन हित घमँडि गोद मैं बैठ्यौ ब्रजपति सो लै हो ॥

कान्हरो दरबारी] (३३६) [चौताला

बृंदाबन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन ।
मजुलद्रुम - बेलिनि-दल-फल मैं दरसति राधा मूरति यह
सुख जानत जाके जोहन ।
श्रीपद सरस परस नित हितमय अनुपम भागनिकाई गोहन ।
दंपति चातक - जुगल आनँद्घन करत मनोरथ - दोहन ॥

धनासिरी] (३३७) [झप

ऐसो को जो तिहारे गुन गाय जानै गाय जानै तुम्हैं रिझाय जानै ।
दीन रसना जौ कछु बखानै तौ कृपा के प्रसाद को पाय जानै ।
कृस्न कमनीय कोबिद करुन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानै ।
प्रान-चातकनि के आनँद्घन सुनौ बिरही बिचारो बरराय जानै ॥

३३६—अनुपम—अद्भुत (सतना) ।

[३३३] बारन = हाथी । कंठीरव = सिंह ।

देव गंधार] (३३८) [मूल

तिहारो सुख जौ मन मैं आवै ।
तौ मेरे भागनि की महिमा को कबि बरनि बतावै ।
जमुनातट कुंजनि की सोभा लखि आनँदघन छावै ।
श्री बृंदाबन राधा मनोहर बसिबोई नित भावै ॥

आसावरी] (३३९) [चपकताल

बिछुरिबे को दुख न जानत हैं स्याम ।
बीच दियैं हीं मिले बिसासी ये कपटिन के काम ।
हम भोरी बेकाज बिकाईं निज सरबस दै उलटे दाम ।
निधरक छाय रहे आनँदघन हम बिलखतिं ये धाम ॥

(३४०)

सुख-सवाद स्यामहि सुमिरैं सब ।
साँठे भए गए छुटि सहजैं निज सुरूप रस-परस लस्यौ अब ।
नेह देह जगमगी ज्योतिमै भाव-भेद ढरि लगे ढार ढब ।
आयौ घमँडि महा आनँदघन उघरि परी अति अगम दसा दब ॥

टोड़ी] (३४१) [चौताला

साँचे सुरके बिस्तार साँचे तार साँचियै साँचीताननि मुरली साँचत ।
भौंहैं भंग त्यौरी तरंग-रंग संग-बिलासिनी के नीके नैना नीके नाचत ।
मन के हरन हैं कान्ह सहज सखी तापै इते भेदपन क्यौं बाँचत ।
आनँदघन पै बहुत गतिन सौं मदन-आँच तउ आँचत ॥

सारंग] (३४२) [चौताला

गावत सुघरराय सारंग तीख चोखनि सौं ।
निपट रसीली डाट लाग लेत ललित भाँतिन संपूरन सुख पोषनि सौं ।
गुनीनि मुकटमनि कान्ह गितार अतुल कहत पोषी धुनि जोखनि सौं ।
आनँदघन झर कदमतर कालिंदी-कूल नैन स्रवन प्राननि मन तोषनि सौं ॥

३३९–जानत–जान (सतना) । ये–निज (संग्रह) ।

[३३८] राधा० = राधा के निवास से मनोहर ।

तथा] (३४३)

गोरी गोरी री अति गोरी जमुना तू क्यौं लागति स्याम ।
काचघटी लौं सुभर भरी रँग महामधुर रस बाहिर लसत ललाम ।
राधा ही को हिय अभिलाष घुमेरत भौंरनि ह्वै अभिराम ।
भानुकुँवरि आनँदघन कैं बल तोहि बढ़नि बाढ़िये देखति अस्ट जाम ॥

रामकली] (३४४) [चपक

देवी पूजि पूजि बर पायौ ।
चीरचोर चितचोर और को सरबसु दै अपनायौ ।
को समझै यह प्रेम नेम - गति पूरन पन दरसायौ ।
रसमय बचन - रचन आसा-बल उर आनँदघन छायौ ॥

मलार] (३४५) [चौताला

मोहन मूरति मेरी आँखिनि आगैई रहै ।
ज्यौं खोलौं मूदौं त्यौं त्यौं ही त्यौं ही दृस्टि गहै न बातौ कहै ।
अरु आँकौं भरि भरि भेंटनि की अभिलाषनि बावरो हिय उमहै ।
आनँदघन पिय के सजोग-बियोगनि पापी जियरा दुखसूल सहै ॥

केदार मलार] (३४६) [चंपक

तुम्हैं को रिझाइ सकै हो बड़े रिझवार ।
रती साँच सौं रीझि रहत हौ सो मोहि भयौ है पहार ।
झूँठ सवाद हिल्यौ झूठो हिय तजि साँचो रससार ।
अब आनँदघन उमँडि घुमँडि कै करौ कृपा-आसार ॥

सारंग] (३४७) [इकताला

ब्रज के रूखनि लै दरसैयै ।
रमनभूमि-रज अंजन बन घन सोभा - सुख सरसैयै ।
जमुना - तीर भीर मनभाई प्रीति - रीति परसैयै ।
तचे बचे हैं प्रान-पपीहा आनँदघन बरसैयै ॥

ऐमनि ख्याल] (३४८) [मूलताल

मोरा मन बाँधिलौ है, तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा ।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबिमतवारे हँसि नैन बान
भरि साँधिलौ है ॥

सूहो ख्याल] (३४९) [चलती

हमसौं परदेसी की प्रीति करी प्रीति करी कि अनीति करी ।
तब व्रजमोहन आनँदघन छाए अब लागी है औसेर - झरी ॥

रागिनी देवगंधार] (३५०) [चौताला

ऐसी कौन पै मति है जोतिहारे गुनरूप - रसहि बखानै ।
सुनौ राधामोहन एक भरोसो है जू कृपा की अद्भुत गति है
यहै सुनि सुनि बाढ़ी अभिलाषा अति है ।
बलि बलि जैयै कोमल सुभाव की जातैं पैयै निरतर रति है ।
आनँदघन हौ सींचि हरी करौ आसा-बेली बार बार यही नति है ॥

हमीर] (३५१) [चंपकताल

अँखियनि लाग्यौई रहै देख्यौ धौं कौन घरी कौ ।
एक दिना अटक-भटक भई री भटू ता छिन तैं न मलोलो मिटै
मोही कौ न परइ भरोसो निरमोही कौ ।
नैन-सैन मैं बैन कहि गयौ अधखुले अधरनि प्यासो जी कौ ।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर व्रजमोहन सब भाँतिनि है सब ही कौ ॥

परज ख्याल] (३५२) [चरचरी चलती ताल

हो सुदिन सनेहरा लग्यौ हो रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो ।
उघरे भाग आनँदघन उमड़्यौ हँसीली भौंहनि रसीले जोहन सौं हो ॥

देव गंधार] (३५३) [चौताला

गन गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गरुए गावत हैं तिहारे ।
गाइ गाइ छकि छकि जकि थकि जीतत हैं जनम कहि हारे ।
सेस महेस निगम असेस गति पावत नाहिं बिचारि बिचारे ।
व्रजमोहन आनँदघन हौ चित - चातक - पन - रखवारे ॥

भैरो] (३५४) [चौताला

हरौ मेरे हिय तैं यह दुखसूल, करौ किनि अब याकौं कछु सूल ।
जान न देहु कहूँ कबहूँ राखौ जू चरन - कमल के मूल ।

३५३—जकि—जीभ (सतना) । जीतत—जीवत (वही) ।

अपनँई गुन-गननि गसौ सुधि एक रहै और भरै भूल ।
रतिरस दीजै पपिहा कीजै आनँदघन है अनुकूल ॥

षटराग] (३५५) [चलती चरचरी

रसिक छैल नँदलाल मेरी अँखियनि बसे रहैँ ।
हिय जिय भरि भोइ समोइ न्यारे नैक न हैँ ।
सोवत जागत रागत पागत लागत गौँहन गैल गहैँ ।
मौनहूँ मैँ सुनि सखी कछु सैननि बैन कहैँ ।
आनँदघन घमँडि घमँडि उघरि सुख-सवाद लहैँ ।
ब्रजमोहन बिसासी इते पै कियौ कहा चहैँ ॥

टोड़ी] (३५६) [चपकताल

बजावै कान तीखी तान टोड़ी की ।
मुरली अधर धरँ सुदर बदन मैनमद-घूमरे नैन केसरि-
खौरि छूटी अलकैँ और मुरि परसनि री ठोड़ी की ।
अपनँई मन रीझि, रीझि तहाँ ताहा सौँ होड़ाहोड़ी को ।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन छबि देखि रीझि भीजि सुधि
काहि लाज निगोड़ी की ॥

सारग] (३५७) [चौताला

बाँसुरिया सौँ कछु न बसाइ ।
अपनो सो मन गाढो करियै पै ये उतहीँ चलि जाइ ।
ताननि बाननि प्राननि बेधति बैरिनि इतने हू पै हिताइ ।
आनँदघन घर बैठैँ भिजवति सोचनि सुखवति हाइ ॥

सारंग] (३५८) [चौताला

हिलगनि मन की निपट दुहेली ।
कासौँ कहौँ हौँ ही जानति जैसैँ निसिदिन भरति अकेली ।
लपटी रहति स्यामसुंदर सौँ दीरघ आस-बेली ।
आनँदघन पिय अनत ऊनए औसनि परति न झेली ॥

३५६-अपनँई-मन ही (सतना) ।

[३५७] हिताइ = प्रिय लगती है, रुचती है । [३५८] औसनि = ऊमस ।

रामकली] (३५९) [मूलताल

तिहारी पीर प्यारे तुमहूँ तैं अति प्यारी।
पूरि रही है पिरोहैं हिय मैं होति न कबहूँ न्यारी।
याको सुख दुख कहियै कैसैं अकथ कथा और रसना बिचारी।
आनँदघन पिय याकी घमँडनि दुरति न जाति उघारी॥

रामकली] (३६०) [चरचरी

ब्रजबासी कान्हा हौ, हो कबहूँ तौ सुधि दीजै।
लागी रहै औसेर घरी घरी खरी कठिन परी हरी हरी
जियरा क्यौं धीजै।
दुसह परेखनि कैसैं मन समझैयै हाहा कहौ तुमहीं कहा कीजै।
आनँदघन पिय अचरज-रस बरसौ कोऊ सूखै कोऊ भीजै॥

बृंदाबनी सारंग] (३६१) [इकताला

बंसी मोहन की फँदवारी।
मदनमोहन गुपाल बजाइ हमारे प्रान - गरैं गहि डारी।
घुटत अधीर पीर को पावै दरसन - आस - जिवारी।
आनँदघन रस पियैं जियैं तौ ये बिरही ब्रतधारी॥

देसी बरारी] (३६२)

मन लाग्यौ री बंसीवारे सौं, ब्रजमोहन छबि-मतवारे सौं।
दृग - चकोर भए प्रान - पपीहा आनँदघन उजियारे सौं॥

(३६३) [इकताला

दुपहरी जेठ की क्यौं कटिहै।
ब्रजमोहन को नेह सखी री कुंदन भयौ निबटि है।
कसि कसि बिरह-कसौटी सोधत फिरि गारैं कौं हटिहै।
आनँदघन प्रिय प्रान-पपीहनि ज्याइ लेइ कहा घटिहै॥

३६०—रस—झर (सतना)। ३६१—मोहन—मोह (लदन)। ३६२—मतवारे—गतिवारे (सतना)।

[३६३] निबटि=शुद्ध होकर। गारैं=गलाने पर। को०=कौन हटेगा, फिर भी गलने को प्रस्तुत हूँ।

सारंग ख्याल] (३६४) [चरचरी चलती

न रहै मेरो मन बिन देखैं ब्रजमोहन उजियारे ।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान पपीहा निसिदिन रटत बिचारे ।।

बिहागरो] (३६५) [मूलताल

तुम सौं न नेह लगैये ब्रजमोहन हौ बिसासी ।
पावत नाहिं पराई बेदनि डोलत भँवर बिलासी ।
अपनी गौं ढुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी ।
आनँदघन पिय ह्वै बरसौंहैं राखत आसनि प्यासी ।।

सारंग] (३६६) [चौताला

प्रीतम याकी बयारि जब जब मो तन परसति ।
ता छिन प्राननि की गति कैसैं कहौं जो अरबरनि सरसति ।
ताप सीत दुख सुख को सगम देखि देखि मति अति ही थरसति ।
आनँदघन पिय मिलन-लालसा रोम रोम ह्वै बरसति ।।

तथा] (३६७)

जागि री जागि मति मेरी जागि लै जागि लै री ।
रसमूरति ब्रजमोहन सौं नीकैं पागि लै अनुरागि लै री ।
मति है तो कितहूँ मति उरझै बृंदाबन-द्रुम-बेलिनि मैं खागि लै री ।
आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि सुनि गुन रागि लै री ।।

ऐमनि] (३६८) [चंपक

हँसि हँसि करैं बातैं रँगीले दोऊ मदमाते ।
गौर स्याम अभिराम अंग अंग हिय उमग बाढ़ी गाढ़ी
अति सरस परस ललचाते ।
नई तरुनई की ओप भई मुख-सुख समोइ पुलकाते ।
रीझि चौंप आनँदघन बरसत मिलत हार करि हाते ।।

३६५—आसनि—आपनि (सतना) ।

[३६६] थरसति=त्रस्त होती है । [३६७] मति = बुद्धि । मति=मत, नहीं । खागि०=तन्मय हो । [३६८] हाते=दूर ।

खभाइची] (३६९) [इकताला

मुरलीवाले ने असाडा दिल लीता नी ।
रत्त-दिहाडे किथाँई न लगदा की जानाँ क्या कीता नी ।
साँवली सूरति भाँभी अँक्खीँ डाढा चेटक दीता नी ।
आनँदघन बल होया पपीहा इसक-पियाला पीता नी ॥

ऐमनि] (३७०) [चलती

सुरति लगी रहै बलमाँ ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय के बिन देखे कल न परै पल माँ ॥

सारंग] (३७१) [चौताला

मुरली कुंजनि बाजि रही ।
ब्रजमोहन कौं इकौसैं लैकै मुख - सुख साजि रही ।
हौं ह्याँ झुरति चुरति घर घेरी साँसनि लाजि रही ।
आनँदघन बस करि गरबीली निसिदिन गाजि रही ॥

तथा] (३७२)

राधे दै बृंदाबन - बास ।
तेरो है मन पनहि परि रहै तनहूँ ताही पास ।
महामधुर रसकेलि-माधुरी फुरै हियैं अनयास ।
हरीं खरीं सुखभरीं निकुंजैं नौ नौ रंग-बिकास ।
जमुना-तीर ललित बंसी-धुनि अद्भुत अमी-निवास ।
कृपा-रमँड घमँडनि आनँदघन बेगि पूरियै आस ॥

केदारो] (३७३) [मूलताल

जब वह मलार मुरली मैं गावै तब धुनि सुनि सिर धुनि रोऊँ ।
कहा करौं हिय बिकल जाय है बिषम बिथा कैसैं गोऊँ ।
मुख-देखन-लालसा मरति हौं रातिद्यौस या बिधि खोऊँ ।
आनँदघन गुन सुमिरि सुमिरि कै नखसिख बिरहा-बिष भोऊँ ॥

[३६९] असाडा=हमारा । रत्त०=रातदिन । भाँभी=घूमनेवाली । अँक्ख्याँ=आँखों में । डाढा=दृढ़, गहरा । चेटक=जादू । बल=ओर ।

तथा] (३७४)

बंसी बजाइ बजाइ हाइ ज्यौं तरसावै बिसवासी कान्हा ।
आनँदघन पै तीखी तानन बिष - बानन लौं बरसावै ।
सदा सग सुख ही को दुखिया उरझि उरझि फिरि मुरलि बजावै ।
वाहि न पीर कछू याकी वह जित भावै तित ही धावै ॥

बिलावल] (३७५) [मुरली ताल

जमुना अपनो दरसन दै री, मोहि तेरियै आसा है री ।
नीको कूल बसाइ रसीली रसहि पिवाइ ज्याइ किनि लै री ।
धीरसमीर भीर-सुख-सोभा लसत बसत दंपति रसमै री ।
आनँदघन की घमँड निरंतर रहै जु यहै बिनती नित नै री ॥

तथा] (३७६)

तुमहिं रिझाऊँ हौं हूँ रीझौं ।
ऐसैं रीझौ खीजि कहत हौं रातिद्यौस इन सोचनि बीझौं ।
ब्रजमोहन हौ मोह कीजियै निगुनीयै गुन सुमिरि अरीझौं ।
आनँदघन पिय जिय बिचारियै उचित न औसि उदेगनि सीझौं ॥

तथा] (३७७)

छैल छबीले ब्रजमोहन रसीले ।
दच्छिनता-लच्छननि लसीले रजनि जगे लोचन अरसीले,
भावत आवत ढीले ढीले ।
मधुर किसोर चोँप-चटकीले चतुरसिरोमनि गुननि गसीले ।
नवजोबन-मधुपान-छकीले महामोहनी-मंत्रनि कीले ।
अंग अंग अति ही दरसीले सब बिधि प्रीति-रीति-सरसीले ।
आनँदघन घुरि ढुरत ससीले, प्रान-पपीहनि हित बरसीले ॥

[३७६] बीझौं=बिद्ध हूँ । अरीझौं=उलझ जाऊँ, बँध जाऊँ । औसि=ऊमस सहकर । सीझौं=पकूँ, परेशान होऊँ । [३७७] दच्छिनता=दक्षिण नायक की विशेषता, अनेक नायिकाओं से प्रेम । कीले=मंत्र-प्रभाव से अवरुद्ध-गति । ससीले=शीलसंपन्न ।

सारंग] (३७८) [चौताला

सरनागत - स्वामी सरबदयाल अंतरजामी ।
जित जित जहीँ जहीँ सँभारे तहीँ धाए कृपानिधि गरुड़गामी ।
मो सो न और अधमनि मैँ दूसरो कपटी कुटिल कामी, अति नामी।
आनँदघन अघओघ-बहावन सुदृस्टि-जिवावन बेद भरत हैँ मामी ॥

तथा] (३७९)

मोहिँ मेरे अतरजामो भेटे ।
तन-मन सुख-सीतलता बाढी जनम-जनम - दुख मेटे ।
जगमोहन पै ब्रजमोहन ह्वै कृपाकंद परि फेटै ।
आनँदघन उदार चिंतामनि सुकृत - समूह - समेटे ॥

सकराभरन] (३८०) [चरचरी

तेरी गति - लैन की निकाई ।
नट नागरि पिय की मति देखि रीझि बिकाई ।
रूप जोबन गुन - गरिमा सबतेँ अधिकाई ।
आनँदघन सरसताननि मुरलियौ छिकाई ॥

टोड़ी] (३८१) [चौताला

को पावै ये भेद जो गावै मेरो बैरागी जियरा ।
ब्रजमोहन के बियोग सँजोग भर्यौ है हियरा ।
अँसुवनि जल सौँ अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौ घियरा।
आनँदघन अवसेर - अँध्यारैँ दुसह-दसा को दियरा ॥

ऐमनि] (३८२) [चंपक ताल

हिँडोरैँ झूलनि को रस पायौ अंग-संग सुख लेत ।
गौर स्याम जोबन - माते सहि न सकत छिन छेत ।

३७८—सरनागत—सरनैगत (लंदन) । मामी—हामी (सतना) । ३८१—घियरा—पियरा (सतना) । ३८२—अंग—अंस (लंदन) । उमँडि०—रीझि रीझि (सतना) ।

[३७८] मामी भरना=स्वीकृति देना, समर्थन करना । [३८१] घियरा=घी । अवसेर०=प्रतीक्षा की पीड़ा के अंधकार मैँ दुस्सह दशा की बत्ती दीपक की भाँति जल रही है । [३८२] छेत=विच्छेद, वियोग ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूषननि समेत ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसत हैं हिय हेत ॥

अलहिया ख्याल] (३८३) [मूलताल

तोरे कारनुआँ का करौं मोरा जिय तरसै ।
आनँदघन पिय दरस औसेरनि अँसुअनि मेहा बरसै ॥

आसावरी ख्याल] (३८४) [चरचरीताल

न जानियै कौन भाँति मिलौ तिहारी भँवर की सी रीति ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर रसबाद हिलौ दई दै नई परतीति ॥

सारंग] (३८५) [चौताला

बनवारी बन बन बिहरत डोलत हैं आपने रंग ।
कहूँ चरावत गाइ कहूँ चढ़ि जाइ तरुनि बसी-धुनि पूरत कहूँ
गावत ग्वारनि संग ।
ब्रजगोरिनि के नैन स्रवन मन गोहन लागेई रहत अभंग ।
नंद-जसोदा-प्रानजीवन आनँदघन ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥

सारंग] (३८६) [चौताला

कब लौं धीरज धरौं मोहिं उन बिन अब न बिहाय ।
निपट बिसासी निकसे मोहन बातनि मोह बढाय ।
उनके मन की कछु न समझि परै मेरो तौ लीनौ बौराय ।
अलप अवधि बदि बहुत रहे छाय ।
आनँदघन पिय प्रान - पपीहनि औसेरनि औसाय ॥

देवगिरि] (३८७) [चपक ताला

आइ सुधि लेहु सबेरी स्याम ।
औसर गएँ बहुरि कहा ऐहौ ब्रजजीवन धरि नाम ।
रही निपट मुरझाइ बिलखि बलि प्रबल बिरह के घाम ।
आनँदघन रस सींचि हरीं करौ बेलि बिचारीं बाम ॥

[३८७] सबेरी=शीघ्र ।

पूरिया धनासिरी] (३८८) [मूलताल

हम सौँ तब कहि कहि वे बतियाँ ।
सुनहु प्रान सुखदैन परेखनि क्यौँ जारत हौ छतियाँ ।
इत ऐसैँ दिन पारि बिसासी उत बितवत सुख-रतियाँ ।
आनँदघन कितहूँ किनि बरसौ ये बरुनी वैलतियाँ ॥

पूरबी] (३८९) [इकताला

बाजै बन मधुर बैन सुनि न रह्यौ परत भवन ।
देखन कौँ दृग दरबरात प्रान मिलन अरबरात सिथिल होति
अंगनि गतिमति तितहीँ करति गवन ।
लोकलाज उरझि उरझि रहियै मन सुरझि सुरझि कासौँ
कहियै परी जैसैँ काम लागै तनहि तवन ।
रंगबरस दरस परस आनँदघन सरस होइ तरसि तरसि
कौ लौँ कीजै जियरा बिरह-अनल हवन ॥

बिभास] (३९०) [चौताला

रसमसे नैननि आए हौ लागत निपट सुहाए हौ ।
कौन सौँचत रतियाँ बस करि सब रैनि जगाए हौ ।
सूधैँ चितवौ क्यौँ [नीचे] चितवत हौ बिधना रसिक बनाए हौ ।
आनँदघन रस बरसि सिराए इतहूँ छाए हौ अजू बलि ।
भागनि पाए हौ ॥

बिलावल देवगिरी ख्याल] (३९१) [मूलताल

कहा करैगो कोई री मन ब्रजमोहन सौँ मान्यौ री ।
लोभी लग्यौ तुरत उठि गोहन हाथ न आवत आन्यौ री ।
उघरि परी सौँधैँ की सी चोरी सबनि मरम यह जान्यौ री ।
आनँदघन हित प्रानपपीहनि अति पूरन पन ठान्यौ री ॥

[३८८] वैलती=ओलती, ओरी । [३८९] दरबरात=छटपटाते हैँ । अरबरात=हड़बड़ी कर रहे हैँ । [३९१] उघरि०=सुगध की चोरी की भाँति बात खुल गई ।

सारंग] (३९२) [मूलताल

बिसवासी हौ भए बातनि भोरि भोरि मन मेरौ ।
अनाकनी दै रहे हाइ अब कोऊ कितनौऊँ किनि टेरौ ।
ब्रजमोहन इन घातनि ही हिले मुरली-धुनि करि घेरा घेरौ ।
भूलेहूँ आनँदघन प्रान-पपीहनि त्यौं हेरौ ज्यौं फेरौ ॥

पूरिया] (३९३) [चौताला

साँचे सुरनि गावत मोहन राग-रंग-बिनानी ।
धुनि-प्रकास तैसो सुख - बिलास रस चुहल चटक सरसानी ।
ताननि की ब्यौरनि त्यौरनि रई, दसन-ज्योति मिलि होति रवानी ।
आनँदघन नैननि अरु स्रवननि चौंप बढ़ी मनमानी ॥

सारंग] (३९४) [चंपक

जिन सौं दान लै ही लै रहे हो ते न होहिं यह ग्वारि सुनौ नए दानी ।
अलगे ही बतराव लगौहैं छाँह छियैँ हूँ अब ही परिहै जानी ।
खोरि साँकरी डगर सदा की आज कहूँ तैं अर लै ठानी ।
आनँदघन रसबाद करौ कित रसिक बिनानी गरज-प्यास पहिचानी ॥

बिभास ख्याल] (३९५) [मूलताल

आँवीं वो आँवीं वो आँवीं वो मैं डे कोल ।
तैं डे नाल जिद लगो मुझ वो निमाणी दे मान गुमाणी
कदी तौ हम हँस हँस बोल ।
साँवली सूरति पर घोल घोल घत्ती बंदी हाँ बिन मोल ।
प्रान - पपीहाँ दे आनँदघन दिल दी घुंडी खोल ॥

ऐमनि ख्याल] (३९६) [मूलताल

ऐसी करी हम सौं दैया क्यौं जू बनवारी ।
दरस दिखाय कै यौं तरसावत अटपटी बानि तिहारी ।
बातनि मोह बढाइ बिसार्सी एक बेर सब सुरति बिसारी ।
प्रान-पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन हितकारी ॥

[३९३] बिनानी=जानकार, सुजान । ब्यौरनि=विस्तार । त्यौर=ढंग । रई=लीन, युक्त । रवानी=प्रवाह की छटा । [३९५] मैं डे=मेरे यहाँ ।

आसावरी ख्याल] (३९७) [मूलताल

बसि करि करि क्यौँ बिसारी प्यारे निसदिन
जियरा अति ही ब्याकुल रहत परेखैँ ।
आनँदघन ह्वै बिरह तचावत वैसी करि ऐसी ठानी दैया किहि लेखैँ ॥

पूरबी] (३९८) [चौताला

चटपटी लगाइ गए पिय मन कौँ ठगी हौँ बातनि मोह बढाइ ।
भूलेँ सुरत्यौ लई न बिसासी कासौँ कहौँ दुख हाइ ।
रसलोभी ललचाइ रहे कहूँ ब्रजमोहन हैँ भँवर सुभाइ ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहनि निसदिन रटत बिहाइ ॥

मलार सुद्ध] (३९९) [इकताला

गौर-स्याम-धारनि को लहरिया झूलत लहरैँ लेतु ।
पहिरयौ सरस चौँप सौँ स्यामा उघरि परयौ हिय हेतु ।
उफनि उठयौ सगम-सुख-सागर लोने अंग दिखाई देतु ।
पिय मन मगन होत अभिलाषनि बँधत न धीरज-सेतु ।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझतु भीजतु चितु चेतु ।
छुटे चिहुर आनँदघन बरसतु भरत मनोरथ-खेतु ॥

सारंग] (४००)

जाको मन बाँसुरी हरयौ ।
सो निकसै न रागसागर तेँ सुर कैँ फेर परयौ ।
धुनि-मँडरानि कान प्राननि मैँ इकलग बास करयौ ।
छकी रहति मति-गति मनोज-रति मादक भेद भरयौ ।
मुखससि रुचि-तरंग-बढवारनि बूडनि संग तरयौ ।
लोकलाज मरजाद मेटिकै प्रेम उमंग ढरयौ ।
बिसरि गई सुधि बुधि सब दिसि की उर अभिलाष अरयौ ॥

तथा] (४०१)

सालति है मुरली की बाजनि ।
सुनि सुनि घुन्यौ जात हिय सोचनि घुरत सीस गुरजन को लाजनि ।

३९९—भरत—फरत (सतना) ।

स्रवन बीच मँडराति रातदिन जकि जकि बिसरि परति गृहकाजनि ।
झुकति सास ननदिया रुकति क्यौं ढुकति न चढ़ति पैज की पाजनि ।
ज्यौं तरफत स्यामसुँदर - छबि देखन कौं अभिलाष - समाजनि ।
आस लागि जीवत चातक लौं आनँदघन जीवनधन गाजनि ॥

ऐमनि] (४०२) [इकताला

कान्ह मो त्यौं चितयौ ललचाइ ।
मो दोहनी मुरि दई उनि लई भई नई पहिचानि, जानि
जिय खरकै खरिक-सुधि हाइ ।
मोहन मन-मोहन करि लीन्हौ आइ घरहिं पराए पाइ ।
पठई सराबोरि करि पल मैं आनँदघन रसभेद-भरी
बातनि घातनि बरसाइ ॥

भैरव] (४०३)

तरनितनूजा तोहिं तकौं ।
चंचलता तजि भजि नँदलालहिं मन करि तेरे तीर थकौं ।
धीरसमीर सुदेस ठाँव ठिक ठहरि भली बिधि पनहि पकौं ।
सावकास ह्वै घनी घुटनि तैं बिसद पुलिन मँडराइ सकौं ।
सरस सिँगार अनूप स्याम को लखि चखि मादक रूप छकौं ।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं ।
उघरि परौं अनुराग उमँग मैं नाद-बिबस मरजाद ढकौं ।
नव ब्रजबधू - बिमोहन लीला लपटि एकटक टेक टकौं ।
एरी कुँवरि कलिंदनंदिनी बिनती बिरचि बिचार चकौं ।
महिमा अमित कृपा आनँदघन चाँपनि चातक-जलप जकौं ॥

रामकली ख्याल] (४०४) [झूलताल

डगर न छाँडै मेरी लँगर कन्हैया ।
आनि अचानक घेरि लेत कैसैं बचौं अकिली हौं दैया ।

४०३—चखि—चकि (लंदन) ।

[४०१] पाज=बाँध । [४०३] सावकास=छूटकर ।

हौं सकुचौं वह ढीठ न मानै निडर निपट रसदान-लिवैया ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै ऐसैं गोकुल को है रहैया ॥

केदारो] (४०५)

राधारमन की बलि जावँ ।
सघन बृंदाबन मनोहर अति मधुर रस-ठावँ ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रही द्रुम-बेलि ।
महा अनुपम रूप - गोभा लहलहनि रस केलि ।
आपु बन बन आप तनमय ह्वै रहत निसि-भोर ।
यह बनक याहीँ बनै यहीँ जोर याही जोर ।
देखि भूलत भूलि देखत अतुल अचरज-मूल ।
चाहि चौंधनि चौंधि चाहनि परसपर अनुकूल ।
नई रुचि नइयै रचनि छिन छिन नवल नित रीति ।
पन पलहु आनँदघन सौं चितहि-चातक जीति ॥

दरबारी कानरो ख्याल] (४०६) [चरचरी ताल

कौन देस बसायौ है निरमोही कान्ह हमारी
ऀखियनि ऐसैं उजारि ।
आस बढ़ाइ उदास भए बिसवास कियौ घनआनँद प्रान-
पपोहनि प्यासनि मारि ॥

बिभास] (४०७) [चंपक ताल

तुमहिँ रिझाइ रिझाइ रीझि हौं हूँ हरषौं सुनहु रसिक रिझवार ।
मोहन गुननि गाइ ब्रजमोहन तिनतैं तुम्हैं आकरषौं ।
मन दै मनहि समोइ लीजियै याकी घटी बढी कौं लौं परखौं ।
आनँदघन ढुरि ढुरि पन पोषौ जु रसहि निरंतर बरसौं ॥

अड़ानो] (४०८) [चौताला

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेई बगर नित आवै ।
मुरली मैं रसभेद - भरी बतियानि सुनाइ रिझावै ।
मन अरबरत दौरि देखन कौं सास ननद की त्रास तनु तावै ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहा तरफरात रहैं बीर पीर को पावै ॥

राग संकरा भरन] (४०९) [चरचरी

मंडल मधि लटकि लटकि नाचत पिय प्यारी ।
फैलि फबति काछनी लग लेति लहर सारी ।
पहुँचनि मुरि मंजुल कर कंज तरल तारी ।
रूप अजिर गरजति लखि चखन निमिष ढारी ।
सुखमय मुख मधुर हसनि दसन-दुति उज्यारी ।
सरद चंदकांति छटनि पाँति छेकि डारी ।
भृकुटि नचनि ग्रीव लचनि लंक लहक न्यारी ।
थेइ थेइ कहि कंठ-किलक पिय तिय जिय-ज्यारी ।
उरसि मुकतमाल हाल हेरत हियहारी ।
कंचुकि गुन-गसनि रसिक-लोचन फँदवारी ।
चाँप चुहल मचि सचि सुर करि अलापचारी ।
बिरल राग रूप रचत स्रवन - मोदकारी ।
ससि-मयूख-रजित बन रसनिधि-बढ़वारी ।
आनँदघन पलित फलित केलि-बेलि-बारी ॥

राम कानरो] (४१०) [इकताला

मोरमुकट बनमाल पीतपट कटितट छुद्रघंटिका
ए नूपुर बजाइ गति लेत मटक सौं ।
ललित हास मुख-सुख-प्रकास कुंडल-उजास दृग-भ्रुव-बिलास
कर-चरन-न्यास भुज ग्रीव ढोरि मुरि चलत लटक सौं ।
आछी भाँति तान गावत बाँकी रीतिन सुर-ग्राम - ग्रास
गहि चोख चटक सौं ।
आनँदघन मन धीर बापुरो कैसैं ठहराय आय जहाँ पैठत
री यह रूप भूप साजि काम सुभट कटक सौं ॥

(४११)

आज बनि बनि ब्रजबाल बाल मोहनलाल - संग रंग-
भरीं रासमंडल नाचति ।

[४१०] ग्राम=संगीत में स्वरों का सप्तक । ग्रास=संगीत-भेद

नई नई गति लेति लटकि ग्रीव-डुलनि भृकुटी-मटक मुख-बिलास
ललित हास होडाहोड़ी चोखनि चित चौंप-चुहल माचति ।
तान गान मान के बंधान जे बिधान बिदित तेई तेई अति अति
अनुपम संगीत-रीति साँचति ।
आनँदघन अद्भुत छबि बरनै कौन कोबिद कबि रूप-गुन
लावन्य-माधुरी की लीक खाँचति ॥

ऐमनि] (४१२) [इकताला

रासमंडल बनि नाचत राधा-मोहन रसमगन ।
अँग अँग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन ।
छिति पर सखी नछतजुत बिबुध सगन गगन ससि भरत लखि डग न।
आनँदघन कलतान गान सुनि को न लग्यौ डगमगन ॥

रामकली] (४१३) [झपताल

पलक पट दै रही रोकि मनवाँ मैं ।
जतननि बनाइ बरुनी सघन साँकरनि जटि निपट बिकट
करि अगम उर-धामैं ।
हौं न जानौं कि यह नट छली छंद सौं कौन मग दुरि
निकसि मिलि गयौ स्यामै ।
उनहि कहि कौन बिधि दोष आनँदघन बाँधि निज गाँठि
गथ लोह के दामै ॥

केदारो] (४१४) [मूल

मुदित मन नाचत री बनि रासमंडल मैं मधुर
मूरति पिय प्यारी ।
नई नई गति अति ललित रसबलित लेत लटकि पद
पटकि मटक सौं चौंप-चटक-भरे भारी ।
सहचरि-गन गावति कल ताननि डहडहे आनन पानन
रंजित मोहन धुनि कानन सुखकारी ।
चहूँ कोद बाढ़्यौ प्रमोद आनँदपयोद बरसत दंपति-
सोभा-संपति-बिसतारी ॥

[४१३] गथ=पूँजी ।

बिलावल] (४१५)

हरि - राधा रहगहनि मिले ।
कछु निसि रहेँ चले उठि घर कौँ मन-मदगज फिरि परत पिले ।
अंग अंग आरस-रस-बस झूमत महासुरत-सर-केलि हिले ।
गुरजन-भय अंकुस करि प्रेरित आनँदघन छलबलनि ठिले ॥

आसावरी] (४१६) [चौताला

वारे तुव दृग पर मृग वारे ये छबिभारे सलज ढरारे ।
इनकी गति आगे मति हारे वे बन बन भ्रमित बिचारे ।
घूँघट घिरे हरत मोहन मन चंचल बिमल सहज कजरारे ।
आनँदघन अनुपम अनियारे चित चुभि लागत प्यारे ॥

पूरबी] (४१७) [चौताला

आँखैँ तेरियै देखी बतकहीँ ये सब काहू पै परति न लहीँ ।
याही तैँ खजन मृग मीन कमल इनकी पटतर नहीँ ।
सरल कुटिल मंथर अधीर सित असित सुछबि लै बिराजि रहीँ ।
इनके गुनगन गनि को सकै जिन बिचित्र आनँदघन
पिय बस कीन्हे मिसहीँ जब मुसकि चहीँ ॥

सारंग] (४१८) [चंपक रूपक भेद

मान तौ तासौँ करियै जासौँ कियैँ ठिकु ठहरै ।
घरिक माँझ मन मृदुल ढरकि फिरि परिहै सोच कैसैँ बहरै ।
हाहा हित की बात मानि किनि भौँह - हँसनि - तरु
करि-कर जिनि झहर ।
कागद-नाव जलधि को तरिबो आनँदघन गुन गहरै ॥

हमीर] (४१९) [चंपक

बगर बगर तैँ मोहनी जोहनी बाल दोहनी लै निकसीँ
बिकसीँ गाय - दुहावन ।
दिन प्यासी अँखियानि चकोरिनि स्यामसुँदर - मुख मृदु
मयूख पियूष प्यावन ज्यौं-ज्यावन ।

रसमूरति अँग अंगनि तिन ह्वै लपटि उरताप - सिरावन ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि कटाछ-धारनि सौं होत मनोरथ-सावन ॥

अलहिया] (४२०)

पुरानी परि गई पहिचानि, लगी तुम्हैं नेह नए की बानि ।
भौंर की भाँवरि भरत फिरत हौ रसलोभी तजि कानि ।
सौंहैं सौंहैं खात इते पर ग्वारि गँवेली जानि ।
नखसिख साँच के साँचे ढारे आनँदघन गुनखानि ॥

बिभास धुरपद] (४२१) [चौताला

स्यामसुंदर की मुरली बाजै, सह सुरभेद सौं स्रवन सुनत
सुधि बुधि सब बिसरै रह्यौ न परत बिन देखैं ए री ।
हाहा परति हौं पाय उपाय बताय जिवाय लै ह्वैहौं बित बिन
हित सौं तेरी चेरी तो पर वारी फेरी ।
कासौं कहौं बिथा या जिय की कोऊ जानत नाहिन हिय की
मन ही मन मुरझाय रहति हौं तन परबस गुरजन की घेरी ।
आनँदघन पिय कौं जब देखौं तब ही जनम सफल करि लेखौं तुही
हितू तोही सौं इतनी बिनती मेरी ॥

टोड़ी] (४२२) [झपक

बजावै साँवरो बंसी जमुनातीर ठाढौ पनघट-भौंडूँ कैसें गैयै ।
घट पट सँभार तजि निकट कौं धैयै मोहिनी धुनि सुनि लुभैयै ।
वाकी छबि हेरि तन सुरति बिसरैयै डगमगत पग डग भरनहूँ न पैयै ।
जोऽब आनँदघन उलटि घर ऐयै तौ निपट ही अटपटैयै ॥

जौनपुरी] (४२३) [मूलताल

हेली मोहिं ढौली लागी री हरिमूरति हेरन की ।
बिसरति नाहिं बिसारेहू छबि हँसि हँसि दृग-फेरन की ।
मुरली-माँझ जमाय नाम वह गति हित सौं टेरन की ।
आनँदघन उठि गई आड़ अब सब गुरजन-घेरन की ॥

४२२-उलटि-नीठि (सतना) ।

[४२२] भौंडूँ=टीला, कगारा । [४२३] ढौली=ढौरी, धुन ।

भैरो] (४२४) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैन कहत ये निसि जगिबे के चैन ।
भली करी भोरहीं भाग रागभरे हमैं आए सुख दैन ।
सौंहैं देखि न सकत दीठि-डर नखसिख बने नवल छबिऐन ।
आनँदघन प्राननि सींचत हौ बोलि अमीनिधि बैन ॥

रामकली] (४२५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन तिहारे हो लाल सुहावने लगे ।
सीतल कियौ हियौ जु दरस दियौ भावते भाग जगे हो ।
मेरियै डीठि और भई कै तुम आज अनूपम रूप पगे ।
अँग अँग रँग बरसत आनँदघन प्राननि आनि खगे ॥

बिलावल] (४२६) [मूलताल

मोहिं न करि रे नकवानी लंगर होति अबार जान दै
जान दै जमना पानी ।
कहा तेरैंई आयौ राज लाज तजि खौरत औरै काज
तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।
भरि भरि डगरि गईं साथिनि हौं कौन घरी की घिरी
हाय ऊतरु न आयहै पूछैंगीं जब ननद-जिठानी ।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहिचानी ।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि पत्याइ इहि
गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी ॥

परजदेसी] (४२७) [मूलताल

हेली साँवरो सलोनो कित जाय हाहा नेकु बताय ।
अब इहि गैल छैल छबि सौं मन लै गयौ संग लगाय ।
कहा नाँव कहा ठाँव न जानौं ठगी अचानक आय ।
चलत न पाय उपाय कछू नहीं क्यौं जैहौं घर हाय ।

[४२५] खगे=धँस गए । [२२६] खौरत=छेड़ते हो । ठलवारि=हँसी-ठट्ठा । घरबसे=उपपति ।

नैननि हुई अनाथ भई दई धन अरु मीत गँवाय ।
परी सोच - सागर आनँदघन तीर कहूँ न लखाय ॥

गौरी तिरवन] (४२८) [कपोतताल

अँखिया उठि उठि उठि दौर बन की ओर आली ।
भोर के नंदकिसोर गए इहि गैल-ओर सु तब तेँ लागी हैँ आवन-आस ।
सुंदर बदन छबिपान-बिबस ये पलु न धरति कल बाढी है पूरन प्यास,
मोहूँ सोँ भई उदास ।
कहा धौँ अबार भई दई अब लौँ ज्यौँ त्यौँ करि राखी इनकी
दसा देखेँ आवति त्रास ।
वे आनँदघन हैँ हो भटू को लहै उनकी गति गौरी गावैँ कि बिभास ॥

बिभास बिलावल] (४२९) [चौताला

आई रसमसी उठि बड़ेँ भोर भावते सोँ हिलि
मिलि सब सुख लूटि ।
रँगीले नैन ढीले बैन छबीले मुख अलकैँ रहीँ छूटि ।
अधर दसन-छत राग रह्यौ लसि मुकतमाल-लर लटको टूटि ।
अँगिया दरकि दरसत नख-खोज सुरति-रन-ओज मनोज-
बिसिख आनँदघन मनहु उरोज-सुभट-घट बेधे हैँ कवच फूटि ॥

संकराभरन] (४३०) [चौताला

ज्यौँ ज्यौँ भिदति सुखद सुदेस हिमरितु रात की सियरानि ।
त्यौँ त्यौँ सरकि सरबस ढरकि खगि खगि लगि रहत हियरानि ।
रूप अनूप अमल सुगात मिलि झिलि रोम रोम समात कहि
आवति न सो नियरानि ।
आनँदघन तऊ बिच आय अरबरनि देति चिताय पुनि पुनि
लखत यह खियरानि ॥

ऐमनि बिलावल] (४३१) [चौताला

तेरी बलाय लीजै बार बार तोहि कीजै आँखिन पुतरी ।
कान ह्वै प्रान सुधा सीँचति आरस भरि बोलनि तुतरी ।

[४३०] खियरानि=खेदभरी स्थिति ।

वारौं सिंगार आज की छबि पर हाहा कहूँ न जाहि इत उत री।
आनँदघन हौं ही देखौं पै रहि न सकौं अद्भुत री ॥

रामकली] (४३२) [चौताला

भुरहरैं ई बोलत डोलत मोहन साँचे बैन।
चोरी करि चपरावत सौंहनि निपट लजाहैं नैन कहत निसि-चैन।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक उर नखछत कीने बसन छिपै न।
सबही अंग उघरत आनँदघन झूमि झूमि अब हमैं आए सुख दैन ॥

बिलावल] (४३३) [इकताला

आँखिन को सुख जमुना देखैं।
रुचिर कूल रसमूल परस ही होति सिंगार सुअंजन-रेखैं।
राधा - मोहन-रूप - माधुरी आछैं उघरि परैं सो लेखैं।
आनँदघन की घमँड निरंतर अंतर भाव-तरंग बिसेखैं ॥

गौरी] (४३४) [इकताला

जमुना देखे ही दुख भाजै।
इंद्रनीलमनि इंदीवर - दलहूँ की उपमा लाजै।
सब सुखरासि रसामृत - सींवा बृंदाबन मैं राजै।
आनँदघन ब्रजमोहन पीय के अंग - संग रंग साज ॥

गौरी] (४३५) [चपक

मोहन राधा के अनुराग छक्यौ मुरली मैं गुन गावै।
बासर बिरह-सरहु उर सालत बन बन डोलै ऐसैं ज्यौ बहरावै
पीत बसन-द्युति देखि देखि पलकनि सौं परसि नैननि कौं मनु मनाव।
आनँदघन यौं प्रान - पपीहनि रस - प्यासनि परचावै ॥

गौरी ख्याल] (४३६) [मूलताल

सहोणी मैं कद लग इस्क छिपावाँ।
गुंजे घाव दिलाँ दे अंदर कित बल कूक मचावाँ।

४३५—सरहु—सरक (सतना)। ४३६—सहोणी—सैयौनी (लंदन)।

[४३६] सहोणी=सखी। गल=तक। गुजे०=हृदय मैं गहरे आघात की वेदना हो रही है किस ओर पुकार करूँ। माइल=प्रवृत्त। दारू०=दर्शन की मदिरा।

मुरलीवाले ने माइल कीती दारू - दरसन पावाँ ।
वेखँ बाजू जिंद न रहदी किस बिध इस परचावाँ ।
बेमेहरा दी राह्याँ आनँदघन कैंनूँ आखि सुनावाँ ॥

पूरबी] (४३७) [मूलताल

कालिंदी जमुना सूरतनया कृस्नतरगिनी ।
सप्तसिंधु - भेदिनि जगतारिनि बृंदाबन - सुख - सोवाँ
पीतांबर - अगिनी ।
मधुर केलि आनँदघन अनुराग - बिभगिनी ।
यमानुजा त्रयताप - निवारिनि हरि-लीला - रस-रंगिनी ॥

मालव राग] (४३८) [मूलताल

बरजि रही री इन अँखियन कौं पै ये अमैंड नहिं मानति ।
मोहन-मुखछबि - छाक छकि कुलकान्यौं ना उर आनति ।
उररि उररि अरराइ परति हैं घूँघट-पटहि पटकि अरुझानी ।
आनँदघन हित चातक - चोंपनि रातिद्यौस ज्यौं छानति ॥

सारंग] (४३९) [चौताला

कहा सुख होत है जमुना के दरसन को ।
मधुर किसोर रूप रसरैनी चाहतहीं मन-पटहिं चढ़त
रँग चोंप-चटक सरन को ।
मुरली - तान कान मँडराइ रहति ऐसो गुन तरल
तरंगनि के परसन को ।
उमग - ओघ अमोघ बाढ़त आनँदपयोद बरसन को ॥

लग–गल (लंदन) । गुंजे–गुज्झे (सतना), मुझे (वृंदा०) । माइल–घाइल (सतना) । रहदी–रौंदी । राह्याँ–गल्लाँ (वही) ।

वेखँ०=बिना देखे प्राण नहीं रहते । बेमेहरा०=उस निर्दय के रंग-ढग किसे कहकर सुनाऊँ । [४३८] ज्यौं०=हृदय को बधन में कसती रहती है । [४३९] सरन०=पूर्ण होने के लिए । ओघ=बाढ़ ।

रामकली] (४४०) [चौताला

जब तें तुम दई है दिखाई तब तें याको मन न रहाई ।
सब सुखदायक ब्रजनायक सुनौ बिकल भई है महाई ।
भँवर भए डोलत हौ जित तित नित नित लेत हौ नए लहाई ।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन पपीहनि गति कहाई ॥

ख्याल] (४४१) [मूलताल

तुम छाँडौ मेरी बहियाँ भोर भएँ रसबाद करन
कित आए मोसौं हाहा जू ।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे उघरि उघरि अब इतहूँ
सरसे तहीं जाहु जहाँ पायौ है रस-लाहा जू ॥

सारंग] (४४२) [चंपक ताल

स्याम मनोहर जमुना - तीर मुरली - धुनि पूर ।
ब्यापि रहति मुरझाई जित तित निकट दूरि थिर-चर-
गति पलटति सब ही चित चूरै ।
को जानै इन कहा धौं ठटी जू इते पै प्रबल है कह्यौ काम कूरै ।
आनँदघन की घमँडि रैनि दिन छिन न चैन मेरो ज्यौ
घिरि निपट बिसूरै ॥

रागिनी देवगिरी] (४४३) [चपकताल

गागरि दै रे उचाइ लंगर अठिलात कहा अब ही जौ
कोऊ कितहूँ ते देखि पाइहै परिहै कठिन महा ।
या गोकुल को लोग चवाई करत फिरत है चही चहा ।
आनँदघन हठ घमँड छाड़ि दै पायनि परति हहा ॥

सारंग] (४४४) [मूलताल

हौं तो रीझनिहीं भिजई मोहन मुरली की मीठी मीठी तानन ।
भोइ रही निसिदिन हिय जिय धुनि कहा करौं कल नाहिँ
कहूँ अब कछुवै सुहात आन न ।

[४४०] लहाई=लाभ ही ।

कासों कहौं यह बिथा सजनी घूमि घूमि रहै बिरहा-बानन ।
आनँदघन बन घन रस बरसि बरसि तरसावत है प्यासे प्रानन ॥

सारग] (४४५) [झपताल

कृपा - कादंबिनी जमुना बिराजै ।
मोद-मूरति दरस प्रेमपूरित परस स्याम रस बिमल जस संपदा साजै ।
अद्‌भुत अनूप भूतल लसति बसति नित हेतमय नाम कौं लेत भ्रम भाजै ।
आनँदघन घमँडि तीर बिहरत रमडि ब्रजबधू बसकरन बंसिका गाजै ॥

रामकली] (४४६) [चपक

महाराज ब्रजराज पूजि गिरिराज परम आनंदे ।
बल मोहन लै संग रंग सौं दहिने दै दै बंदे ।
गोपी - गोप - समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदे ।
आनँदघन गरजनि जै जै धुनि सुनि मघवा-मद मंदे ॥

परज (४४७) [मूलताल

जमुना जमुनाहीं रटिहौं हो ।
मधुर किसोर केलि चिंतामनि रसना लै जटिहौं हो ।
बृंदाबन सौभग - सींवा कौ रुचिर पुलिन अटिहौं हो ।
आनँदघन कदंब - कुंजनि तट सुख - पुंजनि ठटिहौं हो ॥

रामकली] (४४८) [चंपकताल

बृंदाबन बसि कान्ह आज नीके निसि बितई ।
किये मन भाए चैन ढीलें सु रसीले बैन आरस-रँगीले
नैन इकटक प्रानप्यारी-छबि चितई हो ।
प्रगटी भागनिकाई राधा रूपनिधि पाई बिलसे हो
सुखदाई अंक भरि भरि सब संक रितई ।
आनँदघन उदार परसत सोभासार करौं नितहीं बिहार
मरगजैं हार प्रीत-रीत जितई हो ॥

४४५—मोद०—मोद-मंडित (सतना) ।

[४४६] मघवा=इंद्र । [४४७] अटिहौं=घूमूँगा । [४४८] रितई=दूर कर दी । मरगजैं=मसले हुए ।

कालिंगरा] (४४९) [इकताला

वारी हो वारि डारी हो आज की तिहारी या छबि पै ।
रसिक छैलबिहारी ऐसी न कहूँ निहारी कैसैं कही जाय काहू कवि पै ।
जावक - तिलक भाल निपट लग्यौ रसाल तिन तोरि डारियै
नवल नीकी फबि पै ।
आनँदघन पिय रसीले लजीले नैन नवल कै उघारैं जात दबि पै ॥

टोड़ी ख्याल] (४५०) [मूलताल

हेलो हौं कैसैं कै जावँ जमुना-जल लँगर छैल ठाढौ
गैल मॉझ करै बोली ठोली ।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयौ ही रहै कहि कहाँ रहौं
दैया ऐसैं अबोली ॥

एँमन] (४५१) [मूलताल

कैसैं कैसैं मन बहराऊँ, गहत गहत न रहत है ।
लोनो मुख सुखनिधि देखैं बिन आँखिनि कहा दिखाऊँ ।
सुनि सजनी राधा के रूसैं बिरह बिकल अपनपौ न पाऊँ ।
सरस परस आसा आनँदघन झरै भरोसैं छाऊँ ॥

मलार] (४५२) [मूलताल

आए आए री बादर अतिहीं सुहाए घुरि बरन बरन ।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाइ रहे सुर धुरवा से लागे हैं ढरन ।
जमुना - तीर कदब-तर ठाढ़े बनक ठनक उर अभिलाष भरन ।
आनँदघन रसरग - झरन कामताप - हरन ॥

सोरठ] (४५३) [चौताला

झूलिबो करति हरि-हिय के हिंडोरे हौंसनि राधे लाड़-गहेली ।
तैंहीं रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस की भाग-सुहाग - नवेली ।
हुलसि झुलावति बिजन डुलावति रीझन भीजि चाह-सहेली ।
सावन मनभावन आनँदघन बरसावन सौं मिलि झूलियै अलबेली ॥

४५१-रूसैं-बिछुरैं (सतना) । झरै-तेरे लदन, मेरे वृ दा० ।

सारग] (४५४) [इकताला

परै जौ ब्रजरज - परस - सवाद ।
ब्रजमोहन की चरन - धरन - छबि लोचन लैहैं प्रसाद ।
प्रान पोष पावै पल पल मैं मादन मुरली-नाद ।
आनँदघन लीला - रस चाखैं बढ़ै प्रेम - उनमाद ॥

रामकली] (४५५) [चपकताल

कीरति - कुल - उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो ।
मंगलबेलि सकल जग छाई सुकृत - समूह - जई ।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढी है ब्रज - ओक नई ।
ब्रजजीवन की प्रानसजीवनि मोद - बिनोदमई ।
जाकी चरनरेनु कमलाहू चौपनि सीस चढ़ाइ लई ।
आनँदघन घमँडनि को बरनै बहु बिधि तपति गई ॥

बिहागरो] (४५६) [इकताला

रावलि मैं अति ओप बढी ।
गोकुलचंद अभूत चद्रिका सुकृतनि कीरति - ककुभ कढ़ी ।
श्री बृषभानु गोप भागनि की महिमा कैसैं परति पढ़ी ।
चिर जीवौ लली लड़ैती राधा आनँदघन गुन-रूप-अढी ॥

सारंग] (४५७) [इकताला

झँनावति पायनि चायनि पाय ।
नायनि को कर परस होत ही हियो उठ्यौ हुलसाय ।
चित्रा चतुर चोप सौं ल्याई देखि रसमसो दाय ।
आनँदघन रस रमँड घमँड मैं घूँघट खुल्यौ बनाय ॥

गंधार] (४५८) [चरचरी

तेरे मुखचंद को चकोर, सुंदर ब्रजचंद छैल नंद को किसोर ।
अति अनूप रूपरासि चाहत निसिभोर, अदभुत सुधाबृस्टि

४५४—पोष—कोस (लंदन) । लीला०—झर लगै निरंतर (सतना, वृ दा०) ।
४५५—बहु—सब (सतना) ।

[४५६] अढ़ी=युक्त ।

होति चितवत दृगकोर ।
सुनि सुजान राधे हिय कीजै न कठोर, आनँदघन प्रान-पपीहै
दीजियै न खोर ॥

कनरी ख्याल] (४५९) [मूलताल

हौँ कहा करौँ हे, गोकुल गाँव बसि कैसैँ भरौँ हे ।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावै, वाकी धुनि सुनि मेरो ज्यौ बौरावै ।
तानन बानन बेधै प्रान, और दसा कहा करौँ बखान ।
अपनो सो हौँ करौँ दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव ।
त्रासै ननदिया सासु रिसाय, काहू बिधि कछुवै न बसाय ।
छाँह छियनहूँ को न बनाव, गैल गरधारिन चले चवाव ।
मो ही जो गति लागी मोहि, कै औरनि हूँ बूझति तोहि ।
जो कछु ही सो दई जताय, हाहा अब हित की सु बताय ।
आनँदघन या बिधि रह्यौ छाय, बिरह-ताप डारत तनु ताय ॥

टोड़ी] (४६०) [चौताला

ग्याँन ध्यान धारना समाधि धरि धरि देखे पै न देखे ।
ईस गिरीसन हूँ जौ कहूँ लखे तौ चटपटिन टरत न परेखे,
अपर्नायै इच्छा बिसेखे ।
मोसे अनकछू की गनती कहा अब एक कृपा-गुन सुनि अवरेखे ।
आनँदघन हौ ढरौ तौ हरौ दुख - पूर परै सब लेखे ॥

बिभास] (४६१) [चौताला

जनम जनम गुन गाइ आयौँ अजहूँ गावत आगैहूँ गाइहौँ ।
जो सुख होत सु हौँ ही जानौँ न सकृत जनाइ हौँ ।
प्रान-अधार सदा के संगी तुमहीँ तैँ तुमकौँ पाइहौँ ।
दीन पपीहनि के आनँदघन आस बढाइहौँ ॥

सारंग] (४६२) [चौताला

अजन दै री राधे न करि गहर हे हा हा ।
निझनक बार टरी जाति मनभावन ब्रजमोहन-मिलन-उमाहा ।

४६०-सुनि-उर (सतना) ।

सखी त्यौं मुलकि मुसकि दरपन गहि आनि चढ़यौ चित नवरंगी नाहा।
उमँडि उठी आनँदघन घमँडनि रीझनि भीजि ढुरि चली आहा ॥

सारंग] (४६३) [इकताला

ब्रज को बिरह सह्यौ न परै।
बनवारी की औसेरनि हिय हाइ गह्यौ न परै।
देखि देखि अनदेखें हूँ अपरस-दुख लह्यौ न परै।
आनँदघन भरिपूरि चाह - रस - स्वाद कह्यौ न परै ॥

धनासिरी] (४६४) [मूलताल

चोवो दरस दिखावीँ ताभैँ घोली घोली जावीँ।
सुण वो साँवलिया गोकुल-वालिया दी नानू ना सरसावीँ ॥

खंभाइच] (४६५) [मूल

छैलवा रँग-रँगिलवा रँग-रँगिलवा रसिक-रसिलवा।
ब्रजमोहन दिन दूलह छबिलवा जोबन - छकिलवा।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन रस - बरसिलवा।
अपनो तनमन सरबसु वारौं अरी नीको लाड़-गहिलवा ॥

ऐँमन बिहाग] (४६६) [मूलताल

बंसी कहा बैर परी है।
कानन धुनि मँडराति रातदिन कल नहिं एक घरी है।
तानन बानन बेधै हियरा ऐसैं अरति अरी है।
जौ गोकुल बसियै आनँदघन लागी बिरह - झरी है ॥

टोड़ी ख्याल] (४६७) [चरचरी ताल

घुम्मर पॉवदीँ जिंद तुसाँ नाल वेखन रंगला चंगला जमाल।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारिया निपट गरीब पपीहाँ नू पाल ॥

बिहागरो] (४६८) [इकताला

बलिहारी गोकुलचंद की।
भादौं - अरध राति आठैं तिथि प्रगटनि ज्योति अमंद की।

[४६२] निझनक=नीरव, निर्जन। मुलकि=प्रसन्न होकर।

मिट्यौ तिमिर ब्रजलोक-ओक को दबी धरक दुख-दंद की।
भागनिकाई को बरनै आनँदघन जसुदा-नंद की॥

बिभास] (४६९) [चंपकताल

दोऊ रूपरासि प्रेमरासि सब सुखरासि करिकै
बिलास नीकैं चले हैं भवन कौं।
रीझि गरबाहीं दियैं मुख देखि देखि जियैं मन मन हाथ
लियैं अति रति ओप बाढ़ी रवनी रवन कौं।
बृंदाबन-कुज तम-पुंजनि ह्वै निकसत अंगनि प्रकास सोई
साधत गवन कौं।
आनँदघन सधीर ठाढ़े ह्वै सुधारैं चीर रँगीलो-जमुना-
तीर जानिकै पियारी सोभा सुधा अँचवन कौं॥

सारंग] (४७०)

जै जमुना मगलकारिनी।
जमानुजा तमतापटारिनी बिबिध फंदनिरवारिनी।
मधुर किसोर केलि-रस-रैनी बृंदाबन-भू-चारिनी।
चाहत ही मन-पटहिं चटक दै भाव रंग-बिस्तारिनी।
गोपी-गोप ग्वार-गैयाँगन सब कौं सब सुखधारिनी।
नित श्रीअग-परस तैं सरसी दरसी नित्यबिहारिनी।
तीर गएँ मोहन मन आवत निहचय परिचय-पारिनी।
देखी कहौं सुनी आगै हूँ जगजननी जगतारिनी।
देखैं बनै कहत क्यौं आवै महिमा अमित अपारिनी।
आनँदघन रसरासि-रसीला नीरसता-अघ-हारिनी॥

सारग] (४७१) [इकताला

जै जमुना जाँचौं तोहि री।
तेरैं तीर गाय बलबीरहि बिहरौं यह है मोहि री।
बृंदाबन मैं लखौं निरंतर तो छबि रही जु सोहि री।
तो सी तुहीं महारसबाहिनि मैं गहि पाई टोहि री।

परिचय रचै स्याम रंग बाढ़ै कृपादृष्टि सौँ जोहि री।
आनँदघन झर लगै निरंतर अतर निज गुन पोहि री॥

कान्हरो] (४७२) [इकताला

हिमरितु दंपति अति सुखदाई।
गिरिकंदरनि-रचावत मंदिर लखि निज संकेत ठौर ठहराई।
नव मखतूल तूल तेँ कोमल दल-बल कल अनुकूल महाई।
रसिकराय रसनिधि राधा-हित रचि पचि सुंदर सेज बनाई।
पीत बसन बिछाइ हिय तापर भुज-भरि प्रानप्रिया पधराई।
सो सुख कछू कह्यौ क्यौँ आवै अतुल अभंग प्रेम अधिकाई।
हिलनि मिलनि उर झिलनि पिलनि रुचि खिलनि अभूत
बिलास-निकाई।
आनँदघन संपै घुरि घमँडनि बिबिध केलि की झरी लगाई॥

टोड़ी] (४७३) [चंपक

कहा तू अंजन दै करिहै हे।
पिय को हिय तैँ हर्यौ सहज ही अब धौँ कहा हरिहै हे।
तेरो गहरु लाल की आरति कौ लौँ सही परिहै हे।
बात कहत सतराइ निहारति बहुरि कहा लरिहै हे।
आनँदघन सौदामिनि ह्वै मिलि चंद चल्यौ ढरि है हे॥

रामकली] (४७४) [चंपक

अहो हरि आए महा हरबर मैँ, कहा बनि आवै टहल दरबर मैँ।
साधुसिरोमनि घर मैँ साधन धोखेँ धँसे परघर मैँ।
सजल सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैँ।
द्वैज चंद की पाँति प्रगट उर आनँदघन रस-झर मैँ॥

बिलावल] (४७५) [मूल

रूखे रहत कहाइ सनेही रसिक छैल ब्रजमोहन स्याम।
बृंदाबन के चंद छबीले बड़ो अंधेर छलत हौ बाम।

[४७२] संपै=शपा, बिजली। [४७४] दरबर=उतावली।

कपटी कुटिल कालिमा-मूरति बरसत बिषहि सुधाधर नाम ।
बीच दियेँ ही मिलौ बिसासी ऐसेन के ऐसे ही काम ।
कहा करौँ क्यौँ भरौँ भावते तनकौ नहीँ मनै बिसराम ।
भँवर भाव डोलत रसलोभी उसरि कीजियै तुमहिँ प्रनाम ।
मिलौ महूरत साधि परब लौँ गहि न परौ छल-बल के धाम ।
प्रानदान-सुख दुखहिँ दिखावत बितवत बिसम परेखनि जाम ।
चाहति अनिस चकोरी अखियाँ बिरह-झरनि परीँ तन-छाम ।
आनँदघन घुरि दुरे रहत क्यौँ करि चातकीँ पिवावत घाम ॥

तथा] (४७६)

गरब-बारुनी-छके छबीले झूमत फिरत साँझ अरु भोर ।
अति गंभीर बेदना बेदी करनी बिबस काम के जोर ।
रूप - भूप बीरासन - मंडित कुबलय-केलि कलिंदी ओर ।
बृंदावन घन कुंज - पुंज तहँ साह भए बिहरौ चितचोर ।
बरन बरन तन लेप ललित गति अलक सिंगार के छोर ।
निपट निरंकुस घिरे न कितहूँ तोरि संक - साँकरैँ कठोर ।
भँवर भहरानि दान - बस मच्यौ महा ब्रजबीथिन सोर ।
डरपत बिकल बापुरीँ अबला बिदुकि रहति खरिक गिरि खोर ।
चूरत कठिन कपाट कानि के पैठत घर घर करत ढँढोर ।
धीरज आड टारि आनँदघन करत बिबिध सुख सरनि झकोर ॥

ऐमन ख्याल] (४७७) [मूलताल

कछु लखी न परै तिहारे जिय की कान्हा कपटी ।
अपनी गौँ दुरि आनि मिलत हौ तहीँ जाहु जहाँ सीखे
हौ झपटा-झपटी ।
काहे कौँ रसबाद करत हौ सो सत ही लगी दौरि लपटी ।
आनँदघन बिसास-बूँदनि अब आए हौ करन रपटा-रपटी ॥

ललित] (४७८) [चौताला

बसन सुधारि बदन पखारि सुधरि आए तौ मेरे ऐन ।
सब बिधि साधि साधु ह्वै निबटे पै कहाँ लौँ दुरत ये रैनि-जगौहैँ नैन ।

काहे कौँ एतौ पटम रचत हौ मन रूखे मुँह चिकने बैन ।
आनँदघन भोर ही उनए उघरि उघरि दुखदैन ॥

कानरो] (४७९)

लै राखौ अपने पायनि तर ।
यह मन भटकि आयौ जग कृस्न कमललोचन करुनाकर ।
याकी दसा देखियै मोहन दानिसिरोमनि लै थापौ थर ।
लैहौ तौ दैहौ सबही कछु चिंतामनि अधमनि चिंताहर ।
मरम भरयौ मँडरात निरतर निहचै रचै न एक घरी घर ।
हा हा है हो हरि फिरि हालै कीजै निज चरन-चक्र-चर ।
भूल्यौ फिरत भरोसो भारी तुम से नाथ न ऐसो खलबर ।
महा बिजाती बिरल मोहमय थक्यौ चपल छाँडत नाहिन छर ।
प्रेमसिंधु के कूल बास दै लीला - मगन करौ निसिबासर ।
सोच-ताप-मोचन आनँदघन अपनो करि लगाइ दीजै झर ॥

(४८०)

गोकुल कैँ कान्ह मन मोहयौ ।
डगर चली हौँ जाति सहज ही मो घाँ मुसकि जोहयौ ।
अब तब तैँ धीरज न धरत है अपनो सो बहुतै टोहयौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजयौ मुरली की ताननि पोहयौ ॥

सारंग ख्याल] (४८१) [मूलताल

ब्रज कीँ खिलवारि नवेलीँ ग्वारि रँगमगी फिरतिँ
जगमगे स्याम के संग ।
गोरे तन पहिरि पतंगी सारीँ झमकि झपकि गावैँ गारी
भिजावैँ आनँदघन पिय रसरंग ॥

बिलावल] (४८२) [मूलताल

जमुना आगैँ जमुना पाछैँ जमुना देखौँ सब ही ठौर ।
बनवारी कौँ ढूँढि थकनि मैँ जमुना ही लौँ मेरी दौर ।

[४७८] ऐन=घर । पटम=छल-छंद । [४८१] पतगी०=रंग-बिरंगी महीन साड़ी ।

याकैं तीर सदा खुलि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर । —
अब आनँद्घन घमँड भरोसे या बिन काहि ताकियै और ॥

धन्यासिरी] (४८३) [चंपक

हौं न जानौं हो हरि भली बुरी तुमहिं रुचै सो करियै ।
अपनो जानि जिवैहौ कबहूँ इन अभिलाषनि मरियै ।
अंतर की गति देखि दयानिधि अपनैई गुन ढरियै ।
आनँद्घन हौ दीन पपीहे पालि पोषि लै भरियै ॥

तथा] (४८४)

लीला को मरम न जान्यौ जाइ ।
कैसें कै करियै उपासना समुझत मति बौराइ ।
एक कृपाई गुन उर आएँ रचक ठिक ठहराइ ।
वे आनँद्घन को सुधि ध्यावै सहजै दरसैं आइ ॥

कामोद] (४८५) [मूलताल

मैं न जान्यौं री कछु ऐसो भेद गोकुल निपट अनीति ।
कान्ह कहा काहू को लेत और किन करि लीनी प्रीति,
चवाइनि सौं नहीं सकियै जीति ।
या बिधि को बसबास दियौ बिधि रही भीति सौं मिलि पछीति ।
आनँद्घन को बचन सुनत ही लहलहाति रसरीति ॥

कानरो] (४८६) [चौताला

यह सुख कैसैं कहिबे मैं आवै जाहि मन बिचारे हूँ न पावै ।
जौ पावै तौ आपौ गँवावै इतनियौ कौन सुनावै ।
बृंदाबन धाम दंपति सुख - संपति निगमौ दूरि तें दूरि बतावै ।
तिनही की कृपा भएँ आनँद्घन सरस मौन गुन गावै ॥

सारंग] (४८७) [चंपक

गुन गाइ गाइ ज्यौ ज्याइ लियौ ।
सुनहु बिसासी ब्रजमोहन मैं यह धौं कहा कियौ ।
इतने पै दरसौ न देत हौ काहे को है तिहारो हियौ ।
आनँदघन तुम छाइ रहे हौं जरति भरति जु कछु बिधना है दियौ ॥

टोड़ी] (४८८) [चपक ताल

कोऊ है या समुझावै बन रोकत टोकत है पराई बहू बेटीँ।
ढोठ भयौ ढिग ढूक्यौई आवत बातैं कहत कपट - लपेटीँ।
घरी द्वैक मैं समुझि परैगी आजु भले कौं भोर खखेटीँ।
आनँदघन जोबन उनयौ देई देवतान की कान्यौ मेटीँ॥

सारग] (४८९) [चंपक ताल

बनवारी आँखिन आगैँई रहौ बोलत क्यौं न बिसासी।
बन मैँ बंसी बजावत डोलत घर मैँ भए हौ मवासी।
काननि धुनि मँडराति रहति है तुम नव बेलिनि भँवर बिलासी।
आनँदघन उघरनि लै उनए राखत हौ कित प्यासी॥

सारग] (४९०) [इकताला

बिरहा होरी खेलन आयौ।
कहा कहौं ब्रजमोहन जू जैसो इन सीस उठायौ।
रंग लियौ अबलानि अंग तैं धीर-अबीर उडायौ।
प्रान अरगजैँ राखि रही हैं तुम हित-बास बसायौ।
नकवानी करि नाक नचावत चौंचंद महा मचायौ।
चोवा चैन न रहन देत है जतन चाइ चरचायौ।
भजी फिरति बिचारि हथचलई यह डोलत सँग धायौ।
तुम्हारी ठौर रौर पारी इन कै तुम प्रेरि पठायौ।
कहियै कहा बिगोवनि याको रस मैँ बिरस बढ़ायौ।
सुघर स्याम आनँदघन पिय तित छाए इत यह छायौ॥

बिलावलि] (४९१) [इकताला

जमुना देवी दीनदयाले।
अधमतारिनी जगउधारिनी मो से बहुत पतित प्रतिपाले।
राख्यौ लै निज सरन कृपा करि दूरि कियौ जे जे दुख साले।
आसा-बेलि सींचि आनँदघन हरँ बढाइ लालसा लाले॥

[४८९] मवासी=दृढ़ किले का रक्षक, घर से न टलनेवाला।

राधा - मोहन की रँग - राचनि कैसैं बनति बखानत ।
आनँदघन बिनोद घमडनि सुख सखि नैनाई जानत ॥

गौरी] (४९७) [चरचरी

तैं कहा है टौंना कीनौ अरे अरे साँवरे ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि खौरि घूमरे नैना बिथुरीं अलक बदन रँगभानौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजई तो पर सरबसु वारनैं दीनौ ॥

ऐंमनि ख्याल] (४९८) [मलताल

तिहारे दरस की आस, अँखियनि लागि रही हो ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय आनि अब सिरैयै हिय दौ लपट उसास ॥

मलार ख्याल] (४९९) [चलती चरचरी ताल

बरसै स्रमजल-बूँदनि रसीलो साँवरो नयो मेह ।
आनँदघन की घमँडनि ब्रजमोहन सोहन उज्यारौ चौंपनि
सौं रमँड्यौ अपनी चातकी के गेह ॥

पूरबी] (५००) [चौताला

राधा राधा रटि राधा राधा रटि मेरी रसना रसीली भई ।
ज्यौं हीं ज्यौं पीवति या रस कौं त्यौं त्यौं प्यास नई ।
ब्रजजीवन की परम सजीवनि सो निज जीवनि जानि लई ।
आनँदघन उमंग - झर लाग्यौ ह्वै रही नाममई ॥

पूरिया] (५०१) [चंपक

रूखियै रूखियै रहति है राधे देखति हौं कौ लौं
कान्ह सौं न रचिहै ।
तेरी यह सतरौंहीं बानि तेरी दई मानि कब लचिहै ।
मुरली-धुनि संकेत बजि रही फूलनि सेज सँवारी सचि है ।
आनँदघन अभिलाषनि उनए दामिनि लौं कब नचिहै ॥

टोडी जौनपुरी ख्याल] (५०२) [मूलताल

सुंदर ब्रजमोहन प्यारे नीके लागौ जू ।
जितहीं तित बरसौ आनँदघन नित ही नवल रस पागौ जू ॥

रामकली ख्याल] (५०३) [मूलताल

रैनि-उनींदे नैन लालन लागत हैं अति नीके ।
पीकैं-पगे अनुराग-रँगे वा नवल छबीली ती के ।
इनकी सरस अधखुलनि आगें परे हैं कोकनद फांके ।
आनँदघन झूमेई आवत निपट लगौ हैं जी के ॥

केदारो] (५०४) [चंपक

बसि रहे तरनितनैया-तीर, कान्ह राधिका भामा बृंदाबन मैं ।
सब निसि जागि रस पागि पागि उर लागि भुज भार,
रंगनि भरी जोन्हक जगमग मैं निपट रँगमगे उमँगनि अधीर ।
आनँदघन बरसत सरसत परसत तरसत दरसत आपुस मैं
साँवल गौर सरीर ॥

ऐमनि ख्याल] (५०५) [मूलताल

बनवारी रे तैं तो बावरी करी ।
बिसवासिनि बिष-भरी बँसुरिया तनिक बजाइ सब सुरति हरी ।
मन की बिथा कौन सौं कहियै बीतत जैसैं घरी घरी ।
आनँदघन सनेह-झर झूमान घर बाहिर अब उघरि परी ॥

गौरी ख्याल] (५०६) [मूलताल

मेरा अखयनि लाग्यौई रहै साँवरा उजियारो
आनँदघन ब्र मोहन रसीला प्रानांन का रखवारो ॥

कालिंगरा] (५०७) [इकताला

गोकुल नौं कान्ह जी मूँनैं भावै छै ।
बनमाला-पहिरयाँ ग्वाला-संग गउआँ-चारयाँ आवै छै ।
काँमड गारो नद जी रो प्यारो मधुरी बैन बजावै छै ।
आनँदघन ब्रज रूरो ब्रजमोहन रस-बरषा बरसावै छै ॥

पूरिया] (५०८) [चपकताल

गनि गनि डगनि भरनि है डगमगी रँगमगी भई पिय-संग ।
जोबन-रूप सुहाग राग भरि नवल दुलहिया जगमगी ।
लाड-लडीली रस-बरसाल लसीली हँसीली सनेह-सगमगी ।
आनँदघन पिय प्रान पैठि रही ढीला डगनि खगम गी ॥

सारंग] (५०९)

परेखनि दरके जात हिये ।
ब्रजमोहन पिय भए अमोही कैसैं परत सिये ।
बिषम बिसासिनि बंसी-धुनि करि ब्याकुल काढि लिये ।
बन मैं बोलिन खोलि कपट-पट निपटै खेल किये ।
सरद सुहाई रातिनि के सुख तब ता भाँति दिये ।
दुसह दिनेस-बिरह ताचे अब ये निलजे प्रान जिये ।
जमुना - तीर ताकि बूडत ज्यौं जहँ जहँ सुरस पिये ।
आनँदघन उदेग - भर झूमैं परत न छाँह छिये ॥

तथा] (५१०)

ब्रज को बिरह न बरन्यौ जाइ ।
थिरचर भए दुखारे भारे पल पल कठिन बिहाइ ।
देखैं बनै न परत बिचारयौ चहूँ ओर उफनाइ ।
दुख - दौं लाइ द्वारका छाए आनँदमेह कहाइ ॥

सारग ख्याल] (५११) [मूलताल

चपल चतुर कान्हर प्यारे सूधैं चितवौ मेरी ओर ।
ब्रजमोहन आनँदघन तुमहिं कनौंड कौन की बरसत हौ रीझ झकोर ॥

जैत] (५१२) [मूलताल

ल्याइहौं मनाइ करि करि मनुहारि ।
अब तुम लेहु निहोरि रसिकबर समुझि सँभारि ।
जाके अग सग सुख चहियै ताकी सहियै रारि गारि ।
आनँदघन तुम सुघरराय रस राखियै बिचारि ॥

रागिनी बिलावल] (५१३) [इकताला

ब्रजमोहन की बल्लभा राधा बनरानी ।
सोभानिधि सौभाग्य - सींव बिधना-बरबानी ।
धन्य पिता बृषभान जू जगमनि बड़दानी ।

[५०८] खगमगी=धँसन ।

धनि कीरति कुलवती महिमा जगजानी।
भाँदौ सुकला अस्टमी तिथि परम रवानी।
जनमी लली सुलच्छनो जिहिं कूख सिरानी।
श्रीदामा की पीठि पै लाडनि सरसानी।
दृगनि ज्योति लखि होति है भोरियौ सयानीं।
बरस बधाई चाव सौं बरसानै मानी।
नँदरानी की हित-कथा क्यौं परति बखानी।
ब्रजमंडल मंगल महा सुषमा अधिकानी।
आनँदघन बरषा भई मनसा उलहानी॥

गौरी] (५१४)

श्री चैतन्य दयानिधि धीर।

कलिकालीन मलीन दीन जन पावनकरन परम गंभीर।
भाव अभंग तरंग - बिभंगित महामधुर रसरूप सरीर।
बोहित-नाम चढ़ाइ बहुत जन प्रेममगन करि पठए तीर।
पूरन चंद नंदनंदन को उदय सदा उमगनि की भीर।
निज जन रतन-जाल जुत राजत धुनि हुंकार उसास समीर।
बिबिधि ताप तैं जरत जीव जे सीतल किये परस-पदनीर।
करुनादृस्टि बृस्टि सौं सींचे जय जय जय आनंदमुदीर॥

परज] (५१५) [इकताला

हो आजु रावलि रंग रह्यौ।

कीरति कन्या जनी सुलच्छनि सुनि गोकुल उमह्यौ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ।
सुर - समूह पुहप बरसैं परम सचु लह्यौ।
बंदनि या रस को जस भेद सौं कह्यौ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ॥

[५१३] श्रीदामा=राधा के बड़े भाई। [५१४] बिभंगित=तरंगित। परस=स्पर्श। आनँद०=आनँद के बादल (चैतन्यदेव) ; आनंदघन (कवि)।

रागिनी मरहटी] (५१६) [झपताल

झूलत हिँडोरना स्याम-स्यामा प्रेम - रसमसे ।
रूप-जोबन-भरे रहसि रंगनि ढरे जगमगे बदन अतिहीँ लसे ।
बिथुरे सुथरे बार हियेँ फूलनि हार रँगमगे बसन परिमल-बसे ।
मधुर बृदाबिपिन सरस जमुना-तीर द्रुम-बेलि केलि-गाँसनि गसे ।
आनँदघन घमँडि राग बरसत रमँडि पावस बिलास प्यासनि रसे ॥

टोड़ी] (५१७) [मूलताल

सुमन हिँडोरनाँ हुलसि झुलावत रसिक छैल अपनी प्यारी कौँ ।
अतुल रूप की उझिल झेल मैँ परे नैन मन फूलत झूलत
लाड़नि मतवारी कौँ ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन सेवत सुख-हित-हरियारी कौँ ।
आनँदघन रीझनि भर भिजवत बेली सुकुँवारी कौँ ॥

बिभास] (५१८) [चंपक ताल

कुलही दै उलही स्याम-रूप-गोभा बैठे कान्ह ब्रजपति की गोद
रुचिर डिठौना लौने मुख छबि देखि देखि मन मगन-मोद ।
वारि वारि मनिमाल देत बड़भागी नंद पूरन बिनोद ।
बरस-गाँठि कुलमंडन की बरसत सरसत आनंदपयोद ॥

भैरव] (५१९) [चंपक

झुलावति ब्रजरानी कनक - पलक पौढ़े ललन तनक ।
देखि देखि सुखसदन बदन अति फूल - भरी बिधिना
बनाई मनभाई बनक ।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागनि जस बरनत सुक सेस सनक ।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसुदा जननी नंदराय जनक ॥

गंधार] (५२०)

आजु के दिन की हौँ बलि जावँ ।
कुलमंडन की जनम - बधाई बाजति गोकुल गावँ ।

[५१८] कुलही=टोपी । गोभा=प्राकट्य, अभिव्यक्ति ।

महाभाग ब्रजरानी जू के बंदन कीजै पावँ ।
जिन हित घमँडि रह्यौ आनँदघन जसुदानंदन नावँ ॥

सारग] (५२१) [इकताला

हौं कहा जानौं इन साँवरिया मुरली मैं कहा धौं बजायौ ।
सुनि मेरो मन तरफरात तब तें न धरत कल मैं बहुतै बहरायौ ।
सनमुख ह्वै ह्वै जात सलोनो मोहन-मूरति क्यौं हू न होत गहायौ ।
ब्रजमोहन आनँदघन मोही पै अति छायौ बिरह-ताप तनु तायौ ॥

कनरी ख्याल] (५२२) [मूलताल

देखन की लगी ढौरी है ।
साँवरी मूरति जब तैं निरखी परी ठगौरी है ।
इतने पै यह बैरिनि बँसुरिया अतिहीं खौरी है ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन मति भई बौरी है ॥

भीमपलासी] (५२३) [चंपक

बलैया लैहूँ आजु के दिन की राधा प्रगट भई है ।
मंगलमनि महिमामनि सोभा की मनि सुहागमनि बिधिना दई है ।
नीके रहौ लहौ सुख-संपति सुकृति - बेलि की सरस जई है ।
कीरति-कूख धन्य आनँदघन जाकी कीरति बरनत निगम नई है ॥

सारंग] (५२४)

जमुना - सरन मरन जौ होइ ।
तौ जी परियै भली भाँति सौं यामैं फिर संसय नहिं कोइ ।
नित-बिहार हित-साक्षौ पैयै लाहौ बड़ौ भरम सब खोइ ।
आनँदघन अभिलाष घमँड मन-तनहि तीर-रज धरौं समोइ ॥

धनासिरी] (५२५) [चंपक

भूलि मेरे मन न और कछु आवै ।
ब्रजबन की बीथिनि अरु कुंजनि फिरिबोई नित भावै ।
ब्रजमोहन जू छैल छबीले गुन रसना गसि गावै ।
आनँदघन हौ सुरस बरसियै चातक टेर सुनावै ॥

[५२२] खौरी = बुरी, कष्टदायिनी ।

रागिनी भीमपलासी] (५२६) [मूलताल

बन बजी बँसुरिया कैसैं रहौं घर दैया ।
कलमलात जियरा मिलिबे कौं को है धोर-धरैया ।
न्यौज लगौ यह लाज निगोड़ी करिहै कहा चवैया ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब डरु करै बलैया ॥

भैरव] (५२७) [चौताला

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तैं निसि-बिलास-अरसाने ।
मंद मंद गति अति रति पागे जागे चौंपनि परम प्रेम सरसाने ।
अंगनि दुति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर मुख सुखमय दरसाने ।
गौर स्याम आनँदघन दामिनि देखत नैन सिराने
जमुना-तीर बरसाने ॥

पूरबी] (५२८) [चौताला

नादमहत गिरिजाकंत दीननि के दयावंत ।
तुम्हारी कृपा तैं निसदिन गाऊँ श्रीहरि-गाथा जैसैं गाइ आए संत ।
बरदराज सब काज सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत ॥

नट] (५२९) [चपक

पाथर हियौ उड़्यौ ही डोलै हरि के दुसह बियोग ।
अचरज महा कहा कहियै अब बन्यौ नवल सजोग ।
पोढौ अति पिसि रह्यौ घिसनि मैं आगि-उदेग भर्‍यौ ।
जानै नहीं साँवरे सुदर चेटक कहा कर्‍यौ ।
ज्यौं लै गए कौन धौं जारत यह कछु सुधि न परै ।
बिबिधि जातना भर्‍यौ निगोड़ो जीवै नाहिँ मरै ।
निपटै जड़ पै एक चेतना - चिंता - चोट सहै ।
आनँदघन पिय हित सियरो परि औरै दहनि दहै ॥

५२६–न्यौज–आग (संग्रह) ।

[५२८] जंत= (जंतु) जीव, व्यक्ति ।

बिलावल] (५३०) [इकताला

मची चुहल चाँचरि की नंद महर के द्वारैं ।
आईं उमहि ब्रजबधू चौंपनि चतुर खिलारैं ।
सुमिल सुगीतनि गावैं निपट रसीली भासनि ।
मोहन मनहि घुमावैं प्रेम - लपेटी गासनि ।
अद्भुत उकति अनौंठी प्यारी परम सुगारीं ।
जसुमति-ललहि सनमुखीं लाजनि ढकी उघारीं ।
रूप - गहगहीं गोरीं बैस डहडहे गातनि ।
गोकुल की हुरिहाईं बनीठनी सब बातनि ।
मिंहदी रचे करनि डफ बिबिध बिचित्र बिराजैं ।
महा मनहरन हाथनि परस सरस गति बाजैं ।
झूमर झमक रमक सौं भाँवरि भरन लगी हैं ।
खुलनि झुलनि अलकनि की मिलि मुख-ज्योति-जगी हैं ।
कान्है करपि हरष सौं चाहति नाच नचावन ।
चौकस चपल चिकनिया चपरयौ चहत बचावन ।
गुलचनि रुचिर कपोलनि उलचति धीरज हिय को ।
प्रगट परस होरी मैं जिय ज्यावत है पिय को ।
वक बिहारी मोहन किये सरस ब्रज - बालनि ।
गौंसनि हौंसनि सौं सनि समझि सहत इन हालनि ।
बिच बिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी ।
मरम - परस की घातनि तकि बृषभानुदुलारी ।
नई लगनि के लाले फागुन भरि पुरए हैं ।
छाँह छियन हूँ दूभर उररि उररि सु रए हैं ।
लगत निपटहीं नीके मोहन रूप - उजागर ।
दरस परस रस परबस नायक नगधर नागर ।
बदन गुलाल - रँगमगे दिपत अबीर - अँध्यारैं ।
मदन - कुलाहल कौतुक गनत न बनत बिचारैं ।
ग्वार गरधारिनि ढूके सैननि स्यामहि बोलैं ।

बुधिबल बरनि न पावत घिरि नवबधू कलोलैँ ।
इचनि खिँचनि कर पट की लपट झपट रँग-रपटनि ।
भरनि भुजनि फिर उलटनि दलनि दबोचनि दपटनि ।
छलनि छुटे मोहन की गौँहन लागति बाला ।
नैन भौंह कर नचनि लचनि कटि डोलन माला ।
दाव लैन के चावनि चौगुन चौँप चढ़े हैँ ।
ग्वार ग्वारनिनि टोल आपनी पज बढ़े हैँ ।
फागुन फबी सु बिलसनि हुलसनि हौँस नई है ।
यह सुख सोभा संपति दंपति भाग भई है ।
घोष घमँडि आनँदघन अति रस-रमँड मची है ।
भीजि रीझि रसमसनि समै छबि दृगनि खची है ।
सगुन साथ त्यौहार सदा बिहरैँ हरि भामिनि ।
महामोद - बढवारि कौन ब्यौरै दिन जामिनि ।
नित बसंत रसवंत कंत कामिनि सुख भोए ।
बसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए ।
भाग - भरी ब्रजबधू सनेही स्याम सभागौ ।
इनहीँ के अनुराग पागि रसना गुन रागौ ।
ऐसैँ देखत रहौँ रहस आनँदकंद के ।
महा रसवती राधा कौतुक कृस्नचंद के ॥

धनासिरी] (५३१) [इकताला

ब्रज माची सरस धमारि होरी रग रह्यौ ।
घोष नागरीँ फगुवा माँगन आईँ जसुमति-धाम ।
प्रेमपगे रँगमगे जगमगे निरखे मोहन स्याम ।
गावति गारीँ दै दै तारीँ गति सौँ डफहि बजाय ।

४७३—दिपत—दिखत (सतना) ।

[४७४] भासनि=बोली से । अनौँठी=अनूठी । हुरिहाई=होली खेलनेवाली । चपर्यौ=फुरती की । गुलचनि=कपोल पर हाथ की मुट्ठी से किए आघात । उररि=उमंगित होकर ।

आँगन मैं औसर की चाँचरि चौंपनि रही मचाय ।
फैलि फबी छबि छकीं खिलारैं चंदमुखी चहुँ ओर ।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्ह-किसोर चकोर ।
काजर दै मुख मीँडि गुलालहिँ झगरति फगुवा हेत ।
सैननि ही मैं सुघर साँवरे हाहा करि हँसि देत ।
पून्यौ सुदिन समदि सब सुखनिधि बढयौ महा समुदाय ।
गोद भरति रोहिनी जसोदा मोद कह्यौ क्यौं जाय ।
या घर यह सुख सदा बिराजौ देति असीस बखानि ।
आनँदघन रस रहौ लहौ जस नित त्यौहारनि मानि ॥

बिहागरो] (५३२) [इकताला

देखि सुहाई सरद की जामिनि रंगभीनी ।
पूरन ससि प्राची उदै बिहरनि रुचि कीनी ।
मोहन मदन गुपाल कौं बृंदाबन मोहै ।
जमुनातट कुसुमित महा अवनीमनि सोहै ।
ज्योति - जगमगे द्रुमलता अति सघन सुहाए ।
त्रिबिधि पवन सुखमै बहै कहियै सु कहा ए ।
बिसद पुलिन रसरास को अभिलाष बढावै ।
नटनायक नँदलाल को मन पकरि नचावै ।
राग भागनिधि ब्रजबधू तिनकी मनि राधा ।
जाके हित मुरली धरी धुनि प्रेम - अगाधा ।
रूप अनूपम साँवरो गुनरासि रसीलो ।
नाद-स्वाद - स्वामी सदा अति छैल छबीलो ।
कहि न परति सुर-मधुरिमा जिन सुनी सु जानै ।
परम प्रेम - फँदवारि है प्यारिनि गहि आनै ।
चौंपनि चुहल मची महा गोपीं चलि आवैं ।
अगनित पूरन ससि मनौ धरनी पर धावैं ।
रची मडली भावती राजति चहुँ ओरनि ।

५३१] समदि=भेंटकर ।

मधुर हँसनि हुलसनि महा दृग सौं दृग जोरनि ।
हिलनि मिलनि ब्रजचंद की अति उमँग-भरी है ।
प्रीति-पगे रस - रँगमगे पन परनि परी है ।
दरस परस रसबढनि की गति कहै सु को है ।
आनँद - उदधि - तरंग मैं मति की मति मोहै ।
अद्भुत गान - कलान की रचना सरसी है ।
ललित रीति संगीत की सुषमा दरसी है ।
मच्यौ महारस रास है बृंदाबन माहीँ ।
या सुख - सोभा की कछू उपमा कौं नाहीँ ।
चटक मटक गति-लटक सौं नाचैं पिय प्यारी ।
आपुस मैं रीझनि रचे वारथौ कहि वारी ।
कुंडल अलक कपोल की झिलमिलनि फबी है ।
चकचौंधी लागति लखैं दुति दृस्टि दबी है ।
बिबिधि बिनोद प्रमोद मैं सनि रहे रसीले ।
मुकुट चंद्रिका दुहुनि के झुकि लसत छबीले ।
मगन महारस - केलि मैं मोहन ब्रजबाला ।
सुरबनिता रीझनि छकीं वारैं मनिमाला ।
थिर चर सब रस मैं पगे सुधि रही न काहू ।
राधा मोहन हिलि मिले हित - रीति - निबाहू ।
राग - भोग - संजोग को अति पुंज बढ्यौ है ।
महा निसा जकि थकि रही ससि कढनि कढ्यौ है ।
आनँदघन बरसत सदा भीजे या रस मैं ।
परम रसमसे रीझ सौं दोऊ परबस मैं ॥

टोड़ी] (५३३) [चंपक

घेरि बन राखत हौ अबलानि दिना दस तैं मिस ठानि दान को ।
कान्ह लाड़िले अनीति करौ जिनि डरौ न देवतानि हूँ
ढँग सीखौ सयान को ।

गैल चलौ अमैंड़ई छाँडौ यह तौ है जू भयानो भान को।
आनँदघन घुरि घुरि उघरत हौ हठ न भलो निदान को॥

टोडी] (५३४) [चौताला

पिय को परस रस तैं ही पायौ।
सुनि राधे अनुरागमजरी उरजनि बीच दुरायौ।
इनकी फूल फैल परी नखसिख डहडहौ मुख सुखसदन सुहायौ।
ब्रजमोहन आनँदघन री रीझनि झमँडि घमँडि रमँडि
रमँडि सरसायौ॥

संकराभरन] (५३५) [जतिताल

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखै।
मुरली-धुनि मोहनी करि पवन पंग राखै।
मुकुट-लटक गति की मटक अंग सुधंग राखै।
महा अदभुत रूप धरे मोहि अनंग राखै।
राधा के हित नटवा निपुन अति उमंग राखै।
आनँदघन चातक-ब्रत एक संग राखै॥

राग केदारो] (५३६) [चौताला

ऐसो मन कहाँ तें ढूँढि ल्याइयै जौ पै फिरि हरि ही मिलाइयै।
अरु तेई आँखें जिनसौं निरंतर वह मुख दिखाइयै।
कहा बनाइयै कैसैं बहराइयै तपनि महाइयै।
आनँदघन के हेत रैनिदिन सोचनि छाइयै॥

राग स्याम कल्याण] (५३७) [इकताला

नटवर नंदलाल रासमंडली रची हो।
राधा-संग जमुना-पुलिन परम प्रीति मची।
महामोहन मुरलिका-धुनि तान-ग्राम जँची।
सरद-निसा गोपिनि मिलि सुख की रासि सची।

[५३३] अमैंडई=शरारत। भयानो=डरना। भान=प्रकाश। निदान०=अंत में। [५३५] पंग=पंगु, गतिहीन। सुधंग=बाँके, बढ़िया ढग से।

अभिनय संगीत - रीति नचनि देखि नची ।
रूप जोबन गुन - गरिमा रोम रोम खची ।
यह सोभा देखँई बनै बरनिबँ बची ।
आनँदघन रस की रासि कैसँ जाति अची ॥

राग केदारो] (५३८) [चौताला

सब निसि बिलसत रास-रसी है ।
राधा के अंग-संग रंग राचे नाचे मोहन परम-प्रीति सरसी है ।
कुसुमित बृंदाबन जमुनातट पूरन सरद्-ससी है ।
आनदघन भामिनि दामिनि मिलि अद्भुत छबि बरसी है ॥

ऐमनि] (५३९) [इकताला

नंद - नंदीसुर बास अरी बड़भागनि पैयै ।
नित उठि मोहन-मुख निहारिबो पुजवत है जिय-आस ।
हम ये दूरि बसति तरसति हैँ झुरि झुरि भरति उसास ।
इक दिन गाइनि लै इत निकसे बाढ़ी अँखियन प्यास ।
तब तेँ आनँदघन औसेरनि प्रान - पपीहा उदास ॥

आसावरी] (५४०) [इकताला

जमुनातीर बजावै बंसी स्यामसुँदर नवरंगी हो ।
गागरि भरन न देत अचगरो तीखी-तान-तरंगी हो ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना चंदन - चरचित-अंगी हो ।
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि मधुर हँसनि रुचि-संगी हो ।
उर बनमाल बिसाल बिराजित मोहन-मदन त्रिभंगी हो ।
रीझनि भीजि थकी निरखतहीँ घनआनंद उमगी हो ॥

परज] (५४१) [मूलताल

हियरा सुर-साल करै मुरली ऐसे हाल करै मुरली ।
प्रान समोइ लेति तानन सौँ अटपटे ख्याल करै मुरली ।
बसति ससति सौँ घिरी घरनि मैँ ये जंजाल करै मुरली ।
आनँदघन रस बरसि बिसासिनि बिरह की ज्वाल करै मुरली ॥

सारंग] (५४२) [चौताला

जहाँ जहाँ डोलत री बनवारी तहाँ तहाँ मन मेरो मँडरात ।
सुरति सहेली सँग नहिँ छाँडति बन बन बीथनि बीथनि पग
पग पाँवड़े लौं बिछि जात ।
यह सुख तौ मेरो जियराई जानत कहा भयौ तनु तचि मुरझात ।
आनँदघन को बिरह सँजोग हू तेँ इन बातनि सरसात ॥

सारंग] (५४३) [चौताला

कहा हौँ बैठियै रहौँ, हठीली बोलति नाहिँ बुलाएँ ।
कौन कौन भाँतिनि समझाय अनोखी तोसौँ कहौँ ।
बनि आएँ ठनगन ठानति है सर्बोपर राधे तोहि लहौँ ।
आरत ह्वै पपई आनँदघन तातेँ पैज गहौँ ॥

सोहनी] (५४४) [इकताला

सुन बे बेपरवाह निमाणीँ दाहानल बुझदा ।
प्राण-पपीहाँ नू आनँदघन तुझ बाजू होर न सुझदा ॥

सोहनी] (५४५) [जामाताल

अबे साडे दिल दी मुराद पुजाईँ ।
साँवले सज्जन साँई जिद निमानी तपदी आनँदघन सोहन
मुख चुक बिखलाँई मिहिर नजर बरसाईँ ॥

सोहनी] (५४६) [झूलताल

वो वो सानू ना तरसाँई, जिद कीती कुरबान
तैँडे दम ऊपर साँवला साँई ।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन हा बे मेहर नजर बरसाँई
इत बल आँई घोल घुमाँई ॥

धनासिरी] (५४७) [इकताला

मैंडा दिल तैनू लोडै तू क्यौँ मुखडा मोडै ।
इस वो निमानी नू बिरह सिकैँ दा तैनू की परवाह
आनँदघन बडा तिना दा भाग जिना नाल तुसी वो मोहबत जोडै ॥

[५४३] ठनगन = मान, रूठना । पपई = चातकी । [५४४] बाजू = वर्ज्य, अतिरिक्त । होर = और, अन्य । [५४५] चुक = किंचित् ।

सारंग] (५४८) [इकताला

सिंघासन प्रेम को गिरिराज ।
ब्रज तुव राज बिराजत नितहीँ सँग लै सुहृद - समाज ।
याकी गुन-गरिमा याही मैँ भरि सेवन सुखसाज ।
जै जै मंगलमनि आनँदघन थिर अनुचर सिरताज ॥

सारंग] (५४९) [चौताला

हरि-चरननि सौँ चिन्हारि करि लै ।
मन मेरे तू मानि कह्यौ या सुख-संपति घरि भरि लै ।
बन-महीमंडन ब्रजरमनी - उर - मंडन तिनहीँ के हित ढरि लै ।
आनँदघन अद्भुत अरबिंद पपीहा-मधुप-ब्रत धरि ल ॥

तथा] (५५०)

ऐसी बजाई है बनवारी बंसी बन, है सुनत धुनि काहू
पै न रह्यौ मन ।
उमँग उद्वेग आँच लागे तेँ पुलकि पसीजि चले हैँ सब तन ।
रीझनि रमँडि घमँडि आनँदघन बरसि बहावत अबलनिपन ॥

आसावरी] (५५१) [मूलताल

ठगिया बसत है री याही गाँव ।
जमुन-तीर तेँ मनु न हाथ मेरे, अब न रहत घर पावँ ।
परी है ठगौरी लागी वहै ढौरी बौरी भई जागत बररावँ ।
साँवरेँ बरन आनँदघन भिजई जानौँ न कहा धौँ नावँ ॥

ललित] (५५२) [मूलताल

चले किनि जाहु लला तुम सूधेँ आपनी गैल ॥
काहे कौँ उरझत काहू सौँ भली भई भए छैल ।
दान दान यौँ ही करि राख्यौ रोकत खोरि खरेई अरैल ।
आनँदघन रसबादनि उनए फिरत मनावत सैल ॥

टोड़ी बराड़ी] (५५३) [मूलताल

सुरति सबेरी लेहु बिसासी बालम जियरा अति अकुलाय ।
अब न बिरम करियै ढरियै हरियै दुख हाहा नतरु आइहै धाय ।

[५५२] सैल=मौज ।

कहा कहौं जौ तुमही न समझौ अपनी करि यौं दई भुलाय ।
आनँदघन रस बरसि सरसि तब अब लाई यह लाय ॥

बिहागरो] (५५४) [मूलताल

निपट बिरहिया लोग ब्रज को, स्याम-सनेह-सगमगे
सब ही रूप - रँगमगे नैन ।
मिलि मिलि बिछुरि बिछुरि फिर मिलि मिलि पावत चैन कुचैन।
मौन धरे मचि रही चहूँ दिसि कान्है कान्ह पुकार ।
आनँदघन झर लाग्यौ सदाई घर बन बरस बढवार ॥

पूरबी] (५५५) [इकताला

उरझिबो करै री हम सौं नंद महर को अचगरौ ।
घाट घाट रोकत टोकत है सबही गुननि को अगरौ ।
गोकुल निपट अनीति चलाई चलन न पावत डगरौ ।
मुरली बजाइ बजाइ करत बस टरत सयानप सगरौ ।
आनँदघन यौं घमँडि मचावै गोरस मिस रस-झगरौ ॥

गंधार] (५५६) [इकताला

कालिंदी - कूल की मँडरानि ।
भावति है दिन दिन छिन छिन ही प्रेमपगी अकुलानि ।
राधा - मोहन - रूप माधुरी परसि दरसि थकि जानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि आनि परी यह बानि ॥

तथा] (५५७)

निहारथौ बृंदाबन सुखखानि ।
द्रुम - बेलिनि सौं भई भलँई इन अँखियनि पहिचानि ।
जमुना - तीर भीर सहचरि की राधापिय - रहठानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि बाढ़ि परी ललचानि ॥

तथा] (५५८)

मदनगुपाल की बलि जावँ ।
हरषि सिरात हियौ सुनि सजनी हेली महा मनोहर नावँ ।

५५४–घर०–घर राखत रस (सतना) ।

[५५३] लाय = आग ।

स्याम रूप रँग पागि लियौ है सबही गोकुल गावँ ।
ब्रजजन - जीवनधन आनँदघन रमँाड रह्यौ दृग ठावँ ॥

भैरव छंद] (५५९)

रिषि मुनि सत्तम सब बिधि उत्तम हरि-हित-हारद नमो नमो ।
गुह्यक - तारक पर - उपकारक रस - आसारद नमो नमो ।
भ्रमतम - नासक प्रेम - प्रकासक मुखससि सारद नमो नमो ।
भवनिधि - पारद गान-बिसारद जय जय नारद नमो नमो ॥

सारंग] (५६०) [झपताल

बरजि री या छबीले हठीले कौँ कहा पौरि पिछवार ढूकत डोलै ।
घर बैठे आनि उखनींद करत काँकरु चलावत निडर याहि
किन सीख दीनी अहो लै ।
घमँड्यौ रहत रातिद्यौस आनँदघन जोबन के मद आँख्यौ न खोलै ॥

रामकली आड़] (५६१) [चौताला

सचितानंदनी सुख देति ।
कृपारस - पूरन सदाई उमँगि लहरैँ लेति ।
स्यामसुंदर - सग रंगनि अंगराग रमेति ।
नीर - महिमा - माधुरी कौँ बदति बानी नेति ।
तीरभूमि निहारि हिय तेँ जाति जडता चेति ।
द्रवित आनँदघन निरंतर परति नाहिन छेति ॥

राग भैरव] (५६२) [इकताला

आवौ आवौ हो सनेही स्याम बहुतै लगाई बेर ।
रूप - उजियारे टारौ बिरह महा - अंधेर ।
सुंदर बदन सोभा देखन की प्रानप्यारे नैननि कैँ निपट
ही लागियै रहै औसेर ।
अवधि बितानी रैनि जागत बिहानी हा हा रसिक रँगीले
छैल उरझै नवेली झेर ।
आनँदघन सुभाय अनत बिराजे छाय स्रवन परी न
हाय काहू दुखिया की टेर ॥

[५६१] रमेति=रमती है। छेति=विच्छेद। [५६२] झेर=प्रीति की तरंग।

रामकली] (५६३) [मूलताल

अधम-उधारन मैं तुम जाने ।
दीनानाथ कृपानिधि स्वामी सदा दयारस-साने ।
सोचहरन सुखकरन छमापति अति उदार उर आने ।
पतित पपीहनि के आनँदघन जीवनधन पहिचाने ॥

षटराग] (५६४) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागर छैल सौं छबीली कुँवरि
राधे राखो न कसरि ।
लियौ दाव अति चौंप चाव सौं रँगीले ललन मुख आई
है गुलालहि अलग मसरि ।
हाथ लगाइ हाथ कियौ मोहन रूप-कौंध चौंधि रह्यौ है थसरि ।
आनँदघनहि भिजै रस रिझयौ दामिनी कहा बिचारी
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि ॥

आसावरी] (५६५) [चौताला

नैननि मन रोम रोम कान्है कान्है कान्ह रम्यौ है ।
कोउ बेचति कोउ लेति गुपालहि गोरस लौं घर घर
फिरत कहाँ नीकौ नेह जम्यौ है ।
गोकुल प्रेम की पैंठ सदाई जहाँ जगमोहन ऐसैं भ्रम्यौ है ।
आनँदघन अचरज रस भीजि भीजि रीझि रीझि सुक सन-
कादिक सेस सकर गिरीस सीस रज-बकसीस नम्यौ है ॥

भैरव] (५६६) [झपताल

सकल - सुखमा - सदन बनराज राजै ।
राधिका मदनमोहन निवासित सदा अति मधुर केलिहित सपदा साजै ।
तरनितनया - तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पै प्रगट
सब लोक - सिरताजै ।
अद्भुत अनूप आनँदघन रसरूप महामंगलकरन पूरन कला जै ॥

४६४–सरि–भरि (लंदन) ।

[४६४] थसरि = शिथिल होकर ।

बिलावल] (५६७) [चंपक ताल

आवति चली कुंज-गहबर तैँ कुँवरि राधिका रूपमढी।
मोद - बिनोद - भरी मृदु मूरति का बिरंचि या घाट घढ़ी।
बरनौँ कहा गुराई मुख की अलक - सँवरई - संग बढी।
बक चितवनी सरल बान लौँ उर इकसार दुसार कढो।
सहज मधुर मुसिकानि सलौनी मौन मोहनी - मंत्र पढी।
अधर पानि पै निरखि घुरयौ हिय उतरति क्यौँ जु घुमेर चढ़ी।
सुनि री सखी घुटनि जियरा की तू ही एक उपाय - अढ़ी।
ज्याइ प्याइ रस आनँदघन कौँ रसना चातक - चौँप - रढ़ी॥

लहवारी बिहाग] (५६८) [इकताला

राधे राधे राधे राधे श्री राधे राधे।
ब्रजजीवन के प्रान - जीवनधन येई बरन आराधे।
आनँदघन चातक - रट लागी मुरली - सुर मैँ साधे॥

सावंत] (५६९) [इकताला

कान्ह - कथा कान्है सुनाइयै।
तनक इकौसैँ ब्रजमोहन कौँ भागनि बल जौ कहूँ पाइयै।
जो कछु दसा नैन मन जिय की सो कैसैँ काहू जनाइयै।
जाकी लाई लाइ लगन की आनँदघन ताहीँ सिराइयै॥

सारग] (५७०) [इकताला

सुमिरन स्याम कौँ मन लाग्यौ।
मन सुमिरन सौँ लगै न क्यौँ फिरि सरस-परस-रस-पाग्यौ।
सोवत जगत न उहटै कितहूँ हित ऐसो कछु जाग्यौ।
रीझनि झूमि झूमि आनँदघन गुर गरजनि अनुराग्यौ॥

[५६७] गहबर=भीतर, गहराई, गर्भ। का=क्या। घाट=शैली। घढ़ी=गढ़ी, बनाई। इकसार=एक ओर घाव। दुसार=आरपार घाव। घुमेर=नशा, चक्कर। अढ़ी=करनेवाली। रढ़ी=रटती है। [५६९] इकौसैँ=एकांत मैँ। बल=सहारे, द्वारा। लाइ=आग। [५७०] अरस० = आलिंगन के आनंद मैँ लीन। उहटै = उचटे। गुर=गहरी, भारी।

सारंग साँवत] (५७१) [चौताला

आनँदमंगलदाता दरसन सूरसुता को ।
जब जब देखियै नयो नयो लागत रूप अनूप जु ताको ।
राधा-हरि-सहचरि-समूह मिलि बिहरनि-कूल-कुतूहलता को ।
रसना छाय रहौ आनँदघन जस याकी प्रभुता को ॥

सारग] (५७२) [झपताल

धरम अरु धीर मन प्रान अरु ग्यानहूँ हेरि हरि लेव हरि देव प्यारे ।
सो बहुरि कौन कौं देव कहि देव किनि कपटी कठोर गिरधर उज्यारे ।
कंदरा मदिरनि बसत घातनि छैल गैल गाहत अबारे - सबारे ।
घमँडि आनँदघन उघरि गौहन लगत दान मिस ठानि हठ निडर भारे ॥

गौरी] (५७३) [मूलताल

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवन राधाप्रान ।
राधा-बदन-सरोज-मधुव्रत सदा करत राधा-रसपान ।
राधा राधा ही रट लागी राधा बिन सुमिरत नहिं आन ।
नित हित-घमँडनि सौं आनँदघन मुरली मैं राधा-गुनगान ॥

आसावरी] (५७४) [इकताला

होरी होरी खेल मचायौ गोकुल-गैल - गरथारैं ।
ब्रजगोरिनि भोरिनि घातनि लगि डोलत साँझ - सबारैं ।
चंचल चतुर चिकनिया मोहन गोहन परयौ है हमार ।
आवौ घेरि कनौडो करियै कौ लौं धूम सहारैं ।
भिजै रिझै आनँदघन को सब दिन की कसरि निकारैं ॥

हिंडोल] (५७५) [चौताला

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं बागौ बसंती ।
चोवा-चित्रनि फबी है छैल-छबि अरु उर राजति बरन
बरन फूलनि की बैजंती ।

५७४—चचल—चौकस (सतना) ।

[५७४] धूम=ऊधम ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं जोबन - उलह निपट लहलहंती ।
तेरैं हित आनँदघन घमँड्यौ ढुरि घुरि रस राखियै
सुनि राधे सुहागवंती ॥

हिंडोल] (५७६) [कपोती ताल

आवौ री मिलि गावौ बजावौ बसंतपंचमी है आई ।
राधा लै बृंदाबन चलियै देखन सोभा सुनियति मोहन मुरली सुरझाई।
कोकिला कुहकनि औरौ खग चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई।
आनँदघन की गरज सुहाई माची है मदन-बधाई ॥

सारंग] (५७७) [चौताला

नवल बना री नवेली बनी राधा को ।
ब्रजमोहन नीको नाँव रसीलो भागभरे दुलहा को ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन मंडित मंडप-सुमन सदा को ।
आनँदघन हित घमँडि भाँवरैं भरत रहत धनि धनि सुहाग याको॥

सारंग] (५७८) [चंपकताल

टेर मुरली की मोहिं टेरिबोई करति है ।
रितै रितै मन मैं तैं धीर बीर बिषम पीर लै भरति है ।
कठिन जोग घर ही मैं भोगियत बिरह-आगि उर-बीच बरति है ।
आनँदघनहि परस सीतलता परति है, परति है ॥

हिंडोल] (५७९) [चौताला

बसंत फूल्यौ री बृंदाबन मैं आइ ।
नितहीं बसंत-मूरति ब्रजमोहन के देखन कैं चाइ ।
ताहि सफल करि राधे माधवी है हिलि मिलि खिलिबे को दाइ ।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाइ
अब तू दामिनि लौं धारि पाइ ॥

हिंडोल] (५८०) [इकताला

बिहरत बृंदाबन रितु बसंत राधा रमनीमनि कान्ह कंत ।
प्रफुलित जमुनातट बिबिध कुंज, धूँधरि पराग अलिपुंज-गुंज ।

५७६–सुरझाई–सुर गाई (सतना) ।

गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार ।
यह सुख सोभा बरनी न जाइ, तन मन आनँदघन रह्यौ छाइ ॥

हिंदोल] (५८१) [चौताला

रँगमगे अंग नित बसंत खेल ।
सजल गुराई लोने गात मानौ केसरि रँगरेल ।
सहज सुगंध सौंधो कपूर हास चिकुर चिकनई चोवा फुलेल ।
अधर-अरुनता गुलाल रोचना आनँदघन पिय हित
सब सुख-सौंज सकेल ॥

राग हिंदोला] (५८२) [मूलताल

राधे रमनीमनि रूपमंजरी तेरी हँसनि बहुत बसंत कौं हँसति ।
कहा कहौं हौं हूँ देखि रहौं जैसो नखसिख लौं जोबन-गोभ लसति ।
रँगीलो बदन सुखसदन बिराजत भृकुटी पासि मति गतिहि गसति ।
मधुर माधवी सरस बिकास बिलासभरी तू आनँदघन ब्रज-
मोहन पिय-हिय-जिय मैं बसति ॥

कलिंगरा] (५८३) [इकताला

स्याम प्यारे हमसौं होरी खेलन आए भोरँ कित के ।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब बिधि लायक नित के ।
निपट रँगमगे सौंधे-सगमगे जावक-खौरि कनौड़े हित के ।
आनँदघन चित चौंपनि उनए उघरे भाग भुरहरँ इत के ॥

धनासिरी] (५८४) [मूलताल

दरद बदा नू दरद घनेरा है मासूकाँ बेपरवाही ।
सुन बे साँवलिया कुडिया दे उपर की हुया फिरदा सिपाही ।
तैनू दरद सुने दरसे मैंडा यार निगाही ।
प्रानपपीहा नू जिलावीं आनँदघन मिहिर-नजर वाहवाही ॥

गधार] (५८५) चौताला

तिन सब कछु साध्यौ हो जिन साधी साधुजननि-संगति ।
पतितपावन पुरुषोत्तम पदवी पावन की परम गति ।

[५८२] गोभ=प्रस्फुटन । पासि=फँसकर । [५८४] कुडिया=टोप ।

धोइ धोइ मन-बसन बासना रच्यौ है रागरुचि - रंगति ।
आनँदघन रस-परस - प्रसादहि पाइ पल्यौ पन-पगति ॥

ऐमनि] (५८६) [मूलताल

झूलि झुलावैं, रसिकबिहारी अपनी प्यारी कौं ।
अंक भरैं पुटली पै बैठे मुख लखि जीव जिवावैं ।
छुटे बार मुकतानि हार मिलि उरझि उरझि सुरझावैं ।
सरस परस बीरी खवाइ आनँदघन रस बरसावैं ॥

रामकली] (५८७) [चौताला

ब्रजपति-मंदिर मैं रंगबधाई प्रगटे हैं कुँवर कन्हाई ।
भाग - बलो जगमनि कुलमंडन मन - नैननि सुखदाई ।
स्यामसुंदर दिनहोनो लोनो जनमत मैया-कूँखि सिराई ।
आनँदघन अनेक रस बरसत जससरिता सरसाई ॥

केदारो] (५८८) [इकताला

बाजति रंगबधाई गोकुल नंद कैं ।
औरै ओप बढ़ी सुनि सजना उद भएँ ब्रजचंद कैं ।
नैन चकोर भए सुख - सीतल परस मयूख अमंद कैं ।
दुख-तम दूरि गयौ हिय-जिय तें निरखत आनँदकंद कैं ।
बंदीजन बिरुदावलि बोलत मुदित बिप्र-धुनि - छंद कैं ।
पूरब पूरब - भाग आनँदघन जसुमति नंद सुछंद कैं ॥

बिहागरो] (५८९) [इकताला

गोकुलचंद्र - चंद्रिका प्रगटी सब ब्रज लगत रवानौं ।
कोटि कोटि पूरन सारद ससि उदै भए हैं मानौं ।
उत ब्रजपति कै अति गहगह इत गहमहात बरसानौं ।
मोहमंडन बड़भाग - सिरोमनि नंदराइ बृषभानौं ।
दुहुंवनि की इकमनी रीति को कौतुक कहा बखानौं ।

[५८६] पुटली=पटुली, पाटा। [५८८] पूरब=पूर्ण होगा।

राधा मोहन नाम रसीले जीवन को फल जानौं।
उनै उनै आनँदघन बरसत जस - सायर सरसानौं ॥

ऐमनि] (५९०) [चौताला

गंगा गंगा गंगा गाय लै री मेरी बानी।
दुरित-दवागिनि दूरि करन जाको परम पावन पानी।
हरिपद्-रति मति गति अति दाइनि कीरति बिसद पुरान-बखानी।
मोद-बितरनी जगतरनी मैं जानी भागीरथ आनी ॥

रामकली] (५९१) [चौताला

सुदिन ह्वै है जाहि भेटिहौं स्याम।
तन की तपति बिपति टरि जैहै पैहै मन बिसराम।
बहुत भाँति के सुखनि सींचिहै रसमूरति ब्रजजीवन नाम।
आनँदघन घुरि घमँडि रमँड सौं हरिहैं बिरहा-घाम ॥

तथा] (५९२)

बंसी बाजि बाजि घर घालै, घरबसी सौं कोउ न बोलै चालै।
ब्रजमोहन को अधर सुधा लै देति सौति के सालै।
जाकी बनि आवै सोइ गावै रसबस करि छिन छाड़त लालै।
आनँदघन गरजै सो लेखैं परम प्रीति - पन पालै ॥

हमीर] (५९३) [चौताला

कहाँ एती बार लाई हो बिसासी मोहन।
ठौर ठौर के पाहुने प्यारे तुमहिं काहू सौं मोह न।
अबला बपुरी भोरीं बिचारी चतुर छैल गीधे नई टोहन।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर करत फिरत रस - दोहन ॥

हमीर] (५९४) [इकताला

मन मेरो फेरि लेतु है, गिरि गोधन सौं अति हेतु है।
सीतल सुंदर सुखद कंदरा हरि - राधा - सकेतु है।

५९२—पन—प्रति (लंदन)।

[५८९] इकमनी=एक मनवाली। सायर=सागर।

फूलन के फल दल जल कै गोबिंद गैयन सुख देतु है ।
आनँदघन छबि छाइ रहौ तित नित ही मो चित चेतु है ॥

पूरबी] (५९५) [इकताला

आवै आवै नंद महर को मोहि जानि याही गैल ।
रसभीजी चितवनि सौं चितहि लगाइ लेत है छैल ।
इकटक लागि रहति उत अखियाँ मेरोऊ मन भयौ अरैल ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब कौन की दबैल ॥

आसावरी] (५९६) [मूलताल

जौन देखै तौन देखौं हौं तौ देखैं ई सुख पाऊँ ।
गरब - गहीली गोरी ग्वारि जाकी पटतर कौं न पाऊँ ।
सुनि सजनी हित चित की बातैं हितू जानिकै तोहि जताऊँ ।
आनँदघन पै चातक चौंपनि तेरे भरोसैं छाऊँ ॥

टोड़ी] (५९७) [मूलताल

मेरे भाग जागे री जागे री मैं देख्यौ मोहन-दरस ।
आँखिन को सुख कहत न आवै जैसैं सब अगनि तैं
पहलेई पायौ परस सरस ।
बहुत बरुनीं-अँकवार भरे री करे सुबस अभिलाष बरस ।
आनँदघन त्यौं उनै उघरि इन्हैं अब सब सौं उपज्यौ है अरस ॥

टोड़ी] (५९८) [चौताला

देखौ देखौ जमुना की गहराई जो कछु इनहीं मैं बनि आई ।
राधामोहन-सिँगार-रस-पूरन उमग-भरन नित देखियति लहराई ।
उमँग-भरी अभिलाष-गहबरी मुरली-धुनि सुनि सुनि ठहराई ।
आनँदघन छबि अब कहिबे कौं सरसुति-मति थहराई ॥

आसावरी] (५९९) [मूलताल

राम आए ये आए अब तू लै मिलि सिय सुनि रे सठ ।
जिनको यहि भुव-मड खंड खंडनि प्रचंड जस तिनसौं रे करै कौन हठ ।

[५९७] अरस=आलस्य ।

साधु-मतो क्यौं मानै दुरमति जाको सबै सयान परयौ भठ ।
आनँदघन अद्‌भुत प्रताप - झर पजरि भुज्यौ रावन-कठ ॥

केदारो] (६००) [चौताला

फूली सरद - जुन्हाई तैसी मल्लिका बेलि ।
रजित सजित बसननि पहिरैं राधा मोहन जगमगे करत रँगमगी केलि ।
जमुना-तरगनि अति दुति बाढी चंदकिरनि झिलिमिली झेलि ।
आनँदघन दंपति रस बरसत हुलसि गरैं भुज मेलि ॥

ललित] (६०१) [मूलताल

जुवनाँ ऐसैं काम करै, अपनी अरनि अरै ।
कित को छैल छबीला मोहन मेरी डीठि परै ।
मन मिलि गयौ मिलत अँखियनि ही आई घूमि घरै ।
अपनो सो बहुतै समझाऊँ नैक न धीर धरै ।
चलत चवाव चाव सुनि लागत क्यौं हित-टेक टरै ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरै ॥

भैरो] (६०२) [इकताला चलती

सदा दया दीनबधु बिनती सुनि लीजै ।
पतितपावन करुनानिधि बिरुद - लाज कीजै ।
बिधि-अबिधि - बिचार-हीन अति मलीन मन कौ ।
जड़ता मैं जनम खोइ चेत्यौ नहिं तनकौ ।
तुम से प्रभु तुम ही हौ अपनी ओर देखौ ।
मेरी करतूति कहा लेखैं ई परेखौ ।
जगतारन पारन हौ मोहूँ पार करियै ।
नाथ को भरोसो भारी अब तौ कर पकरियै ।
असरन के सरनदायक धुर तैं सुनि आयौ ।
यहै बात सुरति राखि सब कछु बिसरायौ ।

६०१–बहुतै०–बरजत बहुतेरो (सतना) । सुनि०–चित बाढत (वही) ।

[५९९] भठ=भ्रष्ट । कठ=काष्ठ ।

चिंतामनि जानिराय कहि कहा जनाऊँ ।
बिन माँगे देहु मोहिं मोहन गुन गाऊँ ।
सोएँ हूँ जागत हौ जागेँ ढिग बैठे ।
मौन धरेँ बोलत हौ जागेँ ढिगै पैठे ।
सकल ठौर सबै समय प्रानसंगी नित के ।
आनँदघन जीवनधन दीन जननि हित के ॥

राग हमीर] (६०३) [मूलताल

हो हरि हमसौँ बतियाँ कब साँची बोलौगे ।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गूँज खोलौगे ।
अवधिनि बदि बदि आस बढावत अपनी गौँ इत उत डोलौगे ।
आनँदघन पिय बरसि परेखनि छतियाँ ही छोलौगे ॥

सोहनी ख्याल] (६०४) [मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैँ होरी ।
बहुत दिननि लाजनि भीजी भागनि फागुन है आयौ ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानि-कनौंड कौन की करिहौँ
करिहौँ रे अब तौ मन भायौ बिधना बान बनायौ ॥

टोड़ी] (६०५) [चपकताल

लालन-आवन त्यौँ ही ननदी बुलावन निपट साँकरो साहौ ।
को जानै कब बिधना बनैहै निधरक देखन - लाहौ ।
ता छिन की पछिताति मलोलनि दुख तैँ चोट बढ़्यौ दुखदाहौ ।
आनँदघन पिय परस दूभरो दरस चटपटी चाहौ ॥

गंधार] (६०६) [मूलताल

तारे गनत गनत निसि बितई ।
मनभावन-आवन की गैलहिँ हौँ जानति ज्यौँ चितई ।

६०४—बान—बनक (सतना), बनाव (वृ दा०) ।

[६०४] बान=साज, अवसर । [६०५] साहौ=दरवाजे के पार्श्व भाग के दोनौँ पत्थर, यहाँ द्वार ।

भलैं सखी तू ताहि पत्याई जाकौ हित जित तितई ।
आनँदघन त्यौं दीठि बिचारी भरि भरि आँखिन रितई ॥

ऐमनि] (६०७) [इकताला

ब्रजमोहन जू निपट बिसासो प्रीति किधौं काढत हौ बैर ।
उर तैं निकसि जाहु कै आवौ कहा लगाइ रहे औसेर ।
बानक नहीं छाँह छ्वैबे कौ घर घर माँचि रह्यौ है घैर ।
सुनि सुनि हियो सिहात साँवरे चित चढि गयौ मोह कैं मैर ॥

सारंग] (६०८) [इकताला

ब्रजरानी पठई सँवारि बहुत बिधि अपने लड़ैते लला कौं छाक ।
भूखभरयौ चढि रूख चौंप सौं लागि रह्यौ मधुमगल ताक ।
लै आई छकिहारी चाइनि बदन देखि टरी दृगनि थाक ।
आनँदघन ब्रजजीवन जैंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि-ढाक ॥

काफी] (६०९) [मूलताल

सब गोकुल-गैल-गरथारैं होरी माँचि रही ।
ब्रजमोहन मातो डोलै, अब बचिहै दुरि कहि को लै ।
घरघर तब ताक लगावै, फिरि ऐसो औसर पावै ।
साँवल छबि सहज ठगौरी, मन ढरकि लगावै ढौरी ।
छलछंद सुघातनि ठानै, हथचलई कौन बखानै ।
या बगर झमेल मचावै, अठपहरा ऊधम भावै ।
मोसौं मन ही मन बीध्यौ, फागुन मिस गौं गहि गीध्यौ ।
कैसैं कै वासौं बचियै, यह फागु मची सो मचियै ।
वहि अति ही आतुर पाऊँ, अपनो सो लै ठहराऊँ ।
मन मेरोऊ रिझवारै, चपरैं पै को निरवारै ।
कौ लौं गहि याकौं रोकौं, सुनि सजनी बूझति तोकौं ।
मन नैन बस्यौ वह जैसैं, हा हा कहि तू ही तैसैं ।
वह सबको हियो घुमावै, रीझनि सौं भीजि भिजावै ।

[६०८] छाक=कलेवा । मधु०=एक सखा । छकिहारी=छाक ले जाने-वाली । ढाक=पलाश ।

अंतर बाहिर खुलि खेलै, भोवै भरि नेह फुलेलै ।
ग्रासौं कहि क्यौं नहिं रचियै, लाजहि लै कौ लौं सचियै ।
होरी को लाहौ लैहौं, फगुवा लै गुलचा दैहौं ।
आनँदघन भले भिजैहौं, रीझनि भरि भैंटि खिजैहौं ॥

टोड़ी] (६१०) [चौताल

जब जब निकसत मोहन द्वार, मेरैं लै आवत पहुँचाइ देत नैन ।
बगर बुहारथौई करत डीठि-भर कहे न परत ये चौंप चाव चैन ।
दूरथौ तैं समीप को सुख लेत फिरि क्यौं अलग ह्वै लगत मोहि दुखदैन ।
इकटक चितवत बितवत रितवत उघरि घमँडि आनँदघन रसलन ॥

देवगिरी] (६११) [मूलताल

बनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरजन-डरनि कहा घर घिरिहौं ।
ब्रजमोहन सौं सनमुख ह्वै ह्वै भावभरी भटभेरनि भिरिहौं ।
अब तौ ऐसियै जिय आई प्रीतम के पन तैं क्यौं किरिहौं ।
आनँदघन पिय की औसेरनि कौ लौं इन अँसुवन झर झिरिहौं ॥

राग बिभास] (६१२) [इकताला

खेलि कितहूँ आए हौ हरि होरी सी मनमानि ये नई ।
निसि की जगनि गुलाल - भरे दृग खरकनि मोहिं भई ।
सौंधो रच्यौ भई नकवानी तुम भिजए हौं सूखि गई ।
नखछत खुले छबीली छतियाँ मो हिय हाय हई ।
फगुवा ताहि मोहिं चकचोढौ यह रसरीति ठई ।
आनँदघन इत कित झूमत हौ सरकौ नैंकु दई ॥

रामकली] (६१३) [चरचरी

कहा मेरे गौंहन लागे हौ देत नहीं छिन चैन ।
तुम अति आतुर डोलत हौ इत मैन महा दुखदैन ।
न्यौज लगौ यह लाज निगोड़ी देखन कौं तरसत हैं नैन ।
आनँदघन अब उघरि नचौंगी और उपाव बनै न ॥

[६११] किरिहौं=विमुख होऊँगी । [६१२] चकचोढौ=चकचौंध । सरकौ=हटो, दूर होओ ।

केदारो] (६१४) [चंपक

संग लगाएँई डोलै, मुरली के जो रति।
कहा करैं बपुरीं ब्रज-अबला गरब-गाँठि गहि खोलै।
धुनि सुनि औरै होति थिर चर गति भोरि बिचारिनि की मति कोलै।
आनँदघन हूँ रीझनि भिजए क्यौं न बड़े बोल बोलै॥

रामकली] (६१५) [चौताला आड़

अब लै राखियै ब्रज माहिँ।
स्यामसुंदर सुंदर सुहृद सुनि बलि बिलम करियै नाहिँ।
बेलि ता द्रुम वे सरोवर निरखि नैन सिराहिँ।
गोपी गोप खरिक गोधन देखि सब दुख जाहिँ।
दूध दधि माखन सुगोरस पोष प्रान अघाहिँ।
बहुत दिन के दूबरे ये कहाँ लौं बिललाहिँ।
चैन ही की चुहल चहुँ घाँ रावरे गुन गाहिँ।
मोदघन बरसत सदाई इत अधिक अकुलहिँ॥

सारंग] (६१६) [इकताला

जब सुधि आवत जमुना - तीर।
चलति सलति काती लौं छाती दुसह दुहेली पीर।
राधा-बिरह - बेदना - ब्याकुल जितहि कूकतौ जाय।
तेई तहाँ मिलाय ताहि तब करते हाय सहाय।
गायनि जल देते सुख लेते मुरली मधुर बजाय।
कहियै कहा अधम गति ऊधौ परे कहाँ सब आय।
कब धौं फिरि ह्वैहै वैसो दिन चित चूरत है चाय।
बिष सो लगत राजसुख इत को हित आनँदघन छाय॥

पंचम] (६१७) [झपताल

गोपी गुपाल मिलि खेलत सरस फागु गोकुल
सुगाँव ग्वैंड़े गरयारैं निकसि।

[६१४] कोलै=काढ़ लेती है। [६१५] मोद०=आनंदघन।

कछु कहि न परति अति उमँग मन दृगनि की चौंपनि
चुहल जु अनुपम रूप ब्रज रह्यौ लसि ।
एक मोहनहि अगनित तरुनि तकति प्रथमहि डीठि
अँकवारि मैं भरति कसि ।
छैल खिलवार दच्छिन सुलच्छन भर्यौ सबनि त्यौं
सनमुख होत हौंसनि हुलसि ।
बहुरि झुरमट मचनि रचनि चाँचरनि को चलनि
चौंकनि झमकि झिझकनि परसि ।
खेल के रग नित रग-बढ़वार अति कोटिक मनोज-रति-
ओज दुरि दबत खसि ।
कचनि की फैल डहडहे बदन रँगमगे बहुत निसि बीच
प्रगटत निकरि सरद-ससि ।
जोति की जगनि जगमगनि जानत नैन गौर साँवल
ओप संगम पर्यौ दरसि ।
धूँधरि गुलाल की निपट चढि बढि गई रसनि रँगरेल
फैली चहूँ दिसनि घसि ।
अंग परिमलनि मिलि बिबिध सौंधे ढरकि पवन को
गवन उरझत जिहिं सुबास बसि ।
गारि गावैं कुल कला-कौतुकनि ढोल की ढनक डफ-
गरज स्रवननि सरसि ।
पिचकरनि छुटनि बहुरंग रस की लुटनि पुहुप-गेंदुक
डटनि चुटनि लै दाव हँसि ।
औसर अनूप को रूप कहत न बनै अद्भुत बिनोद बानी
थकित गुननि गसि ।
रीझ भीजे रहत सदाय सुख लहत लाल ललना ललित
आनँदघन बरसि ॥

राग बिलावल] (६१८) [कपोतताल

दिनदेव दिवा-कर दिवाकर दीनदयाल ।
परमधाम पुन्योपेत पुनीत परिपूरन प्रताप तूरन चूरन-भ्रम-तम-जाल ।

बंदनीय बिभु बिग्यान - प्रकासक बिकासक सुहृद हृदय
बिमल कमल - माल।
आनँदघन उर-उदयाचल मैं अब उपजैयै हरि अनुराग अमोल लाल ॥

भैरो] (६१९) [झपताल

हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण हा हा ।
दीजियै मोहि निज दरस को लाहा ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण कैसैं ।
मुकट बनमाल मुरली धरे जैसैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आछैं ।
राधिका सनमुखे छैल तन काछैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण प्यारे ।
सुघर सुंदर सरस रूप - उजियारे ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हरौ हिय - पीरै ।
धीर गति बिन लखें क्यौं धरौं धीरै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आवौ ।
मधुर मूरति दिखै आँखिन सिरावौ ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण क्यौं जू ।
आस लाग्यौ जियौं ताकि तुम त्यौं जू ।
हा कृष्ण हा कृष्ण ब्याकुल महा हौं ।
जानमनि रावरे बरनौं कहा हौं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण कोमल हियो है ।
दीन पै ऐसा कठिन क्यौं कियो है ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सुनियै पुकारै ।
जीवन - अधार हौ लागौ गुहारै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण बिरहा सतावै ।
दरस - रस बरसियै महा तन तावै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सकल सुखस्वामी ।

६१८—दिवाकर—दिव्य रूप (सतना) । विमल-कमला (वही) ।

नाम की लाज है कृपानिधि नामी।
हा कृष्ण हा कृष्ण आसा तिहारी।
गिरिधर सुहृद सुखद सुंदर बिहारी।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण गाऊँ।
आनँदघन प्रान - चातक जिवाऊँ॥

हमीर] (६२०) [चपक

कहियै कहा हरि हिय की आरति जु कछू बढी राधे ताकि तोहि।
रूपनबेली निहारि लेहि नैक जिन अँखियनि आई इनहि जोहि।
जब मिलिहै तब करिहै कहा धौं कबहूँ वह घरी मिलिहै मोहि।
आनँदघन अभिलाष सजल दृग हा हा कहि पठई टोहि॥

बिभास] (६२१) [इकताला

परख्यौ करत मुहर लौं मिहरियनि खोटौ खरौ महर को कन्हैया।
ताहू मैं फिरि होरी माची अब कैसैं बचियैगौ दैया।
चौचँद की चाचरैं मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघनहि कहूँ जौ भिजवै बजै फागु मैं बोधि बधैया॥

गंधार ख्याल] (६२२) [मूलताल

ब्रजमोहन प्यारे आइयै आइयै।
अजू तुम अजू तुम भले बने हौ और दिननि तैं
उजियारे छबि-मतवारे।
जावक-तिलक छुटी अलक उनींदे नैना घूम घुमारे,
आनँदघन घूम घुमारे॥

टोड़ी] (६२३) [चंपक

कहा मन मिलाएँ होत अनमिल सौं जाको सहज
चचल परयौ है सुभाइ।
दिन दस गौं लगि लाहौ लेत बपुरी अबलानि भुराइ।

६२१–मुहर–महर (सतना)। बजै–बनै (लदन)।

[६२१] बजै० = फाग में मिलकर बधाई बजने लगे। खूब बदनामी हो।

करत फिरत बिसास बधुवनि के ब्रजमोहन कहूँ मोह्यौ न होइ ।
कहूँ उघरि कहूँ घमँड आनँदघन रचत नए नए दाइ ॥

धनासिरी] (६२४) [इकताला

क्यौं नकवानी करत हौ अनमिलैं होरी खेलौ ।
बेसम्हार कित करत मोहि इत उत भावती भरि भुजनि सकेलौ ।
रजनी-रँग-भीजे तुम आए हरद रंग मो अंगनि रेलौ ।
सौहैं न होत गुलाल-भरे दृग खरकनि मो पुतरिन गहि मेलौ ।
नखछत-खुलनि पीर मनियत है अचरज झकझोरनि रस झेलौ ।
आनँदघन पिय नए खिलारी झूमि झूमि छल-बलनि झमेलौ ॥

रामकली] (६२५) [चरचरी

सलोने सोहन प्यारे ब्रजमोहन उज्यारे ।
स्याम नवल नेही रसिक अँखियन तारे ।
रैनि-जगे भले लगे नैन घुमारे रँगमगे डगमगे पधारे, छबि-मतवारे ।
जावक - तिलक बिथुरीं अलक सरस सँवारे ।
आनँदघन उनै उनै भाग उघारे ॥

आसावरी] (६२६) [मूलताल

साडे रा हाल न बुझदा है गुज्झी गल्लाँ कैनूं आखि सुनावाँ ।
ब्रजमोहन दी बेपरवाहियाँ महरम किसै भी न पावाँ ।
दरद दिवानियाँ खरी निमानियाँ कोवाँ दिल परचावाँ ।
आनँदघन बेमिहराँ दी हाँसी असी वो रो रो झड़ लावाँ ॥

कनरी] (६२७) [मूलताल

मुरली बन मैं बाजै है ।
धुनि सुनि रह्यौ न परत घर ननदी को करै काजै है ।
थाकी गति मति चलै ठौर तैं धीरज भाजै है ।
आनँदघन मोहन - मुख लागी क्यौं नहि गाजै है ॥

(६२८)

गोपीनायक गोपीबल्लभ गोपीजीवन गोपीप्रान ।
गोपीकिंकर गोपीमोहन गोपीमंडन गोपीमान ।

गोपी-सरबस गोपी-मगल गोपी-मंडल-केलि-निधान ।
गोपीनागर रति-सुख-सागर गोपी आनँदघन रसदान ॥

टोड़ी] (६२९) [चौताला

आगम रितुराज के रतिराज - रग तेरे अंगनि झलक्यौ ।
रोमराजी पर अति छबि राजी हियरा हुलासनि ललक्यौ ।
मुख की ऊठ औरई कछु अंतर को रस बाहिर छलक्यौ ।
आनँदघन जीवनधनि सुनि राधे सौतिन को मद दलक्यौ ॥

भैरव] (६३०) [यात्राताल

आए हौ जू आए हौ मेरे मन भाए हौ ।
स्याम उज्यारे अँखियनि तारे भागनि जागि जगाए हौ ।
या छबि पर न्यौछावरि छिन छिन प्राननि के धन पाए हौ ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे नखसिख रगनि छाए हौ ॥

आसावरी] (६३१) [चौताला

चोँपनि घुरि बरसै महादानी नदराय ।
सरस बरस - गाँठ ब्रजमोहन की फूल्यौ अग न समाय ।
सबकोँ सब कछु भरि देत अघाय ।
मैया को उछाह कहा कहियै लला को सिँगारति लेति बलाय ।
हौँसनि हुलसि चौक चाँदनी रचि लै बैठारति बहु धन
बारति मगल गीत गवाय ।
जोवौ कोरि बरीस असीसत द्विज बंदीजन बोलत बिरुदाय ।
गोकुल परम कुलाहल की ध्वनि जित तित सुनियति
आनँदघन रह्यौ छाय ॥

ऐमनि] (६३२) [यात्राताल

साँवरे ब्रजमोहन मोही रह्यौ न परत मोहन मूरति
देखे बिन घरी पल हेली ।
कहा करौँ कैसैँ मन समझाऊँ ब्याकुल जियरा धीर न
धरत लागियै रहति तबेली ।

[६२९] रतिराज=काम । रोम०=रोमावली । ऊठ=दीप्ति ।

सुधि बुधि बेनु बजाय हरी सब परी रहति घर परबस
कासौं कहौं यह दसा दुहेली ।
आनँदघन हँसि चितवति कौंधनि प्रानपपीहनि सीस
ठगौरी है मेली ॥

टोडी] (६३३) [इकताल

डोल की डुलनि मैं बिराजै झुलनि हार-बारनि की मोतिन
सिंगार अपार ओप लसै गोरे साँवरे अंग ।
अतुल रूप-जोबन की तुलनि मैं झलकत नए नए रंग ।
सरस फाग खेलि खेलि झेलि सकल सुख रीझे भीजे रुचि-तरग ।
जमुना-तीर कुसुमित बृंदाबन नित नित ही आनँदघन
बरसत सखि-समाज लिये सग ।।

टोडी] (६३४) [चौताला

जा पै तुम अपने ढार ढरौ हौ कान्ह प्यारे
ताहि चाहौ सु करौ ।
रोकि रहत मन नैन गैल छैल छतियाँ आनि अरौ ।
सोवत जागत कछु न ब्यौरि परै मोहन गुन लै सुभर भरौ ।
इतने पै आनँदघन पिय उनए उघरे नहिँ जानि परौ
पराए मरम हरौ ॥

केदारो] (६३५) [चौताला

बूँदैं थोरी थोरी थोरी बहुत नीकी लागैं ।
नवजोबन-मदमाते दंपति सरस परस - रस पागैं ।
गरबाहीँ दियेँ झूलत फूलत मुक्ताभरन तिलौनियाँ बागैं ।
आनँदघन अभिलाषनि घमँडे मधुर मधुर सुर राग ॥

सारग] (६३६) [इकताला

जब तैं मन स्याम को धाम भयौ ।
लोकलाज - बस त्रास को सब ही सोच गयौ ।

[६३२] तबेली=तालाबेली, छटपटाहट । [६३५] तिलौनियाँ=सुगंधित । बागैं=जामा ।

देखतहीं ब्रजमोहन - मूरति रंग - तरंग - रयौ ।
डीठि मिले घुरि मिल्यौ दूरि तैं सगम - स्वाद लयौ ।
अब कछु कहि न परति गति याकी छिन छिन उमँग-छयौ ।
उनयौ रहत सरस आनँदघन नित ही चाव नयौ ॥

अलहिया बिलावल] (६३७) [इकताला

नित बिहार बृंदावन राधा-मोहन करत रहैं ।
सहज रँगीले छैल छबीले हित - चित - लाह लहैं ।
नित ब्रज नित ब्यवहार नित नए तन मन पननि बहैं ।
नित ही हित झूमैं आनँदघन जमुना - तीर गहैं ॥

कनरी] (६३८) [मूल

साँवलिया मेरे मन को लागू नित इत आवै ।
चितवनि चौंप जनावै भावै बंसी - टेर सुनावै ।
रीझ-लाज-बरबस यह जियरा कल नहीं पलकौ पावै ।
हित चित की झूमनि आनँदघन कौ लौं कोउ दुरावै ॥

केदारो] (६३९) [मूल

फूली जोन्ह सुहाई मधुरितु की बनमाली बिहरत रास ।
मधुर मालती के सिंगार सजि पहिरि बिसद बस-बास ।
साँवल गौर अनूप रूप गुन मोहन गति भौंहन बिलास ।
आनँदघन मुरली-धुनि घमँडनि ताननि झर अनयास ॥

बिभास] (६४०) [चौताला

अचानक मूँदी री अँखियाँ औटपाई अछन
अछन पाछे ह्वै आय ।
हौं जमुना के तीर इकौसैं न्हाय बसन पलटाय सुखावति
केस कहाँ तैं बैरी तकत हो दाय ।
जौ कोऊ कहूँ देखि पावतो तौ कहा करती हाय ।
आनँदघन अनबादनि उनयौई देखियै इन बातनि ज्यौं अनखाय ॥

६३९—बस–बर (सतना) । गति०—हास मोहन (वही) ।

[६३८] लागू = प्रेमी । [६३९] बस = सुवासित ।

देवगिरी] (६४६) [मूलताल

कैसैं मिलन बनै गोपी को।
रातिद्यौस सोचन ही मरियै क्यौं हूँ दुख न दबत या ही को।
स्याम-रूप रीझीं ये अँखियाँ और कछू लागत नहिं नीको।
चातक-रट लागी सुनि सजनी आनँदघन जीवन है जी को॥

टोड़ी] (६४७) [मूलताल

बेगि लै आव री लालबिहारी प्रानपिया कौं।
कलमलात उनके देखन कौं राखि लै बिकल जिया कौं।
हितू जानि कै तोसौं कहति हौं चेरी मानि आधीन तिया कौं।
आनँदघनहि मिले सियरो करि बिरहा-बरत हिया कौं॥

तथा] (६४८)

आवीं ओ तू आवीं जान मैंडरी गलियाँ।
ब्रजमोहन तैंडे दरस पियासियाँ पैंडरा उडोकाँ खलियाँ॥

कानरो बागेसुरी] (६४९) [चपक

अहो प्यारे हम सौं प्रीति करि करि अति चाड़नि
काहे कौं अंतर-पट राख्यौ।
कपटनि की यह रीति सदा की कहूँ न साँच रस चाख्यौ।
भँवर-भाव जित तित डोलत हौ छिन छिन नयो
सवाद अभिलाख्यौ।
आनँदघन कहूँ घमँड कहूँ उघर यह दुख परत न भाख्यौ॥

गौरी] (६५०) [चपक

ललन न आए अबार भई।
मो बिरहिनि की सुरति नवीनी कहूँ नई पहिचानि ठई।
दिन चारक तैं निपट निठुर भए पहिली चिन्हारि बिसारि दई।
अब ऐसी जिय आवति आनँदघन पिय सौं करिहौं उघरि खई॥

[६४८] पैंडरा०=मार्ग में खड़ी प्रतीक्षा कर रही हूँ। [६४९] चाड़=उमंग। [६५०] खई=झगड़ा।

हिंडोल] (६५१) [चरचरी

आजु मोहि तुम्हैं बन्यौ खेल सरस बसंत को ।
भागनि फागुन के आगम मनभायौ औसर आयौ मिलि
कामिनि कामिनि-कंत को ।
गहिरे रंगनि भीजि भिजैहौं लैहौं सुख गुन-रूपवंत को ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे बरसैगौ रस परम तंत को ॥

बिभास] (६५२) [इकताला

राधा मोहन छैल छबीली बनक सौं दोऊ मदमाते होरी के ।
फागुन ओट उघरि आए गुन-हित चोराचोरी के ।
सरस खिलार चौंप भरि खेलत रूप बैस जोरी के ।
आनँदघन बरसत रस-रंगनि झकझोरा-झोरी के ॥

रामकली] (६५३) [जात्राताल

राधा-रंग-बिलासी, कान्ह ।
गोकुलजीवन प्रान-छबीलो गिरि-गोबरधन-बासी ।
जमुना-तीर-बिहारी मोहन कुंज-कुटीर-निवासी ।
आनँदघन ब्रजमंडल-मंडन बट-संकेत-उपासी ॥

रामकली] (६५४) [चपकताल

कान्ह की बँसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग ।
ब्रजमोहन याके रँग राचे नित ही नयो अनुराग ।
बस कै रस दै लै अधरासव मन मान्यौ फगुवा सुहाग ।
आनँदघन पिय भिजए रिझए धनि धनि याको भाग ॥

तथा] (६५५)

मुरली गुपाल की बन बाजै ।
आछीताननि सौं रस भीजि रिझवति भिजवति लाजै ।
याकी धुनि सुनि सब सुधि बिसरै कौन करै गृहकाजै ।
आनँदघन पिय प्रेमपन-पगी याहि सबै कछु छाजै ।

[६५१] तंत=तत्त्व । [६५३] उपासी=उपासक ।

मोहन-अधर महा मादक रस पीवति क्यौं नहिं गाजै ।
याको भाग कहत नहिं आवै हरि-कर-कमलनि राजै ॥

राग बिहागरो] (६५६) [जात्राताल

घोष-नृपति नंदसदन बजति है बधाई ।
प्रगट्यौ कुलमंडन ब्रजमोहन सुखदाई ।
गहगह सौं सुनियत धुनि लगति अति सुहाई ।
ढोल - ढनक झाँझ - झनक गोमुख सहनाई ।
नरनारी नाचति मिलि आनँद अधिकाई ।
बोलत हैं बंदीजन बिरुद की बडाई ।
हरद दही भीजि रहे फागु सी मचाई ।
दूध माखन गोरस की सरिता उमगाई ।
धर अंबर औरै कछु सोभा सरसाई ।
पवन परस प्राननि कौं बहुत बिधि सहाई ।
गहमह अति माचि रही भई सबनि भाई ।
घरघर ब्रजमंडल मैं मंगलनिधि आई ।
कहि न परति जसुमति के भाग की निकाई ।
कृस्नचंद उदै भयौ कूख सुख - सिराई ।
सफल भयौ ब्रज सुबास बिधना आस पुजाई ।
अवसर की फूल फैल चहूँ ओर पाई ।
देखत सुर बनिता मिलि पुहप - झरी लाई ।
थिर चर कैं मोह बढयौ हित की अगराई ।
ब्रजपति के मन की उमग अति उदारताई ।
धेनु धन अनेक दियौ कीरति जग गाई ।
जसुदा को ललित ललन चिर जियौ कन्हाई ।
आनँदघन ब्रजजीवन बिलसौ ठकुराई ॥

बिलावल] (६५७) [मूलताल

नंद तिहारो लाल जियौ, हो ।
बड़ी बैस बडभागनि बिधना ऐसो पूत दियौ ।

[६५६] गोमुख=नरसिंहा ।

ब्रजरानी की कूख सिरानी ब्रज सब सफल कियौ।
भयौ हमारे मन को चीत्यौ हुलस्यौ सजन हियौ।
बहुत भाँति याके सुख देखौ तुमसौं कौन बियौ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन खेलौ खाहु पियौ॥

सारग] (६५८) [मूल

बधावनो नंद के भवन भयौ।
ब्रजमोहन सो पूत बुढ़ापैं बिधना याहि दयौ।
जसुमति रानी कूख सिरानी नित हित - लाड़ नयौ।
वह सुख-सोभा सरसौ बरसौ आनँदघन उनयौ॥

जैतश्री] (६५९) [मूलताल

बृषभान - भवन मैं मगल की निधि है, हो।
कीरति-कूख-मँजूष प्रगट भई सुख-सोभा-सिधि-है हो।
इनको भाग कहा कहि बानौं कछुक कह्यौ बिधि है हो।
आनँदघन रावलि हित घमँड्यौ सरसत रस-रिधि है हो॥

ऐमनि] (६६०) [मूल

लाडली राधा की सरस बधाई गाऊँ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठी भास मल्हाऊँ।
भागभरी के भाव चाव सौं नित सोहिले मनाऊँ।
आनँदघन रस बरस दरस हित याही आँगन छाऊँ
यह न्यौछावरि हौं हीं पाऊँ॥

बिभास] (६६१) [इकताला

कीरति भई जगत-उजियारी भागभरी राधा के जाएँ।
भाग-उदै बृषभानु पिता को जग जान्यौ मंगलमनि आएँ।
औरै ओप बढ़ी ब्रजमंडल नरनारी रँगमगे बधाएँ।

६५७—याके०—के सुख देख्यौ (सतना)। खाहु—खोंड (वही)। ६५६—मँजूष—तूखि (सतना), मयूष (वृंदा०)। रिधि—निधि (वही)।

[६५७] बैस=वयस्, उम्र। बियौ=दूसरा। [६५९] रिधि=ऋद्धि, समृद्धि। [६६०] भास=वाणी।

गौड़] (६७१) [इकताला

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई बोलत मधुर
पिक चातक और माते मुरवा ।
स्याम घन मैं चपला-चमकनि चहूँ ओर छूटे छबीले धुरवा ।
चलि राधे बृंदाबन बिहरन औसर बन्यौ है मनोरथ-पुरवा ।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि
बुलावत लै रीझनि भीजे सुरवा ॥

ऐमनि] (६७२) [मूल

राधा-मोहन को सुख सोचौ ताहि गाय गाय जीजै ।
ब्रज बृंदाबन बसत रसत अपने चायनि भायनि नितबिहार मैं मन दीजै।
परम प्रेम को सिंधु अमित अति तिनहीं को हित बोहित कीजै ।
आनँदघन रसरासि पाय कै क्यौं जग - छीलर छीजै ॥

ऐमनि] (६७३) [मूल

रंग रह्यौ है निपट ही लाल सौं होरी खेली ।
चौंपनि रची रहस रुचि-चाँचरि जोबन-रूप-नवेली ।
बस करि लियौ भावतो फगुवा अंगनि अति रति-रंगनि भेली ।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस की रासि सकेली ॥

टोड़ी] (६७४) [इकताला

मेरे मन नैननि के भाए, राधामोहन छैल सुहाए ।
होरी-खेल के बसन बनाए, अंग उमंग रंग सरसाए ।
नीके लगत कहा ए, चौंपनि रचि रुचि-राग जमाए ।
परम अनूप रूप दरसाए, मादक धुनि मति-प्रान छकाए ।
जमुनातीर आनँदघन छाए, सरस बिलास पुंज बरसाए,
ऐसेई लखौं सदा ए ॥

तथा] (६७५)

मोहि तुम ही तुम दीसत हौ, स्याम उजियारे नैननि के तारे ।
इतने पै जौ न दीसौ तौ प्रान परेखनि पीसत हौ ।

[६७१] पुरवा=पूर्ण करनेवाला । [६७२] छीलर=तलैया । छीजै=छूऊँ ।

तुमहीँ जु दीसि परी सोई देखौ पनहिँ न खीसत हौ ।
आनँदघन पिय न्यौति पपीहनि प्यास परीसत हौ ॥

बिभास] (६७६) [चौताला

भुज भरि भरि गाढ़ैं लगाई री सु तू छतियाँ प्यारैं ।
आनन पियराई धरक हियराई लडाई बहुत भँतियाँ प्यारैं ।
पीक कपोल सुहाग छाय जगी लगियै आवति आखैं
मदमतियाँ प्यारैं ।
अंग अग ऊठ अनूठो भई आनँदघन घुरि घुरि ढुरि
ढुरि भिजई रिझई सब रतियाँ प्यारैं ॥

बिहागरो] (६७७) [इकताता

भरोसो रावरो हमै ।
पिय ब्रजचंद कौन धौं टारे तुम बिन ताप - तमै ।
हौ हरि दुख हरिहो करि सुख ज्यौं दृग रूप रमै ।
आनँद-अमी - बरस सुदरस दै सींच्यौ स्याम समै ॥

कानरो] (६७८) [इकताला

आवन दै होरी धौरी रहि ।
कहा नचावति मोहन अवगरी लैहौं दाव भावतो गहि ।
बहुत रही बचि रचिहै तब जब कोऊ कछु सकत नहिं कहि ।
आनँदघन घुरि भलै भिजैहौं अब तौ रहत मसोसनि सहि ॥

सुद्ध बिलावल] (६७९) [ताल गीत

नंदनंदन-चरन चुंबन करि भलैं मन मेरे ।
सदा बृंदावन - बिलासी तरनिजा - तट नेरे ।
राधिका संग रासमडन ज्योति - मंडल घेरे ।
मोद परम पयोद चातक प्रानजीवन हेरे ॥

[६७५] खीसत=नष्ट करते हो । परीसत=परोसते हो । [६७६] लडाई=प्यार की हुई । ऊठ=छटा । [६७८] अवगरी=बुद्धिमती ।

पूरबी] (६८०) [चपक

मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखे बिन न रहति ।
सब मिलि देति बहुत बिधि सिख सखी ये अमैंड तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसें करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भीजि रीझि रहीं औसेरनि जल बहति दहति ॥

(६८१) [आड़ चौताला

ब्रज को बिरह बरनै कौन ।
टरत बिचार बिचारि हिय तैं गहति बानी मौन ।
स्याम बिछुरे कहाँ कैसें ह्वै रह्यौ सब स्याम ।
बिछुरि मिलि मिलि बिछुरि जीवत मौन टेरत नाम ।
यह सँजोग बियोग ब्यापनि बचन क्यौंऽब समाय ।
मन कहाँ या रस - परस को सुनत जड ह्वै जाय ।
ते लहैं ढूँढैं तेई सोई सहैं यह घूम ।
हाय ब्रज - ब्यौहार - गति अति मतिहि बितुनति धूम ।
लाल ब्रजमोहन छबीलो रैनिदिन दृग-संग ।
घमँडि घुरि घुरि उघरि बरसत चौंप-चेटक-रंग ।
रमन ब्रजबन गिरि जमुनतट मचि रह्यौ यह खेल ।
भावसर बढ़वार आनँदघन महा रसरेल ॥

धनासिरी] (६८२) [मूलताल

कछु न सुधि परति हिरानी हाय ।
ब्रजमोहन को बिरह सखीरी जा बिध ब्यापत आय ।
मेरी कहा रौर ब्रज माची जहाँ जहाँ कान्ह - पुकार ।
आनँदघन झर लग्यौ सदाई देत न नैन उघार ॥

सारंग] (६८३) [इकताला

जमुनातीर की बतियाँ ।
ब्रजमोहन के संग रंग मैं सरद - समै रतियाँ ।

[६८१] घूम=नशा, चक्कर । बितुनति=रेशा रेशा पृथक कर देती है । धूम=तेजी से ।

सरकति नहीँ सरक हियरे तेँ हूक उठति छतियाँ।
आनँदघन पिय प्यासनि टपकति बरुनी वैलतियाँ ॥

बिहागरो] (६८४) [इकताला

रंगमहल मैँ ललन बिहारी।
बैठे अति उमग रति-बाढ़े ढिग लै प्रानपियारी।
सेज-बसनि छबि बसो हिये मैँ लटकि रही उजियारी।
आनँदघन बृंदाबन रस-झर जमुन-पुलिन सरसारी ॥

टोड़ी] (६८५) [चौताला

उमँडि उमँडि घुमँडि घुमँडि घुरि घुरि ढुरि ढुरि खेलत
राधा-मोहन रस-फागु रवानी।
बिकसि बिकसि निकसि अपने अपने झुंडनि तेँ झूमत झुकत
झपटि लपटि बातनि घातनि कहत गहत बनक बनी मनमानी।
मचत रचत पचत बचत नचत लचत घिरत भिरत मोरत
झकझोरत करि ऐँचातानी।
आनँदघन भिजवत रिझवत भँजत रीझत रस लेत देत मन-
मैननि सुखदानी ॥

देसी] (६८६) [इकताला

देखौ हो राधा को भाग फाग याही बनि आई है।
ब्रजमोहन ब्रजराज लाड़िलो भीजि रह्यौ याकेँ अनुराग।
पूरयौ करत सदा मुरली मैँ अरु मुखहू याही के राग।
यासौँ रचि ब्रज सबै रचायौ चटक चढ़यौ पूरन पन-पाग।
याके अंग-रंग की राचनि नखसिख लौँ सनि रही सुहाग।
कही न परति याहू के हिय की नित नित निपट नवेली लाग।
खेलन कौँ पायौ मनभायौ सुंदर बृंदाबन सो बाग।
हित-चाँचरि घमँडनि आनँदघन नित इतै फबी इन्हैँ यह फाग ॥

धनासिरी] (६८७) [चौताला

रसना गुपाल के गुन उरझी।
बहुत भाँति छलछंद-बद बकवाद-फंद तेँ सुरझी।

ब्रजमोहन-रस-चसकैं बीधी हिलग-जाल गसि गुरभी ।
आनँदघन रसपान - चातकी आन-कथा-रुचि मुरभी ॥

टोड़ी] (६८८) [मूलताल

ललित लतानि हिंडोरैं भूलत राधा-मोहन रीभनि भीजे ।
रूप अनूप गौर साँवल मिलि परसत तरसत सरसत बरसत
दरसत पुलक-पसीजे ।
जमुना-तीर कुंज मंजुल मैं अति रति-बाढ़े अधिक अधीजे ।
बृंदाबन आनँदघन घमँडनि पूरन - प्रीति - पतीजे ॥

(६८९)

हगनि मनोरथदायक रथ चढ़ि निकसे मोहन स्याम ।
ब्रजजुवराज बिराजित अतिहीं पहिरैं मोतिन - दाम ।
सुरँग लपेटा लेत लपेटैं अलक - पेच परि सोहैं
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि चाहत ही मन मोहैं ।
केलि - कमल सूँध्यौ मो घाँ तकि मुसके छैल बिहारी ।
रूपनिकाई निरखि बिकाई हौंहू चकित निहारी ।
सुबल सारथी अधिक पियारो बदन-चंद्रमा नीको ।
ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिलौ जीको ।
गोकुल चारु चौहटैं चौंपनि देखनि कौं सब भूमैं ।
मादक रूप छके नरनारी बिबस रीभ-बस घूमैं ।
कौतुक हेत भावतो नागर डोलै अपनैं चायनि ।
बगर गरथारैं ग्वैंडैं या बिधि रचत रँगीले दायनि ।
पुहप - भरा जितहीं तित लागै सबकौं सब बिधि भावै ।
जसुदाजीवन नंदलला दिन आनँदघन बरसावै ॥

सकराभरन] (६९०) [इकताला

देख्यौ देख्यौ राधा को बृंदाबन देख्यौ ।
जीवन जनम करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ ।

[६८८] अधीजे=अधैर्य, अधीर । पतीजे=विश्वस्त । [६८९] दाम=माला । सुरँग=लाल । लपेटा=पगड़ी । परि=अधिक । घाँ=ओर । सुबल=एक सखा । जीको=जिसका । दिन=प्रतिदिन ।

जमुना के तट सजल स्यामघन सब दिन सहज सुहायौ ।
दंपति सुख - सपति निज मंदिर हित-मंडप नित छायौ ।
सब तें ऊँचो लसत पुहमि पै दीसत दूरि दुरायौ ।
अमल अखडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ ।
मोहन महा मदनमोहन को बानक बरनौं कैसें ।
दरस्यौ बरस्यौ करौ सदाई आनँदघन यह ऐसें ।।

तथा] (६९१)

सलोने साँवरे हाँ मोह्यो मुरली मधुर बजाय ।
जमुना-जल कौं जाति हो मेरी आँखिनि लाग्यौ आय ।
नैननि मैं ललचानि सौं दियौ मो त्यौं उन मुसिकाय ।
ता छिन की गति क्यौं कहौं मेरो अजहूँ हियो घुमाय ।
देख्यौई भावै सखी बिन देखें ज्यौं अकुलाय ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं सूझो यहै बनाय ।।

सारग] (६९२) [इकताला

जौ कोऊ बृंदाबन बसि जानै ।
सब कछु तज भजै हरि-राधा मन पूरन पन ठानै ।
छक्यौ रहै भरि भाव निरंतर करि लीला-रस पानै ।
रसिक-सग रुचि-रंग रचै नित प्रीति-रीति उर आनै ।
चकित नैन चाहै द्रुम-बेली दंपति-हित पहिचानै ।
घूमत फिरै तीर जमुना कें निधरक ह्वै गुन गानै ।
आस-वास रज ही मैं राखै स्रम न करै भ्रम भानै ।
आनँदघन रस भीजि रीझ सौं जनम-सफलता मानै ।।

बिहागरो] (६९३) [मूलताल

मेरो मन मोहन मान्यौ है ।
देख्यौ करौं साँवरी मूरति यह पन ठान्यौ है ।
मुरली तान-बान हिय बेध्यौ कमि करि तान्यौ है ।
रीझनि घमँडि रह्यौ आनँदघन मैं हूँ जान्यौ है ।।

[६९१] घुमाय=चक्कर खा रहा है। बनाय=भली भाँति ।

गौरी चैती] (६९४) [मूलताल

को पावै मेरे मन की पीर ।
सही न परति कछु कही न परति है कैसें भरौं कहा करौं बीर ।
साँवरें बरन मनहरन छबीलो डीठि परयौ जमुना कें तीर ।
जोबन-जगमगे रँगमगे अंगनि देखि भई हौं अधिक अधीर ।
कदम-तरें बनमाल गरें लखि उर बाढी अभिलाषनि भीर ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रितयौ घट नैननि भरि नीर ॥

कालिंगरा] (६९५) [इकताला

आवै आवै हे देख्यौई भावै उजियारो स्याम सुहावै ।
गोकुल को कान्ह कहावै मनमोहन बैन बजावै ।
सुनि चेटक मनहि लगावै रसभीजीताननि गावै ।
चितवनि मैं चोंप जनावै मेरोऊ ज्यौ ललचावै ।
कोउ कौ लौं हिलग दुरावै आनँदघन उघरि भिजावै ॥

आसावरी] (६९६) [चौताला

कान्ह गुवार नै गैयनि घेरि घेरि मन घेरयौ ।
प्रीति-रीति परतीति जनाई गोरी कहि कहि टेरयौ ।
हौं सुनि समझि रीझि भीजी उरझि सुरझि नहि परत निबेरयौ ।
आनँदघन तन चौपनि घमँड्यौ क्यौं हूँ फिरत न फेरयौ ॥

सारंग] (६९७) [मूलताल

मोहिँ न कल है सुनि पलकौ घर मैं मोहन बंसी बाजै ।
उमगि उमगि मन बन कौं धावत गनत नहीं कुल-लाजै ।
ऐसें कैसें भरौं कहा महा कठिन उदेग उपराजै ।
आनँदघन सौं उघरि घुरौंगी उसरि पैज की पाजै ॥

बिलावल] (६९८) [इकताला

छबीलो रसिकराय नवरंग ।
सुंदर बर मुरलीधर प्यारो ब्रजमोहन सब अंग ।

[६९७] उसरि=तोड़कर । पैज=प्रतिज्ञा । पाजै=बाँध को ।

ब्रज की सोभा मंगलमूरति ग्वालमंडली - संग ।
उनै उनै बरसत आनँदघन दिन अनुराग अभंग ॥

(६९९)

अरी पनघटवाँ आनि अरै ।
अटपटि-प्यास-भरो ब्रजमोहन पलकनि ओक करै ।
रुचिर चाय ललचाय निहारै मेरोऊ धीर हरै ।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोंपनि लाय झरै ॥

(७००)

अरी पनघटवाँ जान न देइ ।
मुरली बजाय हरै घट-पट सुधि मन अपबस करि लेइ ।
जितहि जाउँ तित आढ़ौ ठाढ़ौ टरत न मारग सेइ ।
रोम रोम भिजवै आनँदघन हियरा मदन - खखेइ ॥

बिलावल] (७०१) [इकताला

अरी तेरे कान्ह की बलाय मोहिँ लागौ ।
आँखिन को तारौ सब गोकुल-प्यारौ जीवौ जागौ ।
याकेँ सुख सब ही कोँ सुख है डालौ आँखिन आगौ ।
उनै उनै आनँदघन बरसौ बैरिनि के उर दागौ ॥

(७०२)

नित समाज ब्रजराज कौ, नित गोधन की भीर ।
नित नित मंगल गाइयै, कान्ह कुँवर बलबीर ॥

सुघराई] (७०३) [चंपकताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई ।
सुघराई सुर सोँ मुरली मैँ अपनीयै तान बजाई ।
मोहिँ जताई मैँ हीं पाई उनकी हित - अगराई ।
आनँदघन पिय घर बैठे हूँ रीझनि भीजि भिजाई ॥

[६९९] ओक = चुल्लू, अंजली । [७००] आढ़ौ=बीच मेँ । खखेइ= पीड़ित, छुटीला करके ।

बिभास] (७०४) [इकताला

अनोखे ये दिन होरी के ।
कैसैं कै कोउ भरै करै कहा अति बरजोरी के ।
उघरि करत उखनींद अचगरौ नंद महर को छैल ।
लै करि संग इकमनै ग्वारनि रोकत बन घट गैल ।
तनक न कानि करत काहू की तकत नवेली बाल ।
फागुन के मिस मसरि गुलालै पकरि करत उरमाल ।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कान्ह ऐठि गुलचाय ।
आनँदघनहि भलैं करि भिजवैं रिझवैं नाच नचाय ॥

सारग] (७०५) [इकताला

फागुन राच्यौ है ब्रज बाखरि बाखरि माच्यौ है खेल खिलारन ।
ग्वारमंडली लै ब्रजमोहन डोलत गैल - गरधारन ।
निपट अटपटो औसर पाएँ तकत अटारिन द्वारन ।
कहूँ झपट कहूँ लपट कहूँ कछु को बरजै मतवारन ।
आजु सखी या ओर भोर तैं ऊधम देत अपारन ।
दूभर परयौ पनघटौं जैबो हरि कौं साँझ-सबारन ।
हासी को सतिभाव करत है पैठत ठेलि किवारन ।
थर थर कँपति रहति आनँदघन बरसत गोराधारन ॥

कनरी] (७०६) [मूलताल

अरी गंगा हौं तेरो गुनगायक अब तू अपनोई गुन करि री ।
मधुसूदन-पद-प्रीति बढ़ै नित ऐसो भाँतिनि ढरि री ।
जगत-जीव-निस्तारिनि जननी दीन जानि हिय को दुख हरि री ।
आनँदघन रस छाऊँ आऊँ तेरैं तीर कहत हौं पायनि परी री ॥

बिभास] (७०७) [चौताला

हरिपद-जनित जगत-पावन जल जानि गंगा सीस धरैं हर ।
और कहा कहि महिमा बरनियै यह देखी सर्वोपर ।

[७०५] गोराधारन = मूसलधारा ।

मोहिँ मिली महामंगलदायिनि मगन रहौँ नित हौँ याके बर ।
सरस दरस रसपान गान गुन लाग्यौ आनँदघन-झर ॥

भैरौ] (७०८) [चौताला

अगनित गुन रावरे गुपाल ।
तिहारी कृपा तैँ एहो कृपानिधि गनि गनि करि राखौँ उरमाल ।
मुरलीधर स्यामसुंदर बर राधामनि नैन बिसाल ।
आनँदघन उदार ब्रजजीवन सब ही भाँतिनि दयाल ॥

सारंग] (७०९) [इकताला

ब्रजमोहन देख्यौ चेटकी ।
कहा कहौँ कछु कहन न आवै बात अचानक भेट की ।
लई लुभाय सुभाय तुरत हीँ, चितवनि चाँप-लपेट की ।
भूलत नाहिँ भटू कैसैँ हूँ भरनि सु पलकनि जेट की ।
अब कित क्यौँ हूँ कल परति न वा बिन करि गौ सैन सहेट की ।
आनँदघन प्यासनि ब्याकुल ह्वै हितू कहति हौँ पेट की ॥

बिलावलि] (७१०) [इकताला

तुम्हैँ जु कछु आछी लगै सो करियै स्याम ।
मन चाहै तन-सँग ह्वै बन मैँ बिसराम ।
अज उमाधव से जाचहीँ रज अगम सुधाम ।
तहाँ कौन हौँ बापुरो अति असुचि सकाम ।
सुहृद सुजान उदार हौ करुनानिधि नाम ।
ब्रजनायक लायक सुनैँ गाऊँ गुनग्राम ।
सोच-बिमोचन हौ सदा लोचन-अभिराम ।
कृपा-दृष्टि तैँ सब सधै यह केतिक काम ।
सुढर सुगम सुमिरत रहौँ नित आठौ जाम ।
आनँदघन हौ घमँडि कै मेटौ दुख-घाम ॥

सारंग] (७११) [इकताला

मुरलियावारे साँवरे नैँक ठाढ़ौ रहि रे ।
मान लै चल्यौ हाथ करि मेरो को धौँ कहि रे ।

[७०९] जेट=छटा ।

गोकुल गाँव अनीति होति है गैल चलत सकियै न निबहि रे ।
चेटक-गुननि भरथौ आनँदघन निरख्यौ परख्यौ अबहि रे ॥

टोड़] (७१२) [मूलताल

जियहु जसोदा मैया जियौ पिता ब्रजराज ।
या ब्रजमोहन कैं हित लाड़ लडावन चावन दिन दिन सुखनि समाज ।
यह धन धाम बिराजौ जुग जुग या घर सौं सब ही को काज ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन ब्रजमडन सिरताज ॥

मलार] (७१३) [चौताला

सुरति - सुख - बेली सरसति रंगनि ।
ललित लहलहो चपला - चौंपनि चौंपति नव-घन-अंगनि ।
स्रमजल-कन पुहपावलि-प्रगटनि कूजित कोकिला-काकली-संगनि ।
जमुना-तट बृंदाबन आनँदघन झर लाग्यौ है उमंगनि ॥

ललित] (७१४) [मूलताल

घरघलू बँसुरिया बैर बढ़ो है ।
ब्रजमोहन मुँह लाइ बिगारी अति ही गरब चढ़ी है ।
देति डुलाइ ठौर तैं मति - गति चेटक - मंत्र पढी है ।
तान-बान बरसति आनँदघन हियरा जाति कढी है ॥

बसंत] (७१५) [इकताला

खेलौंगी बसंत रँगीले प्रानपिय सौं ।
न्यारे न करौंगी छिन आँकौ भरि हिय सौं ।
ब्रजमोहन उजियारे नैननि के तारे कैसैं कै मिलन
देहौं काहू आन तिय सौं ।
आनँदघन सुजान गुन-रूप के निधान राखौंगी समोइ
भोइ जियराहि जिय सौं ॥

एँमनि रागिनी] (७१६) [इकताला

मन न रहै मेरो ब्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेले बिन ।
दुरि दुरि झुरि झुरि कौ लौं रहौं री बिधिना दियौ है ऐसो दिन ।

अपने रंगनि भलैं भिजऊँगी जैसैं हौं भिजई घर मैं इन।
आनँदघन सनेह की घमँडनि जानी है अब सबहिन॥

सारंग] (७१७) [चंपकताल

जानिहौं जौ आज अछूते बचौगे।
होरी-मिस करि नाक नचावत पै तुम नीकैं नचौगे।
चपल चखनि काजरु भरिहैं करिहैं तेई हाल लाल ज्यौं लचौगे।
आनँदघन रिझवैंगी भिजै छूटन को छंद क्यौं रचौगे॥

धन्यासिरी] (७१८) [मूलताल

राधा कैं हिंडोरैं हाहा तनक झुलाय कब की कहति
यौं हीं अब न डुलाय।
अंग-संग रंग की उमंग उर बढी अति कहाँ लौं धीरज
धरौं मन अकुलाय।
रँगीले रिझवार सजहु बधु-सिंगार सोभा-सुख हेरैं रहै सुरति भुलाय।
जतन लतन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की पाहुनी कहि
लैहौंगी बुलाय॥

तथा] (७१९)

को है जू बिसाखा यह पाहुनी तिहारी।
साँवरे बरन मन हरति लजौंहीं बानि ऐसी धौं लगति
कहूँ कबहूँ निहारी।
मेरे मन भावति है झूलै तौ झलाऊँ याहि हौं तौ याकी
ऊठ को परख पचि हारी।
झूलि फूलि रस लेहु बरसौ आनँदमेहु गहबर बन
ये बिहंगम बिहारी॥

केदारो] (७२०) [चंपक

जो तुम बनावौगे सोई बनिहै मेरो सोच कहा।
अब लौं तुम सब नोकी बनाई बनाइहौ नीकी महा।

७१८–तनक-तन की (लंदन)। अग–अस (वही)। भुलाय–लुभाय (वृंदा०)। जतन०–अतन-जतन (सतना)।

[७१८] जतन=यत्न, उपचार।

मंगलमूरति सब सुखदायक ब्रजनायक गुन-निकर अहा ।
दीन पपीहा त्यौं ढरिबो आनँदघन टेक लहा ॥

कालिगरा] (७२१) [इकताला

बृंदाबन नीको लागै है ।
सजल सघन स्यामसुंदर - प्रेम - बागै है ।
जमुना कैं तट मोहन महा हियरा खागै है ।
आनँदघन मुरलिका - धुनि कोकिला रागै है ॥

गधार] (७२२) [मूलताल

सुण सुण वो गुमाँनियाँ मोहन प्यारियाँ चलदा क्यौं नहीं राहीं ।
रब्बे दी बल नजर न करदा न डरदा गरीबाँ दी आहीं ॥

गंधार] (७२३) [चपकताल

जमुना-जनक जगत-उजियारे अदिति-कुँवार दृगनि के तारे ।
जलज-बंधु बिज्ञान - प्रकासक बंदनीय कुलदेव हमारे ।
सबिता सूर सकल सुखदाता परिपूरन प्रताप जस भारे ।
आनँदघन कौं यहै सुरस दीजै दरस देखि गावैं नंददुलारे ॥

बिहागरो] (७२४) [इकताला

खेलत सरस फागु नवल रँगधाम राधिका गोरी मोहन स्याम ।
प्रेम रूप अनुराग उमँग सौं दरस परस रसमसे परसपर
भरि ढरि रंग ललाम ।
कहा कहौं रहौं चाहि चकित ह्वै अंग अंग अभिराम ।
झुरमुट मचनि रचनि रुचि चाचरि नचनि लचनि सुख-
सचनि चौंप वारियै कोटि रति-काम ।
जमुना - तीर मधुर बृंदाबन बिलसत सदा कुंज-बिसराम ।
फगुवा दैनि लैनि मनमानी आनँदघन घुरि घमँडि
रमँडि हित बरसत आठौ जाम ॥

सावंत] (७२५) [मूलताल

होरी रे होरी रे कान्हा कहा करि पाई ।
गौहन लग्यौ रहत दिन दिन अब निकसैगी रसिकाई ।

[७२२] रब्बे०=ईश्वर की ओर ।

आजु हमारैं हाथ चढ्यौ तू चपरि गयौ करि करि लँगराई ।
छलबल छाय छाय झूम्यौ आनँदघन सबै उघरि आई ॥

भैरव] (७२६) [मूलताल

मंगल आरति जगमंगल की करियै मंगल रूप निहारि ।
मंगल ब्रज मगल बृंदाबन मंगलदायक जमुना - बारि ।
मगल गोपी गोप धेनु हित गिरि गोधन मंगल-बिस्तारि ।
मंगल मुरली-धुनि आनँदघन मंगल गुन-लीला उर धारि ॥

बसंत] (७२७) [चरचरीताल

कुसुमित बनराज आज देखें ई बनि आवै री ।
जमुनातट सघन स्याम कैसी छबि पावै री ।
पवन - बस पराग - पुज कुंजनि पर छावै ।
मधुप - गुंज मंजु घोष आनँद उपजावै री ।
तरु बेली-बलित ललित उमँग उर बढ़ावै ।
नूत - मुकल - कलित मुदित कोकिल गावै रीं ।
मुरली - रस जु रली धुनि सुनियै अति भावै ।
तेरे गुन गाय गाय भेद सौं बुलावै री ।
चलि बलि अब निकरि गहर समझि चौंप चावै ।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री ।
बृंदाबन - रानी तू बेदौ बिरुदावै ।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस बरसावै री ॥

बिभास] (७२८) [इकताला

मेरो चित चाहै री नित चाहै निधरक भेटौं सुंदर स्यामैं ।
रूप जोबन गुन कहा करौं जौ आवै न प्रीतम - कामैं ।
न्यौज लगौ गोकुल-धरम निगोडौ मोहिं कहा मीठो है यामैं ।
आनँदघन जीवनधन मेरैं जीवति लै लै नामैं ॥

बिभास] (७२९) [चरचरीताल

प्रानअधार हौ जू मेरैं सुंदर नंदकुमार ।
दरस दुखारे नैन बिचारे तरसत बरसत हैं दिनराति आइ देहु इक

दया लेहु जिन देहु अनाकनी तुम तौ परम उदार ।
आनँदघन पिय सुनियै हा हा दीन-पुकार ॥

सारंग] (७३०) [मूलताल

आवति है मुरली की टेर ।
गिरि घाँ तेँ जमुना त्यौँ सुनियति भई गैयनि जल दैबे की बेर ।
चलौ सखी पनघट जैयै पैयै मोहन-दरस लागी कब की औसेर ।
आनँदघन अभिलाष घमँड हिय बढी रहति है साँझ-सबेर ॥

कल्यान] (७३१) [इकताला

सलोनो स्याम उज्यारौ ब्रजलोचन को तारौ ।
ताक लगाय फिरत फागुन मैँ जोबन को मतवारौ ।
आँखिनि पैठै हियराँ बैठै क्यौँ हूँ टरत न टारौ ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ-सबारौ ।
मसरि गुलाल कसरि सब काढै चेटक-भरयौ ठगारौ ।
नकवानी करि लेत इते पै लागत है अति प्यारौ ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै खौरि खगै अपढारौ ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

रामकली] (७३२) [चरचरीताल

सलोने साँवरे गुपाल आँखिनि लागि रहे रूपनिधि
रसाल, केसरि की खौरि रचैँ भागभरे भाल ।
चितवनि चित चोरि लेति घूमरे नैन बिसाल ।
कुंडल चटक भृकुटी मटक लटक-भरी चाल ।
कौस्तुभमनि कंठ दिपत उर बर बनमाल ।
सुदर सुढर दीरघ भुजा मोहन-ब्रजबाल ।
आनँदघन जीवनधन रसिक नंदलाल ॥

[७३१] खौरि०=दुष्टता करके कष्ट भी देता है और आपसे आप अनुकूल भी हो जाता है ।

राग गौर सारग] (७३३) [मूलताल

जै जै जै श्री बामन बिसाल ।
कृपासील महासील नरोत्तम नितहीँ नित दीनदयाल ।
सत्यबद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल ।
सच्चिदानदघन अनघ त्रिबिक्रम-पद-नख-जल जग सुजस-जाल ॥

ऐँमन] (७३४) [चंपकताल

मुरलिया केतिक छुंद पढी है ।
लगियै रहति मोहन-मुख यातेँ अतिहीँ गुमान बढी है ।
हम कहा जानैँ भोरीँ बिचारीँ गवेलिनि की मति मोहमढी है ।
आनँदघन पिय रीझ-भिजै इन हाथ किये इन चेटक-चोँप चढी है ॥

आसावरी] (७३५) [चौताला

मेरो काहू सोँ न अब कछु काम है ।
जिय को जीवन नैनन को तारो प्यारो उजियारो मोहन स्याम है ।
कोरि चवाव करौ किनि कोऊ मो कौँ तौ वाही को पन अस्ट जाम है ।
आनँदघन रसमूरति मैँ मेरे प्रान - पपीहनि बिसराम है ॥

मलार] (७३६) [इकताला

बदरा उनै आए बरसन लागे रस ही रस ।
ब्रजमोहन सँग हौँ बन भींजी रीझि परी उनकैँ बस ।
अंतर निपट भिजै घर पठई रुकत नहीँ करि हारी बहुत कस ।
उघरि घुरौँगी आनँदघन सौँ अब सब तजि सजि षटदस ॥

राग सारंग] (७३७) [चपक

अजौँ मुरली की टेर वहै सुनियति है होइ नहिं काननि ।
निकसति नाहिँ कहा धौँ करियै पैठि रही पापी प्राननि ।
मोहनमूरति आगेँ ठाढी मन की रीझ नहिँ बनति बखाननि ।
भौँह तानि हँसि हेरि आनँदघन बरसत रस-बूँदनि बाननि ॥

आसावरी] (७३८) [इकताला

अब मोहिँ राखि लीजियै अपनैँ चरन-कमल की छाँह ।
डगमगात हौँ सुनौ हो गिरिधर एक तिहारी बाँह ।

[७३६] षटदस=सोलहो शृंगार ।

रह्यौ न काम कछू काहू सौं पालत प्रान रावरी आँह ।
आनँदघन दुखताप मैँटियै कीजै कृपा - सिराँह ॥

धनासिरी] (७३९) [मूलताल

हमकौं तिहारी है हो सरन हरि ।
जगमंगलकारी जदुनंदन अंतर - ताप - हरन ।
अंतरजामी सब - सुखस्वामी बंछित - पूरनकरन ।
करुनानिधि उदार आनँदघन जीवन - पोषन-भरन ॥

टोड़ी] (७४०) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौँ गहि करत कान्ह केतेऊ काम ।
गिरि गोबरधन घटिया घेरत हेरत हौ नव बाम ।
हौँ जानति जैसे हौ मोहन गोहन लागत सोहन स्याम ।
आनँदघन कहा झूमैँ आवत घर जान देहु किनि फिरत बरावत घाम ॥

तथा] (७४१)

स्याम सलोने सौँ आई है मनभाई रति मानि ।
अंगनि औरै ओप पसीजै अँखियनि मैँ सिथलानि ।
बगरे बार झीनँ सार मैँ झलकति अधर नई अरुनई-सरसानि ।
आनँदघन पिय रीझ घमड सौँ भरि भैँटी रस सानि ॥

सारग] (७४२) [कपोती ताल

बरसानेवारी राधा नंदीसुर को मोहन ।
निपट रसीली छबीली जोरी देखि सिरात जोहन ।
इनको प्रेम सदा ब्रज ब्यापक सबके मन-दृग इनहीँ मोहन ।
आनँदघन रसभीजे बिलसौ सरस मनोहर दोहन ॥

धन्यासिरी] (७४३) [इकताला

मेरी कहा सकति जौ गुन गाऊँ, गुन गाऊँ मन परचाऊँ ।
जिनको पार न पावत कोऊ तुम लौं हौं कैसैँ आऊँ ।
लीला ललित परम पुरुषोत्तम क्यौँ सुरूप उर ठहराऊँ ।

[७३८] आँह=भरोसे । सिराँह=शीतलता । [७४०] बरावत०=घाम बचाते हो, कष्ट देने में लगे हो । [७४१] सार=वस्त्र ।

भूले भ्रमत बड़े बिधिहू से कौन रंक का बिधि धाऊँ ।
सुनौ स्यामसुंदर ब्रजनायक यह रस लै रसनैं प्याऊँ ।
आनँदघन उदार जगजीवन कृपा - भरोसँई छाऊँ ॥

तथा] (७४४)

आजु राधा बलि प्रगट भई ।
जसुमति सुनत चली कीरति कैं नखसिख मोदमई ।
कनियाँ किये छबीले लालहि चित हित-चौंप नई ।
साँज बधाई की सब सजि कै नीकी भाँति लई ।
भाग - सुहाग - भरी की सोभा त्रिभुवन ओप दई ।
सुत - सोहिलो मनावत मन मैं अतिहीं रंगरई ।
नंद परम आनंदनि भीजे हिय मैं उमँग छई ।
हुलसि हुलसि भेंटत बृषभानैं जीवौ सुकृत-जई ।
गोकुल रावरि एकमेक ह्वै प्रेमघटा उनई ।
कही न परति आनँदघन घमँडनि सब उर-ताप गई ॥

(७४५)

बरसाने की तीज सुहाई । हरियारी सबहिनि मन भाई ।
कीरति उबटि न्हवाई राधा । अपनी लाड़लरी हित - साधा ।
मेहँदी रची रुचिर कर - पाइनि । ललित लली कों सजति बनाइनि ।
पाटी पारि दियौ द्दग अंजन । वारौं कोटि सरद के खंजन ।
सुरँग ओढनी ढिगनि साँवरी । छबि-फबि पै बलिहार जाँव री ।
भूषन बनक तनक क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ।
रूपमाधुरी बरसति रगनि । फूली मात समात न अंगनि ॥

सारंग] (७४६) [चौताला

मेरे अरु गुपाल के बीच मति कोऊ परौ हो ।
मोहिं उन्हैं रसखेल मच्यौ है जो जाकैं जिय मैं सु धरौ हो ।
बारह मास फाग सुख या ब्रज हौं उन वे मो रग ढरौ हो ।
जौ होरी-औसर बिधना दयौ तौ आनँदघन दुरि घमँडनि उघरौ हो ॥

[७४५] ढिग=किनारा ।

ललित] (७४७) [चलती ताल

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय रिझाय लई ।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढौ भोरहीं भेंट भई ।
देखतहीं मनमोहन मूरति सब बिधि बिसरि गई ।
आनँदघन पिय हँसि चितवनि मैं नखसिख लौं भिजई ॥

सारंग] (७४८) [इकताला

जेठ दुपहरी को सुख लेत ।
राधा मोहन सहज सनेही करि बन घन संकेत ।
लीला-मगन रहत रससागर उमँगत हिय भरि हेत ।
झूमि झूमि बरसत आनँदघन भरत मनोरथ - खेत ॥

सुघराई] (७४९) [चपकताल

बदराऊँ नए नए नए ।
स्यामसुंदर मनभावन आवन के सगुन भए ।
मोहिँ भरोसो है उनको बदि साँची अवधि गए ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैहैं चातक - प्रान तए ॥

मलार] (७५०) [इकताला

पचरँग पाट बिचित्र पवित्रा पहिरें मोहनमदन गुपाल ।
उर बिसाल पै अति दुति बाढी ब्रजगोरिन मन-लोचन-जाल ।
जूरा दियें कियें नटबर बपु केसरि-खौरि बिराजति भाल ।
छके नैन अनियारी भौंहैं हँसि हेरनि मैं करत निहाल ।
अबिरल कुटिल रुचिर अति मेचक छुटे छबीले अलक बिसाल ।
मनिकुंडल मिलि बिमल कपोलनि छलनि छलत मति की गति हाल ।
जमुना - तीर लसत नवरंगो धरैं बैन बर तरैं तमाल ।
कही न परति राग-रचना की थिर चर सुनत होत बेहाल ।
नित-उतसव-सुरूप ब्रजमोहन करत रहत रसरंगनि ख्याल ।
रीझ-भिजै राख्यौ सबहीं ब्रज आनँदघन गुन-रूप-रसाल ॥

[७५०] पाट=रेशम । पवित्रा=रेशमी दानों की माला । मेचक=काले । हाल=तुरत ।

बिभास] (७५१) [इकताला

एक पालनैं झुलावति जसुमति कीरतिकुँवरि आपनैं लालै।
कही न परति अति आनँद की गति वारि देति मनि-मोतिनि मालै।
ओड़ि ओड़ि आँचर बिधना पै माँगत कुसर प्रीति-पन पालै।
उनै उनै बरसौ आनँदघन गोकुल रावलि करत निहालै॥

पूरबी] (७५२) [इकताला

ए देखौ देखौ मुरली की बिराजनि।
ब्रजबधूनि की सुधि बुधि कौं हरति याकी बाजनि।
अपबस करि लेति है नित नित सजति सुख-समाजनि।
आनँदघन रीझि भीजि करै कौन काजनि॥

सारंग] (७५३) [मूलताल

कान्ह चरावत गया बन मैं।
जिनहि जिन ठौरनि ह्वै निकसत पैठत मेरे मन मैं।
लटू भयौ पायनि लगि डोलत अति व्याकुलता तन मैं।
ब्रजमोहन हँसि चितवनि भिजई कौंधनि आनँदघन मैं॥

टोड़ी] (७५४) [इकताला

सलोने ब्रज बगराई है, अपने रस की ठगौरी।
ब्रजमोहन सब ही बिधि सौं रसरीति चलाई है।
काहू की कछु कही न परति अतिहीं अँगराई है।
आनँदघन मुरली-धुनि घमंडनि प्रेम-दुहाई है॥

जैतसिरी] (७५५) [इकताला

मोहि दीजै जू ब्रजबास।
सुनौ नंद बृषभानराय जू पुजवौ जिय की आस।
नीकैं रहौ राधिका-मोहन दिन दिन अधिक हुलास।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ दुहुँ घर कैं चहुँ पास॥

७५४—बिधि—भाँतिनि (सनना)।

[७५१] ओडि = पसारकर।

आसावरी] (७५६) [आड़ चौताला

नंद तिहारैं दिन दिन ऐसोई रहौ ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन के सुख ऐसियै भाँति लहौ ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ नितहीँ हितहि चहौ ।
गोकुल - जीवनधन आनँदघन उनै उनै उमहौ ॥

(७५७)

मनमोहन चितचोरन प्यारे मन मोहौ चित चोरौ जू ।
जो जो करौ सहैं सोई सो तुम्हैं रूप को जोरौ जू ।
आइ उघरि दुरी उर की सब कहूँ जौरौ कहूँ तोरौ जू ।
नई चौंप उनए आनँदघन जिय न दई डर थोरौ जू ॥

पूरिया धन्यासिरी] (७५८) [चौताला

कौन जानै कितहिं कितहिं तुम करत फिरत कैसैं बनि ।
काहू सौं बदत बोल कितहूँ करत मोल कहूँ लै मढत
झोल ठगत बिसासी सबनि ।
अबस होति भारी ब्रज-अबला चतुर छैल ढरौ अपनैंई ढबनि ।
आनँदघन ब्रजमोहन रसरंगी तुम्हैं सोहै नई नई फबनि ॥

मालव] (७५९) [इकताला

सब - सुख - सोभा - मूल बृंदाबन धन मेरैं ।
राधा - मोहन गाऊँ न्हाऊँ जमुना साँझ - सबेरैं ।
प्रेममडली दरसन पाऊँ धीरसमीर बेनुबट नेरैं ।
आनँदघन झर सदा लगाऊँ नितबिहार-हित हेरैं ॥

गौरी] (७६०) [इकताला

उठि चली पिय पै को बैठारै ।
मुरली की धुनि साँची साथिनि मो गति-मतिहि सम्हारै ।
अँखियनि दरस - लालसा बाढी को कुलकानि निहारै ।
दरस - चौंप - चटपटी हिये मैं अतिहीँ ऊधम पारै ।
बीध्यौ हिय हरि-हेत-फँदा मैं को धौं अब निरवारै ।
प्रान - पपीहा पीवैं जीवैं आनँदघन रसधारै ॥

टोड़ी] (७६१) [चौताला

ज्यौं ही ज्यौं ही चाहौ त्यौं ही त्यौं तनि तुमहीं बिस्तारौ ।
तुमहीँ गावौ तुमहीँ सुनि समझौ यामैँ कहा है हमारौ ।
एक रूप मैँ अनेक आभा दिपैँ सुघरराय त्यौनार तिहारौ ।
आनँदघन झर लाय रहे ऐसेँ क्यौँ हूँ न भरम उघारौ भलैँ
भलैँ हौ जू बड़े रिझावारौ ॥

टोड़ी] (७६२) [चौताला

मुरलिया मैँ त्यौनार भरे हैँ ।
धुनि सुनि हिय बेहाल होत है इन ये हाल करे हैँ ।
याकी घालीँ घरनि मैँ घूमति गुरजन-सोच टरे हैँ ।
मुँह लगाय ब्रजनाथ बिगारीँ ऐसे रीझि परे हैँ ।
लगी रहति गौँहन दिनरजनी कित के बैर धरे हैँ ॥
आप अमैँड भई गरजति है लाज के साज हरे हैँ ।
कान्ह कुँवर ब्रजमोहन मोहे याही ढार ढरे हैँ ।
कल न देति काहू थिर चर कौँ सबके मरम छरे हैँ ।
सुबस बसौ गोकुल पै इन अब ऊलट रचे खरे हैँ ।
सुखवति भिजवति रिझवति खिजवति धीरज धरम दरे हैँ ।
आनँदघन रसबस करि राखे नाद-सवाद ररे हैँ ।
याहि सबै कछु फबै सखी री पूरन पुन्य फरे हैँ ॥

भैरव] (७६३) [चौताला

गुन गुपाल के गाय मन, भटकत फिरत बृथा कौँ ।
इनहीँ मैँ बिसराम लहैगौ दूरि दूरि फिरि आय मन ।
सीतल भयौ न कितहूँ बौरे तचि तचि रह्यौ मुरझाय मन ।
आनँदघन रसपान करौँ किनि ऐसैँई सचु पाय मन ॥

मालकोस] (७६४) [कपोतताल

ताल - सुर - भेद जानत एकै मोहन ब्रजनायक ।
नटनागर रूपउजागर गुनसागर सबही बिधि आगर
ऐसो कौन सुद्ध मुद्रागायक ।

[७६३] सचु=सुख ।

जाकी मुरली सुनि मोहे जड़ जगम बेधे मरम महा-
व्यापक सुरसायक ।
आनँदघन रस-tाननि छायौ बृंदावन गोपीजन मन-नैन-
प्रान साँचे स्त्रवननि सुखदायक ॥

टोड़ी] (७६५) [चौताला

को पावै उनके मन की बात ।
काहे कौं करियै परेखो ए ब्रजमोहन कपटनि के नायक
इत आवत उत जात ।
कहूँ सैन कहूँ बैन कहूँ तोर कहूँ जोर गौं गहि डोलत साँझ-प्रभात ।
आनँदघन रसबादनि उनए गुननि भरे सब गात ॥

धनासिरी] (७६६) [मूलताल

फागु-सुख बिलसत मोहन स्याम, हिल मिलि गोपबधू अभिराम ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कें सुंदर पुलिन पुनीत ।
उमँग भरे सजि सौंज खेल की गावत होरी गीत ।
रमनीमनि बृषभानुनदिनी साजे सखिनि समाज ।
गोपकुँवर मंडल मैं राजत ब्रजमोहन सिरताज ।
बरनौं कहा रूप - गुनमहिमा महाभाग दुहुँ ओर ।
अतुल उमँग अनुराग रँगमगे अरस-परस तचि चोर ।
चाचरि मचनि चौंप-चोखनि सौं गावनि रसनिधि गारि ।
कंठ किलक मधुरिमा मनोहर.... .. .. ॥

ऐमनि] (७६७) [इकताला

राधा-मोहन सौं हित-होरी माची नीको दाव बन्यौ है ।
जोबन की लहलहनि दुहूँनि तन मन अनुराग-सन्यौ है ।
रूपनिकाई अनूप कहा कहौं बानक छैल ठन्यौ है ।
सरस खिलार भीजि रहे रीझनि गाढौ रग छन्यौ है ।
सब ब्रज इन ही के रंग राच्यौ सुखसागर उफन्यौ है ।
आनँदघन अभिलाषनि घमँडे सुजस-बितान तन्यौ है ॥

[७६६] अरस०=आलिगन ।

ललित] (७६८) [जात्राताल

उन्हैँ तुम्हैँ आछी फाग मची है ।
निपट नवेली चौँप-चटक सौँ प्रीति की रीति रची है ।
नैन गुलाल-भरे अरसौँहैँ यातैँ डीठि लची है ।
सब ही अँग रँग बोरि पठाए काहू बिधि न बची है ।
झकझोरनि बँद टूटे छूटे उर नखरेख खची है ।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौँ बुद्धि बिचारि पची है ।
मनमान्यौ फगुवा दै आए सो गति उघरि नची है ।
आनँदघन इतहूँ हित छाए पन-परतीति जची है ॥

रामकली] (७६९) [यात्राताल

अति रंगभीजी राति बसी है, प्रानप्यारे पै ।
लगति छबीली ढीली डोलनि भुज भरि नीकैँ कसी है ।
अगनि रगतरंग उठति कछु औरैं ऊठ लसी है ।
आनँदघन ढुरि घुरि चौँपनि सौँ भिजयौ स्याम रसी है ॥

रामकली] (७७०) [मूलताल

राधे लाड़-गहेलरी प्रीतम प्रान-सहेलरी सरस सुहाग-सुहेलरी ।
मोहनमदन गुपाल हिये की हिलग-हमेलरी ।
अपने बृंदाबन की सोभा आचरज-बेलरी ।
आनँदघन रसप्यासनि सींची नेह-नवेलरी ॥

हिडोल] (७७१) [इकताला

बारियै या छबि पै बहुत बसंत तू मदनगुपाल लाल कैँ री
आली उर-बनमाल भई है ।
अंग अंग रतिरंग प्रगट भए भरी फूल हिय की नख-
सिख लौँ तेरी रती बिधना तोही लै दई है ।
मो नैननि को सुख हौँ ही समझति नीकी बसंतपंचमी नई है ।
आनँदघन पिय रीझनि भीजि घमँड-रस राख्यौ अति
रसरासि लई है ॥

ऐमनि] (७७२) [इकताला

हो हो हो होरी बोलैं ।
राधा - मोहन जोबन - जगमगे अपने रंग कलोलैं ।
सुंदर बदन अनूप निकाई । फैलि रही ब्रज रूप-जुन्हाई ।
कही न परति हित-मादिकताई । सब ही की मति मोह-छकाई ।
सहज रग रंगि रहे सदाई । फिरि मनभाई फागु मनाई ।
चौंपनि चाचरि चुहल मचाई । उघरि परी जौ बहुत दुराई ।
आनँदघन रसझरी लगाई । हिलग-लता झालरी सुहाई ॥

सारंग] (७७३) [इकताला

केसरि-खौरि कियेँ जोबन-मद पियेँ निडर छैल
डोलत है नंद को मोहन स्याम ।
हाथ मैं गुलाल लियेँ औरै कछु छल हियेँ काहू पै दाय से
दियेँ याही बीच मँडरात कौन धौं काम ।
जमुनै जान कौं कब की अरबरनि कौ लौं धँसेई रहियै धाम ।
आनँदघन झूम्यौई देखियै यह ऊधम गोकुल ही हो आठौ जाम ॥

सारंग] (७७४) [इकताला

धनि धनि राधा को भाग-सुहाग धनि याही फाग ।
ब्रजमोहन पै इन लै मोह्यौ घर ही घर यह राग ।
याही को रँग राचनौ अति चोखो अनुराग ।
इनही आनँदघन रस भिजयौ दै पूरन पन-पाग ॥

रामकली] (७७५) [मूलताल

मिठबोलन ढोलन चंगेलरा महरदा लाड़-गहेलरा ।
साँवला मोहन गोकुलवालिया जिंद - चहेलरा ।
मुझ जेसी उसनूं बहतेरी बंदी दा अकेलरा ।
प्राण - पपीहाँ दा आनँदघन खरा नवेलरा ॥

ऐमनि] (७७६) [चौताला

ब्रजनाथ बनैयै मो ब्रज बसिबो ।
जसुदानंदन बलि जैयै इतनो कहा अब कसिबो ।

७७३—हियैं—छिये (सतना) ।

ब्रजबन-लीला मगन रहै मनमोहन-गुन-गाँसनि मैं गसिबो ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहनि कौ लौं तापनि तसिबो ॥

धनासिरी] (७७७) [इकताला

राधे अबकैं चाचरि बहुरथौ दै अरु तेरी हो चाचरि रंग ।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलन कौं पिय के संग ।
हौं रीझी तेरी ऊठ पै तेरे नह नाक सुहाग ।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरैं अनुराग ।
तेरी चाचरि राचनी अरु तेरो हो त्यौहार ।
तोतैं रंग रहै सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार ।
तेरी भाँवरि-भरनि मैं छकि घूमै ब्रजनायक छैल ।
बदन-चटक लट-लटक सौं रोकै मन-लोचन-गैल ।
ब्रजगोरीं गावैं सबैं तेरी चाचरि के गीत ।
भिजयौ रीझनि चोंप सौं अपनो आनँदघन मीत ॥

सारग] (७७८) [इकताला

मुरली-धुनि सुनत डोलियै संग ।
मोहन-मूरति देखैं बाढ़ति उर अभिलाष-तरंग ।
घर बाहिर के कछू कहैं तौ धरौं नहीं तिल एक ।
कैसें टरति भटू हियरा तैं पूरन पन की टेक ।
बस करि लई रसीली ताननि नहिं सुहाय कछु और ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रसिक छैल-सिरमौर ॥

सावंत] (७७६) [इकताला

राधा-मोहन की हित-बात होति रहति नित नैननि सैननि ।
मिलन-प्यास रस-आसनि लागे ताकत हे होरी का घात ।
बोथिनि बगर जमुन-जल जित तित ताकैं रहत साँझ परभात ।

७७७-खेलन०-खेलै ब्रजमोहन (सतना) तेरी०-तैं रीझत ये तेरो लहलहो (वही), तेरी ऊठ पै तेरे नेह नीक (वृंदा०) । सबै-सहै (लंदन) । छकि-थकि (सतना) चटक-चद (वही) ।

[७७६] तसिबो=त्रास देना ।

चौंपन चाव न समात हिये मैं उमगे परत गात लखि गात ।
भागनि फब्यौ फागु को औसर निडर खेल रंगनि सरसात ।
मसरि गुलाल कसरि सब काढत आरति-भरे बिबस ह्वै जात ।
ब्रजबन-सुख सहेट-फल चाखत परम मरम हिलिमिलनि हितात ।
मन मोचत सींचत आनँदघन सदा रहौ इनकैं कुसरात ॥

सारंग] (७८०) [इकताला

मतवार मोहन होरी को ।
जाहि सहजहीं रस को चसको घातनि गहि बरजोरी को ।
लटुवा भयौ फिरत दिन - रजनी लगुवा गोरी भोरी को ।
मीठो महा मिल्यौ मुँहमाग्यौ उघरि उघरि गुर चोरी को ।
भीजि रह्यौ रंगनि भर भिजवै ब्रजमोहन है ओरी को ।
या ब्रज यह औसर आनँदघन अति रस ढोराढोरी को ॥

अड़ानो] (७८१) [इकताला

कन्हैया रंगनि भीजौ मोहू रंगनि भिजावै ।
डीठि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै ।
नैननि सैननि होरी खेलै करत सबै कछु जो जिय भावै ।
रीझनि रमँडि घमँडि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै ॥

भैरव] (७८२) [जात्राताल

बहुतनि सौं बहुत भाँति रमै एक स्याम ।
चेटक की मूरति है ब्रजमोहन नाम ।
याहि देखि कछु न देखियै दीसै सब ठाम ।
आँखिनि भरि देखन की साधै अस्ट जाम ।
ब्रज अचरज रस भोयौ अद्भुत गुनधाम ।
आनँदघन जीवनधन जिय को बिसराम ॥

ऐमनि] (७८३) [चौताला

सुंदर मुख माड़्यौ री तैं माड्यौ मोहन को धनि यह फागु-रवानी ।
जैसैं मन चाहत हौ तैसैं दुहुवनि मन रति मानी ।

[७८०] लगुवा=लागू, प्रेमी ।

बरस द्यौस या आसा बितयौ अब बिधना यह बानक बानी ।
आनँदघन घुरि ढुरि रस बरसौ चिर जियौ जोरी सहानी ॥

मरहठी रागिनी] (७८४) [यात्राताल

मोहन लाल कौं मल्हाऊँ सरस बधाई गाऊँ ।
जसुमति के भागनि बरनि रसनै लाड़ लडाऊँ ।
सुंदर मुख भागनि फल आँखिनि लै दिखाऊँ ।
नित नित या घर को उदै भाँति भाँति मनाऊँ ।
लड़िल के सुख-सुहेले बीधि बधाई गाऊँ ।
नितहीँ मंगल नद के मंदिर दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन भागभरी के आँगन ही छाऊँ ॥

कानरो] (७८५) [चौताला

को पावै हो ब्रजरस को भेद ।
जानत पै न बखानत मन ही मन अनुमानत बेद ।
श्रीगोपीपद-रज-प्रसाद-बल अगम सुगम और साधन सकल खेद ।
आनँदघन याहीँ रस भीजी रीझि पीतबसन-छोर ढोरि
सुखवत सुख-स्रम-सेद ॥

रामकली] (७८६) [आड चौताला

राधा-रूप गौर उर फुरै ।
स्याम रूप अनूप राधा स्याम अंतर दुरै ।
प्रगट परमानद मूरति नैन-पुतरिनि ढुरै ।
पलक-सपुट उघरि घुरि घुरि या दरस घन घुरै ।
प्रान चातकपन पलै रुचि टारि बिरहा-जुरै ।
केलि सकल सकेलि मनसा थकै सब कछु कुरै ॥

मरहठी रागिनी] (७८७)

राधा राधा गाऊँ राधा प्रान कौं रिझाऊँ ।
राधा के गुन-रूप बरनि रसनै रसाऊँ ।

[७८३] माड़बौ=गुलाल से रँग दिया । बानी=बनाई । सहानी=लाल रंग से रँगी । [७८५] सेद=स्वेद, पसीना । [७८६] कुरै=उड़ेल कर, देकर ।

राधा के ही सुख मैं सुखी मोहन रस प्याऊँ।
अरस - परस रसदरस आनँदघन छाऊँ ॥

सारंग] (७८८) [इकताला

होरी झुरमट माच्यौ नंद महर कैं द्वार।
आईं झूमि नव नव बधू झुंडनि चौंपनि भरीं खिलार।
रूप अनूप कहाँ लौं बरनौं उपमा लहौं नहीं उनहार।
चंदबृंद चपला चामीकर वारौं चंपकहार।
सुंदरस्याम-सनेह-सगमगीं सहज रँगमगीं ओप अपार।
ब्रजमोहन की महा मोहनी साजैं सरस सिंगार।
गावति गारीं अति रसढारीं सफल करति फागुन त्यौहार।
कंठ-किलक मैं दसन - चिलक लखि छकत छैल रिझवार।
रीझनि भरि भिजवति रुचि - रंगनि चितवति पागति
पिय-हिय प्यार।
चाचरि चुहल चाव दावनि सौं करति कटाछनि मार।
रूपबिबस गिरिधरन लाल कौं अपबस करति भरत अँकवार।
मन को मरक काढि सब दिन की बाढति धूम-धमार।
नैन आँजि मुख मसरि गुलालहिं बेंदी देति लला के लिलार।
जीति लेति अबला बलबीरहि हँसि पहिरावति हार।
बहुत भाँति के नाच नचावति हो हो करि बोलति ततकार।
फहपट देति हठीली भाँतिनि सकुचत रसिक उदार।
झगरति झटकति मुलकति पुलकति फगुवा माँगति करति झमार।
अति अद्भुत औसर को यह सुख बिलसत प्रान-अधार।
अपने कान्ह कुँवर की सोभा दूरि भएँ देखत सब ग्वार।
कछु न बसाति पचत बहुतेरो ठाढ़े करत पुकार।
प्रबल प्रीति की रीति प्रगट लखि काहू रही न तनक सम्हार।
सुर बिमान चढि कौतुक भूले बिरसत बिबिध बिहार।
या रस मगन रहत दिन-रजनी सजनी स्याम लहत सुखसार।
सब ब्रज रँग भिजयौ आनँदघन रसिया नंदकुमार॥

रामकली] (७८९) [मूलताल

आए हौ लाल रँगमगे बागैं । या बानक निरखे नहिं आगैं ।
नैन गुलाल - भरे से लागैं । कै भए अरुन कहूँ निसि-जागैं ।
नीकैं लगत अधर मसि - दागैं । बहु रँग - रचे फागु अनुरागैं ।
नखछत लगैं गहे भरि भागैं । हाहा करि छूटे खुलि खागैं ।
भँवर - भीर लीला-जस रागैं । मोल नए परिमल - गुन तागैं ।
आनँदघन झूमैं पन पागैं । उघरि उघरि डोलैं डर त्यागैं ॥

सारंग] (७९०) [इकताला

मोहनमदन गुपाल बँसुरिया मैं री आली सारंग पूरै ।
लाज कानि कुल की बिसरावै चौंप-चटक चुहटनि चित चूरै ।
कहा करौं कैसैं करि राखौं उमँगि उमँगि मन बिकल बिसूरै ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं सहि न सकत अब मदन-मरूरै ॥

सोहनी] (७९१) [मूलताल

अबे बसीवालिया कान्ह गुवालिया कदी तौ सानू
भी मुख विखलाव ।
मैंडरी जिंद तुसाडे नाल लगी मैं धोली ब्रजमोहन मतवालिया ॥

रामकली] (७९२) [इकताला

रसिकनी राधा राधा है ।
जाके मिलिबे की मोहन कैं नित ही साधा है ।
ब्रजमोहन मोह्यौ इन आछैं रही न बाधा है ।
परम प्रेम रस - निधि आनँदघन प्रेम - समाधा है ॥

हिंडोल] (७९३) [इकताला

नव बृंदाबन नव मनिमंदिर नव कंचन नव रतन-सिंहासन !
नवल कुँवर गोपीनाथ बिराजत सोभानिधि भरे नवल हुलासन ।
नव भूषन नव बसन नवल तन महकत भीने नवल सुबासन ।
नवल रूप नव नेह भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन ।
नव गुन रूप अगाधा राधा जगमगाति ढिग नवल प्रकासन ।

[७९१] धोली=सीधी-सादी ।

नव सहचरी सजैं नव नवसत हरषति छबि निरखति चहुँ पासन ।
नवल गान नव तान ताल नव नवल जेत्र नत्र नृत्य बिलासन ।
नवल रीझ नव रँगरस-भीजनि आनदघन बरसत मृदु हासन ॥

सारंग] (७९४) [चौताला

अति सुगध मलयज घनसार ।
मिलाइ कुसुम-जल सौं छिरकाइ उसीर सदन बैठे मदन-
मोहन संग लै राधा प्रानंनि प्यारी रति-रगनि ।
जमुन-तीर बानीर-कुज मंजुल बिधि पवन सुखपुज
परम रोमांचित होत छबीले अंगनि ।
बृंदाबन संपति दंपति बिलसत हुलसत ऐसैं अपनी उमंगनि ।
आनँदघन अभिलाष भरे खरे भीजे संगम-रस-सागर
की अतुल तरंगनि ॥

सारंग] (७९५) [इकताला

रँगीली जोरी की बलि जाँव, ललित रूप-गुन - रासि ।
कदम - मूल बन घर है जाको जमुना - कूल सुठाँव ।
गोरी साँवरो दृगनि भाँवरी निरखैं सुखनि सिहाँत्र ।
आनँदघन जीवन - धन - दायक राधा - मोहन नाँत्र ॥

सारंग] (७९६) [चौताल

या रस कौं हौं हीं बखानौं ऐसैं ।
बृंदाबन जमुना - तट बिहरत राधा - मोहन जैसैं ।
छिनहीं छिन या सरस सवादै लेत देत समझत तेई तैसैं ।
आनँदघन याकी घमँडनि कौं उघरि लखै कोऊ कैसैं ॥

बिहागरो] (७९७) [चंपकताल

कहाँ पाऊँ हो हरि हाय तुम्हैं ।
मेरी निपट अनाथ दसै दैया कौन कहै समझाय तुम्हैं ।
मोकौं पलकौ कल न परति है तुम जानौ ज्यौं बिहाय तुम्हैं ।
प्रानपपीहा पुकार सुनावत आनँदघन अकुलाय तुम्हैं ॥

[७९३] समर=स्मर, काम । नवसत=सोलहो शृंगार ।

कानरो] (७६८) [चंपक

जिन तुम पाइ लिये जिय ही मैं ते कित औसर खोवत ।
तुम जे जगाए ते क्यौं सोवत ।
लीला लोभ लगौंहैं नेही अँखियाँ रूप समोवत ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे तारे अतर गोवत ॥

परज अरगजा ख्याल] (७६६) [मूलताल

लगन की बात अटपटी है ।
जब तैं निरखे ब्रजमोहन चित चौंप-चटपटी है ।
आँखिनि के घालैं घर मैं दिनराति खटपटी है ।
लख्यौ चहति वह मोहन - बानक प्रेम-लटपटी है ।
सुंदर बर औसेरनि हियरौं निपट भटभटी है ।
आनँदघन पिय दरस-पियासनि डीठि रहचटी है ॥

(८००)

एक सरक दुहुँ ओर सलै ।
ब्रजमोहन सौं हिलग राधिकै राधा-रस घनस्याम पलै ।
ब्रज-बीथिन ब्रज-बगर द्योसनिसि मन मैं मिलन-बिचार ।
अति रसभरे खरे प्यासे मिलि अचरज प्रेम-बिकार ।
इनकी दसा कहत नहिं आवै मति-गति अति जड़ होति ।
देखत सुनत थकित जड़ जंगम चकित निहारत जोति ।
अति रसकद अमंद प्रेमनिधि राधा - मोहनलाल ।
आनँदघन ब्रजबन जमुनातट सुखसमाज सब काल ॥

राग] (८०१)

आय आय कै निकसि जात हौ मोहन मन की गह तैं ।
अति अटपटी चटपटी बातैं बनत नाहिं कछु कहतैं ।
जोगी की गति गहैं बियोगी सुरति साँस - आधार ।
जब दरसौ तब की तुम जानौ निरमोही निरधार ।
दीसि परे सब भाँति दूभरे दृग मन कौं समझैयै ।

[७६६] रहचटी=मार्ग चाटनेवाली, मार्ग देखनेवाली । [८०१] गह=पकड़ ।

बिन सूझैं बिन बूझैं हो हरि आसनि जीव जिवैयै ।
अति उदार ब्रजचंद छबीले या निबाह त्यौं हेरौ ।
बहक्यौ बह्यौ रहत ज्यौ सोचनि उरझनि आय निबेरौ ।
ब्रजबन जित तित तुम्हैं निहारैं हाथ कहूँ किनि लागौ ।
बनवारी पुकार सुनि लीजै सोवत से कहा जागौ ।
मतौ रावरो छतौ छलनि सौं ढिग बसि रहो अलग से ।
नेही ह्वै करि निबटे ग्यानी परखि परे नव नग से ।
दया लेहु तौ देहु दरस जू अरस करौ जिन हाहा ।
जीवनधन तुम बिना जियैं अब कहौ कौन सौं लाहा ।
ज्यौं बिधि बिचारौ तुमहीं सब लायक सब जानौ ।
लीला-गुन सुनि बसैं बास हूँ इतनौ नातौ मानौ ।
प्रीतम तैं परमातम ठहरे यह धुरि ही तैं ठानी ।
सोई गति लै मिलत आजु लौं प्राननि के सुखदानी ।
देखैं जियैं तिन्हैं ये बातैं कहौ कौन बिधि पावैं ।
गाथा गनैं तिहारी कौ लौं थाह न क्यौं हूँ पावैं ।
आसा कैं आबेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ ।
ब्रज-बीथिन भटकाय भली बिधि अटक-भटक मिलि जैहौ ।
हरौ सूल सुखमूल साँवरे सुंदर जग-उजियारे ।
आनँदघन इक बरन जानि कै सरस करौ दृग तारे ।
अचरज ही सौं भरे भावते सुनि सुनि बढी उमाहैं ।
आस लगाएँ अलगनि गाहैं आँख्यैं देख्यौ चाहैं ॥

सारंग] (८०२) [इकताला

ब्रज के द्रुमनि निहारि रहौं ।
इनहिं देखि जो कछु देखति हौं सो धौं कहा कहौं ।
स्याम सुजान रसिक ब्रजमोहन बैस लहलहनि बाढ़े ।
मुरली-धरैं दृगनि के उत्सव इन तर देखति ठाढ़े ।
मौरे आँब कोकिला-कूकनि लेति करेजो कोरैं ।
यह बैरिनि बसत मैं अधिकी आगम धरति मरोरैं ।

राधारंजन राधाअंजन राधाप्रीतम राधामान ।
आनँदघन राधा-हित-चातक मुरलीधर राधागुन-गान ॥

सारंग] (८०८) [इकताला

भागनि भरी जसोदा मैया मन को मोद कहौं ।
गोद लियेँ लालहि दुलरावति यह सुख देखि रहौं ।
याही के पायनि प्रसाद को लेस असेस लहौं ।
गोकुलचंद नंदनंदन को निसिदिन उदौ चहौं ।
नव सुकुमार बैस मनमोहन ब्रजजन - जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती देति पयोधर - पान ।
मुसकत पियत जियत अरु ज्यावत जननी-जिय-आधार ।
प्रबल मोह की उमँग - तरंगनि द्रवित दूध की धार ।
झाँपि लेति आँचर सौं स्यामैं निधरक सकति न चाहि ।
अतुल अगम क्यौं बरनि बताऊँ हित-गति अकथ कथाहि ।
नंदघरिनि की भागनिकाई सुत लखि कही न जाई ।
अतिलड़हूँ चिर जियौ सभागो ऐसी जननी पाई ।
नित मैया की मया मनाऊँ आऊँ देखन दौरि ।
कुलमंडन की नित न्यौछावरि पाऊँ गाऊँ पौरि ।
चहल-पहल गोपी-समाज की बालबिनोद - कलोल ।
सुख - सिहानि जसुमति हिय समझै सुनत तोतरे बोल ।
दिन त्यौहार महर के आँगन अचरज रूप निहारैं ।
मुदित महत महतोनि सबनि के मन कौं रहति सम्हारैं ।
दामोदर सावित्री को सुख लाडिलहू हटि जाचै ।
इन बातनि बडभागिनि मैया कुँवर कौतिकन राचै ।
सुत-हित-चौंप-चाय सौं भीजी आनँदघन झर लाग्यौ ।
जसुमति-कूख सदा सुख सीतल सब ब्रज हित अनुराग्यौ ॥

सारंग] (८०९) [मूलताल

हरि राधा को रस गावै, ऐसी रसना को पावै ।
कोटि कोटि कंदर्प - दर्प हू लहत न लेस गावै ।

अकथ कथा अनुमान न आवै बानी कैसैं बरनि बतावै ।
आनँदघन अभूत दामिनि मिलि अचरज ही बरसावै ।
दंपति एक कृपा दरसावै ।।

कानरो] (८१०) [इकताला

जिनके मन हरि-अनुराग रचे ।
अति रसमगन भए लीलाबस नैन स्वरूप खचे ।
ब्रजबन केलि सदा अवगाहत बोलत बचन जचे ।
जमुनातीर बास करि निहचै भावतरंग मचे ।
महामधुर रसरासि रसिकजन अनमिल सग सचे ।
सजल नैन अभिलाषनि प्यासे बिरह-बिकार रचे ।
घूमत रहत एक जक लागी मादक मधुर अचे ।
पूरे अति सूरे भ्रम चूरे पन पकि नाहिँ कचे ।
बृंदाबन आनँदघन घमँडे दुरि घुरि उघरि नचे ।
अति उन्नत पद पाय निरतर कहूँ न लोभ लचे ।।

कानरो] (८११) [चौताल।

मेरैं कौन काम हौं हूँ काम कौन की ।
नँदनंदन सौं उरझी अब तौ नाहिँन और हौन की ।
ह्वै ही गई साँपसूँघी सी सिख-बिष लागि गति गही मौन की ।
प्रानपपीहनि चौंप-चटपटी आनँदघन अचौन की ।।

कानरो] (८१२) [मूलताल

मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं, नदमहर के कान्ह अचगरैं ।
धरम धीर कैसैं धौं साधौं सुर की सग लगी हौं ।
मोहन-मूरति आँखिनि आड़ी याही तैं निसिद्यौस जगी हौं ।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ।।

परिशिष्ट

गोवर्धन-पूजन] (८१३) [झपताल

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद बृषभानु परिकर-सहित देखौ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहत यहि पूजि सब लेखौ।
कान्ह कुल-मंडन थप्यौ उथपि अमरपति प्रगट दरस्यौ देवगिरिबर सुबेखौ
आनँदघन नँदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत बिसेखौ॥

वेणु-नाद] (८१४) [जात्राताल

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे , अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे।
जब तें सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे।
अपने पपीहनि ज्याय लीजियै आनँदघन रस राखि सुखारे॥

रूप-माधुरी] (८१५) [आड़ो चौताला

नित आइबे की गैल।
रहत गाहत गहत वहियै सब समै ब्रज-छैल।
लखी बारक कोऊ निकसत बदन आभा फैल।
चाँपि चोप चकोर की, चख भए रूप - अरैल।
अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति - ऐल।
मुरलिका कल बिकल धुनि की, जाति समझि हठैल।
जो कछू जिय रीझि भीजी दूरि करि हठ मैल।
उघरि मिलि आनंदघन सौं कौन की सु दबैल॥

दानलीला] (८१६) [रामकली, इकताल

गोरस जौ चाहै तौ दीजियै जो रस चाहै सोऽब दियौ क्यौं जाय।
देखि बिरानी धरोहरि पै मन बहकावै ऐसो ढीठ न काहू सकाय।
औरनि लौं मो हूँ सौं उरझत नित-नित कैसैं निबहियै हाय।
आनँदघन रसबादनि घमड्यौ कोऊ काहू दिन देहिगी समझाय॥

८१५—कोऊ—कहूँ (वृंदा०)। ८१६—काहू—कान्ह (सतना)। देहिगी—दैहैगी (वृंदा०)।

[८१५] अरैल=अड़नेवाले। ऐल=अधिकता।

(८१७) [मूलताल

बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि साखौंगो ।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब दैहै जोइ जोई अभिलाखौंगो ॥

(८१८) [जात्राताल

रहौ जू रहौ गहौ आपनी गैल भए रसिया दान के ।
ओटपाव के दाव चाव रचि घेरत हौ अबलानि आनि भरे जोबन गुमान के
बढि बढि बोलत ऐड़े डोलत लोभी हौ रसपान के ।
आनँदघन रसबादनि उनए मिस ही मिस ढिग ढूके आवत गिधए आन के

विरह-सदेश] (८१९) [मूलताल

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसौं कहा कहियै ।
तिहारी औसेरनि कैसैं सहियै मनहिं मसोसनि गहियै रहियै ।
तुमहिं न सोच कछू काहू को जाहि लगी जानति है वहियै ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तब अब यौं दुसह परेखनि दहियै ॥

खंडिता] (८२०)

छाडौ जू तुम छाड़ौ मेरी बाँहा ।
भोर भएँ रसबाद करन कित आए मोसौं हाहा ।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहूँ सरसे काँहा ।
तहीं जाउ जहाँ पायौ है नयो लाहा ॥

(८२१) [आड़ो चौताला

गोरे बदन बिथुरे केस ।
रैन जागे मैन-पागे नैन अरुन सुदेस ।
मृदु कपोलनि पोक-लीकैं भाल स्रमकन-लेस ।
मुदित आनन-कांति पर बलि करौं नव राकेस ।
अंग-अंग प्रति भीर छबि की, बनौ सहज सुबेस ।
निरखि दुति आनंदघन-दृग भयौ चैन बिसेस ॥

८१९–तारे–ढारे (वृंदा०) । ८२०–छाडौ जू–हौंहाँ जू (वृंदा०) ।
८२१–नव–बहु (वही) ।

वियोग-व्यथा] (८२२) [रूपताल

ढरकि ढिग आवौ लाल ढरारे मोहन स्याम उज्यारे ।
दूर भजँऊ भजति भाव तैं क्यौं हित बोलि बिसारे ।
मन उरझ्यो हो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै चातक - प्रान बिचारे ॥

उपालंभ] (८२३) [तालयात्रा

जमुना - तीर की बातैं ।
सालति हैं हियैं स्याम उज्यारे सरद की रातैं ।
को जानत हो ऐसैं करौगे ब्रजमोहन घातैं ।
आनँदघन रस - रीझनि भीजे कहियत है यातैं ।

नयन-बाण] (८२४) [चौताला

मृगसावकनैनी री तैं कृस्नसार नंदकुमार मोह्यौ ।
गोहन लयौ लगाय लगौंहीं मदन-पारधी की भेदनि
ललचौंहीं अँखियन जोह्यौ ।
बृंदाबन जमुना के तीर हरियारो ठावँ तहाँ टोह्यौ ।
आनँदघन हित पारि छंद-फँद बिषम बान सौं मरम पोह्यौ ॥

यमुना-महिमा] (८२५)

सरस दरस जमुना को पाएँ परम प्रेम-परस पाइयै ।
भाव - लहर - बढ़वारि होति हिय राधामोहन गाइयै,
अपूरब रस मैं न्हाइयै ।
बृंदाबन सोभा की सीमा थकि थकि याही कौं धाइयै ।
आय तीर सब पीर बहाइयै आनँदघन छाइयै ॥

विरह-संदेश] (८२६) [तालजात्रा

लागी है रे निरमोहिया तोही सौं जिय की लाग ।
घर मैं बैठि कहाँ लौं साधौं या बिरहा - बैराग ।
अब तौ सब डर डारि सदा सँग बिहरौंगी बन-बाग ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन उचित न क्यौं हूँ त्याग ॥

पूर्वराग] (८२७) [इकताल

जमुना-तीर कान्ह डोलै हे। भेदभरी बाँसुरी पै मोहिं बोलै हे।
सासु - डरन साँस भरौं छतियाँ छोलै हे।
प्रान प्यासे आनँदघनहिं मिलवै को लै हे॥

निर्मोही प्रिय] (८२८) [तालजात्रा

कहा बनि आई रे जियरा! तोहि करि निरमोही सौं मोह।
अब तौ आनि परयौ कितहूँ तें बैरी बीच बिछोह।
काहे कौं पछितात परेखनि तें ही कियौ अपनो हित टोह।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुबक तू लोह॥

मुरली-माधुरी] (८२९) [मूलताल

सुधियौ न रहै तन की तनकौ मनकौ मुरली की सुनत ही कान।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान उत चाहत चलि जान।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि ससकत न सकत उठि, मगन-गान।
आनँदघन पिय को मिलन अभिलाखत सुर-बिमान चढ़ि कौन
सुकृत-अभिमान॥

खंडिता] (८३०)

तिलक महावर को अति सोहै।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हूँ तें मोहै।
मूड चढ़ाय लई अनुरागिनि अब ताकी पटतर कौं को है।
ऐंड़ि भाग उनयौ आनँदघन उघरी परत अहो है॥

दधिदान] (८३१) [रूपताल

ऐंड़ी ऐंड़ी सिर धरैं दहैंड़ी।
अब सब दिन को दान कान्ह को देत बनै है लखि पाई गिरि-छैंड़ी।
रूखी परिखत रीति ग्वारि कित बहुत बार यौं गई अमैंड़ी।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मचिहै दधि की उरैंड़ा-उरैंडी॥

[८३०] बानिक=सजधज। पटतर=समता। ऐंड़ि=ऐंड़ाकर अर्थात् भली भाँति। उघरी०=रहस्य की बात उद्घाटित हो रही है। [८३१] ऐंडी=अभिमान से टेढ़ी। दहैंड़ी=(दधिभांड,) दही की मटकी। छैंड़ी=घाटी,उपत्यका। अमैंड़ी= मर्यादा को न माननेवाली। उरैंड़ा=(उलेड़ना) अभिमान से बलपूर्वक गिरा देना।

प्रेम की रहन] (८३२) [चौताल

नेही सो बिदेही और जग माँझ कौन है ।
बिरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,
नाहीं कछु कहै जाके सम बन भौन है ।
जीवत अदृस्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौं यह लौन है ।
बृंदाबन - प्रभु प्यारो बस्यौ रहै नैनन मैं,
देखन कौं बावरो सो भयौ फिरै मौन है ॥

मन की बात] (८३३) [इकताला

मन की बात नहीं जानै री, जब तें देखे मोहन सोहन स्याम ।
कैसैं रहौं कहौं अब कासौं को अब मानै री ।
उर अरि रही रसीली मूरति प्राननि छानै री ।
चातक - रट लागी आनँदघन पानै पानै री ॥

रूपमाधुरी] (८३४) [रूपताल

मोरचद्रिका सीस धरें यह साँवरो चेटक है धौं को ।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पन लै निबहै धौं को ।
फिरि याकी मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौं को ।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौं को ॥

बिरही कृष्ण] (८३५) [मूलताल

राधा राधा दीसै स्यामैं घर राधा बन राधा ।
चायनि भरि गायनि लै निकसत दुरि मिलिबे की साधा ।
ब्रज बसि कैसैं बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा ।
आनँदघन चातक लौं जीवत रसबस प्रान समाधा ॥

[८३२] बिदेही = देहाध्यासशून्य । जीवत० = अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएँ खाता है, पर उनका स्वाद नहीं जानता । [८३३] अरि=अड़कर । छानै=बाँधती है । पानै=पानी । [८३४] चेटक=जादू । धौं को=न जाने कौन । अनेरो=अनोखा । [८३५] साधा=उत्कठा । समाधा=समाधान ।

(८३६)

मजन करि कंचन - चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरौ ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरौ ।
लाल-जटित बर भाल सुबैंदी कछुक रह्यौ फबि माँग सिंदूरौ ।
आनँदघन प्यारी - मुखछबि पै वारौं कोटि सरद - ससि पूरौ ॥

यमुना-महिमा] (८३७) [राग टोड़ी

क्रस्न-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस
परस सरस करत हिय नैननि बैननि ।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि ।
बृंदाबन बिनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि ।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमँडि घमँडि बसत
लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि ॥

मोहन-रूप] (८३८)

तेरो लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे ।
ब्रजमोहन रस - भीनी मूरति लगति प्यारी रे ।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे ।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकबिहारी रे ॥

उपालंभ] (८३९) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिद लगी बे तैंडी नाल ।
वेखणी कारण तपदी बे कान्ह वेखि असाडे हाल ।
तुझ लग मैंडा कुझ बस नाहीं चलदी ज्यौं भी त्यौं भी करी बे बेहाल ।
आनँदघन हुण बदियाँ बिचारियैं यौं जानी वे तुसाडे ख्याल ॥

८३९-लग-गल (सतना) ।

[८३६] चूरौ=कलाई पर के कड़े । बैंदी=माथ पर पहना जानेवाला गहना । [८३७] ऐन=अयन, घर । [८३८] वारियै=निछावर होना ही । जियारी=जिलानेवाली । [८३९] निमाणी=मनमानी करनेवाला । बेखणी०= आपके दर्शन के लिए । तपदी=तपती हूँ । वेखि=देखो । असाडे=हमारे । मैंडा= मेरा । कुझ=कुछ । हुण=अब । बदियाँ=दासियाँ । तुसाडे०=तेरे विचार ।

गोपिका-प्रीति] (८४०) [इकताला

गोकुल की नारि नवल अनुराग-भरी रहैं स्यामसुंदर
देखन कौं दिनदिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवतिं जियतिं आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीं।
इनको सुख येई पै समझतिं रहि न सकतिं उन देखे बिन हीं।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं॥

पूर्वराग] (८४१)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखें नहिं चैन सखी री निसदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

कनड़ी बिलावल] (८४२) [मूलताल

बंसी बजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति हो सो ही इकौसैं औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय पर्‌यौ है जैसैं भँवरै जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघनताननि बिष बाननि बरसैया॥

(८४३)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लै भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि पर्‌यौ ब्रजमोहन ठाढौ गहैं तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनँदघन ये पनघट के हाल॥

वेणुवादन] (८४४) [राग कान्हरो

कहा बिष घोर्‌यौ है बँसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसबादी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौं करि देख्यौ कसु री मैं।

८४३–गहैं–उठेंगि (सग्रह)।

[८४१] कुहुकि=चिल्लाकर। [८४२] इकौसैं=एकांत में। गहर=गहराई।
जाजरी=टूटी-फूटी।

एक गाँव बसि कैसैं भरियै कठिन कसक पँसुरो मैं।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लैहौं यह जसु री मैं॥

पूर्वराग] (८४५)

बनबासी कान्हा चित्त चढ्यौ री, तातैं मोहिं घर-अँगना न सुहाय।
सुधि बुधि सोधि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवै घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलैं बनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय॥

कानड़ा बिलावल] (८४६) [मूलताल

रंगी साँवरिया तेरी बनक न बरनी न जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन घाली आय।
रहि न सकौं मिलि सकौं न घर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचति रहौं कछु न ठिक ठहरै अरु कछुवै न बसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जनि तरसाय॥

वेणुवादन] (८४७)

बैन बजावै बनमाली अरी हौं कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोहन पर्यौ सखो ब्रजमोहन ताननि बेधत मरमैं।
कैसैं रहौं कहाँ लौं साधौं टारत धीरज - धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (८४८) [राग कान्हरो

कहि सुघर सनेही स्याम मिलगे कब री।
हेली, मेरो जियरा ब्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत ह्वै निकसे जब री।
कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।
उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझी लै मिलि काहू ढब री॥

८४६–जनि–जिय (सतना)।

[८४४] कसु=खींच-तान। भरियै=सहूँ। [८४६] घाली=आघात किया। [८४७] मरमैं=मर्मस्थल। झरसति=झुलसती हूँ, जलती हूँ। [८४८] दब=दाब। भरम=भेद, रहस्य। ढब=ढंग, तरीका।

उपालभ] (८४९) [राग कान्हरो

निमाणियाँ दी बस्ती, वो होवे चंगी रहै, तैंडो जान ।
ऐसी बे तुसाडे दरस-भिखारी, होबे सौदा दस्त-ब-दस्ती ।
तैंडे बे कारणाँ फिरणे दिवाने हुसन-परस्त अलमस्ती ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे तलब दी मस्ती ॥

पूर्वराग] (८५०)

जेमन करिया कान देखि, सेई करिबो, प्रान-सखी बिसाखा
बिनती मनैं धरिबो ।
बाँसी-धुनि सुनि सुनि आछै बिकार, मदन-अनल जाला अंतर मझार ।
स्यामे रम रम कथा बूझिते ना पारी, आनँदघन ब्रजमोहन बिहारी ॥

राग कानड़ी बिलावल] (८५१) [मूलताल

हो जो साँवला थे तो भला बिलमाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी बाट डीकाँ थे ओठे झर
लाया, नहीं आया, परचाया ॥

पूर्वराग] (८५२)

एक ही बगर बसत बनमाली पै मेरी आली आँखि लौं आँखि न दीसत ।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक बधिकहू तें प्रान परेखनि पीसत ।
निकट आय मनभायो करत किन, दूर तें क्यौं बिष - सरनि कसीसत ।
आनँदघन सब बिधि वे सुखी रहो निसिदिन जात असीसत ॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (८५३) [सारग, झपताल

गिरिराज-कदरा-मंदिर अमद अति मदार-तरुबृंद-आबृत बिराजै ।
सुख-सेज सौरभ सकल सौंज अनुकूल अनुचर-निकर बर प्रमाद सौं साजै ।

८४९—चगी—बगी (सतना) । ८५०—सुनि०—सुनिबो या छबिकारी (सतना) । जाला०—जातौं अतर मा डारी (वही) । ८५१—बिलमाया—बिष बसाया (सतना) ।

[८४९] बस्ती = रखेली । दस्त० = हाथोहाथ । हुसन० = प्रेम साधक । अलमस्ती = मौजी । तलब० = नशे की । [८५०] जेमन० = जिस प्रकार कृष्ण को देखूँ वही करूँगी । बूझिते० = समझ नहीं सकती । [८५१] थे = आप । ऊभी = खड़ी । बाट० = मार्ग जोहती हूँ । ओठे = वहाँ । परचाया = वहीं परच गए । [८५२] कसीसत = खींचते हैं ।

कृस्न बृषभानुजा-संग बिहरत जहाँ समै-रुचि साधि कै करत हित-काजै ।
जयति गिरिनाथ ब्रजनाथ-हिय हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजै ॥

बृंदादेवी-स्तुति] (८५४) [सारंग, चौताल

बृंदादेवो बृंदाबन-सेवी राधा-मोहन की हितकारिनि ।
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए बिहारी-बिहारिनि ।
मोहिं मिली महामगल-स्वामिनि निज बनबास-आस-पन-पारिनि ।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनैं प्याऊ सब ही
बिधि है अतर की ताप निवारिनि ॥

वेणुवादन] (८५५) [सारग, चौताला

निकसि निकसि मन तन तैं बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा बनि आई ।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत नाहि रहाइ यौं बौराई ।
घर मैं रहै कहा याकौं घर बन ठहरयौ सासु ननँद न्याय रहत रिसाई ।
आनँदघन - हित अँसुवनि भीजी सोचनि सूखति मेरी माई ॥

चेतावनी] (८५६) [पूरबी, झपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है ससार ।
हरिचरनन चितवन करि निरंतर जिन ही लावै बार ।
छिनहीँ छिन जात बै बीति यौं चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार ।
आनँदघन - चरित अमृत - रसधार करि पान ह्वै अमर निरधार ॥

पूवराग] (८५७) [इकताल

गुजरिया गुपाल के रंग बीधी गोहन लागियै डोलै ।
करति नहीँ कुलकानि तनकहूँ जोबन-रूप-छकी सु गुमान भरियै न बोलै ।
ज्यौं ज्यौं चलत चवाव चहूँ दिसि त्यौं ही त्यौं रस-सिधु कलोलै ।
आनँदघन मुखचद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारै अनि अनुराग अतोलै

८५६-लावै०—लगावै पार (वृदा०) । ८५७—रग-गुन-(वृंदा०) । सु—अतिहि । अति—उर (वही) । अतोलै—हितोलै (सतना) ।

[८५३] मदार=कल्पवृक्ष । आवृत = घिरा । सौंज = सामग्री । निकर=समूह । समै०=समयानुकूल । [८५६] सार=तत्त्व । जिन ही०=देर मत कर । बै=वयस् । [८५७] गुजरिया =(गुर्जरी) गोपी । बीधी=(बिद्ध) रँगी । कलोलै =लहराती है अर्थात् स्नान करती है । तोलै=अर्थात् साधती है ।

नयनोक्ति] (८५८) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखैं बिन न रहति।
सब मिलि देत बहुत बिधि सिख सखी ये अमैड तनकौ न गहति।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति।
आनँदघन रस भीजी रीझी औसेरनि जल बहति दहति ॥

विरह-व्यथा] (८५९) [राग सारग, तालजात्रा

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन बल ना।
घर-अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना॥

पूर्वराग] (८६०) [मालव, मूलताल

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैं।
लाल गरथारैं बोल सुनायौ प्रान परे अरबर मैं।
निपट अटपटी पीर सखी री को पावै या मर मैं।
आनँदघन ब्रज रस-झर लायौ हौं ही बिरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (८६१) [गौरी-ईमन, रूपकताल

आई री बहुरि दुखदाई साँझ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तैं बनत बनवारी सौं अब
ताहू मैं परी है लाँझ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सौं भाँवरि भरत गलीनि माँझ।
छाँह - छिवन दूभर आनँदघन इतर देहरी करत झाँझ॥

वेणुवादन] (८६२) [राग गौरी, इकताल

मुरली मैं कौन ठगौरी है।
स्रौननि सुनी तनक भनकौ जिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है।

८५९–छिन–पल (वृं दा०)। ८६१–इतर० = लूतर डहीली (वृंदा०)।

[८५८] अमैड़=मर्यादा को न माननेवाली। न चहति=नहीं देखती। औसेर=प्रतीक्षाजन्य पीड़ा। [८६०] गरथारैं=गली मैं। अरबर=मुश्किल। बिरहा = विरहाग्नि। [८६१] लाँझ = (लघन) बाधा। छिवन=छूना। दूभर= कठिन। इतर=और, प्रिय। देहरी=देहली के पास, निकट ही। झाँझ=शोर।

उठि उठि चलत न रहत भवन दृग लागी देखन की ढौरी है ।
आनँदघन पिय की प्यारी यह हम ही सौं अति खौरी है ॥

चेतावनी] (८६३) [राग गौरी, इकताला

मन ! बन तैं बाहिर जिन जाय ।
राधा-हिलन-मिलन-सुख स्यामहि पुरवत यहै बनाय ।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तैं निपट सहाय ।
तरु-तरु लता-लता मैं दरसत भरयौ सुदंपति-भाय ।
याही मैं भाँवरी भरयौ करि बिनवत हाहा खाय ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि रस लै प्यास बढाय ॥

बन-बिहार] (८६४) [गौरी, इकताल

गोकुल घाँ के ग्वार, डगर बताइ रे हौं भूली ।
बिछुरि परी सहचरिन संग तैं डोलत बन किलकाइ रे ।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे ।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दीनी गैल जताइ रे ॥

रूपमाधुरी] (८६५) [तालजात्रा

अरे अरे साँवरे तैं, कहा टोना कीनौ ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक बदन रँग-भीनौ ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन तो पर सरबसु वारनै दीनौ ॥

प्रेम-मिलन] (८६६) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया ।
खरी पियासी आँखडियानूँ जीय-जियावन दरस दिया ।

८६४–किलकाइ–बित जाइ (वृंदा०) ।

[८६२] ढौरी=धुन । खौरी=बुराई । [८६३] बन=वृंदावन । पुरवत=पूरा करता है । बनाय=भली भाँति । निसि तैं = रात होते ही । सहाय=सहायक । हाहा खाय=दीनता दिखाकर । [८६४] घाँ के = ओर के, वाले । किललाइ= चिल्लाकर । [८६५] गौरी०=गौडी रागिनी बजाते ही । घूमरे=नशीले ।

उमरदराज गरीबाँ दी बस्ती कीती महर सवाब लिया ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरबानी मुख वेखि जिया ॥

उपालभ] (८६७)

घनस्याम पियारे ये बातैं ।
मन औरैं मुख और बतावत छाँडत नाहिं कपट की घातैं ।
काहू पै दिनहीं झूमत हौ काहू पै त्यौं बितवौ रातैं ।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैं का तैं ।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हौ तातैं ।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम ही मँडरातैं ॥

श्रीराधा-चरण] (८६८)

मृदु तरवनि मैं लसति ललाई ।
झमकि जहाँ पग धरति लाडिली मनहु अरुनता आनि बिछाई ।
महा रुचिर बर गोरी गुलफनि मुक्तावलि फबि रही सुहाई ।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई ।
जगमगि रह्यौ सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई ।
नवल अग की मजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई ।
बिबिध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई ।
तब की कहा कहौं आनँदघन जब पिय-सँग निर्तति सुखदाई ॥

(८६९) [मूलताल

तिहारी बतिया उघरि परो,
हाँ हो स्याम उज्यारे काहे कौं सौंहैं खात ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागी अनत झरो ।

८६८—झल०—जगमगात (बृदा०) । पै—पुनि । अग—नखन (वहीं) । नवल—रुचिर (सग्रह) ।

[८६६] खरी=अति प्यासी आँखों को । उमर० = लंबी उमरवाले । गरीबाँ=गरीबों की बस्ती पर । कीती=की । महर=कृपा । सवाब=पुण्य । कुरबानी = निछावर हूँ । [८६७] का तैं=किससे । [८६८] गुलफ=एड़ी के ऊपर की गाँठ । न्यास=पैर रखने की क्रिया । लेत० = बलिहारी लेते हैं । निर्तति=नाचती है ।

(८७०) [सोहनी ताल

जिंद निमाणी ! तपदी, सौंहैणा मुख वेखलामी जानी ।
ब्रजमोहन बे-परवाह गुमानी वो वो वो तैंनूँ तैंनूँ तैंनूँ जपदी ॥

नयनोक्ति] (८७१) [पूरबी, धनाश्री

देखन को फल हो मोहन देखैं ।
नातर खुला मुँदी ये कैसो आँखैं कौन धौं लेखैं ।
कहा तिलौंछैं पौंछैं अँगौंछैं रचि काजर की रेखैं ।
आनँदघन ब्रजनाथ दरस बिन भीजी बरति परेखैं ॥

गो-दोहन] (८७२) [हमीर, रूपताल

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार ।
हाथ दोहनी देत लेत धीरज न रहत फिरि हाथ ।
नई हिलग की चोप-चटक-बस चितवनिही मैं भरत बाथ ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ ॥

मातृस्नेह] (८७३) [हमीर कल्याण, इकताल

जसोमति आरती उतारै उमगि आपनो ज्यौ वारै ।
चित चढि रही ललन की बन तैं गोधन लै घर-आवनि,
अति आरति सौं बदन निहारै ।
लै बलाय, आँचर मुख पौंछति प्रेम-पुचकरनि बरसति प्यारै ।
दूधनि भरी सपूती या बिधि आनँदघन-हित कान्ह पर्यौहै पारै ॥

ब्रजदूलह] (८७४)

झुरमुट लाग्यौई रहै नित नँदरानी के आँगन ।
ब्रज की नवल बधू रँगभीनी, मोहन स्याम चितै बस
कीनी, आवत मिस लै लै कछु माँगन ।

८७२–लेत–लौंहआ–(सग्रह) । ८७३–आपनो०–आपनपौ (वृंदा०) ।

[८७०] जिंद = जिंदगी । सौंहैणा=प्रिय । वेखलामी=दिखलाओ । तैनूँ=तुझको । तिलौंछना=तेल से चिकनाना । अँगौंछना=गीले कपड़े से पौंछना । [८७२] बाथ=अँकवार । खिरक=गाय बाँधने का स्थान, गोठ ।

कौ लौं दुरति सरक सनेह की हियरा बिध्यौ बिषम सर-साँगन।
दिन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, बँध्यौ
परम पन काँगन ॥

(८७५) [मूलताल

नैना तरसत हैं, पिय - मूरति देखन कौं।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उघरे बरसत हैं।
लोक-लाज त्यौं तनक न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन-हित प्रान - पपीहा पल पल तरसत हैं ॥

प्रेम पीड़ा] (८७६) [इकताल

कठिन हिलग की पीर दैया कासौं कहियै।
बिन देखैं मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैं दहियै।
नित जित तित छूछे चवात्र सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहिय।
आनँदधन पिय सौं जु भैंट तनकौ कहुँ होइ तौ कहा चहियै ॥

(८७७) [मूलताल

भट्ठू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौं अरु वाकी
सी वाही सौं कपट अटपटी बतियानि ठानै ॥

(८७८) [भूपाली

तिहारे देखे बिना मैं कैसें भरौं दिन-रतियाँ।
वैसें मिलैं क्यौंऽब अनमिलैं तुम्हैं जो किये बिरह छत छतियाँ।
काहे कौं मन मोहि लियौ तब कहि कहि कै हित - बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी वैलतियाँ ॥

८७४–बिषम–बिवस (सतना)। परम०–परसपर (वही)। ८७६–नित०–जितहि तितहि (बृंदा०)। ८७७–भट्ठू–बधू। इतौ–मिता (वही)। ८७८–इतहू०–इत बरुनी (बृंदा०)।

[८७४] भुरमट = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [८७८] वैलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')।

लखिता] (८७९) [ईमन, मूलताल

अनखि अनखि ज्यौं ज्यौं बोलै री लड़ीली त्यौं त्यौं
मोहिं लगति अति नीकी ।
मो सी मनमेलू सौं, रूखी परति अचगरी निपट पुढ़ाई ही की ।
हौं तेरे नैननि बैननि ह्वै समझति सब जु कसक है जी की ।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई रिझई तू सुधि
करि लै सीबी की ॥

युगल-जोड़ी] (८८०) [ईमन, इकताल

कान्ह है गोकुल को, राधा बरसानेवारी ।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस बिरचि-सँवारी ।
धुर की लगनि लगी अति गाढी बाढी चोप-चटक जो प्यारी ।
नवल नेह रस - झर आनँदघन लाग्यौइ रहत सदा री ॥

पूर्वराग] (८८१) [ईमन, इकताला

लालची नैन हमारे देखेँ बिन न रहैँ ।
अपनो सो बरजति बहुतेरो ये तनकौ न गहैँ ।
मन हरि - हाथ दियौ लै इनहीँ अटपटि चोप चहैँ ।
आनँदघन रस चाखि बस भए सबके बोल सहैँ ॥

पूर्वराग] (८८२) [ईमन, जात्राताल

अणी मिठबोलणा यार निमाणी दा ।
इत बल आँवदा कूक सुवणाँवदा महरम-हाल दिवाणी दा ।
मुरली बजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ - बिकाणी दा ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ बदी कुरबाणी दा ॥

८७९–पुढाई–खुटाई (सतना) । ८८०–बरसाने–रावल (वृंदा०) ।

[८७९] लड़ीली=लाड़िली, आनबानवाली । मनमेलू=मन मिलानेवाली, हितू । अचगरी=छेड़छाड़ । सीबी=शीत्कार, सी सी । [८८०] धुर की=चरम सीमा की । [८८१] बोल=बात, व्यंग्य । [८८२] अणी=अरी । बल=ओर । मरहम-हाल० =मुझ दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है । प्यारिया=प्यारा ।

(८८३) [ईमन, मूलताल

तू की जाणदा बे हाल निमाणिया ब्रजमोहन आनँदघन बेपरवाह।
ताती बात न लागै तैँनूँ प्यारे बुरी बे गरीबाँ दी आह वाह वाह॥

(८८४) [ईमन, चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं बनवारी।
स्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौँ वारी।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति दसौ दिसा अँधियारी।
आनँदघन रसपान करन हित चित चातक-ब्रतधारी॥

पनघट-लीला] (८८५) [ईमन, रूपताल

ए गागरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै।
दीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तैं नहिँ चैन बितै।
बीर कहा कहौँ पीर मरम की चितवनि मैं कछु गयौ चितै।
अब आनँदघन पिय सौँ मिलौँ, ज्यौ सुख पावै ज्यौँ इतै॥

पूर्वराग] (८८६) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखैँ रह्यौ न जाय।
सुंदर बदन - सुधा - पान चसकैँ चख रहे लुभाय।
कहियै कहा महा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय।
प्यासे प्रान रहत चातक लौँ आनँदघनहिँ मिलाय॥

पूर्वराग] (८८७) [तालजात्रा

तुमी सनु मोर मनुवा है, लागि रहिलौ ललना।
रूप-उजियारे निहारे बिना सु परै निस - द्यौस कल ना॥

अभिलाष] (८८८) [कान्हरो, चौताल

मोकौँ सरन रहौ राधे ये चरन तेरे लहौ मन-नैन इनहीँ मैं बसेरे।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय - मन चोपनि एकटक हेरे।

८८६-रहत-रचत-(वृ दा०)।

[८८३] की० = क्या जानता है। ताती० = गरम हवा। गरीबाँ० = गरीबों की आह बुरी होती है। [८८५] आई० = धैर्य खो आई। नहिँ० = चैन नहीं है। ज्यौ = जी, जीव।

परसन कौं तरसत रहत नागर भागनि बल अभिसरत सु नेरे ।
आनँदघन श्रीबृंदाबन - अवनी - मंडन जीवन - धन हैं मेरे ॥

पूर्वराग] (८८९) [कान्हरो, मूलताल

स्याम सलोने सौं दृग अटके रोके रहत न घूँघट-पट के ।
रूप - रसासव छके न मानत बहुत भाँति हौं हटके ।
मोहूँ अपबस किये नचावत गोहन मोहन नागर नट के ।
आनँदघन इनकौं सिख ऐसैं जैसैं तुष लै फटके ॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (८९०) [सकराभरन, मूलताल

बृषभान - कुँवरि के चरन सरन - अभिलाषा - भरन ।
सीतल-सुखद रसिक-मनरजन कंज न ऐसे लसत बरन ।
श्रीबृंदाबन-अवनी-मंडन रास-बिलास-न्यास-गति-बितरन ।
आनँदघन कौं रसद बिसदबर सदा बिराजौ अभयकरन ॥

स्वादी लोचन] (८९१) [नायकी, चौताल

लोचन स्वादी हैं छबि - रस के ।
देखि देखि पिय - मुख सुख पावत त्यागी पलक - परस के ।
ताहो मैं मुसकनि - आसव छकि नाहिं रहे मो बस के ।
क्यौं कुलकानि करैं आनँदघन जिनहिं परे ये चसके ॥

अभिलाष] (८९२) [मूलताल

देखन न दैहौं काहू कौं हौं आपने लाल पियारे को हौं ।
पलकनि सपुट करि राखौंगी रूप - उज्यारे को हौं ।
निधरक देखि न सकति दीठि डरि रहि रहि निकम्मति हारे को हौं ।
आनँदघन रसमूरति ब्रजमोहन गुन - भारे को हौं ॥

८९०–बरन–सरन (सतना) ।

[८८९] रसासव = आनद का आसव (शराब) । हटके = मना किया । अपबस = अपने वश में । तुष = धान की भूसी । [८९०] सरन० = शरणागत की । न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) मोक्ष देनेवाला है । [८९१] त्यागी० = पलकों का स्पर्श त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं । चसके = टेव, अभ्यास । [८९२] हारे० = विवश होकर ।

गिरि-धारण] (८९३)

आजु गिरि धारयौ हो ब्रजराज के लला ।
कहि न जात छल-बल की निकाई छबीली छिगुनी-छोर छाजै ज्यौं छला ।
कछू न काहू को गयौ ब्रज नीकें राखि लियौ भई है सकल बिधि भलो भला।
अतिही चकित भयौ आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला॥

प्रेम-घन] (८९४) [इकताल

उघरि उघरि मो हियें बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा ।
ब्रजमोहन नवरंग छबीले तिहारी बातनि घातनि कौन छेहरा ।।

जन्म-बधाई] (८९५)

आजु बधावन, सुंदर बन घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे छेरवा।
उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस राखिलौ नेह - मेहरवा ॥

स्मरण] (८९६) [केदारो, चौताल

तुम कौं जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं, तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम ।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि बिरह - खोंप सीवत हैं ।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं ।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-बस प्यासन ही पीवत हैं ॥

प्रभावुकता] (८९७) [केदार, मूलताल

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि बोलनि गावनि ठगौरी ।
सब ही भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी ।
छिन-पल कल न परति बिन देखें लगिय रहति निस-दिन यह ढौरी ।
चख-चातकन की तपति तबहिं तौ मिटै आनँदघन पिय दरसैं
बरसैं कहुँ जौ री ॥

[८९३] छला = छल्ला, अँगूठी । कला = विद्या । [८९४] नेहरा० = स्नेह का बादल, आनदघन । छेहरा = अत । [८९५] बधावन = बधाई, जन्म-बधाई । अइलौ = आए । छेरवा = बच्चा । रखिलौ = रखा । नेह० = प्रेम का बादल ; आनदघन । [८९६] सुरति = सुध । टोहि = खोजकर । खोंप = फटा अंश, चीर । पलक० = निर्निमेष, रहते हैं ।

वेणुवादन] (८९८) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगाएँई डोलै ।
कहा करै बपुरी ब्रज - अबला, गरब - गाँठि गहि खोलै ।
धुनि सुनि और होति थिर चर गति, भोरी बिचारिनि की मति कोलै ।
आनँदघन हू भिजए रिझए क्यौं न बोल बड़ बोलै ॥

(८९९) [मूलताल

मुख मुरली मैं केदारो कैसैं गावै ।
जैसी जैसी जीव आवै तैसी तैसी तानि भौंह दरसावै
दृग-बिलास देखैं भावै ।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहुवै रिझावै ।
आनँदघन देखत ही भीजी तू जानत है चित के चावै ॥

रासलीला] (९००)

रीझनि बिबस भए रसरगी मोहन राधा के गावत
हो रस - रास मैं ।
सुरसबाद मन मोय गयौ मति-गति बिथकी नैननि संग
आछे मुख-उजास मैं भौंहनि बिलास मैं ।
ऐसे रिझवार की मोहिं बलैया लागौ या समैं ।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमँडि घमँडि हुलसौ
बिलसौ बृंदाबन जमुना-पुलिन प्रकास मैं ॥

प्रवास-विरह] (९०१) [केदारो ख्याल, तालजात्रा

मारौ गरजि गरजि घन ! मारौ जिया डरावौ
प्रीतम प्यारे बिना मैं कैसैं भरौं हौं ।
तैसियै निसि अँधियारी कारी तैसियै सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं ॥

९००–बाद–बदन मोय गई (सतना) । की–वारि (वही) । ९०१–जिया–हो (सतना) ।

[८९८] कोलै = विह्वल हो जाती है । [८९९] केदारो = एक राग । [९००] उजास = उजाला । पुलिन = तट ।

मानमोचन] (९०२) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहौं, ढीले ढीले ॥

याचना] (९०३) [आड़ चौताला

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-सग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम - समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग को कछु कहि न आवत बात।
बिबस आनँदघन-घमड मैं सुधि न रजनी-प्रात ॥

रूपदर्शन] (९०४) [बिहागरो, आड़ इकताला

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाडिलो की छबि मोहै चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमान भाग-निकाई दृगनि चहै ॥

सघट्टन] (९०५) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रबीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुज-गलियै जू।
आरति समझि गहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू ॥

९०२–कसि०–स्यामा करि लै अपने मन भाए (बृंदा०)। ९०३–बिबस–बसे (बृंदा०)। ९०४-मोय०–भोय भोय (बृंदा०)। ९०५–निहारत–नापत (बृंदा०)।

[९०३] अभंग=अखड। [९०४] मोय=भींगकर। गहर=गहराई। मिति=थाह। [९०५] नाखत=डालते हैं। आरति=उत्कंठा। गहर=देर। अलियै=सखी ही। रलियै=क्रीड़ा ही।

जिज्ञासा] (९०६)

हौं तुम सों एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरैं हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(९०७) [तालजात्रा

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौं बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौं आसा-खेत॥

युगल छबि] (९०८)

मेरी आँखिन सुख दैबो करौ रगभरी जोरी।
स्यामसुदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।
यहै सुरूप यहै जोबन धन यही रसीली बातैं।
यह बृंदाबन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमडि सदा रस-सपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसँई दरसौ॥

प्रियागम] (९०९

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया, रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
ब्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया॥

९०८-जोबन० गोबरधन (सतना)।

[९०६] अंतरपट=वस्त्र, परदा। नेह०=प्रेम बाँधते हो, करते हो।
[९०७] ढरारे=ढलनेवाले। अंत०=प्राण क्यों लेते हो, मारते क्यों हो।
सींचौ=सींचा हुआ। [९०८] कौतिक=कौतुक खेल। दरसौ=दि ाई दे।
[९०९] अहोणी=हे सखी। ढोलन=दूल्हा। रब=ईश्वर। कीता=किया।
साडे०=हमारा मनचाहा।

मानमोचन] (९०२) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहौं, ढीले ढीले ॥

याचना] (९ ३) [आड़ चौताला

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम - समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग को कछु कहि न आवत बात।
बिबस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात ॥

रूपदर्शन] (९०४) [बिहागरो, आड़ इकताला

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िली की छबि मांहै चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दृगनि चहै ॥

सघट्टन] (९०५) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रबीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुज-गलियै जू।
आरति समझि गहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू ॥

९०२–कसि०–स्यामा करि लै अपने मन भाए (वृदा०)। ९०३–बिबस–बसे (बृंदा०)। ९०४-मोय०–भोय भोय (बृदा०)। ९०५–निहारत–नापत (वृदा०)।

[९०३] अभंग=अखड। [९०४] मोय=भींगकर। गहर=गहराई। मिति = थाह। [९०५] नाखत = डालते हैं। आरति=उत्कंठा। गहर=देर। अलियै = सखी ही। रलियै=क्रीड़ा ही।

जिज्ञासा] (९०६)

हौं तुम सौं एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरें हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ ॥

(९०७) [तालजात्रा

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौं बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौं आसा-खेत ॥

युगल छवि] (९०८)

मेरी आँखिन सुख दैबो करौ रगभरी जोरी।
स्यामसुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।
यहै सुरूप यहै जोबन धन यही रसीली बातैं।
यह बृंदाबन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमडि सदा रस-संपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसेंई दरसौ ॥

प्रियागम] (९०९

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया, रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
ब्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया ॥

९०८—जोबन० गोबरधन (सतना)।

[९०६] अंतरपट=वस्त्र, परदा। नेह०=प्रेम बाँधते हो, करते हो। [९०७] ढरारे=ढलनेवाले। अंत०=प्राण क्यों लेते हो, मारते क्यों हो। सींचौं=सींचा हुआ। [९०८] कौतिक=कौतुक खेल। दरसौ=दिखाई दे। [९०९] अहोणी=हे सखी। ढोलन=दूलहा। रब=ईश्वर। कीता=किया। साडे०=हमारा मनचाहा।

पनघट-लीला] (९१०) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर ब्रजमोहन रस को प्यासो डोलै।
आनँदघन मोहियै झूम्यौ कहा कहौं चेटक चितवनि के सैनन ही बोलै॥

(९११) [परज, तालजात्रा

साँवला सोहणा मिठबोलन।
महरम दिलजानो भँउरा गुज्झ गलाँ दी घुंडियाँ खोलन।
जीव जिवाँदा गावँदा भावँदा आवँदा नी लटकेंदडा ढोलन।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन रत्त- दिहाडे, छडिया कोलन॥

पूर्वराग] (९१२) [इकताला

निगोडो नेहरा बढै।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढै।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढै।
हसि चितवनि कौंधनि आनँदघन मति-गति मोह मढै॥

(९१३) [तालजात्रा

देख्यौ नेही नंदकिसोर।
हौं हूँ लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगौ जब देख्यौ याही ओर।
कैसें अपबस राखौं अपनपौ है बरबट चित चोर।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लै कर प्रान अँकोर॥

राधा रानी] (९१४) [मूलताल

बृंदाबन - रानी राधा है।
रास-रसिक ब्रजमोहन पिय की पुरवनि साधा है।

९११–गलाँ–गुलाँ (सतना)।

[९१०] चेटक = जादू। [९११] सोहणा = (शोभन) सुदर। मरहम = मर्मी। भँउरा = भ्रमर। गुज्झ = गुह्य। गलाँ० = बात। नी = नु (निश्चयार्थक)। लटकेंदडा = लटक के साथ। ढोलन = प्रिय, पति। प्रान० = प्राणरूपी चातकों का। रत्तदिहाडे = रातदिन। छडिया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला। [९१२] रढै = रटती है। [९१३] लई० = हृदय चिकना गया, प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया। बरबट = बरबस। अँकोर = भेंट।

याकी छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है।
आनँदघन चातक-व्रत सेवत प्रेम अगाधा है॥

वेणुवादन] (९१५) [इकताल

बाँसली हे बीर! घणाँ दिन पाड़ै छै।
भला घराँ रा माणसा नूँ कानाँ लागि बिगाडै छै।
काँई कराँ, क्यौं बस नहिं चालै, घर बैठ्याँ नूँ ताडै छै।
केड़े पडी रहै आनँदघन छानी बात उघाड़ै छै॥

विरह-निवेदन] (९१६) [मूलताल

बिरहा ऐसी कै सताई जू तिहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाडै छति कौं।
स्यामसुँदर ब्रजमोहन आनँदघन पिय तुमहिं
दया कबहुँ उपजै गति कौं॥

वेणुवादन] (९१७) [खभायची, तालजात्रा

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनी मन मोहि लीयो छै।
तोखी तीखी तानाँ बानाँ प्राणाँ माहीं गैलो कीयो छै।
थे तो म्हारा रूडा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छै।
अब म्हानै जग खारो लागै आनँदघन रस नीका पीयो छै॥

पूर्वराग] (९१८) [मूलताल

लगन लगी है स्याम पियारे।
अब कैसैं यह दुरी रहति है ब्रजमोहन उजियारे।

[९१४] साधा=इच्छा। समाधा=समाधान (सब बातों का निराकरण)। [९१५] बाँसली=बाँसुरी। बीर=सखी। घणाँ०=बहुत ही हैरान कर रही है। भला०=भले घरों के लोगों को। कानाँ=कानों में। काँई०=क्या करूँ। घर०=बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है। केड़े०=पीछे पडी रहती है। छानी=(छन्न) ढकी बात खोल देती है। [९१६] ऐसी कै=इतना अधिक। छति=छत (से मार्ग देखती है)। गति०=मेरी ओर आने के लिए। [९१७] थारी=आपकी। गैनो=गली, रास्ता। थे=आप। म्हारा=मेरे। रूडा=सुंदर। राजिंदा=(राजेंद्र) अति प्रिय। म्हे=मैं। थानै=आपको। आपो=अपनत्व। खारो=कड़वा।

इत हौं बकति तिहारेई गुन तुम मँडरात चोप-मतवारे।
आनँदघन इत मुरलि तिहारी ये सब भेद उघारे॥

बलदेवजू की स्तुति] (६१६) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार बिक्रम - बिपुल
अतुल बलधाम अच्युत कृपानिधि।
जयति गौर सुंदर बरन नील-अंबर-धरन
एक - कुंडल - करन आभा बिबिधि।
जयति ब्रह्म - अग्रज ब्रज - बिलास मंगलसदन
कामपालक सदा मत्त-रसरंग-रिधि।
करुना-सुदृस्टि आनँदघन बृस्टि करि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि॥

सारंग] (९२०) [चौताला

जय जय जय बलभद्र बीर धीर गंभीर अबिलंब प्रलंबहारी।
निज ब्रजकेलि - रस - माते मुसली कुसली
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी।
याही तें नीलांबर धारत परम प्रीति रीति रुचि बिस्तारी।
बन आनँदघन बरसत स्यामै सरसत हित गति न्यारी॥

(९२१) [भैरव, तालजात्रा

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौं, बलदेव को एक आसरो राखौं।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौं, बलदेव कृपा तें ब्रजरंग राचौं।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौं, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौं।
बलदेव सो एक बलदेव देखौं, बलदेव-कृपा को पुंज उर लेखौं।
बलदेव सब काज मेरे सुधारें, आनँदघन बरसि दुःख-ताप टारे॥

६१६—ब्रह्म—कृस्न (वृंदा०)।

[९१९] एक० = बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है। करन = कर्ण, कान। ब्रह्म = श्रीकृष्ण। रिधि = ऋद्धि, समृद्धि। [९२०] प्रलंब = एक दानव। मुसली=मुसल धारण करनेवाले। [९२१] राचौ = लीन होओ, डूबो। अनुज = श्रीकृष्ण।

(९२२) [ललित, मूलताल

मद-बिघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन
बल हलधर राजैं ।
गोपाल-मोह-गहवरित-हृदय ब्रजबन लीला साजैं निज सुख-काजैं ।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं ।
आनँदघन नीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं ॥

श्रीरामजन्म बधाई] (९२३) [रामकली, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु ।
निरवधि करुना - अवधि - अवधि मंडन प्रगटे महाबाहु ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी लह्यौ अपूरब पुन्यनि लाहु ।
फूले सत सुर-हित अनुकूले असहिन के उर दाहु ।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ्यौ जग मैं सुजस-प्रबाहु ।
निज दासनि को सुख कहा कहियै दिन दिन अधिक उमाहु ॥

(९२४) [टोड़ी, इकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन ।
अवधपुरी मधि महामोह छबि नरनारी फूले आनंदन ।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन ॥

(९२५) [केदारो, इकताल

आजु मंदिलरा दसरथराय के बाजैं रंग-बधाई है ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मनभाई है ।
अवधपुरी आनँद - झर लाग्यौ उघरी भाग - निकाई है ।
चहूँ ओर मंगल - धुनि सुनियत राम दुहाई है ॥

[९२२] बिघूर्नित = चंचल । बरन = रंग । मोह = प्रेम । गहवरित = भरित । निसान = बाजा । [९२३] निरवधि = सीमारहित । अवधि-मंडन = अयोध्या की शोभा करनेवाले । कोखि = कोख ठंढी हुई (पुत्रोत्पत्ति से) । सुर-हित = देवों का हित (भलाई) । असही = न सहनेवाले, शत्रु । निज = खास । [९२४] दसस्यदन = दशरथ । [९२५] मंदिलरा = मर्दल, मृदंग ।

(९२६) [कान्हरो बागेश्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
बाजति रंग-बधाई फूले फिरत नर तियौ।
सिव बिधि सुक सनकादि सुर-समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ।
आनँदघन झर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ॥

(९२७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ।
रबिकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अदभुत कला-बिलास ठयौ।
दुख-तम दूरि गयौ द्विज कितहूँ बाढयौ मन मैं मोद नयौ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरंग छयौ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ।
दसरथ-भाग कहा कहि बरनौं सकल देखियत सुकृत नयौ।
अमीदृस्टि रसबृस्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन उनयौ॥

(९२८) [टोड़ी, मूलताल

मदिलरा री बाजै अति ही गहगहे प्रगट भए
या अवध नगर मैं रामचंद्र बर आजै।
गावत मंगल मिलि बनिता-गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै।
करत बेद-धुनि बिप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा बिराजै।
मनबांछित फल भए परमानँद बोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै॥

९२७—सुर—नर (बृंदा०)। ९२८—उमँग०—मंगल रंग (वही)।

[९२६] तियौ = स्त्रियाँ भी। दातार = दानी। [९२७] ककुभ = दिशा। सुधा=सुधा से। [९२८] मदिलरा=मर्दल, मृदंग। आजै=आज ही। तोरन= फाटक। राजै = स्वयं राजा ही।

(९२९) [मलार, इकताल

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरी चटक-चोप सौं।
पिय अपबस करि भले बसायौ कुंज-सदन हो सूनो।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वै नागर बर बनक दुहूनो।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो॥

प्रेमघन] (९३०) [रूपताल

तिहारो नेह चौबाई को सो नेह कान्ह झूमि झूमि ब्रज बरसै।
निकसन काहु न देत घरिक हू को लौं घिरे घरहि रहियै
अति नकवानी करि सरसै।
अरु अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावै सो सूखि सूखि तरसै।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी दै नए नए रंगनि दरसै॥

(९३१) [मूलताल

एहो कामरि की खोही, रँग राख्यौ चूनरि को।
बन मैं बन्यौ दावँ काहू मिस को न भावती जोही।
जमुना-तीर बर-तरँ ठाढ़े भोजत रीझत मति-गति मोही।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस बरसा सोही॥

(९३२)

सघन बृंदाबन सुहायौ राधामोहन - मन - भायौ
सहज ही ये पावस आय बिराज्यौ।
केकी कोकिलान की किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि गाज्यौ।

९३१–मति०–गति रति (वृदा०)।

[९२९] दै० = सौतौं के मुख मैं चूना लगाकर, सौतौं को कष्ट पहुँचाकर।
[९३०] चौबाई = चारों दिशाओं से वायु का चलना। नकवानी = परेशानी।
[९३१] खोही = घोघी, कंबल को दो परत मैं लपेटकर ऐसे कर लेना जिससे शरीर ढका जा सके। बर = वट।

तरनि-तनया की तरंगनि बढनि देखि बाढत
बिनोद मोद तन-ताप भाज्यौ।
यहि बिधि बैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुगति समागम साज्यौ ॥

घनश्याम] (९३३) [इकताल

आवत है हो हरि मातो मेह।
बन ह्वै निबहि जाउँ जौ घर लौं, तौ निबहै नित नित को नेह।
हठ की बात भली न भावते तुमहिं बढ्यौ मनमथ को तेह ॥

वृंदावन महत्ता] (९३४) [चौताल

सब रितु बृंदाबन सुखदाई।
दंपति की हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई।
आनँदघन की घमड निरंतर मुरली-गरज सुहाई ॥

गोपी प्रेम] (९३५) [इकताल

कामरियावारे की घात न क्यौं हूँ जानि परै।
राति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै।
ऐसो छली बली अति चौकस, नेकु न कानि परै।
आनँदघन रस-बस करि राखै जो उहि पानि परै ॥

(९३६) [मूलताल

कैसैं रहौं री अब मैं ऐसैं स्याम उज्यारे बिना।
ब्रजमोहन आनँदघन कितहूँ छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत है मोकौं रैन-दिना ॥

९३२–सुगति–सुरति (वही)। ९३३–ह्वै०–के नितहि (सतना)। ९३६–ऐसैं–अपने (वृंदा०)।

[९३३] तेह=तीखापन, वेग। [९३५] न कानि परै=मर्यादा का विचार नहीं करता। पानि=हाथ।

गोपी-प्रेम] (९३७)

हरवा मोर टुटीलौ अबही ननदिया वाही दीनो उतर कहा दैहौं।
आनँदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनबाद करौ तिहारी
सौं जान देहु जू जौ बनिहै तौ बहुरयौ ऐहौं ॥

हिँडोरा के पद] (९३८) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिँडोरे दुहुन की, ए दुहुन की।
चोप सौं लचकि मचकत खरे रंग-भरे कचनि तैं बरसनि प्रसून की।
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की।
यह छबि निहारि न सँभारि आनंदघन सुधि बुधि टरी सुर-बधून की ॥

(९३९)

लाड - गहेली को तीज मनावन की रीति मैया
भाग भरी सब भाँतिन।
उबटि न्हवाय सिंगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय बहुत
कछु वारति फूली अंग माति न।
रतन - हिँडोरैं हुलसि झुलावति सँग सोहति साथिनि
दाई की बनी ठनी अप-अपनी भाँतिन।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन मैं मंगल-मनि की काँतिन ॥

लालजू की बधाई] (९४०) [भैरव, इकताल

या अति लाड के चावन दै घर नित ही बधावनो।
स्यामसुँदर होनो दिन लोनो मंगल-मोद-बढावनो है नैन-सिरावनो।
जसुमति-बारो कुल - उजियारो सब बिधि हिय - जिय भावनो।
ब्रजजन - जीवनधन आनँदघन रस - बरसावनो ॥

(९४१ [तालजात्रा

आजु हमारैं काजु है हो जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो।
आनँदघन ब्रजलोचन-तारो चिर जियौ नँदराय-दुलारो प्रान
को प्यारो ब्रज - रखवारो।

९४०–होनो–दिन (सतना)। नैन०–रस बरसावनो (वृंदा०)।

[९३७] अनबाद = फालतू बखेडा। [९३८] कच = केश। दून = संगीत भेद, साधारण से दूना।

मंगल गावौ मोद बढावौ भागनि के फल नैन निहारो ।
दिन दिन यह दिन रहौ या घर असीस उचारो ॥

(६४२) [चरचरीताल

बधाई नंद के भई हो मोद - बिनोदमई ।
स्यामसुंदर - आगमहि गोकुल - ओप नई ।
फैलि परी हित की फलि, अंतर - सूल गई ।
भागनि बल यह सुभ घरी बिधि बनाय दई ।
आनँदघन मगल - धुनि ठौर ठौर रई ।
थिर - चर रस - रंग भीजे कीरति उनई ॥

(६४३) [रामकली, तालजात्रा

लला को सोहिलो गाऊँ, फूली अंग न माऊँ ।
नाँदौ बाढौ चिर जीवौ दिन - दिन उदौ मनाऊँ ।
नित मोहन - मुखचंद निहारौं नैननि हियौ सिराऊँ ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि - दौरि आछेई
आऊँ रगनि बरसाऊँ ॥

(६४४) [आसावरी, चौताल

स्यामसुंदर को जनम-द्यौस आजु आनंद नंद-सदन मैं निपट ।
गावत मगल गीत गुनीजन प्रेममगन बर बाजे बजावत नाचत
मुदित मैन से बहु नट ।
कुँवर कन्हाई दृगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत राजत
श्रीव्रजराज के निकट ।
अनगन ससि मुख - छबि पै वारौं बलि, रगनि भरे अंगनि की
मयूखनि झलकनि छलकति अति झीने पट ।

६४२–फलि–फूलि (वृ दा०) । ६४४–गननि–भूषन (वही) । सबकी–पूसवाहि (वृ दा०) ।

[६४२] फलि = फनी । रई = रमी । [६४३] सोहिलो = सोहर । नाँदौ = आनंदित होए । [६४४] ब्रजराज = नद । झीने = पतले, महीन । अमर० = देवों का समूह ।

बनि ठनि बैठे गोप ओप सों रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को सघट ।
कोटि-कुबेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई पल-
पल सबकी रसना रट ।
द्वार-द्वार नूतन किसलय की जलज-लरनिजुत बंदन-माला अरु
नग खचित दीपत मंगल-घट ।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहपनि बरखत रतननि वारत
उमहि उमहि अंबर तैं अमर-ठट ॥

(९४५) [पूरबी, तालजात्रा

तैंडा रंग, लाडला कान्ह जसोदे ! होवे जीउणा जागणा ।
इसदी बलैया मैंनूँ लगौ अँखड़ियाँ दा लागणा ।
उमरदराज करौ रब सैयाँ तुझ जेही केही बडभागणा ।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(९४६) [अड़ानो, चौताल

आजु मंदल की कहकै ए सजनी सुनि ।
बरस - गाँठि ब्रजमोहन की यातैं मन खोलै बोलै धुनि ।
ललहि सिंगारि चौक बैठारति मैया को सुख कौन सकै गुनि ।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि ॥

(९४७) [ईमन, मूलताल

मंदिलरा बाजै रंग सौं ब्रजपति - मंदिर मैं आनंद ।
जसुमति - रानी - कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद ।

९४५–लाडला–चोंगला (वृदा०) ।

[९४५] रंग = धन्य है । जसोदे = हे यशोदा । इसदी० = इसकी बला मुझे लगे । अँखड़ियाँ० = आँखों मैं बस जानेवाला । रब = ईश्वर । सैयाँ = स्वामी । जेही० = जिस किसके लिए । प्यारिया = प्यारा । सभ = सब । सानूँ = हमको । रस० = रस मैं डुबानेवाला । [९४६] मंदल = मृदंग । कहकै = ध्वनि । ललहि = लाल (पुत्र) को ।

बदोजन जस - बिरद बखानत बिप्र बेद - बिधि छंद ।
आनँदघन सबको मनबांछित हरखत बरखत नंद ।।

(९४८) [गौरी, तालमूल

आवौ री मिलि गावौ सुहेलरा, आजु हमारे मगल माई ।
उदौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी की कूखि सिरानी मुख
निरखत आनंद बधाई ।
दुखतम टर्‌यौ कर्‌यौ सब बिधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई ।
अद्भुत अमी - कला आनँदघन सुजस - जोन्ह रसबृस्टि सुहाई ।।

कुठरानी जू की बधाई] (९४९) [रामकली, तालजात्रा

सोहिलो बृषभान - भवन पै, प्रगटी है मंगल - मनि राधा ।
कीरति - कुल - उजियारी प्यारी पूरन करी सकल बिधि साधा ।
ब्रजदेवी सुर-नर - मुनि - सेवी परम - प्रेम - गुन - रूप - अगाधा ।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ्यौ, टरी सब बाधा ॥

(९५०) [हमीर, चौताल

प्रगटी है मंगल - मनि बृषभान - कुँवरि राधा नामिनी ।
ब्रजजीवन की प्रान - सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी ।
रस-बिहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि को स्वामिनी ।
आनँदघन - रस - रासि रसीली बृंदाबन - धामिनी ।।

(९५१) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा - नावँ की ।
याहि लड़ाऊँ गाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गावँ की ।

[९४७] मदिलरा = मृदंग या ढोल । बिप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं । [९४८] सुहेलरा = मगल-गीत । अमी-कला = चद्रमा । [९४९] कीरति = कीर्ति, राधा की माता । साधा = उत्कंठा । [९५१] लडाऊँ = प्यार

जसुमति - ललन देखि मन आवत जोरी - जुगति अनूप ठटी ।
आनँदघन चिर जियौ हमारी जीवन की निधि जनम-जनम
की तपति कटी ॥

(९५६)

बजै बृषभानु कैं बधाई कीरति कन्या जाई ।
भाग-भरी राधिका सुलच्छिनि ब्रज मगल-मनि आई ।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी बिधना बनक बनाई ।
सुत को हित बिचार मन ही मन फूली अँग न समाई ।
मगल मोद बधाई की धुनि गोकुल रावल छाई ।
प्रेम-बिबस डोलत नर - नागरि हित गति की अधिकाई ।
यह जोरी चिर जियौ छबीली मन नैननि सुखदाई ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन सरसौ हरष - हरथाई ॥

श्रीकृष्ण-जन्म] (९५७) [टोड़ी, चौताल

आजु बधावनो नंद-भवन मैं भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो ।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख - उपजावनो ।
दुज मागध बंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो ।
ब्रजपति की उदारता सौं कैसें करि सकत सरसावनो ।
रस - जस मगल - सिधु सबै ब्रज - रंग तरंग - उमग बढावनो ।
आनँदघन ब्रजचद अखड अमल अपूरब दरसावनो ॥

(९५८) [बिहागरो, इकताल

ब्रज मंगल आजु है हो ।
ब्रजरानी सुदर सुत जायो पूरब - भाग - उदै हो ।
मनभायौ सब ही के आयौ धन्य सुदेस समै हो ।
आजु हमारो झगरो है जसुमति मैया सौं लै हो ।
कहियै कहा महासुख सरस्यौ चिरजीज्यौ रसमै हो ।
आनँदघन ब्रजजन - जीवनधन बरसौ उनै उनै हो ॥

[९५५] तपति = ताप । [९५६] रावल = राधा का ममाना जहाँ वे जन्मी थीँ । नागरि = नारी । हरथाई = हरियाली ।

साँझी] (९५९) [हमीर, इकताल

पुजावति साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय।
अरचि चरचि चदन बंदन सों फूलमाल पहिराय,
बिबिध मधु मेवा भोग रचाय।
बोली बहिनोली घर-घर तें भरि भरि ओली देत सिहाय।
कंचन-थार उतारि आरत्यौ हाँसनि लागति पाय,
लली को भाग-सुहाग मनाय।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय।
आनँदघन ब्रजजीबन जोरी रसिकन सदा सहाय॥

(९६०) [ईमन, तालजात्रा

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सौं गति लै।
मुह की फबनि भौंह-दबनि सबनि के चित चूरे
मुरली मैं रँगरली जति लै।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरगनि कीजति लै।
आनँदघन रस रास रचायौ पाग दई सबकी मति लै॥

(९६१) [केदारो, मूलताल

रास मैं राधा सब रस राख्यौ।
बृंदाबन स्वामिनि अभिरामिनि मन जस राख्यौ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ॥

९५९–बहिनोली–बहि दोली (वृंदा०)।

[९५९] साँझी=शरद् ऋतु मैं फूल-पत्तों, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी। पुजावति=राधा से पुजावती है। चरचि=युक्त करके। बदन=सिंदूर। बोली=बुलवाई, निमन्त्रित की। बहिनोली=सजातीय स्त्रियाँ। ओली=कौंछ। सिहाय=प्रशंसा करके। [९६०] जति=यति, ठहराव। पाग०=भली भाँति मिला दी। [९६१] जस=जैसा। कस=कैसा।

(९६२) [केदारो, इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके।
सोही लै गति चोख चटक सौं अनुपम रूप दिखाय
सिखावति त्यौं ही त्यौं जिय भावै पी के।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पै बनि आवै हो ये
पटतर हैं आप सही के।
आनँदघन बृंदाबन जमुना - तीर घमड़ि रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी के॥

(९६३)

सरद-रितु जामिनि फूली है।
जगमगी जोन्ह छबीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि
रची जमुन-कूल अति ही अनुकूली है।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रसमूली है।
आनँदघन अदभुत बिलास-झर बृंदाबन मैं देखत भूली है॥

(९६४) [संकराभरन, तालजात्रा

अगनित बनिता बनि बनि नाचत बनमाली-सँग
बन्यौ है रास बर बानिक जमुना-पुलिन मैं।
साँबरो सोहन रसिक मोहन चपल चुहल चतुर जोहन
सबनि सौं हिलि मिलि बिलसत अति आनँद मन मैं।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि रचना रंजित सकल
जुवति मिलि घोष व्यापक कै पुरयौ त्रिभुवन मैं।
आनँदघन रस - संपति अचरज - मूरति दंपति नित
बिहार दीसत पागे हित-पन मैं॥

(९६५) [केदारो, चौताल

सकल-कला-प्रबीन बृषभानुनंदिनी रस - रास नचै।
उघटत मोहन नटनागर बर तरल ततकारनि चोपनि चुहल मचै।

[९६२] सोही=शोभित। चोख=तीव्र। पटतर=समानता। सही=ठीक। राका=पूर्णिमा। [९६४] चुहल=विनोदी।

ललिता ललित मृदंग मैं रंग राखति बिबिध भेद सौं सुगंध सचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच को साँच रचै॥

(९६६) [केदारो, चौताल

साधि कै सुर मुरलिका मैं केदारो ठान्यौ मोहन रसरंगी।
जैसैं जैसैं जिय भावै तैसैं राधे रिझावै तान त्यौनार तरंगी।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि,गासनि की ब्यौरनि मैं रंगी।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैं रहत अभंगी॥

(९६७)

तेरे री मुख की जोति आगैं कोटिक सरद-चद मद लागै।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि दमकि नंदकिसोर
चकोर-नैना नव चैन-पियूषनि सौं पागै।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैं मुसकि लाड़िबो
गालनि मैं गाड़ परत आछी छबि जागै।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि तोहि सौं अनुरागै
सु तेरई गुन निसि दिन रागै॥

(९६८) हिंडोल, इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौं।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौं।
हित-चाँचरि नित मची रहति है नइ नइ उमँग दुहूँ ओरी सौं।
आनँदघन रस रीझे भीजे हिलगनि झकझोरी सौं॥

(९६९)

जोबन मौरयौ बसत फूल्यौ सरस गुराई गोभा निकसी।
अंग अग नवरंग जगमगे मुख सुखसदन चंद्रिका बिकसी।

९६६–सुर–रस (वृंदा०)। ९६६–चिक–बिक (सतना)।

[९६५] तरल = चंचल। ततकारनि=नाच के बोल। नाच०=नृत्य की सत्यता सिद्ध हो जाती है। आँकौ०=अंक, गोद। [९६६] त्यौनार=ढंग। गास=गाँठ, ब्यौरनि = खोलना। [९६७] गाड़=गड्ढा।

रसिया मधुप लट्टू भयौ डोलै बन बोलै सो लै सुनि पिक सी।
बलि बलि चलि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही चिक सी ॥

(९७०) [वसंत

बनि बनि आई ब्रज-बनिता बर बसंत बृंदाबन
बनमाली के हित हिलि मिलि।
कोटि काम अभिराम स्याम-छबि-हेत हुलसि लसे हैं बदन
सुख-सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनग-रग झिलि।
बहु बिधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बदन
भरत परसपर जोबन के जोरनि पिलि ॥

(९७१) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा को साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतर।
प्रफुलित ललित हित - बलित सदा बिराजत लाग्यौ
रहत आनंद-मकरंद-झर।
भौंरी अँखिया पीवति जीवति नित रस सींचे जमुना-
तट हो बृंदाबन सुदेस थर।
बिलसत लसत घुमड़ि आनँदघन ऐसे बडभागी जु
बन ही मैं करि पायौ घर ॥

(९७२) [मूलताल

देखौ राधा को सुहाग, याके सरबोपर अनुराग।
कान्ह कत बसंत-मूरति नित याके बस बडभाग
बिहारन कौं बृंदाबन-बाग।
याकी रूप-निकाई बिधना याहि बनाई याके गुन
मुरली मैं गावत पूरत बिबिध रागिनी राग।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगे परम पन-पाग ॥

(९७३) [वसंत, इकताल

नव बसंत फूल्यौ है, जब तेँ हरि राधा फूले अति मन मैँ
उघरि उघरि होरी खेलन कौँ हित चित चौपनि ।
छाके प्रेम नेम सब थाके ताके वे दिन भरि अभिलाषनि
चितवनि ही मैँ भई जु बहुत बिधि हिय जिय सौपनि ।
चाव गहगहे उमगि डहडहे बैस लहलहे जोबन कौपनि ।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँद्घन रस पियत
जियत मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-खौपनि ॥

(९७४) [हिंडोल, चौताल

बसंत नटुवा बनि आयौ री नव बरन बरन पुहप-बसन
पहिरि रिझावन कौँ ब्रजमोहन स्याम ।
नटनागर गुन - आगर को मुख देखि बिबस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोरिक काम ।
ब्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ बृंदाबन मैँ
नित को बिसराम ।
आनँद्घन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि बैन बजावत
लै लै नाम चलि बलि बिहरन कौँ सब धाम ॥

(९७५) [वसत, इकताल

होरी खेलैँ रस-भीजे रीझे नंदलाल बृषभानु-कुँवरि
भरि रंग रग-भाय अनुराग-चाय ।
आछी मीठी भासनि सौँ हितदारी गारी गाय गाय
मुख-सुषमा कछु बरनि न जाय ।
दुहुँ दिसि सहचरि भरित रंग सौँ उमहति समुहति धाय धाय ।
मच्यौ खेल बृंदाबन जमुना-तट आनंद-अंबुद रह्यौ छाय
यह छबि हेरत मति-गति हिराय ॥

९७३–नव–बन (सतना) । ७६६–दारी–टारौ (वही) ।

[९७३] कौपनि=कोँपनि । खौपनि=खौँच, वस्त्र का फटा अंश ।
[९७५] भासनि=भाषण, बातचीत । समुहति = सामने आती है ।

(९७६) धनाश्री, तालजात्रा

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सों।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जीवन को फल लीजियै यह कीजियै पनै।
जीजियै रस पीजियै बरम्हाय आनँदघनै॥

(९७७) [धनाश्री, इकताल

ऐसो छैल नद को घाती, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट को ओट पवन नहिं लागत नवजोबन की थाती।
कछुक अनूठो मिस बनाय ढिग आय करत कनबाती।
मुख सों मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
औटपाय के दाय भरयौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौज लगौ री होरी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनबादन आनँदघन तब ही बिष खाती॥

(९७८)

अचगरे तुमहीं देखे सब डर डारेई डोलौ।
खेल किधौं सतभाव लाडिले कचुकि के कस खोलौ।
जौ कोऊ लखि पावै तौ उतर देहु कहा कहि बोलौ।
आनँदघन रसबादनि झूमे तुम सौं भलो अबोलौ॥

(९७९) [इकताल

होरी खेलियै, आँखिन सौं आँखि मिलाय।
मन की मरक काढि सब दिन की निधरक कै रस झेलियै।

९७७-कनबाती-बतबाती। ९७८-कस-रस (सतना)।

[९७७] कनबाती=मुँह कान में लगाकर बात कहना। औटपाय=नटखटपन। दगाती=दगाबाज। न्यौज०=देवता को अर्पित हो जाय (गाली) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी०=जहाँ जबर्दस्ती का ही वश चलता हो। नातर=नहीं तो। अनबादन=फालतू बातों से। [९७८] अचगरे=नटखट, शरारती। कस=बंद

अंजन आँजि मीडि रोरी मुख हँसि गरबाँही मेलियै।
गहर करन को दावँ न राधे तू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(६८०)

भले बनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करी हौं निहाल।
अंग अनूठी सुगँध के डोरे गुही अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अरगजा ढोरि करैगी आनँदघन ख्याल॥

(६८१) [इकताल

आजु निपट ढिठौंहैं दै टरे हौ साँवरे कसरि काढ़ि कै मन की।
भौंह नचाय कहा एँडत हौ निडर अमैंड भए ब्रजमोहन
घात बनि गई बन की।
ब्रज-राजा की कानि न मानत गोधन-ओट टोह पर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचैहौं
तौ हौं राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(६८२) [टोड़ी, तालजात्रा

होरी खेल रगनि रँगीलो छैल छबीलो नागर गोरी-सग।
डरजनि तकि तकि छाँड़त छबि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत धावत मूठि - गुलाल
चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ बरसोले झूमि झपटि लपटि
जात भीने अनँग-उमग॥

६८१-टरे-रहे (सतना)।

[६७९] मरक=हौसला। झेलियै=क्रीड़ा कीजिए। मेलियै=डालिए। धुर की=अत्यत, बहुत। [६८०] डोरे=सहारे। ढोरि=लेकर। ख्याल=खेल। [६८१] अमैंड=मनमानी करनेवाला। गोधन०=गाय चराने के बहाने। धन=द्रव्य; धन्या (स्त्री)। तन=ओर, पक्ष।

(६८३)

पकरि बस कीने री नँदलाल, झुरमुट करि
चहुँघा तँ बहुत ब्रजबाल ।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं मसरि गुलाल ।
देखत बनै स्याम की सोभा, सहनसील कै भए निहाल ।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैं ऐसे हाल ।
चपरि चलन कौं बहुत अरबरत छूटत क्यौंऽब परि प्रेम के जाल ।
सूधे किये बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल ॥

(६८४)

होरी के खिलवार, देखे ।
मोहीं सौं रसबाद चलावौ नए छैल रिझवार ।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैं पिछवार ।
आनँदघन उनएई दीसत गिनत न साँझ सबार ॥

(६८५)

आजु मेरे आए मया करि होरी खेलन स्याम रसीले ।
सब रँग भीजि रहे पहिले ही स्याम रसीले ।
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैं रस-बरसीले ॥

(६८६) [केदारो, मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-सग ।
सुंदर बदन गुलाल लगैये चोवा चंदन बंदन स्याम सलोने अंग ।
गैयै बजैयै चाँचरि मचैयै तचैये री वाहि गति अति ही सुढंग ।
आनँदघन बरसैयै बढैयै सरसैयै सुख उपजैयै अद्भुत रग ॥

(६८७) [अड़ानो, रूपकताल

निपट लाडिली एरी तेरी मुसक्यान प्रानपिय-
जिय सौं खेलि खगी है ।
अधर पाय धरि धाय रग बरसाय जाय दुरि भिजवति
सुखवति हाथ, कौन होरी दाय के चाय पगी है ।

[६८३] झुरमुट=झुंड । मसरि = मलकर । [६८४] उघारी=खुली, बेपरद ।

फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आवन, गैल अरैल
भयौ टारत नहिँ नेकु टगी है ॥

(९८८) [ईमन, तालजात्रा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम बरबट बहियाँ मरोरौ।
आवत मूड चढ़े अति ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि कनौड़
जनावत जोबन जोरौ।
बातनि घातनि की चतुराई चलैगी न ह्याँ ऐसैं औरन भोरौ।
बहबहे कहँ रहे, धोखे काहु के आनँदघन भूले से
फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरौ ॥

(९८९) [इकताल

नंदलला बृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सौं।
सुंदर बदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनी तान
धावत गुलाल लै लै दायन सौं।
दुहुँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि आवत
खेलन कौं जोबन-भरी तमक तायन सौं।
आनदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृस्टि बचाइ
जाइ ढिग रगनि भरी बिबिध भायन सौं ॥

(९९०)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडित-गुलाल।
मनहिँ लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।
बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित चित छलति हाल।
नीलमनी मिलि बनी ढूलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी खरी ओट दीने तमाल।
चोटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन चितवत रसाल ॥

९९०–मनहिँ–मोहि (सतना)।

[९८७] टगी=टकटकी। [९८८] बरबट=बरबस, जबर्दस्ती। कानि०=मर्यादा का ध्यान, लिहाज। बहबहे=बहेतू। टकटोरौ=टकटकी लगाकर देखते हो। [९९०] बैंदी=बिंदी। हाल=तुरंत। बीर=हे सखी।

(९९१)

लै गुलाल मुख माड्यौ पी कौ, देखौ हो साहस या ती कौ ॥
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहि गए कुँवर कन्हाई।
याको धीर कहत नहिं आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चखनि चौंध भरि, आई अलग छराए लौं छरि।
मोड़ति करनि मौन हरि ठाढ़े, रूप-बिमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, बहुत दिनन तैं जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सूखि सिझायौ ॥

(९९२) [बिभास, इकताल

गोकुल मैं होरी यह कैसी, अहो दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं झकोरत झपटत करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक हौं अपनेई पीहर औरो रहती जौ पै जानती होति ह्यॉं ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी ॥

(९९३) [पूरबी, तालजात्रा

गोरी गोरी दिनन की थोरी, बोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलै होरी।
गावै गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै करै चित चोरी।
हँसि जोहै सोहै उमेठियै पैठियै जाति हिये बरजोरी।
आनँदघन मुरकि डारै भोरी सो भोरी मैं रोरी और जानै को री ॥

(९९४) [बिहागरो, मूलताल

तुम ऐसँ कैसँ खेलौ होरी।
मानस हैं कि ये नाहिं कोउ भाए जाऊँ क्यौं न, अब भई न थोरी।
औरौ बसति लुगाई ब्रज मैं मोहिं लगी कछु चोरी।
नए छैल निबटे आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी ॥

९९१–हो०–होसाहोसी (सतना)। करनि०–करति मनोहर (वृंदा०)।
९९४–कोउ–तुम (सतना)।

[९९१] गुलचा=गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। छराए०=मायादृश्य या जादू की भाँति। सिझायौ=रससिक्त हुआ। [९९४] निबटे=निपट, अत्यंत।

(९९५) [इकताल

कैसैं डफ ढार ही ढार बजावै, नवेली नागरि गारी गावै।
मुख-बिकास भौंहनि-बिलास जोबन-उजास
तानिनि मिठास मोहन के मनहिं घुमावै।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की ओप बढ़ावै।
रसमूरति आनँदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावै॥

(९९६)

रसिक छैल नंद को नैनन मैं होरी खेलै।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलै पलकनि ओकै झेलै।
और कहा गति कहौं सखी री सब बिधि करत भावती केलै।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझै भिजै रस रेलै॥

(९९७) [सारंग, मूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखे।
बिना जान-पहचान रावरे होत फिरत उरहार।
नए छैल गहि गैल रहत नित करत न नेकु बिचार।
आनँदघन कैसें कै परसै फल अति ऊँची डार॥

(९९८) [बिभास, चौताल

निपट अरसानी सरसानी मैं जानो मानी है सुखदानी
साँवरे सौं सब निसि रंगरली।
मची है चोप-चाँचरि भाँति भाँतिन मिलि दावनि चावनि
भावनि भाँति भली।
भई है दलनि दलमलनि छल-बलनि सुबस कियौ गिरिधरन बली।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि राधे रँगीलो मेरी तू प्रान अली॥

९९७—उर०—गरहार (सतना)। गैल—बाँहिं (वही)। ९९८—भाँति०—मनभावनि (वृदा०)।

[९९५] ढार०=ढग से, ठीक ताल पर ताल देकर। [९९६] ओक=अंजली। केलै=केलि।

(९९९) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तैँ तुम भए हो निपट धौताल हौ।
दबे पावँ पाछे तेँ आवत पकरि करत बनमाल हौ।
काढत मनौं बैर कितहू को उर दलमलत गुलाल हौ।
नकवानी करि लेत मानसै निपटै रसिक रसाल हौ।
दैया दौरि दौरि खौरत मोही सौं यौं गिधए किहि बाल हौ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ॥

(१०००) [मूलताल

रस राख्यौ राधा होरी खेलि।
रंगनि भरथौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि।
ब्रजमोहन की महामोहनी रची बिधाता सब गुननि सकेलि।
आनँदघन पिय भिजै रिझायौ उमगि अनुरागनि ठेलि॥

(१००१) [मारू

लाल खिलार हौ भए होरी के तौ खेल खेलियै।
निपट लगि परे जानि परैगी छैल छबीले रावरे ढग नए।
नकवानी हौ करत अचगरे याही बगर मैं रहत छए।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत सिझवत रिझवत कैसैं हौ अए॥

(१००२) [परज, तालजात्रा

ऐसैं खेलियै, जिन जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कहावत आवत घातन मैं तुम बातन ही मैं लहे।
इन भाँतिनि किये बहबहे कै घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे॥

९९९-गिधए०-गिरिधर किहि चाल (वही)। १००१-ठेलि-झेलि (वही)। रिझवत-खिझवत (बृदा०)।

[९९९] धौताल=शरारती। मानसै=मन को। गिधये=परचे। [१००१] बगर=घर। अए=अये, आश्चर्यबोधक अव्यय। [१००२] बहबहे=नटखटपने, शरारतें। हौंस=लालसा। पुजायोई=पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे=देखे।

(१००३) [मूलताल

हो छबीले मोहन सौं खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि झकोरी हो।
गावत रसीली गारी हिलि मिलि ब्रजनारी
रूप-गुन-फूलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उझिल-झेल
जोबन की रेल-ठेल चोपनि सौं बोरी हो।
मोद-घन झर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की उरैड़ कुलकानि-मैड़ तोरी हो॥

(१००४) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझोनो उलही है जोबन-कोप।
मुरलो टेर सुनाय जगावै याही बगर मडराय।
हौंहुँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार॥

(१००५) [सोरठ, मूलताल

मनमोहन छैल खिलार।
होरी-रँग-भरयौ चितै चितै रँगि लेत
रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अग छबि-संग उमगि दृग मग रोकत सिगार।
प्राननि गरैं हरैं गहि डारत हँसनि ठगौरी-हार।
मैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन वा गुन गसि लाज भई उपहार॥

(१००६) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ बधुनि सौं करत फिरत है बरियाई।

[१००३] मोद-घन=आनंद का बादल; आनंदघन। [१००५] हरैं=धीरे से।

आवौ सखी घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय नचाय चुहुटियन छाँडि देहिँ करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुली दै निरखैं छबि दृग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतो ठानि दृढ करौ न तनक सिथिलताई॥

(१००७) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौं गोरी गोरी गोपबधूटी।
रसिक छैल रिझवारहिं रिझवति रस मैं रूप-गुन-भरी बै-संधि छूटी।
कहा कहौं जोबन की जागनि तनदुति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैं करि राखी सब बीरबधूटी॥

(१००८) [गूजरी, आड़ो चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हो पठई लैन सैननि ही हाहा खात।
उठि चलि बलि राधे रँग राखि लै बरख्यौ सु फागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै, जीजै,
कीजै सफल गुन गात॥

(१००९) [रामकली, तालजात्रा

इन बिरहा फाग मचाय दई, आए नए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अगनि तैं हौं भिजै भिजै यौं सुखई।
याकी हथचलई कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसैं औसर कैसैं करत गई॥

(१०१०) [मूलताल

होरी को खेल हम ही त्यौं ठान्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढग जान्यौ।
औरौ बसति बहुत ब्रजसुंदरि याही बगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गौहन लागे नयो नेह कितहू तैं आन्यौ।
खेल किधौं सतिभाव लाड़िले काहे कौं प्रान करत हौ छान्यौ।

[१००६] गुलचि=गुलचे लगाकर। बनाय=स्वाँग बनाकर। चुहुटियन=परेशान करके, खूब गत बनाकर। [१००७] बै-संधि= वयःसंधि, पूर्ण युवती। [१००९] करत०=आनाकानी करते हो।

आनँदघन अठपहरा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ ।
रंग राखि खेलियै जौऽब रसिकई सौं चित सान्यौ ॥

(१०११) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहिं सुहाए ।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए ।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए ।
ज्यौं जानैं त्यौं पकरि नचाए, सरबस फगुवा दै मुकराए ।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए ॥

(१०१२) [तालजात्रा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे कहा दुराव करत हौ मोसौं
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग ।
सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किये गहि स्याम त्रिभंग ।
कौन खेल अबखेलियै तुम सौं छैल छबीले गुननि भरे सब अंग ॥

(१०१३) [नायकी तालजात्रा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि ।
कौन खेल यह भिजै भजि जैबो आँखिन मैं गुलालहि डारि ।
अति ही ढीठ भयौ कहा डोलै नेकु धौं काहू की ओर निहारि ।
आनँदघन अब कौन बचैगो बबा की सौंह दैहौं गारि ।

(१०१४) [सूहो, इकताल

आवौ गावौ रंग बढावौ मोहन स्याम उजारे सौं खेल रचावौ ।
निपट नवेली जोबन-गहेली चाँचरि मचावौ
गहि गुलचायन चाय चलावौ ।

१०११–जानैं–नाचै (सतना) । दै०–लै मुरकाए (वही) । १०१५–बिलग–चिलग (सतना) ।

[१०११] मुकराए = यह स्वीकार कराया कि अब ऐसा काम न करूँगा । [१०१४] गुलचायन = गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना । पैज = प्रतिज्ञा ।

भागनि बन्यौ फागु कौ औसर गोकुल के खेलवार कहावौ।
आजु तिहारो पैज यहो जू आनँदघन पिय का
भली भाँतिनि सौं भिजै रिझावौ॥

(१०१५)

हो हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि।
हिय की हिलग बिलग बिन उघरी फागुन औसर रहे बिचारि।
खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि।
चहुघाँ ब्रज आनँदघन घमड़्यौ रस भीजे गोकुल-नरनारि॥

(१०१६) [सोहनी

चलि री बलि राधे गोरी साँवरे सौं खेलै होरी।
तोहि बुलावन काज भावते सैननि हौं बहु भाँति निहोरी।
आईं निकसि सकल ब्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन दुरति कहाँ लौं हित की चोरी।
तोसौं हार जीत जिय मानत औरनि सौं जीतेऊ सो री।
ये आनँदघन तू छबि-दामिनि, है अति सर-बरसीली जोरी॥

(१०१७) [सुघराई, मूलताल

नदलला रे होरी बीति गए बसिबो है एक ही बास।
अधिकौ ओटपाव करि बैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास।
ओछी बातनि कहा बडाई गहत क्यौं न बोलन मिठास।
टोडिस नयौ भयौ डोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि खगि जिनसौं पूजी जिय-आस॥

(१०१८) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बीर क्यौं भरियै।
एक चवाव भरे पहिले हो बहुरयौ फागुन मास।
आई उघरि सबनि के मन की निपट अटपटी गास।
सपने स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय।

[१०१५] हिलग=प्यार। [१०१७] टोडिस=शरारती।

तासौं मोहिं लगाय लजावत निलजी गारी गाय ।
छाँह बचाय चलौं मारग मैं धरौं न ऊबट पाय ।
तऊ न रहै अपलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय ।
साँची कहौं तऊ झूठहि मानै सौंह पत्याय न कोय ।
अब तिनही जस देहौं आनँदघन होनी होय सु होय ॥

(१०१९) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पियरवा तुम सन खेलौं होरी रे ।
तिहारे काज सुजान सुंदर बर लाज कानि सब तोरी रे ।
घरि पल इत उत जान न देहौं गहि बाँधौं हित डोरी रे ।
आनँदघन बरसैहौ निसिदिन एहो जोबन जोरी रे ॥

[सतना की प्रति से]

राग केदारो] (१०२०) [चौताल

देखौ देखौ हो बृंदाबन बिराजै नीकौ ।
सघन स्याम जमुना कै तीर हिय हरियारौ प्यारौ जी कौ ।
हरि राधा को नित हितकारी याही तें याकैं सिर टीकौ ।
आनँदघन अभिलाषनि बरसत सुख सब बिधि ही कौ ॥

(१०२१) [टोड़ी

हो नकवानी कीनी इन रँगभीनें मोहन ।
घाट बाट बन बीथनि म हयाँ लग्यौई रहत मेरे गोहन ।
मेरे ही आय पाय दृग छीवत ग्रीव ढुराय नचावत भौंहन ।
आनँदघन उनएई दाखत नेह-बारि बारि सोहन ॥

राग टोड़ी] (१०२२) [मूलतान

सु तुव हित-बेली री अलबेली पिय-हिय-आलबाल मधि जमी ।
मन लगाय पल पल तिहि सींचति परम प्रेमरस अमी ।
फूले चारु मकरंद लाड अनुराग पराग सुगंध रमी ।
आनँदघन पिय सौं मिलन-फल की अब राखति है क्यौं कमी ॥

[१०१८] ऊबट = अमार्ग ।

राग बिलावल] (१०२३) [इकताल

अपने गुन आपहि आप ढरी ।
जमुना तेरी कृपा कहा कहौं जो मन-नैन भरी ।
राधारवन - रसामृत - धारा रसना ह्वै सँचरी ।
लाग्यौ रहत मोद - कादंबनि नव नव रंग - झरी ॥

राग सुघराई] (१०२४) [चौताल

हिलि मिलि खेलैं गोपकुमारी सावन तीज तिनमैं श्रीराधा मुकुटमनि ।
अंग मंग अंजन मंजन महदी रँगीले बसन भूषन बनि ।
रँगीले हिंडोले चढि चाइन सौं गावत मंजुल गीत सुकंठनि ।
अंग संग सुख लेत रसिक आनँदघन स्याम सखी बनि ॥

राग केदारो] (१०२५)

नंद के नंद ब्रजचंद श्रीगोबिंद सावन मनभावन मैं
झूलैं झूलना तैसी है हरिआरी ।
अति कारी चहुँ ओर घटा तैसिय पिय-प्यारी-उर फूल फूलना ।
सहचरी झुलावैं खरी आनँद उर प्रेम भरी नील-पीत चंचल दुकूलना ।
मधुर मधुर धुनि गावैं काम को गर्व नसावैं सुंदर मुख
सोभा पावैं भरे तमूलना ।
तैसेई चहुँ ओर कूजैं मोर घन घोर सुनि निसि-भोर जानियै
न सुख अतूल तूलना ।
तैसेइ श्रीबृंदाबन तैसे दोऊ आनँदघन तैसेई हरि
राधा सुखद जमुना-कूलना ॥

राग आसावरी, जैतश्री] (१०२६)

नदसदन जनम्यौ मोहन सुत आनँद ब्रज फूल्यौ हो ।
मंगलमनि कुलकलस जगमग्यौ जनम-जनम-दुख भूल्यौ हो ।
जसुमति-कूखि कलपतरुबर अति अद्भुत-फल झूल्यौ हो ।
पुन्यपुंज को सार साँवरो यह ब्रज अति अनुकूल्यौ हो ।

[१०२३] मोद०=आनंदघन ; आनदमेघ । [१०२५] तमूलना=तांबूल ।

क्यौं कहि सकै भाग की महिमा नाहिन कोउ समतूल्यौ हो।
आनँदघन चिरजीवौ महरि को जीवन-प्रान जरूल्यौ हो॥

राग मलार] (१०२७) [चौताल

गज चाल चलत जोबन-मदमाती पचरँग चूँदरी पहिरैं ग्वालि।
गौर मुरनि भुज ढुरनि भाय सौं उर सरकत मोतियन की मालि।
लंक चलनि सो नचनि नैन की गोरी पीठि पर बेनी हालि।
मुसकि चितै आनँदघन पिय कौं करि जु गई छिन मैं बेहालि॥

राग कनावड़ी, बिलावल] (१०२८) [मूलताल

स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं नैना मेरे लागे री।
बिन देखैं नहिं चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी इनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन हित प्रानपपोहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

राग रामकली] (१०२९) [मूलताल

आज तेरी दहेडी चाखौंगौ चाखौंगौ रस राखौंगौ।
बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगौ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि अभिलाखौंगौ॥

[वृंदावन की प्रति से]

खंडिता] (१०३०)

लाल तुम कहाँ तैं आए जागे।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे।
आनँदघन पिय उहईं जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे॥

पूर्वराग] (१०३१)

स्याम सुजान के बिन देखैं अटपटाय कहुँ ना लागै मन।
नेकहुं कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैननि लीने हैं री पन।
कहा करौं मन परबस परि गयौ इनहिं न दुख छिन छिन छीजत तन।
आनँदघन पिय सौं कहा कहियै उनकी हाँसी और को मरन॥

[१०२६] जरूल्यौ=(जटिल) लटूरीवाले, गभुआरे केशवाले।
[१०३०] बोलत०=बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलते।

होली] (१०३२) [कान्हरो

मोसौं होरी खेलन आयौ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ।
डगर डगर मैं, बगर बगर मैं सबहिन के मन भायौ।
आनँदघन प्रभु कर दृग मींडत हसि हँसि कंठ लगायौ॥

(१०३३) [सारंग

सो बाँके डफ बाजे हैं री, नंदनंदन रसिया के।
अब की होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैं मद छाके छाके।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी, अब न बनैं ह ढाँके ढाँके॥

(१०३४)

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ।
मन मैं तुम्हारे कौन बात है सोई क्यौं न कहौ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ।
आनँदघन तापै नहिं मानत लरिका है निबहौ॥

(१०३५)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री।
अंजन आँजि माँडि मुख मरवट फिरि मुख हेरौ री।
गारी गाय गवाय लाल कौं कार ल्यौ चेरौ री।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री॥

['रसखान और घनानंद' से]

पूर्वराग] (१०३६) [भैरव तिताला

सोवत नगर मैं बोल्यौ को है बगर मैं।
इक डर है मोहिं सासु ननद को अलियाँ गलियाँ डगर मैं।
प्रात-समै उठे नंदनँदनजू बिरहा भीजत झर मैं।
आनँदघन ब्रज उठहिं सबेरे सासु ननद के डर मैं॥

[१०३३] नाका = मुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है। [१०३५] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना।

(१०३७) [टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे तिहारी भँवर की सी रीत।
जित सुगंध पावत तित धावत हौ तुम गरज परे के मीत।
आनँदघन व्रजमोहन प्यारे ठौर ठौरके रस चाखत हौ कैसेँ करूँ प्रतीत॥

शिव-विनय] (१०३८)

करो सिव! महर की नजर निसिदिन घरी घरी पल-छिनन।
कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के बिधाता, तुम ही
देवौ दूध पूत लच्छमी आनँदघन॥

पूर्वराग] (१०३९) [बिहाग, चौताल

ए नैना तोहि बरजौं तू नहिं मानत मेरी सीख।
बरजि रही, बरजी नहिं मानत घर घर माँगत रूप-भीख।
चित चाहत है प्यारे के सरूप को अब कैसेँ मिलनो होय देख।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीँ करम-रेख॥

(१०४०) [तिताला

प्रीति करी सो मैं जानी रे मोहन।
दै बिस्वास गयौ तजि मथुरा रति कुबजा सौँ मानी रे।
कपट-भरौ कारो तन तेरो कपट-भरी सब बानी रे।
आनँदघन हित चित री बाताँ जानत राधा रानी रे॥

(१०४१) [झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो, लागी मैंडे वो।
जब तैं कृपा करी नँदनंदन मिट गई कर्म की खोट वो।
लख चौरासी भटकत भटकत स्यामसरन आई ओट वो।
आनँदघन घनस्याम मोहिँ मिल गए मन मैं रही कहुँ टोट वो॥

(१०४२) [जंगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया बे, स्याम तेरे।
भौंहैं कमान बान कटाछन बेधा गरीबाँ दा हिया बे।
रहदे मस्त महा मतवारे खंजन मध जो पिया बे।
आनँदघन व्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया बे॥

[१०३८] महर=कृपा। [१०४१] मैंडे=मेरे, मुझे। खोट=खोटापन। ओट=शरण। टोट=कमी। [१०४२] खँजन०=खँजनों ने शराब पी है। असाडा=हमारा।

चेतावनी] (१०४३) [कालिंगरो

बिलम न करियै हरि के भजन को ।
करत पलक मैं और और तैं नाहि भरोसो तन को।
आय बन्यौ है अवसर नीको करि लै मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरै गुन - पूरन सुनि जस आनँदघन को ॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१०४४)

वृंदाबन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय ।
कृस्न - ललित - लीला - करन, धारि रह्यो जड़ताय ॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१०४५) [पूरबी ख्याल, इकताला

नैनन देखिबे की बानि ।
बरजि रही बरज्यौ नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहचानि ॥

(१०४६) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया ।
या मारग ह्वै कै हौं निकसी, मेरो छीनि लियौ दहिया दैया ।
सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया ।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया ।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया ।
आनँदघन कैसैं कै भीजैं, ओढि रहे कारी कामरिया ॥

['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(१०४७) [खभाती

होरी खेलौंगी स्याम-सँग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ ।
वो भिजवै मेरा सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुवाग ।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग ।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सौं मेरो रहियौ हे भाग-सुहाग ॥

[१०४४] जड़ताय=जड़त्व । [१०४६] पीहर=मायका । पाँवरिया= जूतियाँ । [१०४७] वो० = वह भिजाएगा ।

(१०४८) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोबन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(१०४९) [सोरठ

लागी रट राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन धन बरसानो गाम॥

(१०५०) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।
चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसिदिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(१०५१) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमडि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहीं साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(१०५२) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्यौछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

बालम=पति। [१०४९] ढुटौना=पुत्र। खोरि=गली। [१०५०] चरचत०=बदनामी करते हैं। बटाऊ=पथिक।

(१०५३) [मालव

ए री हौं तौ चहूँगी री ।
अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी।
सास ननद की कानि न मानूँ देवर-नारि सहूँगी।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी ॥

['घन-आनद' से]

विरहिणी] (१०५४) [कान्हरा

तेरे नाल लगी हो जिंद निमानी।
कित बल कूँकाँ कोई नहिं सुनदा साडी दरद-कहानी।
जो लुन वेखाँ तोसी जीवाँ मान न कर बे गुमानी।
आनँदघन हूँ तू तरसावी वारी वारी ओ दिलजानी ॥

टेर] (१०५५) [ललित

तुमकौं टेरत हौं कहौं न।
श्रीवृंदावन-ओर जात है रूप-रासि की खौंन।
टेरन के लगि हेरन लागी हेरन लागि हेरौंन।
आनँदघन रसमत्त पपैया ज्यौं जल बिन मुरझौंन ॥

लगन] (१०५६)

लागि रह्यौ मन राधाबर सौं, और कहँ कछु और उपर सौं।
दिन रतियाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुघर सौं।
आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगौंगी मैं गिरधर सौं ॥

(१०५७) [मालव

आइयै आईये लालन, अग संग रंग के तरंग
उपजै री जब सब निसा जगाई।
सब ही कौं मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस-बस
आनँदघन सौतिन गाजनी गाई ॥

—['ब्रजभारती' से]

[१०५३] चहूँगी=देखूँगी। [१०५४] नाल=लिए, वास्ते। जिंद=जिंदगी। निमानी=अमानी। बल=ओर। साडी=हमारी। वेखाँ=देखूँ। [१०५६] पपैया=पपीहा। [१०६०] उपर०=ऊपर से। [१०६१] गाजनी=गर्जन, हर्ष।

प्रकीर्णक

कबित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल - चख - तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मोती - माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम - पगी बतरानि मैं।
आनद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनग-रग ढुरि मुरि जानि मैं ॥ १ ॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै ॥ २ ॥

कबित्त

छबि को सदन, मोद - मंडित बदन - चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेप करें, मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ ॥ ३ ॥

[१] भाय = भाव। लड़कि = लटक या ललक के साथ। निधि = खजाना। [२] जलजावलि० = दो लर की मोतियों की माला। [३] ढुराय = मटकाते हुए। लड़काय = ललककर।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है ॥ ४ ॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइयै ॥ ५ ॥

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै ॥ ६ ॥

[४] लड़कीली = ललकवाली। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि = बढ़ती। कैं = कई। ऐपै = इतने पर भी, किंतु। [६] सूल० = वेदना की हूक। कलपायहै = तरसाएगा। कल = चैन।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भरयौ,
कालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ ।
तब तैं न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ ।
नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी बित गयौ ॥ ७ ॥
जाके उर बसी रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसैं करि लागिहै ।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसैं सो गरल-सनो सीखनि सौं पागिहै ।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूधरि सौं कैसैं कोऊ रागिहै ।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरैं सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है ॥ ८ ॥
हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै ।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै ।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै ।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥ ९ ॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी ।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी ।

[७] ऐन=घर । लूट०=लूट सी करके । [८] रसमसी=रसीली । चषक=प्याला । धूम०=धूएँ का धुंध । [९] हिलग=लगन । मरूर=पीड़ा ।

चौचँद-चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१०॥
अलि ! जौ बिधिना ब्रजबास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीं रूखियै दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौ लौं सहौं घुटि कैसें रहौं भयौ भाकसी देखैं बिना घर तौ ॥११॥

कवित्त

छबि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आय गौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखैं मो मन बिकाय गौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन ढुराय गौ।
तब तैं रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसाय गौ ॥ १२ ॥
छबि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
बारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे, रूप-
रेलहिं सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥ १३ ॥
सुंदर सरल लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोबन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।

[१०] गाँसी = फाँस। चौचँद० = बदनामी की चर्चा। [११] भाकसी = (भस्त्रा=भाथी) भट्ठी। [१२] ढुराय गौ=मटका गया। घूमि०=मतवाली हो गई हूँ। रेल=प्रवाह, अधिकता। चाहनि०=देखने से लालसा की वृष्टि होती है।

लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद उमग की तरग बढि
अग अग आली छबि छलक्यौ करति है॥ १४॥
बैस है नवेली अलबेली ऊठ अग अग,
झलकै अनग-रग एँडत चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरगनि सुधा सी उझलत है।
छकै छुवैं कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैननि दलत है।
कारी घुघरारी अलकनि के छलानि, छैल
ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है॥ १५॥
रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िला सु
डग-मग उरस्यौ परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
ऐसो कछू गावत मधुर बसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै, बसि कीजै कहा, महा सोच,
चारयौ ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं॥ १६॥
तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज झूमि झूमि सरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
पीत कौं उमगि लै लै हियें परसत है।

[१४] सुठौन = सुंदर। [१५] ऊठ = दीप्ति। उझलत० = उड़ेलता है। मैन० = कामों को पराजित करता है। छला = केशों के छल्ले। [१६] उरस्यौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै = साथ लगना। रौरि = शोर।

चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै,
उमडि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है॥ १७॥
आई आन गाँव तें नवेली पास पायसैं सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यौ ता कहूँ,
दीठि के मिलत बढ़ि पर्यौ चित चाव री।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसैं ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौं मानत बिभावरी॥ १८॥
गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायैं पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौं।
मीड़िबे के लेखैं कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं॥ १९॥
भावती सहेट अंक भरि भेंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर!
बानियौ सिरानी, क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगैं कहा वीती, भई तब हीं सुरति-रीती,
जैसैं सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।

[१७] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। [१८] पास = निकट, पड़ोस। पायसैं = जेवनार मैं। आवरी = व्यग्र। बिभावरी = रात्रि। [१९] चहनि = देखना।

सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं हुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कौं ॥ २० ॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं बिधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है।
चलि चित चोरै मुरि मनहिँ मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है ॥ २१ ॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिँदूरा की सी फल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौँ भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की दुति आगैँ
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।
दुहूँ हाथ अंसनि तैँ पोरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है ॥ २२ ॥

मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के बरन झोने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन बनितान के,
निहारि मोती-मालहि बिचारि धारा गंग की।

[२०] सहेट = संकेतस्थल। सिरानी = बंद हो गई। सुरति० = सुधहीन।
[२१] लटपटी = टेढ़ी-मेढ़ी। सूध = सीधी। बाँक = वक्रता। साँक = सशंक।
लाँक = कमर। [२२] सिँदूरा = उषा की रक्तिमा। मैन = कामदेव; मोम।

आनँदनि भगे खरो मुरली बजावै मीठी
धुनि उपजावै राग - रागिनी - तरंग को ॥ २३ ॥

सवैया

नैन किये नरजी दिनरैन रती-बल कंचन-रूपहि तोलौं।
बारह बानि बनी ठनी षोडस प्यारी के प्रेम छकी नित डोलौं।
श्रीबन-रानी के छत्र की छाँह करें सुख-बारिधि माहिं कलोलौं।
चाड़ न काहू की, लाड-लडी हम गोरी गरूर भरी नहिं बोलौं॥ २४ ॥

['घनआनद-कबित्त' से]

कबित्त

लाख अभिलाषन की चिंता गुनकथनन,
सुधि करि दान की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु बेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यौं तौ अति अकुलात,
सैनन कहौ है बात मरी और चहियौ।
जानी दिलजान सौं जु मानौ वा सुजान सौं,
निसानी दै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥ २५ ॥

सवैया

आपु ही तें तन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौं कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहि गाउँ मैं ॥२६॥

[२३] नीमा=नीचे पहनने की कुरती। मजन=स्नान। [२४] नरजी=तौल करनेवाला। रती = रति (प्रेम), रत्ती। बारह० = बारह बानी सोना कुंदन; बारह आभूषण। षोडस = सोलह श्रृंगार। श्रीबन० = राधा। चाड़=लालसा, यहाँ अपेक्षा या परवाह। [२५] लाप = सलाप, बातचीत। निसानी = पहचानकर का चिह्न। [२६] भाउ = भाव, वृत्ति।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥२७॥
['शृंगार सग्रह' से]

तब तौ दुरि दूरहि तें मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहैं धँसे ॥२८॥
['सुजान-शतक' से]

कबित्त

बिरह बिसूरे पीर - पूरे मन सबन के,
राति - द्यौस भयौ जिन्हैं पलकौ कलन को।
औधि - आस ओसनि सहारैं हाय कैसैं करि,
जिनको दुसह दीसै पारिबो पलन को ।
या बिधि बियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दलन को ।
आनँदपयोद के पपीहनि पै छायौ अब,
दीरघ दुसह घाम स्याम के चलन को ॥२९॥
['मिश्रबंधु-विनोद' से]

मरम भिदै न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसैं सुरनि घँघोइबो ।
राग ही तें राग के सरूप सौं चिन्हारि होति,
नैनहीन काननि असूझ टकटोइबो ।
अकथ कथा है क्यौंऽवगाहियै अथाहै तान,
ब्यौरिबो बृथा है बादि औसरहि खोइबो ।

[२७] रस = आनंद। [२८] हे = थे । [२९] कल = चैन । पारिबो = बिताना ।

प्रेम-आगि जागैं लागैं भर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ३० ॥
गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाए कहा रस कछू औरई।
समझि समझि बातैं छोलिबो न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौं नेह-बौरई।
कान्ह ब्रजमोहन सौं जौ पन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति दौरई।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरे मिले को सुख,
तिनहीं मैं ब्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ३१ ॥
करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की।
रूप-चतुराई सुभ सील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वैहै कहियै धौं को समान की।
अति ही उदारता की सीवाँ, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की।
काहू सौं न कछू कहौं अपनी ही सोचि रहौं,
मोहिं आस तैयै क्यौं लड़ैती बृषभान की ॥ ३२ ॥
अगम अगाध अदभुत औरै और अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौं हू आवरे।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
बदत बदत बेदौ भेद भए बावरे।
आनँद के अंबुद रसाल महा रोचक हैं.
सब ही के हियै मैं बढ़ाय देत चाव रे।

[३०] मरम=मर्मस्थल। मरम=तत्त्व। धँधोइबो = मैला करना, बिगाड़ना। राग=अनुराग। राग=गीत का राग। नैन=मानस-नेत्र। क्यौंऽवगाहियै= कैसे थहाया जाय। ब्यौरिबो=विवेचन करना। [३१] ससक=सिसक। बौरई= पागलपन। रौरई=कोलाहल। [३३] न होत०=शिव आदि (मति के थकित

सुनत गुनत अभिलाखत उरझि बानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥ ३३ ॥
सुनि सुनि रावरे गुनानि बावरे हैं कान,
लोचन उतावरे है लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
बारनैं तिहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
छाए घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
दरसौ न दैया देखे उघरि अनैसे हौ ॥ ३४ ॥
जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल ही
माच्यौई रहत बन बेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भेँट,
नैन-सैन - दैन-चैन चाहतो परस है।
बानक सुठौन सहजैं ही देखेँ बनि आवै,
आनँद को अंबुद मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी है जौ लगै तौ सौँह आँखिन की,
आँखिन को फल ब्रजभूमि को दरस है ॥ ३५ ॥
बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
बीचिनि मरीचैं जागि लागति जगमगी।
भावना भरनि हिय, गहर भँवर परै,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगी।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंबुद कौं
बन घन ढूँढै रीझि डोलति डगमगी।

होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवरे=मलिन, यहाँ बिमुख। सक्र=इंद्र। सहसमुख=शेष नाग। [३४] लोचैं=बिचारते हैं। । ३५] सुठौन=सुंदर। [३६] बिभाकर०=सूर्य की पुत्री, यमुना। बीचिनि=

प्रेम की पसीजनि प्रबाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिंगार - सार सौं सगमगो ॥ ३६ ॥
स्याम-अंग-सगिनी, बिसाल-रस-रगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौं रही भोय है।
जमुना जननि मोदकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर परथौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
बिनती करत हाहा हठि हारि रोय है।
आनँद के घन सौं पपीहापन पालै क्यौं हूँ,
बासना मलीन मेरे अंतर को धोयहै ॥ ३७ ॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के जब तैं हरिबोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इते पर हाथ कौं पाय पसारै।
लैहै कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सबारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैं बिष-बाननि मारै ॥ ३८ ॥

कबित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रलिका।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियो,
कैसैं रह्यौ परै खिली लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु ब्रजगोरी घनआनँद की,
इते मान तान-बान करी है बिकलिका।
कथनि कही न परै प्रेम-मतवारिन की,
काहू की न सुनी ऐसैं सुनी है मुरलिका ॥ ३९ ॥
लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोबन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।

लहरों में। सगमगी=सजित। [३८] हाथ०=हाथ में और कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (डटी है)। [३९] रलिका=क्रीड़ा।

धूँधरि धमारि कीच माची कहो परै कैसें,
कोटि काम-कटक कै धसकै धौँसर सी।
आनँद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं,
होति है परसपर पैजनी-पसर सी ॥ ४४ ॥

कान्हर खिलार मोद मूरति उदार रूप,
जोबन को मतवार होरी-खेल खग्यौ है।
अवसर सरस बखानें आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताकी उमँगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार-भरी भावती के
रोम रोम राग-भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामनीन पुज फैलि परे,
आनँद के घन पै बिनोद-झर लाग्यौ है ॥ ४५ ॥

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग-राग सरसाति है।
भाग-भरे भावते सौँ औसर फब्यो है आनि,
आनंद के घन की घमड दरसाति है।
औचक निसंक अंक चाँपि खेल-धूँधरि मैं,
सखिन त्यौँ सैननि ही चैननि सिहात है।
केसू रंग बोरि गोरे करि स्यामसुंदर कौँ,
गोरी स्याम-रग बीच बूडि बूड़ि जाति है ॥ ४६ ॥

सवैया

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै खौरनि सौँ।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनाँ दस दोसि परै सब ठौरनि सौँ।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिलै कहूँ टौरनि सौँ।
मन चाहत है मिलि खेलन कौँ तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौँ ॥४७॥

[४४] उपमा०=उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसी=छोटा तालाब। धसकै=फैल रही है। धौँसर=धूलि का आवरण। [४५] खग्यौ०=लगा है। [४६] केसू=किंशुक, पलाश।

बात कही उन रातिन की अब ही तें कहौ दिन कैसें बितैयै।
घातकी ह्वै घनआनँद ओर चकोरी भएँ ब्रजचंद चितैयै।
बाढि परी अभिलाष-नदी अति, कौन बनाव की नाव बनयै।
चीर लिये सु हिये हरि हेली दिये न दिये घर लै कहा जैयै ॥ ४८ ॥

पिय को मन है चलिबे कौं उठ्यौ जिय बैठी यहै न सह्यौ परिहै।
चित तौ चपट्यौ तिन जात लियें यह बावरो कैसें गह्यौ परिहै।
घनआनँद पावस आय लगी बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परिहै।
करिहौ सु कहा कहि री सजनी बदरान लखें न रह्यौ परिहै ॥ ४९ ॥

भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कंज भयानक भासे।
जेइ रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के प्यासे।
हिये सियरात मिले घनआनँद लौटत औटत हाय अवासे।
बस लगि काहि सखी बिरहा ब्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे ॥५०॥

धनि वै बन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरैं सु धरौ।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनके फल लै रसपान करौ।
घनआनँद सींचत डोलौ सबै बड़भाग की रासि रसीली भरौ।
हम सूखति ये पन-प्यास-भरी ब्रजजीवन जीव की जानि ढरौ ॥५१॥

पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है।
तुम दीसि परौ न इते पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नाके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिनरात असीसति है ॥५२॥

ब्रजमोहन रूप-छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियै ते सुखदानियै ते।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियै ते ॥५३॥

[४७] खौरनि=हलकेपन की दुष्टता। टौर=घात, दावँ। [५०] अवासे=आवास, घर। बिरहा०=उन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले ब्रज को विरह के हाथ सौंपते गए। [५२] कसीसति० = खींचती है। मनसा=इच्छा।

काहे कौं सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसैं कहौंगी।
जोबन बैर परयौ है कुटीचर काम पै बाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियैं लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥५४॥

आनि मिलौ ढुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद परयौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दाहन।
चोपनि छावत हौ, घनआनँद आय बढावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥५५॥

ब्रजमोहन गोहन छाडत नाहिं चढ़े चित बैरहि लेत रहैं।
दिन-रैन समीप बियोग धौं कैसो, कहा जौ दिखाइ न देत रहैं।
झर लाय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैं।
भरि हेत रहैं करि चेत रहैं, तजि खेत रहैं रसमेत रहैं ॥५६॥

पाय परैं गति रावरी कैसैं मिलैं अमिलौ रहि मोहत मो ही।
जीवन हौ जग के घनआनँद या बिधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-मांझ बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तें ऐसैं अमोही ॥५७॥

अनचाहेऊ चाहैं खिजेऊ हँसैं, जगि बोले बिना उख-नींद खगैं।
बिन काज ही हार से फिरैं, जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लई मुरली-सुर मैं रसबाद जगैं।
कहि क्यौं मरियै करियैऽब कहा नियरेई रहैं अति दूर भगैं ॥५८॥

अति तीखे परेखनि सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा जिवावन आए कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरे जु बियोग को आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक तिहारी औसेर-दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ॥५९॥

[५४] कुटीचर=कपटी। [५५] छोह=ममत्व। [५६] हेत=प्रेम। रसमेत=रसमय। [५९] ताचि=पककर। तनौ=शरीर भी। लटि०=क्षीण हो जायगा। औसेर=प्रतीक्षाजन्य वेदना।

फागुन मैं उनयौ घनआनँद हेरि हरी है बियोग की तौंसनि।
छैल खिलार महा ब्रजमोहन, खेलत भावनि चोपनि सौं सनि।
गोरिनि घात के घेर परयौ रस चाव बचाव टरयौ कछु गौंसनि।
दाव बन्यौ सु गहाव भएँ हियरा भरि आँखि अँजैबे की हौंसनि ॥६०॥
खेलत फाग फिरै जित ही तित• बातनि घातनि बंकबिहारी।
छैल महाछल सौं बल सौं कल सौं गल सौं लपटौ बनवारी।
आनँद के घन गौं उनए सरसौ बरसौ तरसावत भारी।
रंग तिहारे निहारे अनेक अनूपम एक हौ लाल खिलारी ॥६१॥

कबित्त

कियौ है कहा री तैं बिहारी कौं निहारी जब,
तीखी अँखियानि हियो बँध्यौ न कसरि कै।
पिचका लियेँई रहे रह्यौ रंग तोहि देखैं,
रूप कौ धसक लागैं थके हैं थसरि कै।
तोहि बनि आई सु तौ तोहि बनि आवै राधे,
बिधना बनाई तुहीं सकै कोऽब सरि कै।
कौंधि घनआनँद कौं भिजयौ हगनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै ॥६२॥

सवैया

सखि जौ लौं गुमान हो जोबन रूप को कान्ह सौं तौ लगि मान सज्यौ।
घुरि घेरि कै कानि बढोरि कै लाजहि नीरस नेम लै प्रेम तज्यौ।
घनआनँद बाँसुरिया सुर छाकि हिये तैं सबै डर भीजि भज्यौ।
अब डारतो मारि सयान हठी जौ पै लेती बौरानि जिवाय न ज्यौ ॥६३॥
सब ओर तैं ऐंचि कै कान्ह किसोर मैं राखि भलैं थिर आसकरैं।
ब्रजनाथ-प्रियानि कृपानि समोय सदा मन कौं अनयास करैं।
घनआनँद छाय रहे निसिद्यौस मनोरथ रास-बिलास करैं।
ब्रज-बीथिनि भोर निसीथिनि सो उनमाद-सवाद सौं बास करैं ॥६४॥

[६०] गौंसनि = घात से। [६२] थसरि=शिथिल होकर। सरि= बराबरी। मसरि = मसलकर, मलकर। [६३] बढ़ोरि = बढ़ाकर। सयान= चतुरता। ज्यौ = जी। [६४] थिर० = आशा को स्थिर कर लें। अनयास= श्रमरहित, स्वस्थ। निसीथिनि = रात्रि।

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुतंतर हौ अंतर पिराय कै।
भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह थप्यौ है थिराय कै।
मीठो मीठी बातैं कहि दैया बिष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
बरसौ बिसासी घनआनंद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥६५॥

गति लेत प्यारी न्यारी न्यारीयै लहक जामैं,
लोन अंग रंगनि लगै निकाइयै झरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी ररी।
मुरली बजाय कै नचावै रिझवार प्यारो,
सुरति लगौंहीं डटि भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललिता ललित आँगुरीरि ढोरै,
छायौ घनआनंद चटक चोख है परी ॥६६॥

कोए बिष-भोए सुधा सींचत निहारनि मैं,
बिषम अन्यारे प्यारे लागै पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं चकचौंधी होति,
उज्जल ढगारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकी हैं घन-
आनँद उमहि दाबै धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन टरै न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊलट उठान हैं ॥६७॥

मोहन अनूप बने रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी उरझ की छबीले येई साखियै।

[६५] गसीले=गाँस से भरे, छली। अंतर=चित्त। [६६] ररी=रटती है, व्यक्त करती है। ढोरक=ढोलक। ढोरै=चलाती है। चोख=तीव्र। [६७] बाँक०=

पीवति अघाय प्यास बाढ़ियै रहति महा,
अहा अचरज कहौ कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
जसुधा-कुँवार गुन गहि अभिलाखियै।
चोप चातकी है भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस दै रसीले रस राखियै ॥६८॥
लगैगी तुम्हैँ हूँ, कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
मेरी सी दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौँ ऐसो दिन होयगो कबै धौँ दैया,
बिषम बिछोह द्यौसरातिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनँद जू,
मोहिं फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातेँ तुम सुखी रहौ हौँ ही दहौँ, कहौ कब
लपटनि ताती छाती लपटि सिरायहौ ॥६९॥

सवैया

लहाछेह कहा धौँ मचाय रहे ब्रजमोहन हौ उख-नीँद भरे हौ।
मिलि होति न भेँट, दुरे उघरौ, ठहरैँ ठहरानि के लाले परे हौ।
बिछुरैँ मिलि जात मिलैँ बिछुरैँ यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ ॥७०॥

छप्पय

अच्छर मन कौँ छरै बहुरि अच्छर हो भावै।
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै।
अच्छर को यह भेद कौन जानैँ बिन मानै।
अच्छर हू मैँ मौन मिलै सारदा सुठानै॥
अच्छर मौन सवाद-रन आनँदघन बरसत रहै।
तत्वबोध बौरानि मैँ अच्छरगति अच्छर लहै ॥७१॥

हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [६९] दुहेली=दुःखद। [७०] लहाछेह=शीघ्रता। [७१] अच्छर=(अक्षर) वर्ण। अक्षर=ब्रह्म। छरै=छलता है।

छंद

ब्रजमोहन जू मन लागि परयौ जो लागि परौ ते लेखै है।
नाहीँ तौ हाहा जनम निगोडो यौँ ही जात परेखै है।
जिन तरसावौ रस बरसावौ जग छायौ सुजस बिसेखै है।
आनँदघन प्यारे प्रान पपीहै पल पहार बिन देखै है॥ ७२॥

तीखी तरल सोच हूकनि हिय हाय हाय कौ लौँ छनिहै जू।
धुनि धुनि सीस दीन जियरा पुनि कब लौँ दुखनि हारि हनिहै जू।
ऐसैँ ही ऐसैँ आनँदघन कैसैँ तुम्हैँ बिना बनिहै जू।
औधि अनेक भाँति बितई हरि अंत लेत फिरि को गनिहै जू॥ ७३॥

चौपाई

जो सवाद आवै हरि-रस को। मन तेँ मिटै मीच को धसको।
मिलै सजीवन बाढै चसको। आनँदघन झर लगै दरस को॥ ७४॥

बरवै

श्रीबृंदाबन आवै सो मन ओर।
ऐसैँ भटकै मन की केतिक दौर॥ ७५॥

महाबरवै

सुनहु लड़ैती राधे कीजै करुना-डोठि।
मन सनमुख करि लीजै कब लौँ पीठि॥ ७६॥

सोरठा

जासौँ अनबन मोहि, तासौँ बनक बनी तुम्हैँ।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे॥ ७७॥

दोहा

ब्रजबासिन की अगम गति कौँ लखि सकै न कोय।
नंदराय के बास बसि, जौ ब्रजबासी होय॥ ७८॥
ब्रजमोहन सुख नित नयो, तिहूँ समय रसरूप।
बिन बूझे मति सूझई, अतुलित प्रेम अनूप॥ ७९॥

—[श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना से प्राप्त]

[७३] छनिहै = बँधा रहेगा। [७७] पोहि = गुहकर।

छंदाष्टक

कहाँ जाहिं अरु करैं कहा अब तुम तौ पिय सब गतिनि थकाई।
बिसवासिनि बिसभरी बँसुरिया क्यौं बजाइ करि बिबस बुलाई।
घर तैं गई भई यौं बन की कत कौं करत हाइ निठुराई।
कठिन बात कहि जिन जिय जारौ हा हा स्याम सरन हैं आई ॥८०॥
रूप निहारि हारि मन लोचन ब्रजमोहन बिन मोल बिकाईं।
क्यौं धौं तजत दीन दुखियनि कौं जथासकति सेवाहित धाईं।
सफल करौ किनि कृपा कलपतरु फूलि फूलि अभिलाषनि छाईं।
आनँदघन हौ सुरस सींचियौ बिरह-ताप-मुरझानि सताईं ॥८१॥
तजि कित गए भए हित ऊखल पिय आकली क्यौं तुम्हैं सुहाईं।
हाहा हो ब्रजनाथ साथ बिन बिरहा डरनि मरनि हहराईं।
छतियाँ छत कर छियौ सजीवन बिथा हरौ अब अधिक पिराईं।
रस चखाइ चातकनि मोदघन प्यास-त्रास या बिधि तरसाईं ॥८२॥
सुनि पुकार गत गुहार किन अपनी करि कत करत पराईं।
अबलनि बलहि सम्हार महाभुज दहिने ह्वै न दीजियै बाईं।
आइ जिवाइ लेउ आनँदघन औसेरनि औसनि अकुलाईं।
रसभीजी चितवनि लखाइ करि अब ऐसी आखैं दिखराईं ॥८३॥
देखौ री चलि सघन कुंज मैं तम-पुंजनि न होत डरपाईं।
अनबोली ह्वै रहौ घरिक लौं सुनि सो धौं मुरली सुरझाईं।
या दिसि होत जोति सी जागत फिरि धौं कहा बढ़ी दुखदाईं।
लेहु ढूँढ़ि चितचोर आपनो देहु देखि मुख भाग बडाईं ॥८४॥
मुसकत लसत पीतपट ओढ़ें उर बिलास बनमाल भुराईं।
नमित नैन सुखदैन हमारे मृदुमूरति न दूसरी दाईं।
सतहि लगी अखियनि बिकानि कसु क्यौं करै न बसु इन घाईं।
भल स्याम प्यारे तारे हौ दृग मिलिबो किनि दई मिलाईं ॥८५॥
धरौ चरन दुखहरन दयामनि हम दीननि ओढनी बिछाईं।
मन सुख ह्वै सुखसदन साँवर बैठौ तनक बहुत बिडराईं।
कहौ प्रीति की नीति रीति कछु जाति लियौ सब जग चतुराईं।
ये पटिआँ कित पढ़े कहौ किनि कपट छाँड़ि गोपाल गुसाईं ॥८६॥

गस जिनि गहौ कहौ सो ऐ पर उचित आहि अपराध छमाईं।
अतुल प्रेम की कला करोरिक तुम बिधि अबिधि दाबि दरसाईं।
या बिधि तन मन धन दै रकहिं रिनी कियौ अपनी अगराईं
बुरो मानिबो उर न आनिबो अब तुम ही सब भाँति भलाईं ॥८७॥

त्रिभंगी

सब सुखनिधि मुख सुषमानिधि रसनिधि जसनिधि हितनिधि लहि किन तूँ।
भ्रम-स्रम-भंजन सुचि रुचि रंजन मुनिमनरंजन पन गहि किन तूँ।
आनँदघन अमित अपार सारस्रुति सतसगहि लहि अवगहि किन तूँ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत-द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८८॥
जग-छीलर सुलप सलिल सुख-संपति तिहिं तजि तनक उमहि किन तूँ।
प्रसरित भ्रमजाल बिसाल तहाँ यह सुख सुनि बेगि निबहि लहि किन तूँ।
आनँदघन सदा सरस सीतल सतसगहि लहि अवगहि किन तूँ।
श्रीकृस्ननाम अमृत-द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८९॥
मोहन - मुरली अमृत - धुनि सुनि मोहति रस - बस ह्वै।
अद्भुत अनुराग रचना जब जब प्रताप जड चलत जु च्वै।
जमुना-जल अनिल सगन ससि थिथकित सबै चकित सरूप-गुन छ्वै।
आनँदघन गरजि गरजि बरसत ब्रजतिय-हिय-तृषा-भावना भ्वै ॥९०॥
श्रीकृस्नकथा मंगलमनि हैं यातें सिवब्रह्मानारदसारद मुनिसुकादि राखीभनि है।
कीरति-कुल-कलस अलस तजि सेस सुनाम असेस सिथिल गनि है।
रसना हित रसद बिसद कामद निहकामनि कामधेनु धनि है।
गुन - रूप - रासि मोहन मुरलीधर स्रवन कथन मन सरसनि है।
ब्रज आनँदघन गोपीजन - जीवन प्रेम घमंड सुख-रमँडनि है ॥९१॥
निरवधि सुखदायक रस मधि नायक ललित सुभायक नवनागर।
राधामन- रंजन प्रीतम- अंजन मानस - मंजन गुन - सागर।
अच्युत आनँदघन ब्रज जीवनधन बन बिहरत क्रीडा - आगर।
मोहन-मुरली-रुत रमनी - मंजुत रुचि अद्भुत रजनी - जागर ॥९२॥

———

परमहंस-वंशावली

दोहा

श्रीगुरुपदबर - कोकनद - नव-मकरंदहि चाखि ।
मन-मधुकर आनदघन चातक-रुचि अभिलाषि ॥ १ ॥
सुभकरनी हरनी-दुरित गुरु - सरनी सुखसार ।
भवतरनी बरनी बिसद-निज - निदेस अनुसार ॥ २ ॥
श्रीगुरुबदन - मयंक तेँ वहै चंद्रिका चाहि ।
चित-चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि ॥ ३ ॥
श्रीनिकेत नित परमगुरु श्रीनारायनदेव ।
हंस - रूप सनकादि सौँ उपदेस्यौ निज भेव ॥ ४ ॥
बिषय-जीव जल-छीर लौँ न्यौरि दियौ रसदानि ।
कृपा-कलपतरु है सदा निज जनहित पहचानि ॥ ५ ॥
भव-पारद नारद भए तिन उपदेस - प्रसाद ।
बीना धरि हरिकीरतन - मगन प्रेम - उनमाद ॥ ६ ॥
कलिकालीन मलीन जन तिन उधार कैँ चाव ।
करुनानिधि इहिं बिधि कियौ प्रभुगुन-गान-प्रभाव ॥ ७ ॥
नारद हारद-रूप धरि भरि आवेस अपार ।
संप्रदाय - थापन प्रगट निंबादित्य उदार ॥ ८ ॥
व्यापक बिपुल प्रताप जग हरयौ मोह-नीहार ।
अमल कमल बिकसे सुहृद तरुन करुन अवतार ॥ ९ ॥
रबि राख्यौ भाख्यौ जगत कहूँ कौनहूँ दाव ।
प्रभु की प्रभा प्रभाव को करि साखा-ससि-न्याव ॥ १० ॥

[२] तरनी = नाव । [३] भाषा = ब्रजभाषा । अमरभनित = संस्कृत, अमरवाणी । [४] भेव = भेद । [६] भव० = भवसागर से पार करनेवाले । [८] हारद = हार्द, मानस । [१०] रबि० = भक्त माल में कथा है कि कोई यति (जैन) इनसे शास्त्रार्थ कर रहाथा, सूर्यास्त होरहा था इससे इन्होंने उससे भोजन करने को कहा (जैन सूर्यास्त हो जाने पर भोजन नहीं करते)। जब तक वह भोजन नहीं कर चुका तब तक इन्होंने सूर्य को नीम के पेड़ पर रोक

श्रीनिवास तिनतेँ भए आचारज बिख्यात।
श्रीजुत महिमाजुत महा जग कीरति अवदात॥ ११॥
बिस्वाचारज बिस्वहित तिनकेँ कृपानिकेत।
तिनतेँ पुरुषोत्तम प्रगट आचारज जस-केत॥ १२॥
भई बिलासाचारजै तिनतेँ कृपा अमोघ।
हरिबिलास-बिलसित सदा हरे जगत-अघ-ओघ॥ १३॥
कहौ सरूपाचारजै तिनकेँ कृपा-स्वरूप।
बहुरि माधवाचारजै तिनकी कृपा अनूप॥ १४॥
आचारज बलभद्र कौँ तिनतेँ मिल्यौ प्रसाद।
तिन करि पद्माचारजै पूरन प्रेमसवाद॥ १५॥
स्यामाचारज स्यामरत तिनकी कृपा प्रकास।
गोपालाचारज भजौ पुनि उन अंतेबासि॥ १६॥
तिन सुदृस्टि-रसबृस्टि तेँ कृपाचारजै तोष।
हरिगुन गसि जड जियनि कौँ दई बंध तेँ मोष॥ १७॥
श्रीदेवाचारज भए तिनके सिस्य प्रबीन।
कृस्न-चरन-रति-दान दै करे कृतारथ दीन॥ १८॥
तिनतेँ सुदर भट्ट को भौ सब सुंदर काज।
पद्मनाभ भट्टहि भजौ तिनकी कृपा-जिहाज॥ १९॥
पुनि उपेंद्र भट्टहि कहौ तिन उपदेसागार।
रामचंद्र भट्टहि मिल्यौ तिनतेँ ब्रजरस-सार॥ २०॥
तिनतेँ बावन भट्ट को बढ्यौ प्रताप प्रचंड।
कृस्न भट्ट श्रीजुत भए तिन उपदेस अखंड॥ २१॥
श्रीपद्माकर भट्ट कौँ तिन सुदेस उपदेस।
स्रवन भट्ट तिनतेँ लह्यौ नाम-प्रसाद असेष॥ २२॥

रखा। इसीसे 'निँबादित्य' कहलाए। साखा० = शाखा-चंद्र न्याय। चद्रमा को दिखाने के लिए कोई पेड़ दिखाकर कहा जाता है कि चद्रमा उस शाखा पर है। [११] अवदात = स्वच्छ, निर्मल। [१२] केत = केतु, पताका [१३] अघ० = पापों का समूह। [१६] अंतेबासी = शिष्य। [२२] सुदेस = सुंदर।

भूरिभाग - भाजन भए भूरि भट्ट तिन सीख।
तिनतैं माधव भट्ट लै दई अनेकनि भीष ॥ २३ ॥
स्याम भट्ट तिनतें लह्यौ स्याम-नाम अभिराम।
पुनि गुपाल भट्टहि मिली तिन करि हरिगुन-दाम ॥ २४ ॥
भए भट्ट बलभद्र पुनि बलनिधि तिन उपदेस।
गोपीनाथ सुभट्ट कौं तिनतैं नामादेस ॥ २५ ॥
तिन करि केसव भट्ट कौं मिल्यौ सु केसव नाम।
गंगल भट्ट भलैं भए तिनतैं मंगल - धाम ॥ २६ ॥
ख्याति कासमीरी बिपुल श्रीकेसव सुभ नाम।
बिद्यानिधि बानी बिसद तिन प्रसाद अभिराम ॥ २७ ॥
काजी कौं माजी कियौ माड़ी मथुरा मैंड।
हरिजन - राजी संग लै साजी गुरुता - ऐंड ॥ २८ ॥
तिन प्रसाद श्रीभट लही निरवधि रस की रासि।
सो संपति परति न कही दंपति भलैं उपासि ॥ २९ ॥
जुगुलचंद सुखकंद को बनबिनोद रसभूरि।
भाख्यौ हित राख्यौ सु नित चित-बेला बलि पूरि ॥ ३० ॥
तिन हारद के हृद भए हरिब्यास बडदेव।
अति गँभीर आसय सरस सबनि करी जिहिं सेव ॥ ३१ ॥
महिमा बिदित कहौं कहा देवन नगर मझार।
देवी कौं उपदेस दै मेट्यौ पसुसंहार ॥ ३२ ॥
हिंसा-हलन करयौ भलैं लयौ सुधरम जिवाय।
करुनानिधि कलिकाल मैं या बिधि कियौ सहाय ॥ ३३ ॥
तिन सिस्यनि संख्या नहीं मही महोदधि-रूप।
अमित प्रताप पुनीत जस सबै धर्मधुज-भूप ॥ ३४ ॥

[२३] भीष = भिक्षा । [२४] दाम = माला । [२८] काजी = न्याय-कर्ता । माजी० = मार्जन किया, दंड दिया । माड़ी = मंडित की, स्थापित की । मैंड़ = मर्यादा । राजी = पंक्ति, समूह । ऐंड = दबदबा । [२९] दंपति = राधा-कृष्ण । उपासि=उपासना करके । [३१] हारद = हार्द, कृपालु । हृद = हृदय ।

तिनके पाट बिराजि कै परमानिधि श्रीमान।
पदवी कौं पदवी दई मुनिबर कृपानिधान ॥ ३५ ॥
अगम पदारथ सुगम किय भाषा हित-बिस्तार।
- ... . ॥ ३६ ॥
हरिगुन-चरितनि सुरसरित महाधीर मति मौन।
तहाँ नमित नरपति कहूँ कहौ बडाई कौन ॥ ३७ ॥
जीवदया हरिधर्म - हित रच्यौ सत्र सुखदानि।
श्रीपुहकर दिसि बिदित नित साधुसत सनमानि ॥ ३८ ॥
तिनके पाट लसे बसे मुनिवर श्रीहरिबंस।
अति बिवेक बिज्ञान-घन जसनिधि परम प्रसंस ॥ ३९ ॥
श्रीनारायनदेव कौं तिनको कृपा-प्रसाद।
अति उदार बिद्याबिपुल पूरन प्रेम-सवाद ॥४० ॥
सदा कृस्न-गुन-कथन-रत मत-मंडन-जय-रूप।
बिमुखनि खंडन बचनबर-रचना - तुंड अनूप ॥ ४१ ॥
दीन-सरनदायक करुन हरन अखिल-दुख-दोष।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जग करन-जीव-परितोष ॥ ४२ ॥
बिद्यानिधि बहुबिधि निपुन कृपा-अवधि रसकंद।
बचनरचन हारचरितमय ससि तें अमल अमंद ॥ ४३ ॥
जग-बोहित मो हित प्रगट हरिबिनोद निजधाम।
अवनीमनि श्रीयुत सदा बृंदाबन अभिराम ॥ ४४ ॥
बिसे बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हैं बीस।
सदा बसौ नीकैं लसौ कृपा - ईस मो सीस ॥ ४५ ॥
परमहंस - बसावली रची सची इहिं भाय।
कंठ धारिहैं गुरुमुखी सुखदाई समुदाय ॥ ४६ ॥
कासीबासी सेष गन निगमागमन-प्रबीन।
निंबादित्य - अनुगम सबै परम पुनीत कुलीन ॥ ४७ ॥
तिनको बंस प्रसंस जग जगमग ज्यौं द्विजराज।
गनमंडित पंडित बिबुध सोभित सदा समाज ॥ ४८ ॥

तिन करि यह निहचय करी परपरा की रीति।
स्रुति औ सुमृति पुरान की कथा पुरातम नीति ॥ ४९ ॥

आचारज हरिबपु सदा स्रुति भागवत प्रमान।
.. .. ॥ ५० ॥

जब जब धर्मगिलानि को हित अवनी संचार।
तब तब निज बपु धरि करैं जगत-जीव-निस्तार ॥ ५१ ॥

कृस्नावेस-स्वरूप है आचारज जग माँहि।
अप्राकृत जानौ तिन्हैं यामैं संसै नाहिं ॥ ५२ ॥

उभै लोक साधन यहै अभैदान की सीवँ।
हरिगुन-माल रसाल कौं धरन करौ सुग्रीवँ ॥ ५३ ॥

प्रतीकानुक्रमणी

कबित्त

['कबित्त' से तात्पर्य मनहरण, सवैया और छप्पय से है। अंक छंदों के हैं। अंकों के पीछे के अक्षर ग्रंथों के प्रतीक हैं। जिनमें ये अक्षर नहीं वे 'सुजानहित' के हैं। कृ० = कृपाकंद। वृं०=वृंदावनमुद्रा। प्रे०=प्रेमपद्धति। दा०=दानघटा। प्र०=प्रकीर्णक।]

पद

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६।२२	भूलि	भूले
७।२४	ताऊ	तऊ
७।२७	गुण	गुन=गुण
८।६	अंग अंग	अँग अंग
१५।६	आँखि न	आँखिन
१५।२५	मी	भी
२१।२३	अतिष्ठा	प्रतिष्ठा
२४।२७	भेला	मेला
३२।२२	अदा०	भदा०
३६।२८	अलापन	भलापन
५६।२५	चौरस	चौसर
७०।२६	लिलने	मिलने
६०।२६	मुखमय	सुखमय
६५।२१	दई	निरदई
६६।२५	कर	सींचकर
१११।२६	घनआनँद	घनआनद
,,	आनँद	आनंद
१२७।२६	बेढंगे तौ	अपनी ओर
१२८।२८	नम	हम
१४४।२५	उड्यौ	उडुपौ०-उदयौ।
,,	-नव	नभ-नव।
२०१।२५	पत्नी	जननी
२०७।२२	घरै	घर
२१३।२३	हेत	तेह
२२३।२६	शखाओं	शाखाओं
२३२।१७	जटुल	जटिल
,,	लत्तण	लटूरी
२४८।१८	धोष	घोष
२७४।२७	परिकर	परिकर
,,	बिकट	निकट
२८८।२२	कबित्त	वृदा०
३५५।२७	खोल	मुरली
३८४।२४	पास	पास या बिना
३६०।२७	त्रास	त्रास या आवेग
३६८।२७	नृत्य	वाद्य
४१६।२७	अँक्ख्यौं	अँक्खौं
५८१।३०	खँजनौं	खंजनौं
६०८।२५	निंबादित्य'	'निंबादित्य,
,,	चँद्र	चंद्र
६०६।२६	मँडित	मंडित

सूचना—मात्राओं के टूटने से होनेवाली अशुद्धियों का उल्लेख नहीं है।